वक्तव्य

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा बिहार की विभूतियों में थे। अपनी विद्वत्ता के कारण तो वे भारत-विख्यात थे ही। उनकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि वे कोरे सूचीपत्र-पण्डित नही थे, जो दुर्भाग्यवश इधर अनेको सस्कृत के परम्परागत पद्धति के विद्वान् ! पण्डित बन गये है। वे सभी बातों को तर्क की कसौटी पर जाँचा करते थे; अन्ध-विश्वास के बल पर किसी चीज को ग्रहण नही करते थे। उनकी तर्कशक्ति विलक्षण थी। उनमे ऐसी प्रतिभा थी कि भारतीय पुरातत्त्व के यशस्वी विद्वान् स्वर्गीय श्री काशीप्रसाद जायसवाल प्राय कहा करते थे कि शर्माजी कपिल और कणाद की श्रेणी के विचारक है। उनके अकाल-कालकवलित हो जाने से विद्वत्समाज और विद्वत्तामात्र की जो हानि हुई है, उसका अंदाज वे ही कर सकते है जिन्हे श्रद्धेय शर्माजी के सम्पर्क मे आने या उनके लेखो और ग्रन्थो को देखने का सुयोग मिला था।

सस्कृत और हिन्दी में उनकी जितनी रचनाएँ सुलभ है, सबको प्रकाशित करने का निश्चय बिहार-सरकार ने किया है। उनकी सस्कृत-रचनाएँ 'मिथिला-संस्कृत-प्रतिष्ठान' द्वारा प्रकाशित कराई जा रही है और उनकी हिन्दी-रचनाओ के प्रकाशन का भार 'बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्' को सौपा गया है। उनकी एक पुस्तक 'यूरोपीय दर्शन' इसी परिषद् से प्रकाशित हो चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक उनके कई लेखों का संग्रह है।

विद्वद्वर शर्माजी के जिन निबन्धों को इस पुस्तक में प्रकाशित किया जा रहा है, य बहुत परिश्रम से खोज करने पर प्राप्त हुए है। उनके संग्रह का श्रेय बिहार-सरकार के जन-सम्पर्क-विभाग के उपनिर्देशक और इस परिषद् के अन्यतम सदस्य श्री उमानाथ को है। उनके द्वारा संगृहीत निबन्धो के अतिरिक्त कुछ और भी स्फुट निबन्ध मिल गये है जो इस पुस्तक के अन्त में (परिशिष्ट में) दे दिये गये है। इन स्फुट लेखों की प्राप्ति मे स्वर्गीय शर्माजी के सुपुत्र प्रो० नलिनविलोचन शर्मा और शिष्य पण्डित केदार नाथ शर्मा सारस्वत (सुप्रभातम्-सपादक) से सहायता मिली है। इसके लिए परिषद् उन्हें धन्यवाद देती है।

निबन्धो के मौलिक रूप की रक्षा पर विशेष ध्यान रखा गया है। कही किसी प्रकार का कोई परिवर्त्तन या परिवर्द्धन नही किया गया है। ये कितने महत्त्वपूर्ण और सारगर्भ है, यह तो पढने पर ही स्पष्ट हो जायगा। इसमे सन्देह नही कि हिन्दी में ये अपने ढग के सर्वथा मौलिक और अनूठे निबन्ध है।

हिन्दी-प्रेमी पाठको और साहित्यानुरागियो से विशेष अनुरोध है कि, इस सग्रह मे प्रकाशित निबन्धो के अतिरिक्त, यदि कोई नया निबन्ध या लेख उन्हें कही प्रकाशित अथवा अप्रकाशित रूप में मिले, तो वे 'विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' को अवश्य सूचना देने की कृपा करें। दूसरे सस्करण में ऐसी सभी प्राप्त सामग्रियों का समावेश कर दिया जायगा।

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी
स० २०११ वि०

बदरीनाथ वर्मा

दो शब्द

'भूषण' कवि ने, शिवाजी के राज-दुर्ग की चर्चा करते हुए, यह लिखा है कि वह दुर्ग इतनी ऊँचाई पर था कि यदि कोई शत्रु का सैनिक धरती पर से उसकी ओर देखना चाहता था, तो अनायास उसके माथे की पगडी खिसक कर जमीन पर गिर पडती थी। इसी प्रकार, महाकवि कालिदास ने, रघुकुल का वृत्तात आरम्भ करते समय, उक्त वृत्तात रूपी सागर की तुलना मे अपनी प्रतिभा को छोटी-सी डोगी की उपमा दी है—"तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।"

आचार्यप्रवर महामहोपाध्याय पडित रामावतार शर्मा विद्वत्ता और प्रतिभा की दृष्टि से उपर्युक्त राज-दुर्ग अथवा सागर से किसी भी अश मे कम नही थे। मुझे, शिष्य के रूप मे, वर्षो तक, शर्मा जी के अत्यन्त निकट-सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। साहित्य, ज्यौतिष, विज्ञान आदि विभिन्न विषयो और सस्कृत, हिन्दी, अँगरेजी, जर्मन आदि विभिन्न भाषाओ पर उनका समान रूप से अधिकार था। जब वे हमलोगो को "न्याय-दर्शन" अथवा "नैषधीय चरित" जैसे गहन विषय पढाते थे अथवा हमारी समस्याओ का समाधान करते थे, तो साथ-ही-साथ अपने "विश्वकोष" अथवा किसी अन्य साहित्यिक कृति के निर्माण मे भी निरत रहते थे। उनकी इस विलक्षण कार्य-पद्धति को देखकर, हम आश्चर्यचकित हो जाते थे। उनकी विद्वत्ता इतनी प्रकाड थी कि गभीर-से-गभीर विषय का प्रतिपादन वे अनायास, अत्यन्त सरलता के साथ, किया करते थे। शर्माजी की जीवन-शैली भी अत्यन्त असाधारण थी, उसमे सरलता, सात्विकता एव प्रगतिशीलता का अलौकिक सामजस्य दृष्टिगत होता था।

पुण्यस्मृति शर्माजी का साहित्यिक जीवन वर्त्तमान शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही सुविकसित हुआ था। उस समय से अपने असामयिक निधन तक की प्राय तीन दशाब्दियो की अवधि मे, उन्होने अपनी अद्भुत प्रतिभा एव अविश्रान्त अध्यवसाय के बल से जो अपूर्व साहित्य-सेवा की थी, उसका महत्त्व आज के युग मे भी असदिग्ध है। सस्कृत-साहित्य के सुविकास के लिए निरन्तर किये जानेवाले अपने विविध प्रयत्नो के अतिरिक्त, राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य-भाडार को सर्वांगपूर्ण एव समृद्ध बनाने के अभिप्राय से भी, उन्होने महत्त्वपूर्ण प्रयास किये थे। प्रस्तुत ग्रन्थ मे सगृहीत शर्माजी के हिन्दी निबन्धो से हमारी उपर्युक्त मान्यता की सार्थकता स्वत परिलक्षित होती है। दर्शन, काव्य, साहित्य, व्याकरण, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व, नृशास्त्र, शिक्षा, धर्म, सभ्यता, सस्कृति, भाषा-विज्ञान, भूगोल, खगोल, ज्योतिर्विद्या आदि विभिन्न विषयो के जो निबन्ध प्रस्तुत सग्रह मे एकत्र किये गये है,

उनके अनुशीलन से यह सहजही स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान के व्यापक क्षत्र का कदाचित् ही कोई अग था, जिसका सस्पर्श शर्माजी की प्रभविष्णु लेखनी ने नही किया था। इनमें से अधिकाश निवन्ध हिन्दी के उच्चवर्गीय विद्यार्थियो तथा अनुसधानकर्त्ताओ के लिए बहुत ही उपयोगी है ।

आज से प्राय पचास वर्ष पूर्व, हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप मे सुप्रतिष्ठित करने के लिये, जिन विद्वानों ने सक्रिय प्रयत्स किय थे, उनमे शर्माजी का स्थान अत्यन्त प्रमुख था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के युग के बाद, पंडित गोविन्द नारायण मिश्र, श्री बालकृष्ण भट्ट, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रभृति साहित्य मर्मज्ञो के साथ-साथ, शर्माजी ने भी, राष्ट्रवाणी हिन्दी को सर्वांगपूर्ण एव सुविकसित करने के लिए, हिन्दी भाषा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की थी। देशवासियो द्वारा हिन्दी की उपेक्षा की ओर सकेत करते हुए, शर्माजी ने लिखा था—"पचीस-तीस वर्ष पहले अँगरेजी फिट फाट वाले बाबू तथा सस्कृत के प्रचड पण्डित दोनो ही हिन्दी भाषा की ओर सकुचित दृष्टि से देखते थे । . किन्तु, अपने गुणो से तथा सूर, तुलसी, हरिश्चन्द्र आदि महाकवियो की अपूर्व प्रतिभा से, हिन्दी केवल भारत में ही नहो, द्वोपान्तरो में भी माननीय हो रही है । राष्ट्रभाषा तो हिन्दी हो ही रही है, थोड़े दिनो में महोत्साह मारवाड़ी भाइयो के अव्यापक वाणिज्य आदि से 'सघीय', 'नन्दन' और 'नवार्क' में भी इसका प्रचार होना दुर्घट नहीं दीख पड़ता।" शर्माजी के इस व्यजक वाक्य से उनकी हिन्दी-निष्ठा के साथ-साथ शब्द-सर्जन-प्रवृत्ति का भी यथेष्ट परिचय मिलता है। उपर्युक्त वाक्य मे "सघीय", "नन्दन" और "नवार्क" शब्द क्रमश. अँगरेजी के "सघाई", "लन्दन" और "न्यूयार्क" के लिए प्रयुक्त हुए है। इसी प्रकार, वे बहुधा अँगरेजी शब्दो के हिन्दी पर्याय, सस्कृत की शब्द-प्रक्रिया के आधार पर, रचा करते थे। उदाहरणार्थ, अँगरेजी के "ऑक्सफोर्ड", कैम्ब्रिज" "अलेक्जेन्डर" "न्यूटन" आदि शब्दो के पर्यायस्वरूप उन्होने "उक्षप्रतर", "कामसेतु", "अलीकचन्द्र", "नवतन" आदि शब्दो का सर्जन किया था।

हिन्दी गद्य-शैली के प्रमुख प्रवर्त्तक के रूप में शर्माजी ने जो सेवाएँ की थी, वे सर्वविदित ह। किन्तु, यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि शर्मा जी हिन्दी मे कविता भी करते थ। उनकी कविताओं में देशानुराग एव भारत के अतीत गौरव के भाव बहुधा प्रस्फुटित होते थे। इस दृष्टि से, वे श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी और मथिलीशरण गुप्त की कोटि में माने जा सकते है। उनकी "भारतोत्कर्ष" शीर्षक कविता की निम्नलिखित पक्तियाँ विशेपरूप से ध्यान देने योग्य है—

"वाचक! विचारो तो जरा, इस देश की पहली छटा।
अब आज कैसी घिर रही, अज्ञान की काली घटा।।
गौतम, कपिल, कणाद-से, ज्ञानी यहाँ पर हो गये।
परिपूर्ण दर्शन-शास्त्र रच, अज्ञान सबका धो गये।।

हिन्दी भाषा की सर्वांगीण समृद्धि के लिए शर्माजी सदैव चिन्तित और यत्नशील रहते थे। इस संबध मे, अपने विचारो को व्यक्त करते हुए, उन्होने लिखा था—"जिस भाषा में विज्ञान, दर्शन, इतिहास, आदि के स्वतन्त्र उत्तम निबन्ध नही, प्राचीन या वैदेशिक आकर-ग्रन्थो के अनुवाद नहीं, दो-एक उत्तम छोटे-बड़े विश्वकोष नही, उस भाषा को अपनी मातृभाषा कहने वाले को तो लज्जा के मारे तबतक सभ्य जगत् मे मुँह नही दिखाना चाहिए और अपनी भाषा के विषय मे शेखी नही छाँटनी चाहिए, जबतक वे अपने प्रयत्नो से अपनी भाषा के इन कलकों को दूर न कर ले।" अपने 'हिन्दी की वर्त्तमान दशा' शीर्षक निबन्ध मे, शर्माजी ने, हिन्दी के साहित्य-भाण्डार के अभावो को दूर करने के अभिप्राय से, एक सौ ऐसे विषयो की सूची प्रस्तुत की थी, जिनपर ग्रन्थो का लेखन और प्रकाशन उनका इष्ट था। आज भी वह सूची हमारे साहित्य-निर्माताओ के लिए, पथ-प्रदर्शिका के रूप मे, उपयोगी है।

शिक्षा के माध्यम के रूप मे राष्ट्रभाषा हिन्दी के व्यवहार के आप प्रबल समर्थक थे। आज से प्राय चार दशाब्दी पूर्व, आपने इस विषय मे, अपने 'हिन्दी मे उच्च शिक्षा' शीर्षक निबन्ध मे, लिखा था कि—"सभी सभ्य देशो मे आज शिक्षा का प्रचार देश ही की भाषा मे हो रहा है। वैदेशिक भाषा मे शिक्षा का प्रचार कदाचित् भारत के ही सदृश दीन-हीन देशो में होता होगा।" इससे स्पष्ट विदित होता है कि, देशवासियो की शिक्षा के माध्यम के रूप मे, अँगरेजी भाषा के बदले, देशी भाषा के व्यवहार के लिये वे कितने उत्सुक थे।

इसी प्रकार, 'हिन्दी मे विश्वकोष की अपेक्षा शीर्षक निबन्ध मे, शर्माजी ने लिखा था कि—"आज प्राय सभी सभ्य जातियो मे विश्वकोष वर्त्तमान है। अँगरेजी मे तो एक रुपये से लेकर पाँच सौ रुपये तक के विश्वकोष देखे जाते हैं। जर्मन, फ्रांसीसी आदि भाषाओ मे भी ऐसा ही है। पर भारत मे, जहाँ कम-से-कम दस करोड मनुष्य हिन्दी बोलते और समझते है, हिन्दी मे अभी एक भी विश्वकोष नही है।"

इन लेखो के द्वारा, शर्माजी, हिन्दी के साहित्य-निर्माताओ का ध्यान हिन्दी भाषा-साहित्य के अभावो की ओर आकृष्ट कर, उन्हे रचनात्मक कार्यक्रम का अनुसरण करने के लिये उत्प्रेरित करते रहते थे। आशा है, वर्त्तमान युग के साहित्यकार भी इन लेखो से यथेष्ट लाभ उठाकर, राष्ट्रभाषा हिन्दी की श्रीवृद्धि मे सलग्न होगे।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने, पूज्यपाद शर्माजी की स्फुट रचनाओ का प्रस्तुत सग्रह प्रकाशित कर, उनका नही, अपना गौरव बढाया है। हिन्दी भाषा-साहित्य के उद्भव और

विकास में बिहार के योगदान का विस्तृत इतिहास जब लिखा जायगा, तो महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा उसमें, प्रगति के पथ पर स्थित एक विशाल निर्देश-स्तम्भ के रूप में, निश्चय ही दृष्टिगत होंगे—"स्थित पृथिव्यामिव मानदंड.।"

मेष-संक्रान्ति
वि० सं० २०११

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री
(परिषद्-मंत्री)

श्रीरामावतारशर्मा-निबंधावली

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा

परिचय

"भारतस्य न भा भाति, विहारो हारवर्जित ।
रामावतारे स्वर्याते मूर्च्छितेव सरस्वती ।।"

भारत की पुण्यभूमि आदिकाल से ही दिव्य द्रष्टाओ, सिद्ध सन्तो एव विलक्षण बौद्धिक विभूतियो की जन्म-भूमि के रूप मे विख्यात रही है। वाल्मीकि और वेद-व्यास, कपिल और कणाद, जनक और याज्ञवल्क्य तथा पाणिनि और पतञ्जलि की इस विमल भूमि ने, आधुनिक काल मे भी, ऐसे अनेक अद्भुत नर-रत्नो को उत्पन्न किया है, जिनकी अलौकिक ज्योति से सम्पूर्ण भूमण्डल आलोकित हुआ है । रामकृष्ण और चैतन्य, विवेकानन्द और विद्यासागर, दयानन्द और राममोहन राय, तिलक और गोखले, महायोगी अरविन्द और महर्षि रमण, तथा गाँधी और रवीन्द्रनाथ ने जैसे अपने-अपने कार्य-क्षेत्र मे, अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल से, निखिल मानवता की हितसिद्धि के निमित्त, सफल प्रयास किये थे, उसी प्रकार महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा ने भी, अपने अविश्रान्त स्वाध्याय एव अविचल ज्ञान-साधना के द्वारा, समाज के समक्ष, सरस्वती की उपासना का जो अनुपम एव अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया था, उससे समग्र साक्षर संसार सहज ही विस्मय-विमुग्ध हो गया था।

विलक्षण व्यक्तित्व

शर्माजी के विलक्षण व्यक्तित्व के विविध गुणो का विश्लेषण करते हुए, उनके असामयिक निधन के बाद, किसी लेखक ने लिखा था कि—"आप साहित्य मे पण्डितराज जगन्नाथ के समान, व्याकरण मे बालशास्त्री के समान, न्याय मे गदाधर के समान, वेदान्त मे शकराचार्य के समान, धर्मशास्त्र मे हारीत के समान, ज्यौतिष मे भृगुमुनि के समान, पुरातत्त्वान्वेषण में भण्डारकर के समान, गद्य-लेखन-शैली मे बाणभट्ट के समान, वाद-विवाद की तर्क-पद्धति में डाक्टर जानसन के समान, सूक्ति-कथन मे शुकदेव के समान, स्मरणशक्ति की प्रबलता में मेकॉले के समान, विज्ञान-महत्ता-प्रतिपादन मे बेकन के समान कविता मे कालिदास के समान, वेदार्थ-तत्त्व-विवेचन मे यास्क और सायणाचार्य के समान, जात्यभिमान मे लोकमान्य तिलक के समान, सामाजिक क्रान्ति मे लूथर के समान, विधवा-विवाह-समर्थन मे विद्यासागर और महात्मा गाँधी के समान, पुनर्जन्म-खण्डन मे चार्वाक् के समान मनस्विता मे शिवाजी के समान और दयालुता में गोखले के समान थे।" वस्तुत, आपके विलक्षण व्यक्तित्व मे हृदय एव मस्तिष्क के विविध गुणो का अतिभव्य सामञ्जस्य दृष्टिगत होता था। आप सर्वतोमुखी प्रतिभा के मूर्त्तिमन्त प्रतीक थे । समस्त भूमण्डल

के चूडान्त विद्वानो मे आपकी गणना होती थी। आपके देदीप्यमान व्यक्तित्व से ब्रह्मतेज की आभा निरन्तर प्रस्फुटित होती रहती थी, उसके सामने बडे-बडे विद्वान् भी सर्वथा हतप्रभ हो जाते थे। आपकी अनूठी एव चित्ताकर्षक तर्कावलियाँ बडे-बडे नैयायिको तथा धुरन्धर तार्किकों को भी सहज ही निरुत्तर कर देती थी। आपके प्रचण्ड पाण्डित्य का लोहा समस्त साक्षर सम्प्रदाय मानता था। आपकी विचित्र विद्या-पारगामिता विभिन्न विषयो के विश्वविख्यात विद्वानो को भी सहज ही चकित कर देती थी। यही तो आपके विलक्षण व्यक्तित्व की विशेषता थी ।

वर्त्तमान युग के बृहस्पति

शर्माजी के विशाल व्यक्तित्व के विविध तत्त्वो का विश्लेषण करने पर, हमे यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके निर्मल एवं निष्कलुष हृदय में विद्यानुराग का स्थान सर्वोपरि था। उनके ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था और उनकी विद्वत्ता अगाध । यद्यपि आप सामान्यत संस्कृत और हिन्दी के प्रकाड विद्वान् के रूप मे ही सुविख्यात थे, तथापि जिन लोगो को उनके घनिष्ठ सम्पर्क मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे यह भली भांति जानते है कि ससार का कदाचित् ही कोई ऐसा विषय होगा जिसका ज्ञान उन्हें नहीं था। आपकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त अलौकिक थी । संस्कृत तथा अंगरेजी के सैकडो ग्रन्थो को आपने अपने स्मृति-पट पर अंकित कर लिया था। उपनिषदो तथा अन्यान्य प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थों को अपनी प्रचण्ड मेधाशक्ति से आपने कण्ठस्थ कर लिया था। काव्य-शास्त्र के अनेक ग्रन्थ भी आपके जिह्वाग्र थे। इसी कारण, अध्यापन के समय, आपको कदापि पाठ्यग्रन्थो को देखने की आवश्यकता न होती थी। यदि यह कहा जाय कि आप सजीव पुस्तकालय थे, जगम विश्वकोश थे, मूर्तिमन्त विश्वविद्यालय थे, तो कदाचित् लेश-मात्र भी अतिशयोक्ति न होगी । वस्तुत, आप वर्त्तमान युग के बृहस्पति थे।

मूर्तिमान् दर्शन

यद्यपि सभी विषयो के ज्ञानार्जन मे शर्माजी की रुचि समान थी, तथापि यह निर्विवाद है कि दर्शन उनका सर्वाधिक प्रिय विषय था। इसी कारण, देश के विभिन्न भागो के विद्वानो के अतिरिक्त, विदेशी निष्णात विद्वान् भी, विभिन्न दार्शनिक समस्याओ के विषय मे, आपसे आलोक प्राप्त करने के लिए सदैव उद्यत रहते थे। आपका 'परमार्थ दर्शन' सप्तम दर्शन के रूपमें विख्यात है। उसमें प्रतिपादित आपके अभिनव दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रचार भूमण्डल के प्राय सभी सभ्य देशो में हुआ है और सर्वत्र विद्वत्समाज ने उन उच्च उत्प्रेरक सिद्धान्तों का समादर किया है । इस अपूर्व दर्शनग्रन्थ का प्रकाशन सर्व-प्रथम १९११-१२ ई० मे काशी से हुआ था। उसके पूर्व ही, उनकी विलक्षण दार्शनिकता की ख्याति का विस्तार देश-विदेश मे हो चुका था। इसीके परिणामस्वरूप, १९०८ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हे 'वेदान्त' के विषय में व्याख्यान देने के लिए सादर आमन्त्रित किया था। उन व्याख्यानो का भी पुस्तिकाकार प्रकाशन उसी समय हुआ था।

भारतीय दर्शन के सुविकास के साथ-साथ, शर्माजी ने पाश्चात्य दर्शन का भी यथेष्ट अध्ययन किया था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान मे, १९०५ ई० मे, आपके 'यूरोपीय दर्शन' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ था। उसके पूर्व, १९०२ ई० मे, आपने पुराणो का दार्शनिक विवेचन करते हुए अँगरजी मे एक ग्रन्थ लिखा था, जो अप्रकाशित है। आपकी दार्शनिक विशिष्टताओ की प्रशसा करते हुए, माध्व सिद्धान्तो के एक मर्मज्ञ विद्वान् ने कहा था कि "आप स्वय मूर्तिमान् दर्शन थे।' '

संस्कृत-साहित्य-सेवा

दर्शन के अतिरिक्त, सस्कृत-साहित्य के अन्य अगो के अभीप्सित विकास के लिए भी शर्मा ी ने अ नेर्वचनीय सेवाये की थी। सस्कृत मे आपने अनेक ऐसे ग्रन्थो का प्रणयन किगा था, जो अनुपम एव अलौकिक है। आपकी सस्कृत कृतियो मे "वाङमय महार्णव" नामक श्लोकबद्ध विश्वकोष सर्वश्रेष्ठ है। इसकी रचना १९११ ई० से १९२५ ई० तक की अवधि मे हुई थी। उक्त विश्वकोष, निस्सन्देह, उनके जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति है। यह बडे हर्ष का विषय है कि हमारे राष्ट्रपति देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी की शुभ प्रेरणा से बिहार-राज्य-सरकार उक्त विश्वकोष के प्रकाशन के लिय यत्नशील है। श र्मजो सस्कृत-साहित्य को ससार का श्रेष्ठतम साहित्य मानते थ और उसके सभी अगो के सुविकास के लिये अनवरत उद्योगशील रहते थे। आपके निधन के बाद, आपकी अनुपम सस्कृत-सेवाओ की प्रशसा करते हुए, एक फ्रान्सीसी विद्वान् ने ठीक ही कहा था कि—'शर्माजी ने दस वर्षो की अवधि मे जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, उसे हम, पचास पाश्चात्य विद्वान्, एक साथ मिलकर, पचास वर्षो मे भी सम्पन्न नही कर सकते थे।'

अगाध हिन्दी-निष्ठा

सस्कृत के साथ-साथ, राष्ट्रवाणी हिन्दी की सर्वाङ्गीण समुन्नति के लिये भी, शर्माजी सदैव सचेष्ट रहते थे। सार्वदेशिक उपयोग के लिये, भारत की राष्ट्रभाषा के गौरव-मडित पद पर हिन्दी को सुप्रतिष्ठित करने मे आपने महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। देश भर मे, उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप मे भी, अँगरेजी के बदले हिन्दी का ही व्यवहार वे सर्वथा उपयुक्त समझते थे। आपकी हिन्दी-निष्ठा, वस्तुत, अत्यन्त अगाध थी। १९१६ ई० मे, जबलपुर मे आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सप्तम वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष-पद को आपने ही अलंकृत किया था। उस अवसर पर, आपके सभापतित्व का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए, पडित विष्णुदत्त शुक्ल ने कहा था कि—"आप अपनी उच्चकोटि की विद्वत्ता के कारण ही प्राय देशभर की पठित जनता मे सुप्रसिद्धि पा चुके है। आपने अपनी इस विद्वत्ता से हिन्दी भाषा के भाण्डार की खासी वृद्धि की है।" सुप्रसिद्ध हिन्दी-सेवी श्री श्यामसुन्दर दास तो शर्माजी को अपना गुरु ही मानते थे। हास्य-रसावतार पडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने, उक्त अवसर पर, कहा था कि—"जैसे रामावतार' के समय मर्यादा स्थापित हुई, वैसे ही आज भी यहाँ रामावतार हुआ है!

हिन्दी की भी मर्यादा स्थापित हो जायगी।" उक्त सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से आपने जो मारगर्भ भाषण किया था, वह हिन्दी के अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए बहुत उपयोगी है।

राष्ट्रवाणी हिन्दी का सुविकास

हिन्दी भाषा-साहित्य के विविध अभावों को अविलम्ब दूर करने के लिये, शर्माजी ने महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किये थे। १९०५ ई० मे, जबकि हिन्दी मे भाषा-विज्ञान का कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित न हुआ था, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान मे, आपने इस विषय पर एक गभीर व्याख्यान दिया था, जो सभा द्वारा प्रकाशित किया गया था। १९०७ ई० में, आपने भाषा-विज्ञान के आधार पर एक अभिनव हिन्दी व्याकरण की रचना की थी, जिसकी रूपरेखा उसी वर्ष कलकत्ता की 'देवनागर' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। १९१० ई० मे उक्त व्याकरण-पुस्तक 'हिन्दी ट्रान्सलेटिंग कम्पनी, कलकत्ता' द्वारा प्रकाशित हुई। १९११ ई० मे, प्रयाग में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन मे, आपने हिन्दी के अपूर्ण अगो की पूर्त्ति के विषय में एक निबन्ध प्रस्तुत किया था, जिसमे लेखको के पथ-प्रदर्शन के अभिप्राय से एक सौ विषयो की एक सूची भी सम्मिलित थी। १९१३ ई० मे, अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन (भागलपुर) के अवसर पर, शर्माजीने 'हिन्दी भाषा मे उच्च शिक्षा' की व्यवस्था के उद्देश्य से एक ज्ञानवर्द्धक एव उपयोगी निबन्ध पढा था। सम्मेलन के उक्त अधिवेशन में, हिन्दी परीक्षा की नियमावली पर विचार करने के लिये जो समिति सगठित हुई थी, उसके सदस्यो में आप प्रमुख थे। आप, वर्षो तक, सम्मेलन की स्थायी समिति तथा अन्यान्य समितियो के मान्य सदस्य थे। १९२० ई० मे, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने, श्री कामता प्रसाद गुरु द्वारा प्रणीत वृहत् हिन्दी व्याकरण के ग्रन्थ को सर्वथा शुद्ध एव प्रामाणिक बनाने के लिये, जो समिति बनायी थी, उसके सदस्यो मे आपका स्थान सर्वोपरि था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी उस समिति के सदस्य थे। अपने युग में आप हिन्दी व्याकरण-शास्त्र के एकमात्र प्रामाणिक विद्वान् माने जाते थे। हिन्दी के प्राचीन साहित्य के भी आप अधिकारी विद्वान् थे। हिन्दी के सुविख्यात आलकारिक एव प्राचीन-साहित्य-मर्मज्ञ लाला भगवान दीन जी बहुधा अपनी शकाओ का समाधान शर्मा जी से ही कराते थे।

शर्माजी के विशाल एव विलक्षण व्यक्तित्व, उनके दिव्य तपश्चर्यापूर्ण जीवन, तथा उनकी अलौकिक ज्ञान-साधना का सम्यक् परिचय, इस सक्षिप्त लेख मे, देना नितान्त असभव है। इन पक्तियो के द्वारा, उनके अद्भुत जीवन-दर्शन एव अनुपम साहित्य-सेवा का आभासमात्र दिया गया है। आशा है, इस ग्रन्थ के अध्येता, उनकी गभीर विचारावलियो से सुपरिचित होकर अपने ज्ञान का यथेष्ट विस्तार करेगे।

चैत्र-पूर्णिमा
वि० सं० २०११

उमानाथ

विषय सूची

—०—

श्रीरामावतारशर्मा निबन्धावली

ज्योतिर्विद्या

आज से कम से कम पाँच हजार वर्ष पहले भारत के आर्यो मे और स्तिग्रिया और उत्पथा के दोआब मे रहने वाले असुरो मे ज्योतिर्विद्या का आविर्भाव हुआ। ज्योतिष-वेदाङ्ग आदि प्राचीन ग्रन्थो से मालूम पडता है कि पहले-पहल कुछ तो दिक् और काल के निर्णय के लिए तारा-ग्रह आदिको का निरीक्षण करते थे और कुछ स्वाभाविक कौतुक के कारण भी आकाश मे चलने वाली इन दिव्य वस्तुओ की ओर दृष्टि रखते थे। प्राचीनो में बिना घडी के समय का निश्चय तारो ही के द्वारा होता था। समय का निश्चय न होने से अर्थात् वर्ष, अयन, ऋतु, मास, तिथि आदि न जानने से जोतना, वोना आदि सव कामो मे गडबडी हो सकती थी। रात को समुद्र मे या वन मे दिङ्-निर्णय, बिना तारो की स्थिति के ज्ञान के, नही हो सकता था। इन कारणो से चीन, भारत, अजपुत्र आदि प्रदेशो मे ज्योतिर्विद्या का विस्तार होने लगा। चीन मे शकाब्द से २३७८ वर्ष पहले यव नाम के सम्राट् के आज्ञा-पत्रो से जाना जाता है कि यव से कई हजार वर्ष पहले से लोग विषुव का निर्णय कर सकते थे। शक सवत् से २२१४ वर्ष पूर्व चीन वालो ने सूर्य-ग्रहण का निरीक्षण किया था। शक वर्ष से प्राय ११०० वर्ष पहले चीनी लोगो ने जल-घडी आदि कई यन्त्र बनाये थे। १२०२ मे कुबलाई खाँ के राज्य होने के समय के वने हुए लग्न-निर्णय आदि के कई यन्त्र उन्नीसवी शताब्दी तक वर्तमान थे। अजपुत्रो मे पहले लोग तारो को पूजते थे। फिर उनका वैज्ञानिक निरीक्षण करने लगे। असुरो मे १८ वर्ष ११ दिन वाली गणना के अनुसार पहले ही से ग्रहण-निर्णय की विद्या थी। षड्गण सम्राट् के लेखो से जान पडता है कि उसके राज्य के वहुत पहले से (३८७८ वर्ष शक सवत् के पहले से) असुर लोग तारो की निरीक्षा कर रहे थे। क्रम से इन्ही लोगो मे राशियो की कल्पना हुई। 'बृहस्पति प्रथम जायमान-स्तिष्यन्नक्षत्रमभिसबभूव।' इत्यादि ब्राह्मण-ग्रन्थो के लेखो से जान पडता है कि इन्ही प्राचीन समयो मे नक्षत्र आदि की कल्पना भारत के आर्यो मे भी हुई। भारतीयो और असुरो मे किन की कल्पना अधिक प्राचीन है, यह निश्चय करना आज अत्यन्त कठिन है। ग्रहो की फिर अपनी पुरानी स्थिति मे आ जाने के समय का निश्चय असुरो को हो चुका था—अर्थात् इन्हे यह विदित था कि शुक्र प्राय ८ वर्ष में, बुध ४६ वर्ष मे, शनि ५९ वर्ष मे, मङ्गल ७९ वर्ष मे, और वृहस्पति ८३ वर्ष मे फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ जाते है। असुरो के वाद यवनो मे ज्योतिर्विद्या गई। स्थलीश, पृथुगौर आदि यवनो ने वाहर से इस विद्या का अभ्यास कर अपने देश मे विस्तार किया। अरिष्टार्काचार्य ने शकाब्द से ३५८ वर्ष पूर्व पहले-पहल सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष का प्रचार

करना चाहा, पर अवस्था की प्रतिकूलता से किसी ने इस ओर ध्यान नही दिया। वेदो में पृथ्वी के गो, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा आदि नामो से यह स्पष्ट विदित होता है कि वैदिक लोग पृथ्वी में नक्षत्रो की-सी ही स्थिरता नही समझते थे। परन्तु इसकी गति ग्रहो की-सी समझते थे। अरिष्टार्क के पहले ऊर्ध्वाक्ष ने शकाब्द से ४८६ वर्ष पूर्व जो भूकेन्द्रक ज्योतिष चलाया था वही कुपर्णिक के समय तक पाश्चात्यो में और आर्य-भट्ट-कृत सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष के उपपादन के बाद आज भी भारतीयो मे चल रहा है। शक सवत् से ३९६ वर्ष पहले पाटलिपुत्र में आर्य-भट्ट हुए। इनकी स्वतन्त्र सूर्य-केन्द्रक ज्योतिप की कल्पना भी समय की प्रतिकूलता से किसी को स्वीकृत नही हुई। यवनो का ज्योतिप अलिकचन्द्रीया पुरी मे खूब बढा। अरिष्टार्काचार्य इसी अलिकचन्द्रीयापुरी मे वेध आदि करते थे। अष्टमी के दिन सूर्य और चन्द्र के केन्द्रो के कोण के नापने से उनका अन्तर निकालने की विधि इनके ग्रन्थ मे दी है। अन्तत शिफार्क और तुरमय आचार्यो ने वर्प, मास, ग्रहगति, चन्द्रगति आदि का निश्चय कर पञ्चाङ्ग ठीक किया। भारत मे भी आचार्य आर्य-भट्ट के समय तक सूर्य-सिद्धान्त आदि के प्रणेताओ ने पञ्चाङ्ग ठीक किया। तुरमय की प्रणाली सत्रहवी शताब्दी में कुपर्णिक तक प्राय एक आकार की रही। बीच-बीच में पाश्चात्य लोग विजयशाली अरब लोगो से ज्योतिष मे सहायता पाते रहे। जब-तब एक-आध नई बातें भी विद्वान् लोगो के द्वारा निकल आती थी। सोलहवी शताब्दी मे इष्टालय देश मे ज्योतिष में तुरमय और दर्शन आदि शास्त्रो मे अरिष्टोत्तर आदि की प्रतिष्ठा तोडने का प्रबन्ध हो चला था। प्राचीनो को ऋषि-गौरव से देखने की बात अब उठ चली थी। प्रत्येक नवीन और प्राचीन बात की परीक्षा होने लगी। इसका फल यह हुआ कि सत्रहवी शताब्दी मे आचार्य कुपर्णिक ने अपनी उपपत्तियो से समूचे प्राचीन ज्योतिष को उलट दिया। सूर्य-केन्द्रक गणित का उपपत्ति-पूर्ण आविर्भाव हुआ। केवल कक्षाओ को दीर्घ-वृत्त न समझ कर उन्हें शुद्ध वृत्त मानने के कारण कुछ अशुद्धियाँ कुपर्णिक के गणित में रह गई थी, जिनकी शुद्धि नवतनु आदि आचार्यो के द्वारा हुई। कुपर्णिक के बाद तर्कवराह आदि वेध, दर्शक यन्त्रो के निर्माण आदि मे, तथा गणित-विषयो मे भी, नई उन्नति करते गए। कपिलार्य ने तर्कवराह के निरीक्षित और परीक्षित विषयो को अपनी बुद्धि के महा-यन्त्र मे डाल कर ज्योतिर्विद्या के अनेक नियमो को निकाला। ग्रह-कक्षाओ की दीर्घ-वृत्तता का ज्ञान पहले-पहल इन्हें हुआ। इन्होने इस बात का निश्चय किया कि सूर्य-ग्रह कक्षा-वृत्त का केन्द्र नही है, किन्तु ग्रह-कक्षारूपी दीर्घ-वृत्तो के दो केन्द्रो में से एक है।

कपिलार्य-निर्णीत ग्रह-गति के तीन नियम आज ज्योतिर्विद्या वालो में सुप्रसिद्ध है। इस आचार्य की सारणियाँ आज तक भी काम में लाई जाती है। केतुओं को शीघ्र नश्वर समझ कर इसने केतु-कक्षाओ के विषय में अन्वेषण नही किया। पाश्चात्यो मे इस प्रकार ज्योतिर्विद्या दिन-दूनी रात-चौगुनी हो रही थी कि इधर भारत मे आर्य-भट्ट के बाद से, क्रम से, इसकी जो अवनति होने लगी सो लल्ल,

वराह-मिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आदि के अपूर्व परिश्रम से भी न रुक सकी और भास्कर के साथ ही ज्योति प्रभा भी अस्त हो ही गई। उधर पाश्चात्यो में कुपर्णिक के पहले जो कुछ फलित और तन्त्र आदि मे श्रद्धा हो रही थी सो अनर्थ से घृणा रखने वाले आचार्यों के परिश्रम से दबने लगी। इसलिए वहाँ असली ज्योतिर्विद्या और रस-शास्त्र आदि की उन्नति कोई आश्चर्य की बात नही थी। इधर भारत मे अनर्थ को पूजने वाले, कुकल्पना के उपासक महात्माओ की कृपा से फलित, तन्त्र, योग, सामुद्रिक, स्वरोदय आदि की कुछ ऐसी प्रथाये धीरे-धीरे आकाश को ठेक रही थी कि प्रश्नकर्त्ता के कहे हुए फूल के नाम से नष्ट-जातक बनाने वालो के, नामाक्षरो से या हस्त-रेखाओ से कन्या-वर का मिलान करने वालो के, और योग-बल से या तन्त्र-बल से जब चाहे सूर्य-ग्रहण आदि घर की कोठरियो मे दिखाने वालो के हाथ से सरस्वती-माला के ज्योतिष आदि अङ्गो का उच्छेद हुआ तो कौन बडी बात है। पाश्चात्यो मे कुपर्णिक और कपिलार्य ने ज्योतिर्विद्या की बडी उन्नति की। पर कपिलार्य तक यह खयाल न था कि बिना किसी चलाने वाली शक्ति के द्रव्य चल सकता है। इसलिए इनकी ज्योतिर्विद्या कई अशो मे दुर्बल रह गई। कपिलार्य के समय मे गुरुलव के द्वारा यन्त्र-शास्त्र की बहुत उन्नति हुई। यन्त्र-शक्ति का ठीक स्वभाव गुरुलव ने समझा। कपिलार्य और गुरुलव यदि दोनो मिल कर कार्य करते तो ग्रहगति का वास्तव तत्त्व निश्चित होना दुस्तर नही था। गुरुलव के समय मे दूरवीक्षण यन्त्र बिकने लगे थे। इनके द्वारा खगोल की निरीक्षा इसने खूब की और खगोल के ज्ञाताओ मे इसका दर्जा बहुत ऊँचा है। पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चलती है, इस बात का लोगो मे प्रचार करने के लिए पोप महाशय की कचहरी से इसे आमरण कारावास का दण्ड मिला। इधर दशक्रतु आदि गम्भीर विचार वाले विद्वानो के परिश्रम से बीजगणित, रेखागणित कलनगणित आदि मे ऐसी उन्नति हो गई कि अब तो ज्योतिर्गणित के महाविकास होने मे बडी सुविधा हो चली। इसी बीच अपूर्व प्रतिभाशाली नवतनु का आविर्भाव हुआ। इसकी परीक्षाओ से आकर्षण-शक्ति का निश्चय हुआ जिससे तारा, ग्रह, केतु आदि की गति का ठीक-ठीक तत्त्व विद्वानो को विदित हो गया। अब योगबल से सब तारा, ग्रह आदि को चलाने वाले 'यन्ता' की आवश्यकता न रही। नवतनु के बाद ज्योतिर्गणित मे बडे-बडे पाश्चात्य गणितज्ञ उन्नति करते गये। अन्तत हरिशील, लवकर आदि विद्वानो के परिश्रम से पाश्चात्यो मे ज्योतिर्विद्या उस उन्नति पर पहुँची जहाँ यह आज वर्तमान है। आज भारत मे प्राय 'भुवनज्ञान सूर्ये सयमनात्' पतञ्जलि की इस उक्ति का यह अर्थ समझ कर कि अँधेरी कोठरी मे सूर्य-बिम्ब का ध्यान करने से समस्त ससार का ज्ञान हो जाता है—बापूदेव, सुधाकर आदि को—छोड करोडो भारतीय सूर्योदय के बाद भी सोते हुए सूर्य-बिम्ब का स्वप्न देखते जाते है, या ग्रह-ग्रहण आदि कृत उपद्रवो की शान्ति के लिए पूजा-पाठ आदि कर रहे है, और मान-मन्दिर आदि टूटी-फूटी वेधशालाये उजाड हो रही है। तब तक पाश्चात्य देशो मे

न हो तो उस वस्तु पर नही तैर सकती है। मनुष्य अपने आयाम की वायु से कही भारी है। फिर यह हजार प्राणायाम करने पर भी कैसे उड सकता है।

यदि किसी स्वच्छ रात्रि मे अर्थात् जब मेघ, कुहरा आदि का आवरण न रहे तब हम लोग आकाश को देखें तो इसमे पहले तो तीन वर्ग की वस्तुयें देख पडती है। सबसे अपूर्व और बडी तो एक वह वस्तु देख पडती है जिसे लोग चन्द्रमा कहते है। अपने वर्ग मे यह एक अकेली ही चीज है। सन्ध्या समय चन्द्रमा कभी पूरब मे देख पडता है, कभी आकाश के बीच और कभी पच्छिम मे। बिना यन्त्र की सहायता, आँख से देखने वालो को इस वर्ग की और कोई दूसरी वस्तु नही देख पडती। चन्द्रमा के अतिरिक्त छोटे-छोटे हजारो उज्ज्वल बिन्दु आकाश मे देख पडते है, जिन्हे लोग तारे कहते है। इस गोलप्राय पृथ्वी पर जहाँ से देखिए एक आधे की ओर का आकाश और उसके हजारो तारे आदि देख पडते है। असल मे कितने तारे इस ससार मे है, इसका निश्चय करना कठिन है। पर बिना दूरवीक्षण आदि यन्त्रो के आकाश भर मे प्राय छ हजार तारो का दर्शन हो सकता है। एक समय आधा ही आकाश दृश्य होता है, इसलिए एक स्थान का पुरुष एक बार तीन हजार तारे देख सकता है। आकाश के चन्द्रमा और तारो के अतिरिक्त एक तीसरे ढग की वस्तु देख पडती है, जो प्राय दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हुई सडक-सी है। इसे प्राचीन ग्रन्थो मे लोगो ने छाया-पथ कहा है। आजकल इसे आकाश-गङ्गा, रामजी की सडक आदि अनेक नाम मिले है। यह उज्ज्वल कुहरे के सदृश देखने मे आता है। मेघो से तारे छिप जाते है, पर इसके नीचे अनेक तारे देख पडते है। इससे जान पडता है कि यह तारो के नीचे कोई मेघ-सी वस्तु नही है, किन्तु तारो के ऊपर कोई और ही वस्तु है। इस प्रकार चन्द्रमा तारे और छाया-पथ तीन वर्ग की वस्तुये तो आकाश मे रात को साफ-साफ देख पडती है। कभी-कभी एक और भी अपूर्व वस्तु हम लोगो की आँखो के सामने पाहुन-सी आ जाती है। प्राय झाडू के सदृश, मूर्खो को भय देने वाले केतु, बढनी आदि अनेक नामो मे प्रसिद्ध बडे-बडे खेचर बहुतेरो को देख पडे होगे। ये रोज के देखने की चीजो मे मे नही है। इन्हे केतु नाम से कहने मे ही सुभीता होगा। इस प्रकार अभी तक चार वर्ग के खेचर हमे मिले। पर यदि थोडा विचार किया जाय तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि जिन्हे साधारण लोग तारे कहते है उनमे कुछ ऐसी चीजे है जो तारो के वर्ग की नही। तारे तो सूर्य के सदृश प्रति दिन प्राय अपने ही स्थान पर देख पडते है और पूरब से पश्चिम की ओर बढते हुए देख पडते है। पर तारो के सदृश उज्ज्वल बिन्दुओ मे से कितने ऐसे है जो प्राय अपने स्थान को छोड कर इधर-उधर होते रहते है। जैसे शुक्र, जिसे कितने ही लोग सुकवा भी कहते है, कभी सन्ध्या समय पच्छिम मे उगता है और कभी प्रात काल पूरब मे उगता है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि शुक्र आदि कितने ही उज्ज्वल बिन्दु ऐसे

भी है जो तारो के वर्ग के नही है। पृथ्वी के हिसाब से तारो का स्थान प्राय नियत है। पर शुक्र आदि का स्थान नियत नही है। अनियत स्थान वाले इन विन्दुओ को प्राचीन आर्यो ने ग्रह के नाम से प्रसिद्ध किया है। तारा-वर्गो को प्राचीन लोगो ने वैदिक समयो ही मे नक्षत्र कह रखा है। नक्षत्र उसे कहते है जो अपने स्थान को न छोडे। ग्रह और नक्षत्रो का भेद समझना बडे विद्वान् का काम है। उस भेद के समझने से प्राचीन आर्यो की बुद्धि और विद्या की बडी प्रशसा है। आज तो दो-चार ज्योतिषियो के अतिरिक्त बडे-बडे अँगरेजी और सस्कृत जानने वाले और महा-महा-विद्वान् होने की शेखी मारने वाले भी भारतीय जन इस भेद को प्राय नही जानते। इस प्रकार वस्तुत हमे पाँच प्रकार की वस्तुये आकाश मे मिलती है (१) छायापथ, (२) तारा, (३) ग्रह, (४) केतु और (५) उपग्रह अर्थात् चन्द्र। दिन को हमे सूर्य देख पडता है और देखने मे अपने ढग की अकेली चीज मालूम पडती है। पर आगे दिखाया जायगा कि यह भी एक तारा है। इसलिए इसे तारो ही के वर्ग मे रखना उचित है। (पृथ्वी के ऊपर कुछ दूर तक वायु-मण्डल है, जो पृथ्वी की ही एक पतली-सी बाहरी तह है। इसमे मेघ आदि तैरते रहते है। ज्योतिर्विद्या से इसका मुख्य सम्बन्ध नही है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष के सम्बन्ध मे इनका वर्णन किसी और अवसर पर किया जायगा।) आगे की बातो को देखने से जान पडेगा कि इन पाँचो को इसी क्रम से रखने मे सुभीता है। इनके अतिरिक्त उल्का आदि और भी कुछ वस्तुये है, जिनके विषय मे यहाँ कुछ सामान्य रीति से कहा जायगा।

दूरवीक्षण यन्त्र से देखने से छायापथ मे दो अश मालूम पडते है। कितनी जगहो मे तो पृथ्वी से अत्यन्त दूर होने के कारण ऐसे छोटे-छोटे तारे घने मिले हुए देख पडते है जिन्हे सादी आँखो से हम लोग कुहरा के सदृश समझते है। पर छाया-पथ के कितने ही खण्ड असल मे ऐसे है जो स्वप्रकाश तेजोमय द्रव्य के चट्टे है। इनमे तेज के कण बडे वेग से घूम रहे है। इस कारण यह द्रव्य सूर्य के समान गरम हो रहा है। कान्त आदि दार्शनिको और गणितज्ञो की कल्पना है कि ऐसे ही किसी छायापथ के एक खण्ड से सूर्य अपने ग्रह आदि के साथ निकला है। इन लोगो का कहना है कि किसी छाया-पथ का कोई एक खण्ड अपने अशो के बडे वेग से भ्रमण करने के कारण किसी समय टुकडे-टुकडे हो गया। इसकी परिधि यानी बाहरी छाल के टुकडे तो ग्रह रूप मे अलग-अलग पिण्डे बँध कर आज भी घूम रहे है। जिस प्रकार छाया-पथ मे इस सूर्य की सृष्टि हुई, अर्थात् वह निकला, उसी प्रकार छाया-पथ के और-और खण्डो मे और-और तारे भी निकले। इन तारो के भी अपने-अपने ग्रह आदि होगे। छाया-पथ के उस रूप को ब्रह्माण्ड या सौराण्ड कहते है, जो सूर्य और ग्रह आदि के निकलने के पूर्व-काल मे वर्तमान था। उसी तेजोमय सौराण्ड का बच्चा यह सूर्य ब्रह्मा हुआ, जिसे हिरण्यगर्भ अर्थात् सोने के अण्डे का गर्भ और मार्तण्ड अर्थात् मरे अण्डे का बच्चा भी कहते है। सूर्य या तारा असल में ऐसी स्वप्रकाश

वस्तु को कहते हैं जिसकी गति किसी दूसरे सूर्य या तारा के अधीन न हो। ग्रहो को सूर्य से प्रकाश मिलता है और इनकी गति सूर्य के अधीन है, अर्थात् ये सूर्य के चारो ओर पश्चिम से पूरब को घूमते है। पर तारो का प्रकाश अपना ही है; किसी दूसरी वस्तु से उन्हे प्रकाश मँगनी नही लेना पडता। इन तारा नामक सूर्यों में से सबसे समीप वह वस्तु है जो दिन को भी देख पडती है और जो लोक मे सूर्य के नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वी से सूर्य एक ही दूरी पर बराबर नही रहता। आगे दिखाया जायगा कि पृथ्वी भी एक ग्रह है। यह भी और ग्रहो के सदृश सूर्य के चारो ओर चलती रहती है। ग्रहो की गति प्राय कूर्म-पृष्ठ में होती है। दीर्घ वृत्त के दो केन्द्र होते है। ग्रहो की कक्षा का, अर्थात् गति-वृत्त का, एक केन्द्र सूर्य है। जब ग्रह इस केन्द्र के समीप आ जाता है तब उसे सूर्य की दूरी कम पडती है। जब ग्रह दूसरे केन्द्र के समीप चला जाता है तब उसकी दूरी अधिक पडती है। इसलिए प्राय अन्तर देने के समय ज्योतिषी लोग मध्यम अन्तर को लेते है। पृथ्वी से सूर्य का मध्य अन्तर प्राय एक करोड सवा सोलह लाख योजन है। प्रकाश एक विकला अर्थात् एक सेकेण्ड मे सवा तेईस हजार योजन चलता है। प्राय पाँच कला अर्थात् पाँच मिनट मे प्रकाश सूर्य से पृथ्वी पर आता है। सूर्य के बाद सबसे समीप जो तारा है उसकी दूरी दो शकु योजन (२,००,००,००,००,००,०००) से अधिक है—अर्थात् सूर्य की दूरी से कई लाख गुना अधिक है। पृथ्वी से अत्यन्त दूरस्थ तारो का अन्तर तो इतना अधिक है कि उसकी गिनती के लिए अको की सज्ञा ही नही बनी है। अति दूरस्थ तारो का अन्तर इसी से मालूम हो सकता है कि उनसे पृथ्वी तक आने मे प्रकाश को पचास हजार बरस लग जाते है। अब देखिये, सूर्य से तो प्रकाश पाँच ही कला मे पृथ्वी पर आता है और अति दूरस्थ तारो मे पचास हजार बरस मे—तो सूर्य की दूरी से उन तारो की दूरी कितनी अधिक हुई। तारो की अपेक्षा सूर्य पृथ्वी से बहुत ही समीप है। समीप क्यो न हो, पृथ्वी तो और ग्रहो के सदृश सूर्य ही का एक बाहरी अङ्ग है। इसीलिए सूर्य से प्रकाश और ताप दोनो पृथ्वी पर आते है। इसीलिए सूर्य बहुत बडा भी मालूम होता है। असल मे इसका आयाम पृथ्वी से साढे बारह लाख गुना है। कितने ही तारे इसके बराबर और इससे भी बडे है, तथापि अत्यन्त दूर होने के कारण हम लोगो को ये केवल प्रकाश-बिन्दु-से मालूम पडते है। दूरी के कारण उनसे पृथ्वी तक केवल प्रकाश ही पहुँचता है। वह भी सूर्य के प्रकाश से जब तक हम लोगो की आँखे चक-चकाई रहती है तब तक नही अनुभव में आता। तारो की दूरी से यहाँ ताप का अनुभव होना असम्भव ही है।

सुविधा-पूर्वक तारो के परिचय के लिए बहुत ही प्राचीन समय से, अर्थात् ऋग्वेद के समय से, या उससे भी पहले से, अनेक वर्गो मे तारो का विभाग किया गया था। उत्तर ध्रुव के समीप सप्तर्षि नामक एक तारा-वर्ग है, जिसे प्राय

बहुतेरे गँवार भी जानते हैं। इसमे सात बडे-बडे तारे है। आसपास कुछ छोटे-छोटे भी हैं, जो प्राय आसानी से नही देख पडते। ऋग्वेद के सग्रह के पहले ही मे लोगो ने इसका नाम ऋक्ष रखा था। वस्तुत. ऋक्ष भालू को कहते है। सप्तर्षि के पश्चिमी चार तारे भालू के चार पैरो के-से और पूरब के तीन तारे पूँछ के-से ऋग्वेद के कवियो के पूर्व-पुरुषो को देख पडते थे। इसीलिए तो अपने समय की जन-प्रसिद्धि के अनुसार ऋग्वेद के कवियो ने इस तारा-वर्ग को ऋक्ष ही कहना पसन्द किया। अजीगर्त के लडके शुन शेप ने कहा है—"अमी ये ऋक्षा निहितास उच्चा नक्त ददृशे कुहचिद्दिवेयु । अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकसच्चन्द्रमा नक्तमेति"। जिस समय ऋग्वेद वालो के पूर्व-पुरुष भारत आदि मे पहुँचने के बहुत पहले ध्रुव-प्रदेश मे रहते थे और जब तक ध्रुव-प्रदेश मे प्रालेय-प्रलय की बाधा नही पहुँची थी उस समय उन्हे ठीक ऊपर—सिर पर—ध्रुव और सप्तर्षि देख पडते थे। उन्ही समयो की बाते ऋग्वेद के अत्यन्त पुराने अशो मे जहाँ तहाँ पाई जाती है। ऐसे ही प्राचीन अशो मे से यह शुन शेप की उक्ति भी मालूम पडती है। आजकल सस्कृत मे ऋक्ष भालू को और सामान्यत सब नक्षत्रो को कहते हैं, परन्तु वैदिक समयो मे ऋक्ष भालू को और केवल सप्तर्षि को कहते थे। सप्तर्षि के सात तारो के नाम भी पीछे ब्राह्मण-ग्रन्थो में मिलते हैं। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि आदि इनके नाम दिये हुए हैं। शाखा-भेद से नामो मे जहाँ-तहाँ भेद भी पडता है। आकाश मे सूर्य जिस रास्ते से चलता हुआ देख पडता है उस मार्ग का नाम राशि-चक्र है। इसके बारह टुकडे किये गये है। इन बारह टुकडो मे बारह तारा-वर्ग है। सप्तर्षियो ही के सदृश इनके कल्पित आकारो के अनुसार असुर, यवन और भारतीय आदि ज्योतिषियो ने इनके नाम मेष, वृष, मिथुन कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुर्धर, मकर, कुम्भ, मीन रखे है। प्राचीन आर्यो ने वैदिक समय मे, या उसमे भी पहले से, प्रत्यक्ष सौरकक्षा का सत्ताईस नक्षत्रो में विभाग किया था, जैसा कि 'तिष्य नक्षत्रमभिसबभूव' इत्यादि उक्तियो से स्पष्ट विदित होता है। अलिकचन्द्र के आने के बाद यवनो से इस कक्षा का बारह राशियो मे विभाग भारतीयो को मिला, ऐसा सभव है। यवनो को यह विभाग असुरो से मिला था, ऐसा असुरो की शल्यलिपि की प्रशस्तियो से अनुमान किया जा सकता है। छठी शताब्दी मे गणित-विद्या खूब जानने पर भी भारत के दुर्भाग्य से यवनो की फलित-विद्या भारत में लाने वाले वराहमिहिर ने सत्ताईस और बारह का समलघुतमापवर्त्य निकाल कर एक-एक नक्षत्र के चार-चार चरण बना कर नौ-नौ चरण की एक-एक राशि स्थिर की। सूर्य का हेलि नाम भी यवनाचार्यो से लिया। क्रियताउरि, जितुम आदि राशियो के नाम भी उन्ही से ले कर अपने नष्टजातक आदि प्रपञ्चो से मनुष्य की बुद्धि नष्ट करने वाले बृहज्जातक को पवित्र किया। इनके बाद इन्ही के अनुयायी नीलकण्ठ आदि फलित वालो ने फारसी से भी फलित के शब्द मँगनी ले कर अपने ग्रन्थो की शोभा बढाई। इस राशि-चक्र से आकाश के दो टुकडे हो जाते है।

है। एक उत्तर खगोलार्ध और एक दक्षिण खगोलार्ध। उत्तर खगोलार्ध के बीच मे सुमेरु अर्थात् उत्तर मेरु पडता है, और दक्षिण खगोलार्ध के बीच मे कुमेरु अर्थात् दक्षिण मेरु पडता है। ऊपर कहा गया है कि वस्तुत' सूर्य पृथ्वी के चारो ओर नही चलता, पृथ्वी ही और ग्रहो के सदृश सूर्य के चारो ओर चलती है। जैसे लट्टू नाचता हुआ किसी वस्तु के चारो ओर घूमे वैसे ही सब ग्रह नाचते हुए सूर्य के चारो ओर चलते है। किसी वस्तु के चारो ओर नाचते नाचते चलने वाले लट्टू की दो गतियाँ होती है। एक तो अपनी अक्ष-यष्टि पर घूम जाना है और दूसरी किसी वस्तु के चारो ओर घूमना है। ऐसे ही पृथ्वी तथा और भी सब ग्रह अपनी अक्ष-यष्टि पर नाचते हुए सूर्य के चारो ओर घूमते है। सूर्य के चारो ओर घूमती हुई पृथ्वी के सिर से केन्द्र को वेध कर नीचे जाती हुई रेखा को अक्ष-यष्टि या अक्ष कहते है। अक्ष के चारो ओर एक बार घूम जाने को परिवृत्ति कहते है। और, सूर्य के चारो ओर घूम जाने को परिभ्रमण कहते है। इसी अक्षयष्टि के ऊपर के अन्त को सुमेरु कहते है, जिसके प्राय ठीक सामने आकाश मे ध्रुव का तारा है। अक्ष-यष्टि के नीचे का अन्त कुमेरु है। यहाँ पर तारा वर्गो के दो चित्र दिये गये है। एक मे सुमेरु गोलार्ध के तारा-वर्ग है और दूसरे मे कुमेरु गोलार्ध के। सुविधा के लिए दोनो मेरुओ के चारो ओर तीन मण्डलो मे तारावर्ग दिये गये है। चौथे मण्डल मे राशि- चक्र रखा गया है।

क्रम से तारा-वर्गो की सूची

सुमेरु गोलार्द्ध				कुमेरु गोलार्द्ध		
१ ला मण्डल	२ रा मण्डल	३ रा मण्डल	४ था मण्डल	३ रा मण्डल	२ रा मण्डल	१ ला मण्डल
तक्षक	वीणा	गरुड	मेप	महिष	वृत्त	सरठ
शिशुमार	जानुग	नरेन्द्र	वष	वृक	अस्त्र	ह्रदाहि
शिफा	मुकुट	भुजङ्ग	मिथुन	वेदि	मयूर	घटिका
	श्वयुग	करिमुण्ड	कर्क	दूरेक्षण	चतुरस्र	सुवर्ण-यष्टि
	सप्तर्षि	सिंहशावक	सिंह	कोटीर	श्येनिका	कपोत
	वनोतु	सूत	कन्या	सिन्धु	सरित्	पोत
	चित्रक्रमेल	पर्शु	तुला	सूक्ष्मेक्षण	शश	शलाका
	कश्यप	त्रिकोण	वृश्चिक	सारस	शुनक	अष्टास्र
	गोधा	दोला	धनुर्धर	शकुल	त्रिशकु	
	हस	वाजी	मकर	टङ्क	मण्क	
	शिवा	अश्वतर	कुम्भ	तिमिङ्गिल	सुपर्ण	
		तिमि	मीन	व्याध		
		वाण		भृङ्गी		
				श्वशिशु		
				शेप		
				चमस		
				काक		

सादी आँखों से देखने से सब तारे प्राय एक वर्ण के जान पडते हैं। केवल कुछ बहुत बडे मालूम पडते हैं और कुछ क्रम से छोटे मालूम पडते हैं। जो तारे छोटे मालूम पडते है उन्हे वस्तुतः छोटा नही समझना चाहिए। सम्भव है कि अतिदूरता के कारण वे छोटे जान पडते हो। वर्ण भी सब तारों का एक सा नही हैं। प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण यन्त्रो से देखने पर नीले, पीले, हरे, सफेद आदि अनेक वर्ण के तारे देख पडते है। देखने में जैसा परिमाण तारो का मालूम पडता है उसके हिसाव से लोगो ने तारो की श्रेणियाँ बनाई है। सबसे बडे तारो को प्रथम श्रेणी के तारे कहते हैं। इसी क्रम से द्वितीय, तृतीय आदि श्रेणी के तारे हैं। श्रीश नामक एक प्रथम वर्ग का तारा मृगशिरा नक्षत्र के पास देख पडता है। दूरवीक्षण यन्त्र से देखने से यह भी पता लगता है कि कोई-कोई तारा दो या दो से अधिक सदा साथ साथ चलते हैं। सहचारिणी तारों में एक प्रकाशमय और उसका साथी प्राय काला सा होता है। सम्भव है कि काला साथी प्रकाशमय तारा सूर्य का ग्रह हो। पर तारो की अप्रमेय दूरी के कारण इस बात का ठीक ठीक पता लगाना बहुत कठिन है।

तारो में पृथ्वी से अत्यन्त समीप वह वस्तु है जिसे हम लोग सूर्य कहते हैं। ज्योतिर्विद्या मे प्रसिद्ध सूर्य को सूर्य कहने मे और तारा-सूर्यो को तारे कहने में सुविधा होगी। तारा-सूर्य और प्रसिद्ध सूर्य भी वडे वेग से आकाश मे जा रहे है। पर पृथ्वी की अपेक्षा इन्हें स्थिर ही समझना चाहिए, क्योकि दूरी के कारण साधारणत उनकी गति का ठिकाना नही लगता। जिस सूर्य के चारो ओर पृथ्वी चलती है और जिससे हम लोगो को इतना ताप, वृष्टि आदि मिल रही है और जो पृथ्वीवासियो के लिए जीवन रूप है—यहाँ तक कि जिसकी शक्ति का ध्यान वैदिक ब्राह्मण लोग अपनी गायत्री में किया करते हैं—उस सूर्य के आकार आदि के विषय में आगे कुछ कहना है।

[गोलाध्याय]

सूर्य की गरमी घर्म-मापक के (जिसे लोग तापमापक भी कहते हैं) अनुसार जितनी गरमी पर अङ्गार पानी सा होकर खौलने लगता है उससे दो हजार शतांश ऊँची रहती है। इस लिए उसमे केवल तरल पदार्थ रह सकते हैं। द्रव या घन पदार्थों का रहना सम्भव नही। सूर्य के बीच के गोले को सूर्य-बिम्ब कहते हैं। इसके चारो ओर वर्ण-मण्डल है। बिम्ब साधारण वाष्प से विलक्षण द्रव्य है। तैजस-रेखा-दर्शक में इसकी कोई रेखा नही पडती। वर्ण-मण्डल की चमकीली रेखा तैजस-रेखा-दर्शक में देख पडती है। वर्ण-मण्डल वाष्प-मय है। बिम्ब प्राय ठीक गोला है। वर्ण-मण्डल भी गोला है। पर जहाँ-तहाँ जब-तब इससे उच्छ्राय (उछाल) निकलते हैं। वर्ण-मण्डल के चारो ओर अत्यन्त विस्तृत परिवेश-मण्डल है जिसका बाहरी आकार अनियत है और जिसका प्रकाश बिम्ब से बाहर-बाहर धीरे-धीरे घटता जाता है। परिवेश

अत्यन्त सूक्ष्म वाष्पीय द्रव्यो का बना है जिसमे सम्भव है कि जहाँ-तहाँ द्रव और घन-विन्दु भी हो। परिवेश के चारो ओर और भी बडा ज्योतिर्मण्डल है जिसकी बनावट का पता कुछ भी नही चलता। जब कभी चित्र आदि मे बिम्ब की तसवीर ली जाती है तब यह दानेदार-सा बिखरे हुए पाले के रवे के सदृश मालूम पडता है। बिम्ब मे जहाँ-तहाँ बडे-बडे दाग भी देख पडते है। यह दाग क्या वस्तु है, इस पर बहुत विचार हुआ है, पर कुछ ठीक पता नही लगता। सौराण्ड के विभाग के समय से क्रम से प्रकाश निकलते-निकलते सूर्य के प्रकाश का जब अन्त हो जायगा उस क्षण तक के काल को महा-कल्प कहते है। कितने वर्ष का महा-कल्प होता है इसकी गणना ठीक नही हो सकती। पर इसमे सन्देह नही कि महाकल्प कई करोड वर्षो का होता है। तैजस-रेखा-दर्शक के द्वारा सूर्य मे चालीस या पैतालीस तत्त्व—लोहा, चाँदी, ताँबा, सीसा, बङ्ग, आदि—देखे गये है। [पृथ्वी से सूर्य का मध्य अन्तर ११६०३७५० योजन है। सूर्य का व्यास—१०८००० योजन है। (पैरेलैक्स) (लम्बन) ८ ८०६ है]।

सूर्य के चारो ओर चलने वाले आठ बडे ग्रह है और हजारो छोटे-छोटे ग्रह है। सूर्य से अत्यन्त समीप वुध है। वुध के वाद क्रम से, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, वृहस्पति, शनि, उरण, और वरुण ग्रह है। छोटे ग्रहो के नाम रम्भा, शची आदि दिये गये है। इनमे से कवल रति नाम का एक ग्रह पृथ्वी और मङ्गल के बीच मे है और शेष सब मङ्गल और वृहस्पति के बीच मे है। बडे ग्रहो की गति आदि की सूची यहाँ दी जाती है।

ग्रहसारणी

ग्रह	मध्यान्तर	परिवर्तन-काल	व्यास	कक्षागति का वेग
	योजनो मे	दिनो मे	योजनो मे	योजनो मे-प्रति विकला
वुध	४५,००,०००	८७ ९६९२५६	३७२	३ ७२
शुक्र	८४,०८,६२५	२२४ ७००७९८	९५३ ६२५	२.७२१२५
पृथ्वी	१,१६,२४,७५०	३६५ २५६३६०	९८९ ६२५	२ ३१५
मङ्गल	१,७७,१२,८७५	६८६ ९७९७०२	५३९५	१ ८७५
वृहस्पति	६,०४,८१,६२५	४३३२ ५८७९	१०७८२ ३७५	१ ०१५
शनि	११,०८,८७,२५०	१०७५९ २०१०	९०९६ ५	७५
उरण	२२,३०,९१,५००	३०५८६ २९	४१०९.८७५	५३
वरुण	३४,९५,६६,०००	६०१८७ ६५	३७२८'३७५	४२५

वुध—वडे ग्रहो में वुध सवसे छोटा है और सूर्य के अत्यन्त समीप है। इसका चिह्न अन्यत्र है। पौराणिक झगडा है कि वुध वृहस्पति का वेटा है या चन्द्रमा का।

एक इसी प्रकार का झगडा ज्योतिष मे भी है। वह झगडा यह है कि बुध चन्द्रमा के सदृश एक परिभ्रमण मे एक बार परिवर्त्तन करता है या और ग्रहो के सदृश इसका परिवर्त्तन-काल परिभ्रमण-काल से भिन्न है। सम्भव है कि पौराणिक झगडा इसी ज्योतिष के झगडे की अतिशयोक्ति हो। क्योकि अत्यन्त जङ्गलियो के पुराण प्राय निर्मूल होते है, पर सभ्यो के पुराण प्राय अतिशयोक्ति-मूलक होते है। अभी यह झगडा तय नही हुआ है और बुध के परिवर्त्तन के काल का ठिकाना नही है। पर इसके परिभ्रमण का काल प्राय ८८ दिन है। बुध सूर्य से इतना समीप रहता है कि प्राय सूर्यास्त की थोडी ही देर के बाद दिङ्मण्डल के नीचे चला जाता है। इसलिए इसका दर्शन होना कठिन है। जब देख पडता है तब श्वेत उज्ज्वल प्रथम श्रेणी के तारा के सदृश मालूम पड्ता है। कभी-कभी बुध की गति मे ऐसे विक्षेप होते है जिनका कारण नही जान पडता। इसलिए कितने ही लोगो की कल्पना है कि बुध और सूर्य के बीच में भी कुछ ग्रह है जिनके कारण ये विक्षेप होते है।

शुक्र—बुध के बाद शुक्र ग्रह है। चिह्न अन्यत्र देखिये। कभी-कभी शुक्र जब सूर्यविम्ब को पार करता है तब इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए जगह-जगह बडे-बडे ज्योतिषी इकट्ठे होते है। कहा गया है कि ग्रहो मे अपना प्रकाश नही है। चन्द्रमा के सदृश ग्रह भी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है। इसलिए जितने अश में सूर्य का प्रकाश पडता है उतना ही अश एक बार प्रकाशित रहता है, सब अश सदा प्रकाशित नही रहता। अर्थात् चन्द्रमा के सदृश ग्रहो की भी कला घटती-बढती है। कलाओ के घटने-बढने का दृश्य सादी आँखो से देख नही पडता। दूरवीक्षण से शुक्र की कला-वृद्धि और कला-ह्रास का दृश्य बहुत उत्तम देख पडता है। कदाचित् कला-ह्रास ही के कारण इसे भझले पौराणिक लोग काना देवता समझते है। भारत मे पहले-पहल खूब स्पष्ट यह पश्चिम मे दृश्य हुआ होगा। या इसका विशेष वर्णन भारतीयो को असुर, यवन, आदि से मिला होगा। प्राय इसीलिए इसे लोग असुरो का गुरु कहते है। देवताओ के गुरु अर्थात् सब से बडे बृहस्पति का वर्णन आगे किया जायगा।

पृथ्वी—पृथ्वी सूर्य का तृतीय ग्रह है। चिह्न अन्यत्र है। बहुत लोगो ने प्रयत्न किया है कि इस बात का पता लगे कि सौराण्ड से अलग हुए पृथ्वी को कितने दिन हुए। इसका ठीक पता नही लगता है। पर इस बात को हुए कई लाख बरस हुए, इसमें कोई सन्देह नही है। कई धार्मिक लोग पृथ्वी की अवस्था चार हजार वर्ष की समझते थे। वे यही समझते थे कि जैसे कुम्भकार मिट्टी के लोन्दे-गोन्दे बनाया करता है वैसे ही किसी ने पृथ्वी आदि प्राकृत पदार्थ भी बनाये है। ज्योतिर्विद्या, भूगर्भ-विद्या आदि मे अब ऐसी-ऐसी गप्पो का आदर केवल थोडे से दिव्य बुद्धिवाले भगत लोग करते है। अक्ष के चारो ओर परिवर्त्तन होने के समय जो भूगोलार्ध सूर्य के सामने रहता है वहाँ दिन रहता है और जो गोलार्ध सूर्य के पराङ्मुख रहता है वहाँ रात होती है। सूर्य के चारो ओर परिभ्रमण के समय जिन

अशो पर सूर्य की किरण जितनी सीधी पडती है उतनी ही गरमी अधिक होती है। और जहाँ किरण जितनी ही टेढी पडती है वहाँ उतनी ही सर्दी अधिक पडती है। गरमी के दिनो मे समुद्र आदि का जल सूर्य की किरणो से सूख कर कुछ दूर ऊपर वायु-मण्डल मे भरते भरते मेघ सा हो जाता है और बरसात मे धारासार से ससार को कृतार्थ करता है। सक्षेप यह है कि परिवर्त्तन-गति दिन-रात का कारण है और परिभ्रमण-गति ऋतु, अयन, वर्ष, ग्रहण आदि का कारण है। जब तक पृथ्वी सूर्य के उत्तर की ओर नाचती रहती है तब तक दक्षिणायन और जब तक सूर्य के दक्षिण की ओर नाचती है तब तक उत्तरायण होता है। दोनो मेरुओ के ठीक बीच मे पृथ्वी की मध्य-रेखा है। इसे विषुव रेखा या विषुवत् रेखा भी कहते है। इस रेखा पर सूर्य की किरणे सीधी पडती है। इसलिए इसके आस-पास के देशो मे बडी गरमी पडती है। और, गरमी के मारे वहाँ के रहने वाले बडे काले होते है। विषुव रेखा पर दिन और रात सदा बराबर होता है। दोनो ध्रुवो के पास छ महीने का दिन और छ महीने की रात होती है। बरस, सब जगह, दो अयनो का होता है। दिन चाहे उसमे तीन सौ पैंसठ हो या एक हो। ध्रुवीय वर्ष जो एक दिन-रात के बराबर होता है उसी को लोग दिव्य वर्ष कहते है। कितने लोग मनुष्य के वर्ष का तीन सौ पैंसठ गुना करके देवता का वर्ष समझते है। यह बडी भारी भूल है।

सौराण्ड से पृथक् होने पर प्रति दिन बाष्प निकलते-निकलते पृथ्वी के ऊपर किस प्रकार मेघ जमे, और मूसलधार चिरकालिक वर्षा से कैसे पृथ्वी एकार्णव हो गई, और फिर समुद्र के प्रवाहो से जहाँ-तहाँ गढे हो गये और जहाँ-तहाँ पक जमते-जमते, पथरीली ऊँची भूमि हुई, जहाँ-तहाँ पृथ्वी के गर्भ से ज्वाला के उद्भेद हुए, जिससे काले पत्थरो के पहाड निकल आये और फिर काल पाकर सूक्ष्मवीक्षण से देखने योग्य कीडो से लेकर मछली, कछुआ, सुअर आदि क्रम से बन्दर, निरस्त्र, शिलास्त्र, आयसास्त्र, सभ्य से सभ्य जातियो तक किस प्रकार जीव का विकास हुआ इत्यादि विषय भूगर्भशास्त्र और विकास-विद्या मे दिये जायँगे।

मङ्गल—मङ्गल सूर्य का चौथा ग्रह है। इसका चिह्न अन्यत्र है। सादी आँखो से शुक्र और बृहस्पति खूब सफेद मालूम पडते है और मङ्गल लाल देख पडता है। कभी-कभी यह शीघ्र तारा से भी अधिक भास्वर देख पडता है। पृथ्वी पर से जैसी इसकी निरीक्षा हो सकती है वैसी और किसी ग्रह की नही। प्राय छ सौ सत्तासी दिनो मे यह सूर्य के चारो ओर घूम आता है। चौबीस होरा (घण्टा), सैंतीस कला और साढे बाईस विकला से कुछ अधिक समय मे यह अपने अक्ष पर घूम जाता है। मङ्गल के वायु की घनता पृथ्वी के वायु के चतुर्थाश से भी कम है। जब-तब मेघ के सदृश कुछ वस्तु इसके तल पर देख पडती है। ये मेघ है या पहाड है, कुछ ठीक नही कहा जा सकता। अनुमान किया जाता है कि गरमी-सरदी जैसी यहाँ ऊँचे से ऊँचे पहाडो पर है प्राय वैसी ही वहाँ भी है। वरन

मरदी पहाडो की चोटियो पर से कुछ अधिक ही है। इस ग्रह के कुछ अश चमकीले और कुछ काले मालूम पडते हैं। चमकीले अश भूमि के हो सकते है और काले अश पानी के। मङ्गल के दोनो मेरु-प्रदेशो पर एक सफेद टोप सा मालूम पडता है। सूर्य की गरमी पडते पडते यह नष्ट भी हो जाता है। इससे सम्भव है कि यह मेरुओं के ऊपर का वरफ होगा जो सूर्य की गरमी से पिघल जाता है। कितने ही लोग समझते हैं कि काले चिह्न पानी के नही है। किन्तु घास-पात के है। मङ्गल में बहुत ऊँचे पहाड नही है; जैसे यहाँ हैं। यदि काले चिह्न समुद्र समझे जायँ तो उनके बीच-बीच मे एक दूसरे से सम्बन्ध जोडने वाली पानी की धारा भी है। ये अकृत्रिम नहरें बहुत लम्बी-लम्बी हैं और उनकी सख्या भी बहुत बडी है। प्राय छ सौ ऐसी नहरे अभी ज्ञात है। इनकी जालियो से समूचा ग्रह भरा हुआ है। एक ज्योतिर्विद् की कल्पना है कि नहरे कृत्रिम है और मेरु के पिघले हुए बरफ के पानी से खेती करने के लिए वहाँ के लोगो ने इन्हे बनाया है। मङ्गल के साथ दो चन्द्रमा हैं। एक मङ्गल के अत्यन्त समीप है और रात मे दो बार मङ्गल के चारो ओर घूम आता है। इस चन्द्रमा के बाहर से घूमने वाला एक दूसरा चन्द्रमा है जिसको मङ्गल के चारो ओर घूमने मे दो रात-दिन लगते है। इन चन्द्रो का व्यास प्राय सवा योजन होगा।

बृहस्पति—बृहस्पति सूर्य का पञ्चम ग्रह है।- चिह्न अन्यत्र है यह। बडे से बडा और भारी से भारी ग्रह है। इसी से इसे बृहस्पति अर्थात् बृहत् ग्रहो का पति और गुरु अर्थात् ग्रहो मे भारी कहते हैं। सब ग्रह एक मे मिला दिये जायँ तो भी उनसे यह ढाई गुना बडा है। सूर्य से इसका मध्य अन्तर ६०३७५००० योजन है अर्थात् यह पृथ्वी से ४८७५०००० योजन पर है। ग्यारह बरस, तीन सौ चौदह दिन, इक्कीस होरा, छत्तीस कला मे यह सूर्य के चारो ओर घूम आता है। इसका ध्रुवीय व्यास १०५७१२५ योजन है और विषुवीय व्यास ११२७३.७५ योजन है। इसका आयाम पृथ्वी से तेरह सौ नब्बे गुना है और इसका परिमाण पृथ्वी से तीन सौ गुना है। प्राय नौ होरा, छप्पन कला मे यह अपने अक्ष पर घूम जाता है। बृहस्पति का वायु समुद्र-वायु मे छ गुना अधिक घना है, पर इतनी दूर तक नही गया है जितनी दूर तक कि पृथ्वी का वायु। बृहस्पति मे बहुत-सी पट्टियाँ देख पडती है और जहाँ तहाँ अण्डे मे दाग भी नजर आते हैं। ग्रह का घनत्व प्राय सूर्य से मिलता है। इसलिए पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य मे इस ग्रह का अधिक सादृश्य है। घनत्व मे यद्यपि यह ग्रह सूर्य से मिलता है तथापि यह स्वयप्रकाश नहीं है। एक दाग इसमे बडा लाल है और पट्टियाँ भी कुछ लाल सी मालूम पडती हैं। इससे इनके ज्वाला-मुख उद्भेद होने का सम्भव है। अभी तक आठ चन्द्रमा बृहस्पति के ज्ञात है। इसके चार चन्द्रमा पहले-पहल गुरुत्व को ज्ञात हुए। प्राय चौदह वरस पहले तक चार से अधिक चन्द्रमा बृहस्पति के लोगों को नही विदित थे। शक १८१४ मे वरनारद

ने लिक्ष-वेधालय से पाँचवाँ चन्द्रमा देखा, जो बारह घण्टे से कम मे ग्रह के चारो ओर घूम आता है। १८२६ शकाब्द मे उसी वेधालय से दो और चन्द्रमा देखे गए। १८३० मे मेलोष्ठ ने जीर्णबीचि वेधालय से एक आठवाँ चन्द्रमा देखा, जो बृहस्पति से वहुत दूर है और वडी लम्बी कक्षा मे चलता है। इन सब के ग्रहण और वेध, अर्थात् बृहस्पति-मण्डल को आरपार करने का दृश्य, वडे कौतुक का होता है।

शनि—शनि सूर्य का छठा ग्रह है। चिह्न अन्यत्र देखिए। शक १७०३ मे उरण के ज्ञात होने के पहले सूर्य से सब से अधिक दूरी पर यही ग्रह ज्ञात था। तीस वर्ष मे यह सूर्य के चारो ओर घूम आता है। इसकी गठन कुछ वृहस्पति की सी मालूम पडती है। घनता इसकी सब ग्रहो से कम है। पृथ्वी के दशांश से भी कम, अर्थात् पानी से भी कम, इसकी घनता है। प्राय साढे दस होरा मे यह अपने अक्ष पर घूम जाता है। इसका दृश्य तल मङ्गल के सदृश घन द्रव्य का नही है। तरल, अर्थात् मेघ सदृश बाष्पीय द्रव्य का, है। इसकी पगडी और इसके चन्द्रमा अपूर्व देख पडते है। केवल प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण से इसकी पगडी और इसके चन्द्रमा देख पडते है। शनि के दश चन्द्रमा अभी तक ज्ञात है। सब से समीप का चन्द्रमा तेईस होरा में शनि के चारो ओर घूम आता है और सब से दूर का ५४६ दिन १२ होरा मे। एक चन्द्रमा बृहस्पति का और एक चन्द्रमा शनि का ग्रह से उलटी चाल मे चलता है। अर्थात् ग्रह पश्चिम से पूरब को जाता है और ये पूर्व से पश्चिम को। वरुण मे जो एक ही चन्द्रमा है वह भी उलटा ही चलता है। पगडी के सवसे बाहर के तह का व्यास २०८६५ योजन है। पगडी की दो लपेट के भीतर एक काली सी और लपेट है जिसके भीतर दो चमकीली लपेटे है। सब लपेटे मिल कर ४६६६२५ योजन होता है।

उरण—उरण सूर्य का सातवाँ ग्रह है। चिह्न अन्यत्र देखिए। वडे हरिशैल को १७०३ मे पहले-पहल इसका दर्शन हुआ। वडी प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण में इसका मलिन समुद्री रङ्ग का बिम्ब देख पडता है। इसकी स्थिति यदि मालूम हो, और आकाश मे यह जहाँ हो ठीक वही देखा जाय, तो सादी आँखो को भी यह कुछ दृश्य होता है। इसके चार चन्द्रमा है। ढाई दिन, चार दिन, नौ दिन, और साढे तेरह दिन मे क्रम से ये ग्रह के चारो ओर घूम आते है।

वरुण—वरुण सूर्य का आठवाँ ग्रह है। चिह्न अन्यत्र है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी मे तीस गुनी दूरी इसकी सूर्य से है। अर्थात् सूर्य से इसका मध्यान्तर ३४,६५,००,००० योजन है। १६५ सवर मे यह सूर्य के चारो ओर घूम आता है। इसकी कक्षा प्राय गोली है। ऐसी गोली कक्षा शुक्र को छोड और किसी ग्रह की नही है। प्रचण्ड दूरवीक्षण मे इसका रङ्ग मन्द नीला-सा मालूम पडता है। उरण और वरुण की परिवृत्ति का समय नही जाना गया है। क्योकि इनके बिम्ब पर कोई दाग नही नजर आते, जिनके हटने-बढने मे इसका निश्चय किया जाय।

इसका वायु-मण्डल उदजनक से पूर्ण, बडा गहरा, जान पडता है। एक ही चन्द्रमा इसका देखा गया है। १७६८ में बडे परिश्रम के बाद लवार्य ने इस ग्रह की स्थिति, गति आदि का निश्चय किया था।

ऊपर कह आये हैं कि रति को छोड कर और सब छोटे ग्रह मङ्गल और बृहस्पति के बीच से सूर्य के चारो ओर घूमते है। छ सात सौ से ऊपर ये छोटे ग्रह आज तक जाने गये हैं। इनमे से कितने ही तो इतने छोटे हैं कि तौल मे केवल कई सेर होगे। कितनो ही का मत है कि कोई एक ही बडा ग्रह किसी धक्के से चूर-चूर हो कर आज इन छोटे ग्रहो के रूप मे घूम रहा है।

सूर्य, उसके आठ बडे ग्रह, बडे ग्रहो के चन्द्रमा, छोटे ग्रह, और कई केतु मिल कर सौर जगत् स्थित है। सब बडे ग्रह पश्चिम से पूरब, यानी सूर्य की प्रकट गति मे उलटी गति मे, चलते हैं। इनकी कक्षा एक दूसरे से बहुत दबी नही है। सब छोटे ग्रह भी एक ही मुँह, अर्थात् पश्चिम मे पूरब को जाते है। पर एक दूसरे की अपेक्षा कक्षाओ का दबाव और उनकी दीर्घता मे बहुत भेद है। सब चन्द्रमा प्राय पश्चिम ही मे पूरब जाते हैं। केवल वरुण के चन्द्रमा वरुण की कक्षा के प्राय ऊपर मे नीचे, नीचे से ऊपर, घूमते रहते हैं। वरुण का चन्द्रमा, शनि का एक चन्द्रमा, तथा बृहस्पति का एक चन्द्रमा उलटी चाल से चलते हैं। अर्थात् पूरब से पश्चिम जाते हैं। सब मिल कर छब्बीस उपग्रह अथवा चन्द्र अभी तक ज्ञात हुए हैं। उनमें पृथ्वी का जो एक चन्द्रमा है वही चन्द्र नाम से लोगो मे प्रसिद्ध है। मास या महीनो का नाम चन्द्रमा से होता है। इसीलिए इसे मास भी कहते है। पृथ्वी से सूर्य की दूरी, पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी की अपेक्षा, प्राय चार सौ गुनी अधिक है। पृथ्वी जब सूर्य के चारो ओर घूमती रहती है तब चन्द्रमा बराबर पृथ्वी के चारो ओर घूमता है और उसे लिये दिये पृथ्वी चलती है। सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के जितने अश पर पडता है उतना अश प्रकाशित रहता है। एक एक अश करके पन्द्रह दिन में समूचा चन्द्र बिम्ब प्रकाश मे भर जाता है और फिर पन्द्रह दिन मे क्रम से एक-एक अश घटता है। चन्द्रोदय और चन्द्रास्त चन्द्रमा के भ्रमण के कारण प्रतिदिन प्राय अट्ठालीस कला देर मे होता है। चन्द्रमा का प्राय एक ही मुँह पृथ्वी के सामने रहता है। इससे यह स्पष्ट है कि उसका परिवर्तन और परिभ्रमण एक ही समय मे होता है। चन्द्रमा मे प्राय सभी काले और चमकीले दो अश देख पडते है। कभी कभी बाल चन्द्रमा का भी पूर्ण बिम्ब काला सा मालूम पडता है। सूर्य की प्रभा पृथ्वी पर आकर वहाँ से उलट कर चन्द्रमा पर पडती है। इसी से यह काला बिम्ब नजर आता है। चन्द्रमा मे खडा हो कर यदि कोई पृथ्वी को देखता तो उसे पृथ्वी दस चन्द्रमा के बराबर एक बिम्ब सी देख पडती। चन्द्रमा मे जो काले काले दाग है उन्हे पहले लोग समुद्र समझते थे। पर दूरवीक्षण की तरक्की के साथ साथ यह निश्चय होने लगा कि चन्द्रमा का तल ऊबड़खाबड़ और पहाडो से भरा हुआ है। चन्द्र-

गोलक के वर्णन पर कई पुस्तकें पाश्चात्यो ने लिखी हैं। अब चित्रग्राह की सहायता से बहुत अच्छी तरह विम्ब के चित्र लिये गये हैं। चन्द्रबिम्ब में सब से अद्भुत यह बात है कि जहाँ-तहाँ मरे हुए अग्नि-पर्वतो के मुख अभी तक देख पडते हैं। चन्द्र-पर्वतो की ऊँचाई नापने मे बड़ी कठिनाई है, क्योकि कोई समुद्र तो वहाँ है नही जिसकी पीठ से ऊँचाई का ठिकाना लगे। पर समीप के किसी गढे से ऊँचाई नापी जा सकती है। तीन हजार से चौबीस हजार फुट ऊँचे पहाड इस पर हैं। चन्द्र-विम्ब पर जल या वायु के होने का कोई प्रमाण अभी तक नही मिला है। इसलिए वृष्टि का होना-जाना इत्यादि चन्द्रविम्ब पर नही हो सकता। सूर्य की किरणो के पडने से सर्दी-गर्मी का भेद मात्र वहाँ है। वायु-मण्डल न होने से सर्दी भी पडती है तो खूब और गर्मी भी पडती है तो खूब ही। जल-वायु न होने से वहाँ जीव का अस्तित्व सम्भव नही है। जब-तब बाल-चन्द्रमा के काले पेट मे कुछ चमकीले दाग देख पड़ते हैं। कितने ही लोग इन्हे जीते अग्नि-पर्वतो के उद्भेद समझते है। पूर्ण-चन्द्रमा के प्रकाश से पाँच लाख गुना सूर्य का प्रकाश है—अर्थात् पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश की घनता की अपेक्षा सूर्य के प्रकाश की घनता पाँच लाख गुना अधिक है। चन्द्र की कक्षा भी कूर्म-पृष्ठ है। पृथ्वी उस कूर्म-पृष्ठ के दो केन्द्रो मे से एक है। पूर्णिमा को बीच में पृथ्वी और दोनो ओर सूर्य-चन्द्रमा पडते है और पृथ्वी की छाया चन्दमा के जितने अश को काला कर देती है उतने अश का चन्द्र-ग्रहण होता है। अमावास्या को पृथ्वी और सूर्य के बीच मे चन्द्रमा रहता है और सूर्य का जितना अश चन्द्रमा से ठीक व्यवहित होता है उतने अश का सूर्य-ग्रहण होता है।

सौर जगत् मे पूँछ वाले ग्रह, जिन्हे केतु कहते हैं, कभी-कभी देख पडते है। केतु बडी लम्बी कक्षा मे चलते है। सौ बरस मे बीस या तीस सादी आँखो से देख पडते हैं। पर हर साल सात-आठ दूरवीक्षण से देखे जाते हैं। केतु मे एक तारा के सदृश पिठर होता है जिसके चारो ओर एक पतली प्रभा रहती है। इस प्रभा से निकली हुई एक पूँछ होती है जो सूर्य से उलटी दिशा में देख पडती है। कितने केतु नियत समय से बडे लम्बे कूर्म-पृष्ठ मे चलते है। पर बहुत से केतु समान्तरच्छेद आदि दीर्घ-वृत्तो मे चलते हैं। इसलिए उनका लौट आना असम्भव है। केतु-गति के चाप की निरीक्षा से या चाप की परीक्षा से या उसके फिर लौट आने से जाना जा सकता है कि उसकी गति तिर्यक्छेद मे है, या समान्तरच्छेद मे, या उभयतश्छेद मे। जो केतु तिर्यक्छेद मे चलते हैं, अर्थात् लौट आते है, वे सौर जगत् के हैं। दस वर्ष से लेकर हजारो वर्ष मे लौटने वाले तक सौर केतु हैं। जो समान्तरच्छेद या उभयत-श्छेद मे चलते हैं वे नही लौटते और प्राय किसी दूसरे तारा-सूर्य से सम्बन्ध रखते हैं। सूर्य से इतनी दूरी पर रह कर भी केतुओ को श्वेत दीप्ति कहाँ से मिलती है, यह एक बडा प्रश्न है। केतुओ के भीतर कुछ वैद्युत परिणाम हो रहा है जिस से उन्हें यह दीप्ति मिलती है, ऐसा मालूम पडता है। केतुओ का पिठर दूरवीक्षण

में अपारदर्शी पुञ्ज-सा मालूम पडता है। पूँछ पारदर्शी है, इसलिए उसके पार के भी तारे आदि देख पडते है। उल्कापात से और केतुओ से प्राय बहुत सम्बन्ध है। प्राय जिस रास्ते से कोई केतु गया होता है उस रास्ते मे वह बहुत-सा उल्का-जनक द्रव्य छोडता जाता है। इसलिए इन्ही स्थानो पर प्राय उल्कापात हुआ करता है। केतु का पुच्छ सूर्य-किरणो से क्यो सदा भागता है, इस प्रश्न का उत्तर अभी ठीक-ठीक नही जाना गया है। सम्भव है कि सूर्य की किरण स्वय पूँछ को हटाती हो या किसी वैद्युत प्रेरणा से वह हटता हो। सम्भव है कि दोनो कारण साथ ही साथ काम करते हो। सादी आँखो से केतु का पुच्छ जैसा मालूम पडता है उससे कुछ विलक्षण ही दृश्य चित्रग्राह मे चित्र लेने पर देख पडता है। चित्र मे इसका पिठर एक गोला-सा मालूम पडता है और पुच्छ गिरहदार मकई के डण्डे-सा। केतु मे दो प्रकार की प्रभा पाई जाती है। एक तो पूँछ के बाष्पो की श्वेत प्रभा और दूसरी पिठर पर प्रतिबिम्बित सूर्य की प्रभा। सूर्य समूचे सौर जगत् को लिए हुए एक विकला मे सवा योजन के हिसाब से आकाश मे चला जा रहा है। यदि कोई जाना हुआ केतु उसकी अपेक्षा स्थिर रहता तो सूर्य के समीप आने से केतु मे उभयतश्छेद की गति देख पडती। पर केतु की गति मे समान्तरच्छेद से इतना भेद नही पडता है जिससे जाने हुए केतुओ को सौर जगत् का न समझे। इस कारण प्राय बहुतेरे केतु सौर ही जगत् के है, कदाचित् ही कोई आगन्तुक हो। लौट आने वाले केतु आज तक इतने विदित है —

१ हली	७५९ वर्ष मे।
२ बल	६६७ वर्ष में।
३ अक	३२९ वर्ष मे।
४ तूतल	१३७८ वर्ष मे।
५ पण	७२२८ वर्ष मे।
६ उर्वर	७३३२ वर्ष मे।
७ वर्णक	५६७ वर्ष में।
८ स्पय	७५० वर्ष में।
९ भिक्षु	५६६ वर्ष मे।
१० वरोटन	५५२ वर्ष मे।
११ अरिष्ट	६५६ वर्ष मे।
१२ ताम्रफल	५८४ वर्ष मे।
१३ सुविस्फुट	५५१ वर्ष में।
१४ तिमिपाल	५२८ वर्ष में।
१५ वृक	६८० वर्ष मे।
१६ फणिलय	६६४ वर्ष में।
१७ वरोक्ष	७२० वर्ष मे।
१८ हर्म्यं	६.८९ वर्ष मे।

बहुत-से उल्का-पाषाण आकाश मे जहाँ-तहाँ पडे है। साफ चाँदनी रात में घण्टे मे आठ-दस उल्कायें गिरती है। प्रात काल घण्टे में बीस तक उल्का-पात होते है। गणित से ठीक किया गया है कि प्राय बीस लाख उल्का-पाषाण रोज वायु-मण्डल में आते है। यदि सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की प्रभा और मेघ न हो तो ये सब सादी आँखो से देख पडेगे। पर बहुत-से उल्का-पाषाण दूरवीक्षण मात्र से दृश्य है। इन्हे यदि मिला लिया जाय तो कहा जाता है कि प्रति दिन चार करोड उल्का-पाषाण वायु-मण्डल मे आते है। ग्रहादिक के सदृश ये भी सूर्य के चारो ओर तिर्यक्छेद मे घूमते है। एक शताब्दी मे प्राय तीन बार भारी उल्का-वृष्टि पृथ्वी पर होती है। अनुमान किया जाता है कि तीस वर्ष चार महीने मे सूर्य के चारो ओर घूम आने वाला कोई बडा भारी उल्का-प्रवाह चल रहा है और कही पर उसकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा को काटती है। जब पृथ्वी इस छेदविन्दु पर पहुँचती है तभी प्राय भारी उल्का-वृष्टि होती है। एक विकला मे ३२५ योजन चलती हुई उल्का विकला में २२८१२५ योजन चलने वाली पृथ्वी से, सामने आकर, भिडती है। इसी लिए विकला मे उसकी गति ५५ योजन की मालूम होती है। कार्त्तिक मास के आस-पास एक देखने लायक उल्का-वृष्टि होती है। सावन-भादो के आस-पास भी एक अच्छी उल्का-वृष्टि होती है। चमकीली उल्काओ मे से प्राय जलते हुए मङ्गेश की-सी श्वेत-नील प्रभा आती है। उल्का-पाषाण जलते हुए और शब्द करते हुए कभी-कभी पृथ्वी पर गिरते है। यदि समूचा पाषाण वायु-घर्षण से जलकर खाक न हो गया तो पृथ्वी पर वह मिलता है। प्राय वेग से आने के कारण उल्का-पाषाण कई फुट जमीन के भीतर घुस जाते है। जब गवाँर लोग कभी उल्का-पाषाण पाते है तब उसे देवता, देवी या देवताओ की माँ-बहिन कहकर पूजते है। उल्का-पाषाण प्राय कोण के आकार के होते है। यूनान मे पहले बहुतेरे स्थानो मे इनकी पूजा होती थी। कितने आंग्ल वैज्ञानिको का मत है कि मक्का का काला पत्थर भी एक उल्का-पाषाण ही है। आजकल अद्भुतालयो में ऐसे सैकडो-हजारो पत्थर स्थापित है। हरित-भूमि के पश्चिम मे सुमेरुदर्शी प्रियारि महाशय के लाये हुए उल्का-पाषाणो मे से सब से बडा साढे छत्तीस तूण का है। मक्षिका-राज्य में वकवृत्त में एक बडा उल्का-पाषाण पाया गया था जो तेरह फुट लम्बा, छ फुट चौडा और पाँच फुट मोटा है। यह पचास तूण से कम नही होगा। उल्का-पाषाण लहराते हुए बडे वेग से ऊपर की सूक्ष्म वायु में चलते है, पर पृथ्वी के समीप की घन वायु मे आते-आते उनकी गति कम होती जाती है। इसलिए गर्मी भी बहुत कम रह जाती है। कभी-कभी बहुतेरे पत्थर साथ ही साथ एक दो योजन की लम्बाई मे गिरते है। पृथ्वी के छिलके मे जितने तत्त्व पाये जाते है उनमें से एक तृतीयांश उल्का-पाषाणो में भी पाये जाते है। कोई नया तत्त्व इनमें अभी तक नही पाया गया है। अभी तक किसी उल्का-पाषाण में कोई शारीरिक द्रव्य नही पाया गया है। पृथ्वी के बाहर जीवो के होने का कोई प्रमाण अभी उल्का-पाषाणो से नही मिला है।

भूगोल-विद्या

और विद्याओ से भूगोल-विद्या मे यह विलक्षणता है कि इसकी बातो के नि सन्देह असली अनुभव के लिए घर छोडना अत्यन्त आवश्यक है। घर बैठे-बैठे मनुष्य आकाश की सैर कर सकता है और ज्योतिर्विद्या की बातो का पता लगा सकता है। रुपये हो तो रेल, तार आदि सब कुछ घर मे हो सकता है। भूमि खोद कर भूगर्भ का भी बहुत कुछ पता घर ही से लग सकता है। बाहर घूमने से ज्योतिष आदि विद्याओ मे सहायता अवश्य मिलती है, पर इन विद्याओ के लिए बाहर जाना अत्यन्त आवश्यक नही है। परन्तु भूगोल-विद्या की बातो का यदि स्वतन्त्र और उत्तम अनुभव मनुष्य चाहे तो घर छोड कर बाहर घूमे बिना यह नही हो सकता। इसलिए शालीन जातियो को, अर्थात् प्राय परदे में रहने वाली जातियो को, और विद्याओ का कुछ पता लगने पर भी भूगोल-विद्या से अलग ही रहना पडा है।

प्राचीन आर्य मेरु के आस-पास के स्थानो से बर्फ के प्रलय के कारण, तथा, सम्भव है, अपने उत्साह के कारण भी भारत आदि मे आये थे। इसी से उन्हे भूगोल-विषयक बहुत-सी बातो का यथार्थ पता था। मेरु के चारो ओर सूर्य्य का घूमना तो सभी प्राचीन आर्य-ग्रन्थो मे पाया जाता है। मेरु के आस-पास बस्ती थी। वहाँ प्राचीन सभ्यता के अधिवास भूमि मे गडे हुए थे। इस बात का पता महा-भारत के लिखने वाले भगवान् कृष्ण द्वैपायन को भी था। मेरु के आस-पास उत्तर-कुरु में जाकर मरुत्तराज के समय के गडे हुए सोने के बहुमूल्य पात्रो को लाकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के आरम्भ का वर्णन महाभारत में दिया हुआ है। मेरु के प्रदेशो में झबरा हाथी का होना यूरोप के लोगो को अभी विदित हुआ है। पर किरातार्जुनीय जैसे क्षुद्र काव्य के प्रणेता भारवि तक को ऐसे हाथियो की स्थिति विदित थी—जैसा कि उन्होने "कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ" इस वाक्य मे दरसाया है। तिमि, राघव आदि मछलियो के सदृश विशाल जन्तु प्राय सुमेरु के समुद्रो ही मे होते है। इनकी बाते भी भारतीयो को विदित थी। कालिदास ने तिमियो का, मुँह खोल कर छोटे जन्तुओ से भरे हुए समुद्र के पानी को लेकर, माथे के छिद्रो मे से पानी के फव्वारे निकाल कर, जन्तुओ को खाने का वर्णन रघवश में कैसा अच्छा किया है। देखिए :—

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भ सम्मीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमय सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥

पृथ्वी पर क्षीर-समुद्र से प्राचीन आर्य बर्फ से ढके हुए समुद्र को समझते थे। श्वेत-द्वीप, अर्थात् यूरोप, की सफेद जातियो के वासस्थान का भी इन्हे पता था।

भास्कराचार्य को पृथ्वी का आकार भी ठिकाने से मालूम था। कदम्ब के गोले के सदृश पृथ्वी मे कदम्ब के केसर के सदृश चिपके हुए मनुष्य आदि का वर्णन भास्करीय गोलाध्याय में हैं। बडे-बडे कष्ट सह कर प्राचीन भारतीय इधर-उधर घूमते थे। आज आंग्लभूमि तक या अमेरिका तक पहुँचने मे जो क्लेश नही हैं वह क्लेश पाणिनि को पुरुषपुर अर्थात् पेशावर के आस-पास की तक्षशिला और शालातुर की भूमियो से आकर पाटलिपुत्र मे पढने के समय हुआ होगा। यदि आर्यो के उत्तर से आकर भारत मे रहने का, या यहाँ से अर्जुन आदि का फिर उत्तर-कुरु तक जाने का, खयाल करे तो हम आश्चर्य में पड जाते है। पर प्रकृति-माता की विषम अन्ध-लीला विलक्षण है। जरा सँभाल कर मनुष्य न रहे तो कैसी-कैसी आपत्तियाँ आ पडती हैं। अर्जुन के सदृश वीर और पाणिनि के सदृश विद्वान् तो कार्य के लिए कहाँ से कहाँ पहुँचते थे और कितने-कितने क्लेश सहते थे, और, आज, भट्ठी मे घुडकी लगाने वाले तथा गदी तरह उवाला हुआ उसना (भुजिया) चावल खाने वालो मे भी शुद्धि का ऐसा अभिमान आ गया है कि विलायत जाने के नाम मे उभड पडते हैं। अजी विलायत को कौन कहे, आजकल के विद्वानो की चलती तो अङ्ग या भागलपुर, वङ्ग या वङ्गाल और कलिङ्ग या वालासोर के आस-पास की भूमि मे जाने पर विना दस रोज गोवर खिलाये और विना दस रुपये आपसे लिए जात-भाई के साथ न भट्ठी मे घुडकी लगाने देते न घर पर उसना चावल खाने की इजाजत देते। इन लोगो का तो यह मत है कि मगह मे भी न जाना चाहिए क्योकि कदाचित् वहाँ मरे तो मरने पर धोवी की लादी ढोनी पडेगी।

कई सौ वरसो से भारत मे वैसी ही विलक्षण भूगोल-विद्या चली है जैसी कि अज्ञानावस्था मे देशान्तरो मे रहती आई है। सुमेरु को एक सोने का पहाड समझ लेना, सूर्य-विम्व को रथ का एक पहिया मान लेना, सूर्य के सामने अँगूठे भर शरीर वाले साठ हजार वालखिल्य आदि की कल्पना कर लेना अपूर्व कविता ही तो है। इसे जाने दीजिए। पृथ्वी का कुछ विलक्षण ही आकार और आधार लोगो ने समझ लिया था। वराह के ऊपर या नीचे कच्छप, उसके ऊपर या कभी-कभी नीचे आठ हाथी और आठ हथिनी, उनके ऊपर हजार माथे के शेष, फिर शेष के एक माथे पर सरसो के वरावर पृथ्वी, फिर पृथ्वी के समतल पर—जिससे शेप के माथे पर वह डगमगाय नहीं—कई पहाड फिर पृथ्वी के चारो ओर चारदिवारी के सदृश लोकालोक पहाड फिर एक उदयाचल जिस पर सूर्य उगते है और एक अस्ताचल जिस पर सूर्य अस्त होते हैं फिर सूर्य का डूव कर पृथ्वी के नीचे-नीचे समुद्र होकर ऊपर निकलना इत्यादि अनेक कल्पनाये पौराणिक कवि घर मे बैठे ही बैठे करते गये। एक-आध वात की, सम्भव है कुछ जड-वुनियाद भी हो जैसे सहस्रधार वायुमण्डल

को लोगो ने शेष समझ लिया हो, या दक्षिण ध्रुव के किसी सर्पाकार तारा-मण्डल को शेष समझ लिया हो, या सूर्य के प्रकाश के कारण ही मेरुभूमि को सुवर्णमयी समझ लिया हो। पर ऐसी बातो के पता लगाने से कुछ विशेष फल नही है। कल्पना बढाते-बढाते घर में बैठे-बैठे यहाँ वालो ने पृथ्वी को और पृथ्वी के अङ्गो को विलक्षण अवस्था को पहुँचा दिया। पृथ्वी के भीतर के खोखले मे लोगों ने नाग और नाग-कन्याओ की स्थिति मान ली। दूर दक्षिण की ओर महाराज धर्मराज की नरक-भूमि समझ ली। भारत के बाद देव, गन्धर्व, विद्याधर आदि की भूमि की कल्पना भी कर ली। बेचारे बाणभट्ट तो भूतपत्तन अथवा भूटान ओर श्रीक्रमि या सिक्किम के आस-पास सुनहरी जटा वाले किरातो की भूमि के समीप ही मनुष्य-भूमि की सीमा समझते थे। लामाओ का अपूर्व दर्शन भारत मे होने पर भी, मानसरोवर के आस-पास त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत की भूमि को यक्षभूमि कौन नही समझता है? यहाँ के लोगो को अश्वमुख किन्नर आदि शब्दो से लोग बहुत दिनो से पुकारते आये। अज्ञान का कैसा माहात्म्य है कि भोज के पिता सिन्धुराज के समय में परिमल महाकवि ने भोज की मैया शशिप्रभा देवी को नागपुर की नागकन्या बना डाला है। बडे-बडे नरसर्पो से सुरक्षित शशिप्रभा का वर्णन परिमल ने अनेक बार किया है। अब कहिए, जिनकी दृष्टि में नर्मदा के पार उतरते ही नागपुर अर्थात् नागलोक था और अलमोडा के ऊपर ही विद्याधरो की भूमि थी उनसे भूगोल-विद्या की क्या आशा की जाय? ऐसे समयो मे केवल भास्कर के सदृश दो-एक ज्योतिषियो को सूर्यसिद्धान्त आदि प्राचीन ग्रंथो से एक-आध बाहरी नगरो का नाम मालूम था। वे पृथ्वी के बीचोबीच लंका, उसके बहुत दूर पूरब यमकोटि, और बहुत दूर पच्छिम रोमक नगर, तथा ठीक नीचे सिद्धपुर जानते थे। इनमे से लका और यमकोटि का तो आज कुछ पता ही नही। कितने ही तो सिंहल को लका समझते हैं। वर्त्तमान यवद्वीप को यमकोटि समझ लें तो कुछ क्षति नही है। रोमनगर तो प्रसिद्ध ही है। आज भी इतिहास में उसकी कीर्त्ति-पताका फहरा रही है। सिद्धपुर अमेरिका के मक्षिका-राज्य को समझ सकते हैं। जब से पराशर आदि दक्खिनी धर्मशास्त्रियो ने समुद्र-यात्रा पर अपना तुम्बा फोडा और आलस्य भगवान् की कृपा बढती गई तब से नगरो आदि के नामो का भी पता लगना दुस्तर हो गया। आजकल के व्यवस्थापको को तो प्रायश्चित्त आदि के लिए देशव्यवस्था निकालने मे बडी ही दिक्कत होती है। चीनी-डाँट, मरीच, हवा या मुल्क ब्रह्मा का देश आदि पवित्र देवता या नैवेद्य के नाम मे किसी देश का व्यवहार किया गया तो वह विलायत मे कितनी ही दूर क्यों न हो, शास्त्री लोग वहाँ जाने-आने वालो को कुछ नही कहते। विलायत का भी नाम मालपूआ भूमि के सदृश रहता तो भी प्राय कुछ न बोलते। पर फ्रान्स, विलायत, इङ्गलैंड, जर्मनी आदि अंगरेजी फारसी के नाम से वे लोग इस तरह घबरा उठते है कि उन देशो की स्थिति आदि का विशेष पता लगाये बिना ही राम-राम छी-छी कहने लगते हैं।

ओर, व प्रायश्चित्त की कौन कहे, प्रायश्चित्त करने पर भी, वहाँ जाने-आने वालो से बिना मुकद्दमा पडे बातचीत नही करना चाहते।

खैर, जो कुछ हो, आज तो रात-दिन पृथ्वी पर यहाँ से वहाँ घूमने वाले और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का पता लगाने वाले अद्वितीय उत्साही पाश्चात्य वीरो की कृपा से भूगोल-विद्या का परोक्ष ज्ञान हमे बहुत कुछ हो रहा है। चार आने की भूगोल की प्रथम पुस्तिका से जितना छोटी पाठशालाओ के छात्रो को पता लगता है उतना इस समय लाख श्लोक की संहिता से भी बडे-बडे विद्वानो को पता लगाना दुस्तर है। विद्या तो भारतीयो का धर्म ही है। हजार कोई कुछ कहे अन्तत अविद्या से नाक सिकोडना और विद्या मे मग्न रहना भारतीयो को प्यारा लगेगा ही। हम दिग्गजो के साथ पाताल के अन्धकार मे कब तक रहेंगे। पृथ्वी, आकाश आदि की असली स्थिति का पता-ठिकाना, जहाँ से हो वहाँ मे लगा कर, शाब्दिक परोक्षानुभव को, पैरो से घूम-घूम कर और आँखो से देख-देख कर, प्रत्यक्षानुभव में लाने का यत्न अवश्य ही करेंगे। यहाँ शब्दो मे इसी परोक्षानुभव का कुछ उपाय किया जा रहा है जिससे तेजस्वी लोग अपरोक्षानुभूति के व्यापार मे सहायता पावे।

भास्कर आदि जैसा समझते थे प्राय वैसी ही गोल पृथ्वी है। सूर्य के चारो ओर वेग से घूमने के कारण सुमेरु और कुमेरु अर्थात् दोनो ध्रुवो पर पृथ्वी चिपटी है, अर्थात्, भूगोल का पूर्व से पश्चिम का व्यास उत्तर से दक्षिण के व्यास मे कुछ बडा है। प्राय त्रिकोण के आकार का यह भारतवर्ष है। भारत के दक्षिण भारतीय महार्णव है। दक्खिन मे यह बहुत दूर तक चला गया है। अभी तक उत्तर से दक्खिन तक इस समु के आरपार कोई जा नही सका है। भारत के उत्तर हिमाचल है। यह पृथ्वी पर सबसे ऊँचा पहाड है। पहाड क्या, यह पहाडो की शृङ्खला है। हिमाचल के उत्तर चीन साम्राज्य है। चीन के उत्तर अत्यन्त विस्तृत मरु-प्राय ठढी श्वेतभूमि है। यहाँ रूस्यो का साम्राज्य है। इसके उत्तर प्राय वर्फ से ढका हुआ उत्तरीय समुद्र है। भारत के पूरब ब्रह्म देश है* जिसकी मध्य-भूमि को श्यामदेश और दक्षिणी जिह्वा को मलयदेश कहते है। ब्रह्म देश के दक्षिण, समुद्र में, वरुणद्वीप, सुमित्रद्वीप, यवद्वीप, शलभद्वीप, नवगुणद्वीप आदि टापू है। इन टापुओ के दक्खिन एक बहुत बडा टापू है जिसे औष्ट्रालय कहते है। औष्ट्रालय से दक्खिन और पूरब के कोन पर नवजीव-भूमि है। औष्ट्रालय के पूरब छोटे-छोटे बहुत-से टापू है, जो सब मिलकर पूर्णास्य-द्वीप-समूह के नाम से प्रसिद्ध है। मलयजिह्वा के पूरब फलप नाम से प्रसिद्ध द्वीपकदम्ब है। चीन के पूरब, समुद्र में, कई बडे-बडे द्वीप है जो कर्पूरद्वीप के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्म-देश के पूरब कर्पूरद्वीप आदि का आश्रय शान्त महार्णव है जो

---

*यहाँ इरावती नदी है। उसके आस-पास श्वेत हाथी मिलते है जिन्हें ऐरावत या (पूर्वदिक्पाल) इन्द्र का हाथी कहते है।

अमेरिका के दोनो भागो के पश्चिम किनारे तक पहुँच गया है। इसका विस्तीर्ण दक्षिण मुख भारतीय महार्णव से मिला हुआ है तथा अत्यन्त सकुचित उत्तरमुख वराङ्गबाहु के नाम से प्रसिद्ध है और उत्तर ध्रुव के समुद्र से जा मिला है। भारत के पश्चिम दक्षिण की ओर आरव्य देश है। आरव्यो के उत्तर पारसीक देश है। पारसीको के उत्तर रूष्य और चीन साम्राज्यो के अश है। आरव्यो के तथा पारसीको के पश्चिम विस्तीर्ण तुरुष्क राज्य है। आरव्यो के दक्षिण भारतीय समुद्र की एक सकुचित बाहु है, जिसे रक्तसागर कहते है। रक्तसागर के दक्षिण बहुत बडी अफ्रिका-भूमि है। अफ्रिका-भूमि के पूरब एक बडा टापू है, जिसे मदागस्कर कहते है। रक्तसागर के पच्छिम ओर अफ्रिका और आरव्य भूमि से जरा-सा सम्बन्ध था, जिसे लोग सुबीज-ग्रीवा कहते थे। इसे काट कर पाश्चात्यो ने सुबीज कुल्या बनाई है। सुबीजग्रीवा के पच्छिम अफ्रिका-भूमि से उत्तर मध्य-सागर है। चिरकाल तक जैसे भारतीय लोग भारत ही के कुछ अशो को मनुष्य-भूमि समझते थे और उनके आगे की भूमियो का इन्हें कुछ भी विशेष ज्ञान नही था वैसे ही मध्य-सागर के आस-पास के सभ्य लोग बहुत दिनो तक मध्य-सागर के आस-पास की भूमि को छोड कर और किसी भूमि का विशेष ज्ञान नही रखते थे। मध्य-सागर के उत्तर अश मे पृथ्वी की तीन जिह्वायें है। पूर्वी जिह्वा का नाम यवन देश है। बीचवाली जिह्वा का नाम इष्टालय देश है। पश्चिमी जिह्वा का नाम सुफेन-देश है। यवन-देश के उत्तर तुरुष्क और रूष्य लोग है। तुरुष्को के पच्छिम हूणगृह नाम की भूमि है। हूणगृह के पच्छिम अस्त्रिय-भूमि है। इसके पच्छिम और इष्टालयो के उत्तर शर्मण्य साम्राज्य है। इष्टालयो के पच्छिम और शर्मण्यो से दक्खिन सुफेनो के उत्तर में, स्फाराङ्ग (या फ्रास) देश है। सुफेनो के, फ्रासीसियो के और शर्मण्यो के पच्छिम तुङ्गमहार्णव है। इसका दक्षिणमुख भारत-महार्णव से और उत्तरमुख सुमेरु समुद्र से लगा हुआ है। शर्मण्यो के पच्छिम और फ्रासीसियो के उत्तर तुङ्गसागर में श्वेतद्वीप अथवा आग्लभूमि है। तुङ्गसागर के उत्तरमुख मे हिम-भूमि नाम का बडा टापू है। तुङ्गमहार्णव के पच्छिम, सबसे उत्तर की ओर, अति विस्तीर्ण हरित-भूमि है। हरित-भूमि के दक्खिन अमेरिका-भूमि का उत्तर खण्ड है, जिसके दक्खिन अमेरिका का दक्षिण खण्ड है। उत्तर और दक्षिण अमेरिका को जोडनेवाली सकुचित भूमि पर्णामयग्रीवा कहाती है।* अमेरिका के पच्छिम हम लोगो का पूर्वपरिचित शान्त महार्णव है। दक्षिण-अमेरिका की दक्षिण-जिह्वा शान्त-महार्णव मे घुसी हुई है और उत्तर अमेरिका के उत्तर प्रदेश सुमेरु समुद्र से मिले हुए है। दोनो अमेरिका के बीच तुङ्गमहार्णव में पूर्व-मिन्धु नाम का द्वीप-समूह है।

---

*सुत्रीजग्रीवा के सदृश पर्णामयग्रीवा को भी अब पाश्चात्य वीर प्राय: काट चुके है। कुछ दिनो में पर्णामय-कुल्या से होकर जहाज तुङ्ग सागर से शान्त-सागर में जा सकेंगे।

पृथ्वी के दोनो ध्रुवो के ठीक बीच से पूरब-पच्छिम होती हुई जो रेखा मानी गई है, जहाँ सूर्य की किरणे सीधी पडती है और इस कारण बडी गर्मी पडती है, उसे भूमध्य-रेखा कहते हैं। यहाँ रात-दिन बराबर होते हैं। इसलिए इसे विषुवत्-रेखा या विषुव-रेखा भी कहते हैं। इसके आस-पास की भूमि को उष्ण-मेखला कहते हैं। उष्ण-मेखला के दोनो तरफ की भूमि को समशीतोष्णमेखला कहते हैं। दोनो ध्रुवो के चारो ओर की भूमि को शीत-मेखला कहते है। सर्दी-गर्मी के कारण पृथ्वी के ऐसे विभाग किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पौधे, जन्तु आदि के हिसाब से भी पृथ्वी के विभाग लोगो ने किये हैं। पौराणिक भारतीयो ने आम-जामुन की भूमि को जम्बूद्वीप कहा था। इसी के अनेक खण्डो मे से एक खण्ड भारतवर्ष है। पर इनकी जामुन कुछ अजीब होती थी। एक-एक जामुन हाथी के बराबर होती थी और उसका रस बहकर सोना हो जाता था। इसी रस की नदी, अर्थात् जम्बू नदी, से उत्पन्न होने के कारण लोगो ने सोने का नाम जाम्बूनद रखा था। और भी प्लक्षद्वीप आदि अनेक द्वीप लोगो ने बताये थे, जिनकी स्थिति आदि का आज कुछ पता नही है। पौधे के हिसाब से आजकल पृथ्वी की पाँच मेखलाये समझी जाती हैं। एक सुमेरु मेखला है, जहाँ बहुत बरफ है और बरफवाले पौधे होते हैं। सुमेरु मेखला के चारो ओर उत्तर-मेखला है। उत्तर-मेखला के चारो ओर समशीतोष्ण-मेखला है। उसके बाद दक्षिण-मेखला है। उसके बाद समुद्र-मेखला। सुमेरु प्रदेशो मे काई से भी सूक्ष्म कुछ ऐसे उद्भिद होते है जिनसे कहीं-कहीं बरफ का रङ्गमात्र बदल जाता है। इनके अतिरिक्त और कोई पौधा वहाँ नही होता। इसके बाद की भूमि मे कई प्रकार की काइयाँ और झाडियाँ होती हैं। कितने ही पौधे, जो और जगह पूरे वृक्ष के रूप मे बढते है, यहाँ बिलस्त, आध बिलस्त की झाडी हो कर रह जाते है। इसके बाद की भूमि मे कितने ही सदा हरे रहने वाले और कितने ही पत्ते बदलने वाले वृक्ष होते हैं। और अधिक गर्म भूमि में, जहाँ पानी कम होता है, केवल घास-पात होते हैं। जहाँ और भी कम पानी होता है वहाँ केवल मरुस्थल के कुछ पौधो के अतिरिक्त और कुछ नही होता। जहाँ पानी भी खूब होता है और सूर्य का ताप और सूर्य की प्रभा खूब प्रचण्ड है ऐसे समशीतोष्ण देशों मे हजारो प्रकार के पौधे होते हैं। जीवो के अनुसार भी लोगो ने इसी तरह, मेखलाओ का विभाग किया है।

पृथ्वी पर प्राय चार वर्ण के मनुष्य हैं—श्वेत, रक्त, पीत और नील। श्वेत वर्ण के लोग प्राय यूरोप मे पाये जाते हैं। रक्त वर्ण के लोग अमेरिका मे रहते थे; आजकल उनकी संख्या घटती जाती है। चीन कर्पूर द्वीप आदि के लोग पीत वर्ण के हैं। अफ्रिका के लोग नील वर्ण के हैं। भारत आदि कई देशो मे वर्ण-विभाग रखने का बहुत प्रयत्न रहा, तथापि चारो वर्ण जहाँ-तहाँ से आकर देश की सुन्दरता के कारण बसे और बसते जाते हैं। इसलिए बहुत वर्ण-संकर होता जाता है। प्राय नील वर्ण के लोग असभ्य होते हैं। ये गर्म मुल्को मे रहते है। केवल वर्णान्तरो के समागम से

जहाँ-तहाँ कुछ शिक्षा इन लोगो मे आई है। जन्मान्तर की कल्पना, टोटका पूजना, पिशाच-पूजा, जन्तु-पूजा, वृक्ष-पूजा आदि इनमें बहुतायत से है। लाल वर्ण के लोग केवल अमेरिका ही मे पाये गये है *। अमेरिका मे ध्रुव-प्रदेश से लेकर विषुव-वृत्त तक ये फैले हुए थे। बडे-बडे मकान, मन्दिर आदि इनके थे। चिरकाल तक विना वर्णान्तरो के समागम के इन लोगो मे सभ्यता का विकास हुआ था। पाँच-चार सौ वरस से इनमें श्वेत वर्णों का समागम हुआ है। सुफेन आदि लोग जब से अमेरिका मे पहुँचे तव से इन्ही लोगो के समागम से रक्त वर्ण का ह्रास होने लगा। रक्त वर्णों मे वडे-वडे मन्दिर और देव-मूर्त्तियाँ अभी तक पाई जाती हैं। पीत वर्ण वाले लोग प्राय समशीतोष्ण-देश मे रहते हैं। नील वर्ण और रक्त वर्ण वाले लोगो से इनका धर्म अधिक शुद्ध है और सभ्यता अधिक ऊँची है। श्वेत वर्ण वाले लोग सबसे अधिक सभ्य हैं। समशीतोष्ण-भूमि के उत्तर भाग में ये रहते थे। अब ऐसी कोई जगह नही है जहाँ ये न पाये जायँ। ये बडे दार्शनिक और वैज्ञानिक होते हैं। इनका धर्म अत्यन्त शुद्ध है। सबसे ऊँची सभ्यता पर ये लोग पहुँचे हैं। वर्णान्तरो पर प्राय इन्ही का साम्राज्य है। प्राय सोलह अबुर्द मनुष्य पृथ्वी पर हैं। साठ अबुर्द से अधिक मनुष्य पृथ्वी पर नही रह सकते। प्रजा की जैसी वढती हो रही है उससे मालूम पडता है कि दो सौ वरस के भीतर पृथ्वी पर रहने को जगह न मिलेगी। श्वेत वर्ण के लोग प्राय अस्सी करोड है। पीत वर्ण के लोग साठ करोड है। लाल वर्ण के लोग प्राय तीन करोड है और नील वर्ण के लोग अठारह करोड है।

जङ्गलो में लोग प्राय' जङ्गली फल और कभी-कभी मास खा कर रहते है। उन्हे कपडो की आवश्यकता नही पडती। सुभीते से खाना-पीना मिल जाने से और कपडे-लत्ते की जरूरत न पडने से उनकी बुद्धि नही बढने पाती। जङ्गली जानवरो से बचने के लिए कुछ जमीन के घेर-घार करने की जरूरत पडती है और धनुर्बाण आदि सीधे-सादे हथियारो की भी आवश्यकता होती है। जब शिकार करने की अधिक आवश्यकता होने लगती है और दुर्बल लोगो के कपडे-लत्ते आदि छीन कर काम चलाना पडता है तब धीरे-धीरे वुद्धि का विकास होने लगता है। केवल फलाहारी जङ्गली को अपने जङ्गल के वाहर जाने की प्राय जरूरत नही पडती। शिकारी लोग चाहे जङ्गल में, चाहे मैदान मे रहते है। साहसी लुटेरे लोग प्राय पहाड आदि के दुर्ग मे रहते है और वहाँ से दूर-दूर तक जाकर लूट-पाट करते है। जहाँ केवल घास वाले मैदान वहुत हैं वहाँ पर लोग गाय, वकरी चराकर जिन्दगी बिताते है और रहने का खेमा लिये इधर-उधर घूमते है। इन लोगो को भेड, वकरी, गाय, घोडा, ऊँट आदि पालना

---

* सम्भव है कि ये लाल वर्ण वाले श्वेत वर्ण वालो द्वारा एक बार पहले भी भारत से निकाले गये हो और यही वार्त्ता लेकर परशुराम की क्षत्रिय-नाश-कथा बनी हो।

पडता है। कुत्ते आदि कितने ही जङ्गली जानवरो को भी अपने काम मे लाना पडता है, क्योकि इन्ही से इन लोगो की रक्षा होती है। पर जो जङ्गली जानवर वश मे नही आ सकते उन्हे ये लोग एकदम नष्ट करने का यत्न करते है। जो डाकू, लुटेरे आदि आलसियो को लूट-पाट कर जीते है उनसे रक्षा के लिये घूमने वाली जातियो को फौज रखनी पडती है। यदि सैकडो, हजारो इकट्ठे न रहे तो लुटेरो से जान न बचे। नदियो के समीप उपजाऊ मैदान मे कृषक लोग रहते है। गाँव बनाकर, जमीन जोत-बो कर, ये अपना जीवन-निर्वाह करते है। शिकारी लोग, या घूमने वाले लोग, अपनी जगह छोड कर दूसरी जगह भी चले जाते है। इनका भू-माता से उतना सम्बन्ध नही है जितना कृषक लोगो को। कृषक लोग मातृभूमि से अत्यन्त प्रीति रखते है और उसे छोडना नही चाहते। समुद्र के किनारे मछली मारने वाली जातियाँ रहती है। समुद्र से सम्बन्ध रखने के कारण नाव बनाने और चलाने आदि की इनकी शक्ति बढती जाती है। समुद्र के समीप के देशो मे, (जहाँ का जल-वायु कुछ ऐसा है कि जितना ही परिश्रम करो उतनी ही जीवन की सुविधाये बढती है) आलस्य से पडे-पडे काम नही चलता है। ऐसी ही भूमियो मे सभ्यता खूब बढी है। जिन भूमियो मे आलस्य से काम चल जाता है वहाँ के लोगो की सभ्यता खूब बढने नही पाती। जहाँ जीवन के लिए अधिक परिश्रम की अपेक्षा है वही के लोग खान खोदते है, वाणिज्य के लिए देशान्तरो मे आते-जाते है और कृषि के लिए बडी कठिनता से भूमि-शोधन करते है। खेमो मे घूमने वाली जातियो की बस्ती घनी नही होती, दूर-दूर तक बिखरी हुई रहती है—जैसे कि आरब्यो की बस्ती। खेती करने वालो की बस्ती भी दूर-दूर तक फैली रहती है और बहुत घनी नही होती। केवल अजपुत्र, भारत, चीन आदि देशो मे, जहाँ थोडी ही भूमि से बहुत लोगो का काम चल जाता है, बस्तियाँ घनी पाई जाती है। पर जहाँ खान आदि की चीजो के सुभीते के कारण बडे-बडे वाणिज्य के कारखाने है वहाँ बस्ती बहुत घनी है। सब से घनी बस्ती शर्मण्य देश के कुछ अंश मे है। सबसे कम घनी बस्ती पच्छिमी औष्ट्रालय मे है। यवद्वीप मे वर्गकोस पीछे १२७२ मनुष्य है। भारत मे वर्गकोस पीछे ६६८ मनुष्य है। आंगल देश मे वर्गकोस पीछे २२३२ मनुष्य है। शर्मण्य देश के एक अंश मे वर्ग कोस पीछे २६७२ मनुष्य है। श्रीवेर मे वर्ग-कोस पीछे चार आदमी का पडता पडता है। पच्छिम औष्ट्रालय मे वर्गकोस पीछे एक आदमी से भी कम पड़ता है। जब-तब मनुष्य अपनी बस्ती छोड कर नई बस्तियाँ बनाते है। कभी-कभी जल-वायु की गडबडी से, खेत आदि के खराब होने या बह जाने से, भूकम्प आदि के उपद्रव से, महामारी आदि के प्रकोप से, एक ही स्थान मे बहुत घनी बस्ती हो जाने से, बली लोगो के द्वारा निकाले जाने से या नैतिक और धार्मिक पीडाओ से मनुष्य अपना घर छोड दूसरी जगह चले जाते है। ऐसे मनुष्य जहाँ पहुँचते है वहा के दुर्बल लोगो को प्राय खदेडते है। इस प्रकार नई बस्तियों की तरङ्ग-सी उठने लगती है। कभी-कभी अच्छी भूमि

मे चारो ओर मे लोग पहुँचने लगते है। सोना, हीरा, कोयला, आदि के खेतो के आस-पास तथा अमेरिका की गोधूम-भूमि के आस-पास बस्तियाँ इसी प्रकार घनी होती गई है। पर जन्मभूमि का प्रेम मनुष्यो मे स्वाभाविक है और बाहरी कारणो की बाधा या लालच के विना मनुष्य अपना घर छोडना नही चाहता। जन्मभूमि का प्रेम देशभक्ति का कारण होता है। मरुभूमि मे घूमनेवाली जातियो मे भूमि-सम्बन्ध कच्चा रहता है। इसलिए उनमे प्राय देशभक्ति नही होती। चारो ओर से समुद्र, पहाड आदि से घिरे हुए देशो मे देशभक्ति नही होती। समुद्र की सीमा सवसे पक्की होती है और टापू के राज्य वहुत स्थिर होते है। समुद्र के वाद सीमा बनाने मे पहाडो का दर्जा है। नदियो का सिवाना वहुत पक्का नही होता। कभी-कभी मरुस्थल भी एक देश को दूसरे देश से अलग करते है। भाषा-विभाग से भी देश का विभाग होता है। कभी-कभी कृत्रिम दुर्ग-शृङ्खला, महाप्राचीर आदि से भी देशो का सिवाना बँधा रहता है। अस्त्रिय और इष्टालय के वीच एक बडी सी दुर्ग-शृङ्खला है। चीन के उत्तर, वहुत दूर तक, वारह सवारो के लिए वगल-वगल चलने के लायक, एक महाप्राचीर है।

पृथ्वी पर राज्य भी अनेक प्रकार के है। स्वेच्छानुसारी राजा केवल यूरोप के पूरब तथा जम्बूद्वीप मे पाये जाते है। पूरब मे केवल कर्पूरद्वीप समिति-तन्त्र राजा का राज्य है। कर्पूरद्वीप को छोड कर समिति-तन्त्र राजाओ के राज्य केवल यूरोप मे पाये जाते है। शुद्ध प्रजातन्त्र राज्य यूरप मे फ्रास आदि मे है। पर ऐसे राज्य की स्थिति विशेष कर अमेरिका मे है। जम्बूद्वीप मे चीन के नये प्रजातन्त्र राज्य को छोड कर आज तक ऐसे राज्य नही देखे गये। नई वस्तियो का शासन कही-कही तो स्वतन्त्र राजपुरुषो के अधिकार में है और कही-कही पूर्ण प्रजातन्त्र है। नई वस्तियो का प्रजातन्त्र-शासन केवल वृटिश साम्राज्य में पाया जाता है। कही-कही देश-शासन का एक निश्चित केन्द्र है, जैसे आंग्ल-भूमि में या फ्रांस में। कही-कही अनेक स्वतन्त्र राज्य नैतिक कार्यो के लिए एक सङ्घात वनाये वैठे है। शर्मण्यो में ऐसे अनेक राज्यो का सङ्घात है। अमेरिका मे अनेक प्रजा-राज्यो का सङ्घात है। प्रत्येक राज्य प्रान्त, मण्डल, जनपद आदि अवान्तरीय भागो मे वँटा रहता है। प्राचीन समयो मे आत्मरक्षा के लिए नगरो मे घनी वस्तियाँ थी। इसी लिए पुराने नगर प्राकार, परिखा, अटारी आदि से सुरक्षित रहते थे। फिर, कुछ समय वाद, खान आदि के समीप या देश-रक्षा के लिए अपेक्षित स्थानो मे या वाणिज्य के योग्य स्थानो मे शहर वसने लगे। समुद्री और दरियाई बन्दरगाहो पर, वाष्प-यान-पथ के विराम-स्थानो पर, तथा नदी-प्रतर, उपत्यका-द्वार, पर्वतावतार, चतुष्पथ आदि पर इसी प्रकार शहर वसने लगे। जहाँ पर भूमि नीची है और दलदलो से भरी है वहाँ साधारण सडक और रेल की सडक प्राय पहाडियो की ऊँची भूमि से जाती है। पर जहा पहाड ऊँचे है वहा सब मार्ग तराइयो और मैदान मे होते हुए जाते है। कहीं-कहीं बीच की बाधाओ को हटाने के लिए नदी समुद्र आदि पर सेतुओ और

पहाडो मे सुरगो की अपेक्षा होती है। ऐसे कार्यों के लिए वाष्प-विज्ञान की निपुणता और बहुत धन की अपेक्षा होती है। वाणिज्य के लिए भूमि, जल-वायु आदि के स्वभाव की परीक्षा करनी पडती है। पालवाली नाव चलानेवालो को तो जल-धारा और और वायु-धारा के खूब ही अधीन रहना पडता था। अब धूमनौकाओ के चलने मे जल-वायु की इतनी अपेक्षा नही रही है, तथापि बहुत दूर की यात्राओ मे समुद्र-विद्या और अन्तरिक्ष-विद्या की आवश्यकता पडती ही है। कृषि-वाणिज्य आदि की चीजो के निकालने और उत्पन्न करने के लिए भूमि, जल, वायु, जन्तु आदि के स्वभाव की परीक्षा की भी बहुत अपेक्षा है। कैसा अन्न कहाँ पैदा हो सकता है, कृषि के लिए बैल, घोडे, भैंस आदि कौन जन्तु कहाँ सुलभ है—इत्यादि का ज्ञान कर्षक के लिये अत्यन्त अपेक्षित है।

अब यह देखना है कि पृथ्वी के अगो का ज्ञान सभ्य मनुष्यो को कैसे-कैसे हुआ। आर्यों का ध्रुव-प्रदेश से इधर-उधर होना भाषा-तत्त्व, भूगर्भ-शास्त्र आदि से कुछ-कुछ अनुमित होता है। मध्य सागर के आस-पास से फणीश जाति के लोग बहुत दूर पूरब और पच्छिम तक वाणिज्य करते थे। मध्य-सागर के दक्खिन करध्वजपुर और सुफेन मे गाधिजपुर नाम से प्रसिद्ध इनकी बस्तियाँ थी। कितने ही लोगो का अनुमान है कि सिहल आदि से लेकर आग्ल-भूमि तक इनका वाणिज्य प्रचलित था। मध्य-सागर के हरिकुलमुख से लेकर भारत के दक्खिन तक इनका वाणिज्य था, इसमे बहुत सन्देह नही है। करध्वजपुर शकाब्दारम्भ से प्राय आठ-नौ सौ वर्ष पहले बसा था। करध्वजपुर मे हनु और हिमार्क दूर-दूर के देशो के अन्वेषण मे निकले थे, ऐसी प्रसिद्धि है। फणीशो के बाद यवन लोग भी बडे सायात्रिक थे। पृथेश, मासला नामक यवनोपनिवेश मे, शकाब्द से चार सौ वर्ष से भी पहले, सुवर्ण-भूमि को खोजते आग्ल-भूमि होते हुए, सम्भव है कि हिम-भूमि तक भी गया हो। पारसिक आदि जाति से लडते-झगडते मगद्राणि के राजा और यवन के नायक अलिकचन्द्र सिन्धुनद के इस पार तक आ पहुँचे थे। वे नन्दराज की राजधानी तक दौड मारना चाहते थे। पर चन्द्रगुप्त आदि की [illegible] मे उनकी सेना मे कुछ ऐसा भेद उत्पन्न हुआ कि सिन्धु के आस-पास ही से उन्हे लौट जाना पडा। अलिकचन्द्र के पोतनायक नयार्क सिन्धु-मुख मे समुद्र मे होते हुए अपने देश मे पहुँचे। असुरो की प्राचीन राजधानी भव्यलूनपुरी मे, भारत से आने पर कुछ ही दिन के बाद अलिकचन्द्र की मृत्यु हुई, नही तो पुन समुद्र मे और भूमि पर यात्राओं से और देशो की भी ये खबर लेते। अन्तत अलिकचन्द्र का उत्तराधिकारी, यवनराज शल्यक का दूत मेघस्त, पाटलिपुत्र मे मौर्यसिंह चन्द्रगुप्त के दरबार में कितने ही दिनो तक रहा। तुरमय नाम के कई राजा मिश्र देश मे या अजपुरों में हुए। इनके समयों मे ज्योतिर्विद्या और भूगोल-विद्या की बहुत कुछ उन्नति हुई। पृथ्वी का वर्तुल आकार और परिमाण पाश्चात्यों को इन्ही के समय मे परिज्ञात हुआ। जगद्विजयेन्द्र रोम नगरी की चढती जवानी मे, यात्रा के शौक से,

व्यसन की चीजो के वाणिज्य के लिए, तथा साम्राज्यार्थ, रोम-वासियो ने अनेक देशो से सम्बन्ध किया। मध्य-सागर के आस-पास के यवन, मिश्र, करध्वज आदि देशो से लेकर, सुफेन, गौर, शर्मण्य, श्वेतद्वीप आदि तक रोमनगर का अधिकार हुआ। आरव्य, पारसीक, शक और भारत तक रोम के वीरो की यात्रायें होती थी। निरय नामक सम्राट् के समय मे नील-नद के मूल के अन्वेषण का यत्न हुआ था। हयपाल रक्त-सागर से होते हुए भारत तक पहुँचा था। सुवेर सम्राट् के समय में तो रोम से भारत और चीन तक रास्ता लग गया था। रोम-साम्राज्य के दो विभाग होने पर जब से एक सम्राट् कसतन्तुपुर मे रहने लगा तबसे पूरव की ओर यात्रा और भी बढी। जुष्टनय के समय मे दो साधु चीन से कौशेय कृमि के अण्डे छडी मे छिपा कर ले गये, जिनसे कोशा या रेशम के कपडे बनने लगे। शको की शताब्दी मे आरव्य सभ्यता खूब बढी। अपने धर्म के जोश से इन लोगो ने धीरे-धीरे सुफेन से भारत तक अपना साम्राज्य बढाया। यवनो के भूगोल-ग्रन्थ का अरबी में अनुवाद हुआ। शूलमणि नाम का अरबी सौदागर पारस की खाडी से भारत और चीन तक गया। कुछ दिनो के बाद दनुभूमि और नरभूमि से जहाजी लुटेरे श्वेत द्वीप आदि मे पहुँचे। ये गौर-देश से होते हुए श्रीशल्य तक बसे। कई सौ वर्ष तक नवगर्त्त से हो कर, भारत से उत्तर यूरोप तक, रास्ता लगा था। सूद-भूमि मे आज भी आरव्य मुद्रायें पाई जाती है। नर-भूमि से लोग जाकर हिम-भूमि मे बसे। इनका रक्तारीश नामक नायक हरित-भूमि तक गया और हिम-भूमि वालो से हरित-भूमि के किनारो को वसाया। अरीशसूनु ने उत्तर अमेरिका के किनारो की खोज की। रोमसाम्राज्य के नाश के साथ जो वन्य विसर्प हुआ था उसका अन्त होते-होते कई ख्रिस्तीय युद्ध हुए, जो स्वस्तिक युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। जारुषाण मे जो ईसा की कब्र है उसको मुसलमानो से छीनने के लिए युद्ध करते समय ईसाइयो को देश-देशान्तर से होते हुए जाना पडा। इस प्रकार इन युद्धो के द्वारा मनुष्यो का भूगोल-ज्ञान बढा। रोम के ईसाई पुरोहित पोप लोगो ने भी तातार आदि में दूत भेजे थे। जब इष्टालय मे रोम साम्राज्य के मृत अङ्गो से फिर छोटे-छोटे प्रजा-राज्य उत्पन्न हुए तब वेणीश आदि नगरो ने भारत की चीजो की बहुत कुछ सौदागरी शुरू की। इष्टालय से जाकर पाल १७ वर्ष तक कुब्लय-राज्य के दरबार में रहा था। उदयार्क भी मलय-द्वीप-समूह, चीन आदि होते हुए लामा लोगो की अलकापुरी तक गया था। बटुक नाम का आरव्य यात्री अफ्रिका, पारस आदि होता हुआ घूमते-घामते दिल्ली नगर के तुग्र राजाओ के दरबार मे आठ वर्ष रह कर, सिहल होते हुए मलय-द्वीप समूह को पार कर, राजदूत की हैसियत से चीन तक गया। निचुलशान्ति पारस से हो कर मालवर के किनारे से सुमित्र, यव आदि द्वीप में होता हुआ चीन के दक्खिन से लौटकर पच्चीस वर्ष के बाद अपनी जन्मभूमि वेणीश नगर मे पहुँचा। रुद्रविष ने भी ऐसी ही विस्तीर्ण यात्रा की। सोलहवी शक-शताब्दी से जहाज-घडी का उपयोग होने लगा। पूर्त्तगल के राजकुमार हरि के (जो नाविक उपाधि से प्रसिद्ध है) समय मे उनके उत्साह से भू-यात्रा और भूगोल

विज्ञान की बडी उन्नति हुई। पाश्चात्य यात्रियो को तुङ्ग-सागर और दक्षिण-सागर होते हुए भारत तक पहुँचाने की इन्हे बडी इच्छा थी। पुर्त्तगल वाले दक्खिन से होते हुए भारत मे पहुँचना चाहते थे। इसी बीच सुफेन की रानी ईशवेला के उत्साह से तुङ्ग-सागर को पार करके कुलुम्ब पच्छिम से भारत पहुँचना चाहता था। वह भारत तो न पहुँचा, पर अमेरिका का परिज्ञान कर गया। इधर पूर्त्तगल के वस्क महाशय भी प्राय उसी समय अफ्रिका के दक्खिन से, समुद्र होते हुए, भारत आ पहुँचे। पाश्चात्य लोग जिस सुवर्ण-भूमि की खोज मे कितने ही दिनो से मरते थे वह भूमि मिल गई। जिस दिन वस्क महाशय दाक्षिणात्य नगर कलिकूट मे पहुँचे उस दिन से पाश्चात्यो की उन्नति का बडा भारी द्वार खुल गया। कुछ दिन बाद कुल्यपुरी के अमेरिक महाशय दक्षिण अमेरिका गये। अमेरिका नामकरण इन्ही के नाम पर हुआ। अब तो प्रजारि आदि सुफेन-देशीय पेरू प्रभृति प्राचीन राज्यो के नाश मे लगे। मृगहर्प नामक पूर्त्तगल-निवासी, वेशवार द्वीप की खोज मे, पच्छिम चला। पत्रगोणिका आदि होते हुए वह शान्त-महासागर मे पहुँचा। शान्त-महासागर को पार कर, फल-द्वीप मे पहुँचकर, वन्य जातियो के हाथ से उसने अपने प्राण खो दिये।

इस प्रकार सुफेन वाले तो पृथ्वी के ऊपर से नीचे चारो ओर घूम आये। उधर पूर्त्तगलवाले भी भारत, मलय, वेशवार द्वीप आदि मे कारखाने खोल रहे थे। मुद्गलराज अर्कवट की कचहरी मे इनके धर्म्मदूत पहुँचे थे। अब पुन कृत-युग सा आ रहा था। भारतीय लोग "कलि शयानो भवति" की अवस्था मे थे। पर पाश्चात्य लोग तो "कृत सम्पद्यते चरन्" का अनुसरण करते हुए पृथ्वी के किसी अश को बिना देखे छोडना नही चाहते थे। आग्ल-भूमि, हर-भूमि और स्फारङ्ग-भूमि से उत्साही लोग भारत-भूमि मे पहुँचे तथा और भी दूर-दूर की भूमियो मे पहुँचने लगे। कितने ही आग्ल-यात्रियो ने उत्तर की ओर से चीन पहुँचने का रास्ता निकालना चाहा। कई जहाज उत्तर के हिम-समुद्र मे नष्ट हो गये। चन्वलार्य उत्तर मे क्षीर-समुद्र तक पहुँचे और रूस्यो की राजधानी मुस्कपुर होते हुए घर आये। फिर कई यात्री कारसागर तक गये। हरसून, वराङ्ग आदि महोद्योगी महात्मा लोग सुमेरु-सागर के कितने ही अशो तक पहुँचे। ये कई बार आगत मायात्रिक मृगहर्प के रास्ते मे पृथ्वी के चारो ओर हो आये। ड्रेक शान्त-महासागर मे मृगहर्प-नलिका मे होते हुए अमेरिका के उत्तर मे लौट आये। बीच-बीच मे अग्रगिरि आदि महापर्वत, पत्रगोणिका आदि प्रदेश और अमरनद आदि महानदो की खोज-खाज भी चलती रही। भारत-भूमि में प्राच्य-सिन्धु नामक आग्ल-वणिक्-समिति स्थापित हुई। आग्ल-वणिक्समितियाँ कुछ दिन के लिए कर्पूर-द्वीप आदि मे भी चली, पर मुदगलो के और उनके बाद महाराष्ट्रो का नाश होने से भारत कुछ ऐसी अवस्था मे आ पडा कि पाश्चात्य लोग अपने-अपने राज्य-स्थापन का प्रयत्न यहाँ करने लगे। इस प्रयत्न में पूरी सफलता आग्ल समिति ही को हुई। भारत [illegible] दक्षिण-सागर की भी सैर पाश्चात्य लोग कर रहे थे।

हर-भूमिवासी ब्रह्माज्ञ महाशय ग्रोष्ट्रालय द्वीप की पच्छिमी भूमि पर उतर चुके थे। वहाँ की कलहम नदी का भी दर्शन इन्हे हो चुका था। तस्मन महाशय और आगे, नवजीव-भूमि तक, पहुँचे। इन्हे यात्रियो से उत्प्रेक्षित दक्षिण-सागरीय कुमेरु द्वीप के अन्वेषण की बडी इच्छा थी। अब पाश्चात्यो मे नाप-जोख की विद्या भी खूब हो चली। चीन, त्रिविष्टप आदि के नक्शे इन्होने बनाये। देशदारी आदि पादरी आगरा से हिमालय पार कर अलकापुरी में पहुँचे। हर-भूमि के यात्री समवल भी अलका आदि मे पहुँचे। गत दो-तीन शताब्दियो मे पृथ्वी के सब अशो का पाश्चात्यो के द्वारा कैसा पूर्ण अन्वेषण हुआ है, इसके विवरण के लिए एक बहुत बडी पुस्तिका चाहिए। इस छोटे से वर्णन मे कहाँ तक क्या कहे। शुक आदि एक-एक यात्री की एक-एक यात्रा पर बडी-बडी पुस्तिकाये बन चुकी है। आजकल तो भूगोल-विद्या की अनेक समितियाँ पाश्चात्यो के परेश, नन्दन आदि नगरो मे वर्त्तमान है। आज पृथ्वी पर सौ से अधिक ऐसी सभायें है। इन सभाओ के लाखो सभासद है। सौ, दो सौ भौगोलिक पत्र आज प्रकाशित हो रहे है। हाल मे महात्मा पड्बल्न, शक्लन् आदि प्राय दक्षिण-सागर मे कुमेरु तक की यात्रा कर आये है। महात्मा प्रियार्य खास उत्तर ध्रुव तक अभी हो आये है। अभी सुनते है कि अमन्दसेन ठीक दक्षिण ध्रुव से लौटे आ रहे है। कृत-युग के प्रवर्त्तक धन्य है ऐसे महात्मा! कलि मे सोने वाले हम लोग इनका चरित भी सुनें और पढे तो डर बना रहता है कि कोई प्रायश्चित्त न लगा दे।

भूगर्भ-विद्या

जैसे आयुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि बहुत प्राचीन है, भूगर्भ-वेद वैसा प्राचीन नही है। यह नरशास्त्र आदि के सदृश एक नई विद्या है। सौराण्ड, अर्थात् ब्रह्माण्ड, से पृथक् होने पर पृथ्वी मे किन कारणो से कैसी-कैसी तहे पडती गई जिससे आज पृथ्वी वर्त्तमान रूप मे पहुँची है, इसका यथाशक्ति निर्णय करना ही भूगर्भ-वेद का काम है। प्राय सौ वर्ष से इस विद्या का ठीक आविर्भाव समझना चाहिए। इङ्गलैण्ड देश में पहले-पहल कुछ लोग इसके निर्माण मे तत्पर हुए। अब पाश्चात्यो मे यह विद्या एक स्वतन्त्र शास्त्र हो चली है। जब तक किसी शास्त्र की एक-आध बाते पृथक्-पृथक् मालूम रहती है, पर उनका परस्पर सम्बन्ध अज्ञात होने के कारण कोई अनुगम नही दिया जा सकता, तब तक ऐसी बिखरी हुई बातों को शास्त्र का नाम नही दिया जा सकता। गोबर इत्यादि कई पदार्थों पर बिजली आसानी से गिरती है, चुम्बक सुई को खीचता है, इत्यादि बाते प्राचीन वैदिको को तथा चीन आदि देश वालो को भले ही मालूम थी, पर इतने से उनमें विद्युद्विद्या का प्रचार था, यह नही कहा जा सकता। इसी तरह, भूगोल के भीतर पृथ्वी देवी का नरकासुर से समागम हुआ, तब पृथ्वी मे मङ्गल ग्रह उत्पन्न हुआ, इसी लिए मङ्गल का "भौम" नाम हुआ, यह सब मजले पुराण वालो ने कहा है। यदि पौराणिक अतिशयोक्ति को छोड दे तो इस उक्ति का मूल यही मालूम पडता है कि पृथ्वी पहले भयानक अग्नि (नरक) से सम्बन्ध रखती थी और इसके तपे हुए बृहद्गोलक से मङ्गल का आविर्भाव हुआ। इसी तरह समुद्र के भीतर बडे-बडे अग्निपर्वतो की स्थिति का कुछ आभास पाकर पौराणिको ने वडवानल की कल्पना कर ली थी। इन बातो से जान पडता है कि भूगर्भ की स्थिति की एक आध बाते हजारो वर्ष पहले से लोगो को विदित थी। इसमे सन्देह नही है। पर पृथक्-पृथक् ऐसी एक-आध बातो के ज्ञान को विद्या या शास्त्र नही कह सकते। मछली, कछुआ, वराह, नृसिह, वामन, परशुराम राम, कृष्ण, बुद्ध आदि के क्रम से पृथ्वी मे जीवो की उत्पत्ति कहने वालो को ऐसी कल्पना अवश्य थी कि पहले जलचर फिर उभयचर, फिर स्थलचर, तब भयानक जङ्गली मनुष्य, तब छोटे-छोटे विकृत मनुष्य फिर लडाके अर्ध-सभ्य लोग, फिर पूरे सभ्य वीर फिर सर्व-संहार करने वाले योगी, और फिर जाति के क्षीण होने के समय सदाचारी-वैरागी उत्पन्न होते है। इस बात का विकास और विकासोपरोध से सम्बन्ध अवश्य है, फिर भी ऐसी बातो के ज्ञान को विकास-विद्या नही कह सकते। भूगर्भ का और भूस्तर के जन्तुओं का क्रम-विकास ठीक-ठीक समझने का, और उसे शास्त्र मे परिणत करने का सौभाग्य आधुनिक ऋषियो को ही प्राप्त हुआ है। इसलिए इस शास्त्र

शीशे पर लग जाते है, जिन्हे देख कर कवियो ने चन्द्रकान्त मणि की कल्पना कर ली थी। ऐसे ही गर्मी मे उडी हुई भाप ऊपर ठडी वायु मे जाकर पानी या बनौरी के आकार मे नीचे गिरती है। ऐसी बातो से वैज्ञानिको ने यह अनुमान किया है कि सौराण्ड से निकलने के बाद चिरकाल तक भाप निकलते-निकलते जब भूतल खूब ठडा हो गया और चारो ओर हवा भी ठडी हो चली तब भाप पानी के रूप मे परिणत हुई। पृथ्वी प्राय जलमयी हो चली। गर्मी उसके भीतर ही भीतर रह गई। अब प्रत्यक्ष निर्णीत बातो से यह देखना चाहिए कि पृथ्वी के ऊपर आज जो पदार्थ है उनकी स्थिति, गति आदि का ठिकाना बिना विशेष निर्माण के किस प्रकार हुआ, क्योकि विशेष निर्माण यदि कोई बात न होती तो आज भी जहाँ-तहाँ अद्भुत वस्तु और बे-माँ-बाप के ऋषि आदि उत्पन्न हो जाया करते। प्रत्यक्ष निर्णीत बातो से यह देखने मे आया है कि जल के प्रवाह से कही-कही तो पृथ्वी घिसती जाती है और कही उस पर पाँक जमती जाती है। इससे एक अनुमान यह हुआ कि जल के व्यापार के कारण पृथ्वी के तल पर बहुत से परिवर्त्तन हुए है। दूसरी बात यह देखने मे आई है कि कही-कही अग्निगर्भ पर्वतो के भीतर से दहकती हुई चीजे निकलती है, जो पृथ्वी के तल पर ढेर पडी रहती है। तो अग्नि और जल ये दोनो पृथ्वी के परिवर्त्तन के मुख्य कारण हुए। पृथ्वी की सर्दी, गर्मी आदि बदलने के कुछ और भी कारण ऐसे है जिनका पृथ्वी की गति से सम्बन्ध है। वैज्ञानिको ने यह अनुमान किया है कि पृथ्वी की अक्ष-यष्टि सूर्य्य से एक ही सम्बन्ध नही रखती, कभी-कभी बदल भी जाती है। इस बदलने के कारण पृथ्वी के कुछ भागो मे अकस्मात् सर्दी या गर्मी के बढ जाने की सम्भावना रहती है। ऐसे ही कारणो से ध्रुव-देश के चारो ओर किसी समय इतनी बर्फ पडी कि वहाँ के मनुष्य, रोमगहस्ती आदि अनेक जीव बर्फ मे जम गये। आज तक भी ध्रुव के चारो ओर कुछ दूर तक यह बर्फ वर्त्तमान है।

ऊपर कहे हुए कारणो मे पहले-पहल वैज्ञानिको ने दो मुख्य कारणो का अवलम्बन किया। आज से प्राय सौ वर्ष पहले इन वैज्ञानिको ने अपने दो दल कर डाले। कुछ तो सुतनु नामक विद्वान् का पक्ष लेकर अग्नि के उद्भेद के कारण ही पृथ्वी मे सब परिवर्त्तन हुए, ऐसा मानने लगे। ये वैवस्वत दल वाले कहे जाते है। दूसरे दल वाले वरनर साहब के अनुसारी थे। ये जल को ही सारे परिवर्त्तन का कारण समझते थे। ये वारुण दल वाले कहे जाते है। अन्धहस्ति-न्याय से दोनो दल वाले सत्य के दो अगो को लेकर चिरकाल तक नाहक आग्रह मे पडे थे। परन्तु अब भूगर्भ-विद्या वालो ने खूब समझ लिया है कि न केवल जल से न और केवल अग्नि ही से, किन्तु दोनो ही के कारण भूतल मे परिवर्त्तन होते रहते है।

संक्षेप ने इस प्रकार यहाँ भूगर्भ-विद्या के आविर्भाव का वृत्तान्त दिया गया। इस विद्या के अनेक अङ्ग है। पृथ्वी-ग्रह का सूर्य्य आदि से क्या सम्बन्ध है और पृथ्वी को सौराण्ड मे अलग हुए कितने दिन हुए, ऐसी बातो का निश्चय करना इस विद्या

का पहला उद्देश्य है। वायुमण्डल, जलमण्डल, और पाषाणमण्डल पृथ्वी के तीन अङ्ग है। इन अङ्गो मे क्या-क्या द्रव्य है और उनकी संघटना कैसी है, इन बातो का निश्चय करना इस विद्या का दूसरा उद्देश्य है। अग्नि और जल के कारण कैसे परिवर्त्तन पृथ्वी-तल में होते है, इसका निश्चय करना इसका तीसरा उद्देश्य है। भूगर्भ के गठन का निश्चय करना चौथा उद्देश्य है। किस क्रम से पृथ्वी-तल बना, इस बात का निश्चय करना इस विद्या का पाँचवाँ उद्देश्य है। उद्भिद और जीवो का विकाश किस क्रम से पृथ्वी के अतीत और वर्त्तमान तल पर हुआ, इसका निश्चय करना विकाश-विद्या का उद्देश्य है। विकाश-विद्या वस्तुत एक स्वतन्त्र ही शास्त्र है, तथापि भूगर्भ-विद्या से उसका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यहाँ दोनो पर एक ही साथ विचार करना उचित समझा गया है।

पृथ्वी की सृष्टि

पाणिनि के अनुसार सृष्टि का अर्थ है अलग होना। उपनिषदो मे भी आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधियो से जीव हुए—यही क्रम रक्खा गया है। पर श्लोक बनाने वाले भृगु आदि धर्मशास्त्रियो ने और मझले पौराणिको ने मनुस्मृति, भागवत आदि की कविता में सब वस्तुओ मे स्त्री-पुरुष-भाव का आरोप करके एक ऐसा रूपक खडा किया है जिससे, कुम्हार और बढई आदि जैसे कृत्रिम वस्तुओ को बनाते है वैसे ही पृथ्वी, आकाश, उद्भिद्, जीव आदि को भी किसी कारीगर ने बनाया है, ऐसा खयाल बहुतेरो मे पैदा हो जाता है। दर्शन और विज्ञान से कम परिचय रखने के कारण मतवाद वाले सभी जगह ऐसे ही रूपको का झण्डा खडा करते है। अब यदि कविता के रूपको और अति-शयोक्तियो को छोडे और दर्शन और विज्ञान की रीति से असली बात का यथाशक्ति निश्चय करना चाहे तो सौराण्ड से पृथ्वी कब निकली, इसका अनुमान इन बातो से हो सकता है—(१) ताप किस हिसाब से तप्त पदार्थ से बाहर होता है, (२) प्रतिवर्ष कितनी मोटी पाँक कितने जल के प्रवाह से जमती है, (३) पानी मे नमक आदि खास-खास द्रव्यो का कितना अंश कितने दिनो मे इकट्ठा होता है, (४) पृथ्वी की गति और मेरुओ का चिपटा होना और (५) सूर्य्य के ताप का समय। ऐसी ही ऐसी बातो से सौराण्ड से पृथ्वी की सृष्टि, अर्थात् उसके पृथक् होने के समय, का किसी तरह कुछ अन्दाजा हो सकता है। इन गणनाओ मे बहुत सन्देह और मत-भेद होने की सम्भावना है। पर करे क्या? ऐसी गणना तो प्रत्यक्ष पर अवलम्बित है और प्रत्यक्षमय लौकिक बातो मे कोई गडबड हो तो आश्चर्य ही क्या है। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि दिव्य पुस्तको मे दिव्य दृष्टि वाले वक्ता भी, सर्वज्ञ होने पर भी, परस्पर-विरुद्ध बातें कहते है। पच्छिमी लोग सृष्टि को हुए चार ही पाँच हजार वर्ष मानते है। पूर्वी लोग सृष्टि हुए अनेक करोड वर्ष मानते है। पैर से चलते-चलते फिसले भी, या रेल से चलते-चलते गाडी टकराने से मर भी जायें तो सर से चलने या प्राणायाम से चलने की चेष्टा

कैसे करे? प्रत्यक्ष-अनुमान से धोखा खाते-खाते भी, बादहवाई बाबा-वाक्यो पर विश्वास करके, दो दिन की या दो करोड वर्ष की सृष्टि कैसे माने। बादहवाई बातो को छोड कर गणित आदि के सीधे रास्ते से चलते-चलते जहाँ तक पहुँचे वही ठीक है। निश्चय-भूमि मे जायँ तो भी अच्छी बात है, सन्देह-भूमि मे जायँ तो भी अच्छी बात है।

जो चार-पॉच गणनाये भूसृष्टि के निश्चय-सम्बन्ध मे, अवलम्बरूप से, ऊपर सूचित की गई है उनके अनुसार कलवीण आदि महर्षियो ने अनुमान किया है कि प्राय दस करोड वर्ष पहले पृथ्वी सौराण्ड से अलग हुई थी। इन वैज्ञानिको ने यह दिखलाया है कि यदि पृथ्वी दस करोड वर्ष से इधर होती तो उसके भीतर जैसी गर्मी आज है उससे बहुत अधिक होती। इतने समय से बहुत अधिक पुरानी भी यदि पृथ्वी होती तो भी गणित के अनुसार ताप नीचे बढता हुआ न पाया जाता, जैसा कि आज कल पाया जाता है। समुद्र के ज्वार-भाटा के आकर्षण के कारण पृथ्वी की परिवर्त्तन-गति पहले से क्रमश धीमी होती जाती है। यदि पृथ्वी एक अर्बुद वर्ष (अर्थात् १० करोड़) से बहुत पुरानी होती तो प्रबल वेगवती परिवर्त्तन-गति के कारण ध्रुव-प्रदेश इस समय जितने चिपटे है उससे कही ज्यादा चिपटे होते। सूर्य की गर्मी पृथ्वी पर कितने दिनो से आ रही है, इसकी गणना करने के लिए भी कितने ही लोगो ने चेष्टा की है। पर इस विषय का गणित ठीक नही हो सकता। रदीय नामक एक द्रव्य हाल मे ऐसा ज्ञात हुआ है जिससे सम्भव है कि पृथ्वी के भीतर गर्मी बहुत दिनो से एक ही प्रकार की रही हो। इस द्रव्य के ज्ञात होने से कलवीण आदि वैज्ञानिको की गणना में बहुत कुछ सन्देह हो गया है। इसलिए भूगर्भ-वेदियों का अनुमान है कि पृथ्वी की आयु एक अर्बुद वर्ष से कही अधिक हुई। नदियो के प्रवाह से एक जगह की जमीन किस हिसाब से घिसती है, और दूसरी जगह किस हिसाब से पॉक जमती है, इसके गणित से भी भूमि की अवस्था का कुछ अन्दाजा लग सकता है। अमेरिका की मिश्रशिप्रा नदी प्रति वर्ष सामान्यत एक फुट के षट्सहस्राश ($\frac{१}{६०००}$) के हिसाब से अपने तल को घिस कर मिट्टी समुद्र मे ले जाती है। अर्थात् ६००० वर्ष मे एक फुट जमीन वह खा जाती है। अब यद्यपि यह सम्भव है कि प्राचीन समयो मे अग्निगर्भ पर्वतो या नदियो का वेग आज से कही बढ-चढ कर रहा होगा, तथापि मिश्रशिप्रा के व्यापार को देखने से यह जान पडता है कि कई करोड वर्षो मे एक समूचा महाद्वीप एक जगह मे कट कर दूसरी जगह बन सकता है। इसी प्रकार योग्यतम जन्तुओ की रक्षा और विकाश के क्रम से एक जाति के जन्तुओ से दूसरी जाति के जन्तु बनने के लिये कितने अधिक समय की अपेक्षा है, इसका खयाल करने से भी पृथ्वी की अवस्था अनेक कोटि वर्ष की होने का अनुमान होता है। तथापि इन बातो मे पृथ्वी की अवस्था का कुछ पता नही लगा। बात अभी सन्देह ही मे रह गई। इस से कुढ कर कितने ही दिव्य दृष्टि वाले समझेगें कि इस अनिश्चय मे तो दिव्य दृष्टि ही के द्वारा सब बातो का निश्चय अच्छा। पर यह बात वैसी ही है जैसे 'मुग्दर-दूत' के नायक श्रीमान् मूर्खदेवजी ने लोगो को उपदेश

दिया था कि लडके बहुत जल्दी बीमार हो जाते है और मर जाते है, इस लिए पत्थर या लोहे के लडके रखे जायँ तो बहुत सुभीता हो। वैज्ञानिको का यह नियम है कि जिस काम के लिए जो वस्तु मिल सके वह चाहे कितनी ही अपूर्ण क्यो न हो उसी से काम लेना चाहिए, जब तक कोई ठिकाने की चीज उससे अच्छी न मिले। ये लोग गप्पो से कभी काम नही लेते। रेल का टिकट लेने मे कितनी ही धक्कम-धुक्की हो, खडाऊँ पर उडने का, या पिनक की समाधि मे ध्यान से चाहे जहाँ चले जाने का, यत्न ये लोग नही करते। यहाँ केवल राह दिखला दी गई है कि ऐसी-ऐसी बातो के मूल पर पृथ्वी की अवस्था का अनुमान हो सकता है। इसी रीति से लोग अन्वेषण कर रहे है और अन्वेषण करना ही चाहिए। बिना मूल के जेसा जी मे आवे वैसा निश्चय कर देना और लोगो को वैसा ही ऊँटवा-पक्कड पकडा देना विज्ञान का काम नही है। राह दिखलाने वाले का यही काम है कि छोटे-बडे शहरो की टूटी-फूटी राह, जैसी वस्तुत वर्त्तमान हो, दिखला दे। शुद्ध सोने के शहरो मे पहुँचने के लिए शुद्ध हीरे की कुटी हुई सडके बतलाना उन लोगो का काम है जिनके यहाँ चिन्तामणि, कल्प-वृक्ष आदि अधिकता से हुआ करते है।

पृथ्वी की रचना

पृथ्वी का सबसे बाहरी भाग वायुमण्डल है। वायु-मण्डल के भीतर जल-मण्डल है। जलमण्डल मे लिपटा हुआ पाषाणमण्डल है।

(क) वायुमण्डल पृथ्वी का तरल आवरण है। यह पृथ्वी के चारो ओर सब जगह है और पृथ्वी के परिवर्त्तन में बहुत सहायता देता है। इसकी बनावट, इसके तत्त्व इसकी सर्दी-गर्मी का घटना-बढना इत्यादि कारणो से पृथ्वी पर परिवर्त्तन होते रहते हैं। वायुमण्डल की जैसी अवस्था आज है वैसी पहले न थी। पहले उसकी अवस्था कुछ विलक्षण ही रही होगी, इसमे सदेह नही। जब समूची पृथ्वी ताप के मारे तरल अवस्था मे थी तब उसके चारो ओर किसी वायु-मण्डल का होना सम्भव ही नही था। तरल पृथ्वी के बहुतेरे अश जलमण्डल और पाषाणमण्डल मे जम गये। बाकी अश वायुमण्डल के रूप मे रह गया। पृथ्वी की बाहरी पपडी पर आधे से अधिक आग्नेय तत्त्व (Oxygen) पाया जाता है। पृथ्वी के भीतर सभी जगह कोयले की तहे पाई जाती है। समुद्र में कितने ही प्रकार के नमक पाये जाते है। ये सब पदार्थ पहले वायुमय थे और वायु मे से जम कर अपने-अपने स्थान पर पहुँचे है। प्राचीन समयो मे पृथ्वी की एक अङ्गारभारिणी अवस्था भी थी। उस अवस्था मे सारी पृथ्वी वृक्षो से भरी हुई थी। जमीन मे गड जाने से, काल पाकर, वे प्राय सारे के सारे पत्थर-कोयले के रूप मे परिणत हो गये है। उस समय, सम्भव है, वायुमण्डल आज से अधिक गर्म और जलीय वाष्प से परिपूर्ण रहा हो। उस समय वायुमण्डल मे द्व्याग्नेय अङ्गार भी बहुत-सा रहा होगा। इस समय वायुमण्डल मे, आयाम के अनुसार, चार अश क्षार और एक अश आग्नेय का आघात-मिश्रण-रूप है। वायु के दस हजार

अशो मे प्राय साढे तीन अश द्व्याग्नेय अङ्गार भी वर्त्तमान है। इसके साथ और भी कितने ही तरल और घन पदार्थो के सूक्ष्म अश मिले हुए है। वायु मे अनेक बाष्प भी मिले हुए है जिन मे जलीय बाष्प मुख्य है, जो वायु मे सदा रहता है, पर सर्दी-गर्मी के हिसाब से उसका परिमाण घटता-बढता रहता है। घन होने से यही जलीय बाष्प ओस, कुहरा, मेघ, वर्षा, बनौरी, पाला, वर्फ आदि के रूप मे देख पडता है। वायुमण्डल से जल के पृथ्वी पर, और पृथ्वी से समुद्र मे पहुँचने से और, फिर, समुद्र से पृथ्वी पर और पृथ्वी से वायुमण्डल मे पहुँचने से ही यह हमारा पृथ्वी-ग्रह जन्तुओ के निवासयोग्य हो रहा है, और इसी व्यापार के कारण आज पृथ्वी की ऊँचाई-निचाई का निर्माण होता जा रहा है।

(ख) **जलमण्डल**—जलमण्डल पृथ्वी-तल के तीन चौथाई अश को ढके हुए है। इस मण्डल के मुख्य अङ्ग महासागर और उपसागर है, जो परस्पर मिले होने पर भी सुभीते के लिए अनेक नामो से निर्दिष्ट किये जाते है। समुद्र का जल और जलो से अधिक भारी और नमकीन होता है। जहाँ नदियो का और बर्फ आदि का पानी अधिक मिला रहता है वहाँ समुद्र का पानी और जगह से कम भारी होता है। जहाँ गर्मी अधिक होने के कारण भाप वहुत निकलती रहती है वहाँ का पानी बहुत भारी होता है। मीठे पानी की अपेक्षा समुद्र के पानी का भारी होना उचित ही है, क्योकि उसमे मिले हुए नमक का परिमाण बहुत अधिक है। समुद्र के पानी के १०० अश मे प्राय ३५ अश नमक का रहता है। यह नमक स्वाद्य, मगेश, खटिका, पुटाश आदि से सम्बन्ध रखता है। और द्रव्यो के भी अत्यन्त सूक्ष्म अश समुद्र के जल में पाये जाते है। प्राय डेढ करोड पानी के अश में एक अश सोना भी पाया गया है। बहुत से नमक चिरकाल से समुद्र मे जमे हुए है, पर नये-नये द्रव्य प्रतिक्षण मिट्टी से समुद्र मे जा रहे है। झरनो से, सोतो से और नदियो से जितना पानी अन्तत समुद्र मे जा रहा है उसमे कुछ न कुछ खनिज के अश मिले रहते है। इस लिए पृथ्वी की बाहरी पपडी मे जितने तत्त्व है सभी की समुद्र मे स्थिति हो सकती है। समुद्र का पानी उड जाने से और सूले पत्थरो मे नमक जम जाने से सेंधा नमक और काले नमक की उत्पत्ति होती है। कितने ही सफेद पत्थर भी इसी प्रकार समुद्र से जम कर हुए है। सक्षेप यह है कि तह वाले सभी पत्थर समुद्र मे पाँक के जमते-जमते उत्पन्न हुए है। केवल सतह के पत्थर अग्नि-गर्भ पर्वतो के उद्‌भेद से पृथ्वी के ऊपर निकलते है।

(ग) **पाषाणमण्डल**—तरल और द्रव आवरणो से ढके हुए पृथ्वी के घन अश को पापाणमण्डल कहते है। पाषाणमण्डल के दो अश है। वाहरी पपडी और भीतरी पिठर। वाहरी पपडी ठडी है। उसकी रचना का वर्णन ही भूगर्भ-विद्या का मुख्य विषय है। भीतरी पिठर का निर्माण वाहरी पपडी से कुछ विलक्षण है। बाहरी पपडी प्राय पौने चार योजन मोटी है। उसकी अनेक तहे है। उसके नीचे प्राय बेतह का अत्यन्त कठिन पिठर है। कही-कही वाहरी पपड़ी अधिक मोटी भी है। पर अनुमान किया

जाता है कि बाहरी पपडी सवा छ योजन से मोटी कही नही है। पृथ्वी के दक्षिण और पूर्व के हिस्से मे भारत महार्णव और शान्तमहार्णव का पानी चिरकाल से अपनी वर्त्तमान स्थिति मे है। इससे यह अनुमान होता है कि पृथ्वी के गुरुतम अश कुमेरु और केन्द्र के बीच में है। इतना भारी अश उत्तरार्द्ध मे नही है। गाम्भीर्य्यमान-रेखा का झुकाव समुद्र की ओर है। इससे मालूम होता है कि पहाडो के नीचे पृथ्वी उतनी भारी नही है जितनी मैदानो के नीचे है और मैदानो के नीचे भी उतनी भारी नही है जितनी समुद्र के नीचे है। पृथ्वी के अन्त पिठर मे कौन-कौन से तत्त्व है, इसका हम लोगो को कुछ भी ज्ञान नही है। अन्त पिठर में बडी गर्मी है, इसके कई प्रमाण अवश्य है। बाहरी पपडी के भीतर से अग्निगर्भ पर्वतो के मुख के द्वारा कही-कही बराबर और कही-कही समय-समय पर, गर्म भाप और पिघला हुआ पत्थर निकलता है। बहुत से अग्निगर्भ पर्वत आज भी जीते-जागते है। मरे हुए अग्निगर्भ पर्वत तो पृथ्वी पर प्राय सभी स्थानो मे चिरकाल मे वर्त्तमान है। सीताकुण्ड और राजगृह के कुण्डो के सदृश गर्म झरने हजारो स्थानो मे देखे जाते है। कितने ही झरनो में तो पानी बराबर खौलता रहता है। खानो, सुरङ्गो और गहरे सूराखो से पता लगता है कि पृथ्वी के भीतर-भीतर गर्मी बढती जाती है। पचास-साठ फुट में तापमान के हिसाब से प्राय एक अश गर्मी अधिक हो जाती है।

पृथ्वी के अन्त पिठर की क्या अवस्था है, इसके विषय मे अनेक कल्पनाये हुई है। पर अभी तक इस विषय मे भूगर्भविद्या वालो का ऐकमत्य नही है। एक कल्पना तो यह है कि पृथ्वी का पिठर पिघले हुए द्रव्यो का समूह है। दूसरी कल्पना यह है कि केन्द्र तक पृथ्वी कडी है। केवल कही-कही पिघले हुए द्रव्यो या भाप से भरे हुए अवकाश है। तीसरी कल्पना यह है कि अन्त पिठर उज्ज्वल बाष्पो का बना हुआ है। उसमे विशेष कर वाष्पमय लोहा है। पर चारो ओर के महाभार से यह वाष्प इतना दबा हुआ है जिससे समस्त भूगोल भीतर से बाहर तक बेहद कडा समझा जा सकता है। इस बाष्पीय पिठर के ऊपर एक पिघली हुई तह है, जिसके ऊपर फिर ठडी और घनी पपडी है। अन्त पिठर की बनावट चाहे जैसी हो, भूकम्प की परीक्षा से मालूम पडता है कि प्राय छ योजन की मोटी बाहरी पपडी के नीचे लगभग एक ही आकार का प्राय एकरस अन्त पिठर है। वह बहुत कडा है और उसमे कम्प समान वेग से पहुँचता है।

पृथ्वी के भीतर इतनी गर्मी क्यो है, इस विषय मे भी अनेक कल्पनाये है। कितने ही लोग तो यह समझते है कि पहले जिस ताप-सागर से अलग हो कर यह भूग्रह निकला है उसी का अवशिष्ट अश इसके अन्त पिठर के रूप मे वर्त्तमान है। दूसरी कल्पना यह है कि केन्द्राकर्षण के कारण पृथ्वी की तह की वस्तु क्रम से दबती जाती है। इसी दबाव के वेग के कारण भीतर बहुत अधिक गर्मी पाई जाती है। रश्मीयतत्त्व के व्यापार से भी भीतर गर्मी अधिक है। प्राय सभी आग्नेय पाषाणो मे रश्मीय देखा गया है।

बाहरी पपडी मुख्यत· खनिजो की बनी हुई है। प्राय तीस तत्त्वो के अश बाहरी पपडी मे अधिक पाये जाते है, और तत्त्वो के अश बहुत कम है। इस पपडी मे पाये गए भिन्न-भिन्न तत्त्वो मे से मुख्य आग्नेय और श्लेषक (silicon) है। प्रति सैकडा सतालीस हिस्सा आग्नेय और अट्ठाईस हिस्सा श्लेषक पाया जाता है। धातुओ मे फी सदी नौ हिस्से से अधिक एल्युमिनियम, साढे चार हिस्से से अधिक लोहा, साढे तीन हिस्से से अधिक खटिका, ढाई हिस्से से अधिक मगेश, प्राय उतना ही स्वाद्य और ढाई हिस्से से कुछ कम पुटाश पाया जाता है। ऐसा देख पडता है कि भूगर्भ की बाहरी पपडी का तीन चौथाई भाग धातु-भिन्न तत्त्वो से बना है और एक चौथाई धातुओ से। शुद्ध तत्त्वो के अतिरिक्त अनेक तत्त्वो के आग्नेय कण पृथ्वी मे मिलते है। उनके अतिरिक्त और भी कितने ही कण सूक्ष्म अशो मे मिलते है। किसी एक खनिज का या कभी-कभी अनेक खनिजो का मिल कर भी बना हुआ द्रव्य प्राय पाषाण के नाम से प्रसिद्ध है। भूगर्भ-विद्या में बेतह के ग्रावा का, तह वाले पत्थरो का, चिकनी मिट्टी का और वालू का भी पाषाण शब्द से उल्लेख किया जाता है। भूगर्भ-विद्या मे सुभीते के लिए पाषाणो के अनेक वर्ग किये गये है। एक वर्ग तो आग्नेय पाषाणो का है, जो उद्भेद के कारण बाहर से भीतर आये है। इन्हें निस्तर-पाषाण कहते है, क्योकि इनमे तह नही होती। इन पाषाणो मे श्लेषक बहुत अधिक रहता है। खान का काच भी इन्ही पाषाणो का एक भेद है। ये पाषाण काले से काले और भास्वर से भास्वर पाये जाते है। ग्रावा के अतिरिक्त और सारे पाषाण नकली भी बनाये जा चुके है। ग्रावा बहुत गहरी जमीन मे, बहुत दिनो मे जमते-जमते बना है। इतना दबाव और इतना समय यन्त्रशालाओ मे काम मे नही लाया जा सकता। पृथ्वी के ऊपर इस समय आग्नेय पाषाण बहुत अधिक नही है। पर थोडा-बहुत सभी जगह मिलता है। पृथ्वी के भीतर तो बहुत मिलता है। तह वाले प्रस्तर दूसरे वर्ग के पाषाण है। समुद्र के भीतर और जमीन के बाहर भूमि प्राय ऐसे ही पत्थरो की बनी हुई है। कितने तो पुराने पत्थरो के घिसे हुए अशो के जमने से उत्पन्न हुए है, जिसका एक उदाहरण बालू है। पानी मे से छन कर जमते हुए तत्त्वो से भी कितने ही प्रस्तर बने है। सेधा नमक इसका एक नमूना है। उद्भिदो के जमीन में गड जाने से जो पत्थर-कोयले आदि की तहे बनी है वे तीसरे प्रकार के प्रस्तर है। ये तीनो प्रकार के पत्थर जलीय कहे जाते है। इन्ही तहदार पत्थरो मे अनेक उद्भिद, जीव-जन्तु आदि के चिह्न जमे हुए वर्त्तमान है। इनमे एक तह के ऊपर दूसरी तहे भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती गयी है। इससे पृथ्वी-तल के परिवर्त्तन के इतिहास का पता लगता है। आग्नेय या निस्तर और जलीय या प्रस्तर नामक पाषाणो के अतिरिक्त एक तीसरे वर्ग का भी पाषाण है जिसे परिणत पाषाण कहते है। इन पाषाणो मे मिसरी के जैसे रवे होते है। कितने ही स्लेट इसी प्रकार के पत्थर है। जान पडता है कि खनिज पदार्थ बहुत गर्मी से पिघल कर पानी मे जमते-जमते इन पाषाणो के आकार मे परिणत हो गये है।

हिन्दी की वर्त्तमान दशा

'या शिल्पशास्त्रादि पयो महाहे
सदुह्यते योजितबुद्धिवत्सैः ।
वैज्ञानिकैर्विश्वहिताय शश्व-
त्तां भारती कामदुघामुपासे ॥"

—वाङ्मयमहार्णवे ।

बारहवी शताब्दी में, अर्थात् आज से कोई सात सौ बरस पहले, कन्नौज के राजा जयचन्द्र के समय में नैषधकार श्रीहर्ष राज-कवि थे। प्राय इसी समय में दिल्ली के राजा पृथुराज अथवा राय पिथौरा की सभा मे चन्द कवि हुए थे। इनकी कविता जिस प्राकृत में है, इसी को किसी प्रकार हिन्दी भाषा का एक पूर्व रूप कह सकते है। उस समय से आज तक सात सौ बरस मे कितने ही परिवर्त्तनो के बाद आज खडी हिन्दी कुछ ऐसी उठ खडी हुई देख पडती है कि अब उसमें गद्य-पद्यात्मक साहित्य निकल चला है और आशा है कि इस भाषा के बोलने वाले और समझने वाले—जिनकी सख्या पाँच-सात करोड से ऊपर ही होगी— यदि ठीक प्रयत्न करें और शक्ति का व्यर्थ व्यय न कर उत्साहपूर्वक तन, मन, धन से लगे तो थोडे ही दिनो में हिन्दी का साहित्य उपयोगी ग्रन्थो से पूर्ण हो जायगा। हिन्दी की जो दशा थी उसका वर्णन करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नही है। यहाँ खडी या पक्की हिन्दी की वर्त्तमान दशा के विषय मे ही कुछ कहने का उद्योग किया जा रहा है, जिससे इस भाषा ने क्या कर लिया है और क्या इसका कर्त्तव्य है, इस विषय का कुछ परिचय प्राप्त हो जाय।

अब पक्की हिन्दी एक ठिकाने की भाषा हो चली है। इस हिन्दी और उर्दू मे प्राय नाम ही मात्र का भेद है। हिन्दी बोलने वाले उर्दू-रूप-वाली हिन्दी को भी खूब समझ लेते है। और उर्दूवाले इसके हिन्दी-रूप को भी समझते ही है। इसलिए पजाब से लेकर पच्छिमी बगाल तक और तराई से लेकर नागपुर तक हिन्दू-मुसलमान आदि सभी जातियो की साहित्य-भाषा अर्थात् किताबी-भाषा हिन्दी ही है, चाहे घर मे वे 'ऐली-गैली,' 'एल्युन-गेल्युन', 'आडछि-जाडछि,' 'आवत हो-जात हो', 'अलई-गलई' आदि कैसे भी शब्दो का व्यवहार करते हो। फिर भी अनेक कोटि बडे-बडे सभ्य और असभ्य मनुष्यो की जो यह किताबी-भाषा है इसकी आज कैसी दशा है यह यदि खुल्लम-खुल्ला कह दिया

जाय तो कितने ही लोगो की आँखे खुल जायँगी, पर यदि उन आँखो मे ज्योति होगी तो चारो ओर कुछ विलक्षण, बीभत्स, और नैराश्यजनक दृश्य देख पडेगा। इतने करोड मनुष्यो की भाषा, विशेषत ऐसे मनुष्यो की भाषा—जिनमे से कितने ही बडे लाट की सभा के सदस्य है और हाईकोर्ट के जज है तथा श्वेतद्वीप की पार्ल्यमेण्ट मे भी बैठने का प्रयत्न कर रहे है और एक-आध पार्ल्यमेण्ट की सीढियो तक पहुँच भी गए है—अभी ऐसी दशा मे है कि इसमे अभी तक न तो एक भी छोटे से छोटा विश्व-कोष है, न सैकडो शास्त्रो मे से एक-आध के अतिरिक्त किसी शास्त्र के ग्रन्थ ही है। जिन एक-आध शास्त्रो के ग्रन्थ है वे अभी बच्चो के खेल ही के सदृश है। अनेक कोटि बालको की मातृरूपा जो यह भाषा है इसके तुच्छ भाण्डार मे वैज्ञानिक और दार्शनिक आदि ग्रन्थो की चर्चा कौन करे, स्वतन्त्र उत्तम काव्य, नाटक आदि भी नही है। उपन्यासो की सख्या केवल कुछ बढी-चढी सी देख पडती है। पर इन उपन्यासो मे न तो कोई नवीनता है, न कोई उपदेश है और न विशेष साहित्य के गुण ही है। कुछ थोडी-सी हाथ की गर्मी से गलने पर नाक मे उडकर लगने वाले और बेहोशी देने वाले मोतियो की और पाकेट मे रखने लायक कमन्दो की कहानियाँ जहाँ-तहाँ भरी हुई है जिनसे पुलिस के मारे आज-कल चोरो का भी काम नही चल सकता।

साहित्य की अभी यही दशा है कि उपयोगी ग्रन्थ न तो पहले से बने हुए है और न आज ही कोई बनाने की चेष्टा कर रहा है। आगे की आशा कुछ की जाय तो किसके बल पर? कौन ऐसा सभ्य देश है जहाँ मातृभाषा मे नये और पुराने तत्त्वो के अनुसन्धान के लिए और उत्तमोत्तम ग्रन्थो के निर्माण के लिए अनेकानेक सस्थाये आज लाखो, करोडो रुपयो के खर्च से नही स्थापित है? क्या भारतवर्ष अपने को सभ्य नही कहता है? क्या उत्तर भारत को लोग आर्यावर्त्त नही कहते आये है? यदि यह स्पष्ट विदित हो जाय कि अब आर्यावर्त्त घोर अविद्या के अन्धकार में रहने वाले अनार्यो की भूमि हो चली है तब तो फिर इस भूमि के वर्णन के समय अन्य सभ्य जातियो का नाम लेना बडे भारी प्रायश्चित्त का काम होगा। पर यदि यह वही भूमि है जहाँ याज्ञवल्क्य, पाणिनि, आर्य्यभट, भास्कर आदि अनेक दार्शनिक और वैज्ञानिक हुए थे, और यदि वन्य-रुधिर का बहुत कुछ समावेश होने पर भी आर्य-रुधिर का कुछ भी अश इस भूमि में रह गया है, तो इस भूमि के निवासियो को यह कह देना सभी देशहितैषियो का परम कर्त्तव्य है कि सस्कृत, हिन्दी आदि देशभाषाओ को जिस अवस्था में इन लोगों ने रखा है उससे किसी सभ्य जाति में ये मुँह दखाने लायक नही है। देश-भाषा मे दर्शन-विज्ञान आदि के उत्तमोत्तम ग्रन्थो के निर्माण के लिए यदि सौ सस्थायें भी भारत मे होती तो भी यहाँ के मनुष्य अन्य सभ्य जातियो से कुछ बढे-चढे नही कहे जा सकते थे। परन्तु यहाँ तो एक भी ऐसी समिति नही है जहाँ वर्ष मे दो-एक बार अच्छे-अच्छे विद्वान् एकत्र हो और विद्या-प्रचार, ग्रन्थ-निर्माण आदि के विषय मे पूर्ण विचार कर आपस मे कार्य बाँट कर अपने-अपने घर जायँ और

पुन-पुन सम्मिलित हो कर देखे कि उनमे से किसने कितना कार्य किया और जब इनके ग्रन्थ, व्याख्यान आदि तैयार हो जायँ तो उन्हें प्रकाशित करने, पढने, पढाने आदि का पूर्ण व्यय से प्रवन्ध किया जाय। दो-चार नगरो मे जो सस्थाये है, वे तो केवल सडी-गली, सौ-पचास बरस की दोहा-चौपाई की पोथियो के अन्वेषण मे और टके की डिक्शनरियो के निर्माण मे देश के समय, शक्ति, उत्साह और धन का व्यय कर रही है। और जो एक-आघ सामयिक सम्मेलन है उन्हें भी न तो द्रव्य ही की सहायता है और न अभी कोई ऐसा मार्ग ही सूझता है जिससे सभ्यता की अभिमानवाली, हिन्दी बोलनेवाली, भारतीय जातियो मे असली विद्या का प्रचार हो और घोर अविद्या का नाश हो।

अविद्या का कुछ ऐसा स्वभाव होता है कि जिन पर इसका बोझ रहता है वे इसे वडी प्रसन्नता से ढोते है और इसे महाविद्या के सदृश देवी समझकर पूजते है। कुछ तो ऐसा ही सभी बोझ ढोनेवालो का स्वभाव होता है। काल पाकर भारी से भारी बोझ भी हल्का ही जान पडता है। शरीर पर हजारो मन की वायु का बोझ इसी अभ्यास के कारण कुछ नही मालूम पडता। ऐसे ही अविद्या का बोझ भी अविद्या के भक्तो को कभी नही सताता। इस बोझे का एक और भी बडा भारी गुण है कि इसके भक्त इसकी गुरुता को नही समझते। इतना ही नही, कुछ दिनो मे इससे बडा प्रेम करने लगते है। सुनने में आया है कि बेतिआ के पास कुछ ऐसी भूमि है जहाँ लोगो का गला बहुत फूल आता है। इस व्याधि को घेघा कहते है। उस अद्भुत भूमि के लोग बिना घेघा के मनुष्य को देख कर बहुत ही हँसते है और कहते है कि यह कैसे मनुष्य है जिनके गले मे उठगनी नही है। ऐसे ही अविद्या के बोझ वाले वस्तुत विद्या ही को व्यर्थ का वोझ समझते है और बिना अविद्या के पुरुषो को नास्तिकता आदि में पचते हुए समझते है। जिस भूमि के अधिकाश मनुष्य ऐसी अविद्या-व्याधि से पीडित हो उस भूमि का सुधार सहज मे नही हो सकता। ऐसी भूमि के सुधार मे कितनी कठिनाइयाँ है वह तो उत्तर भारत के नेताओ को विदित ही है। अफीम की पिनक में समाधि का आनन्द लेनेवाले या साडी-घुँघरू पहन कर नाचने वाले महात्माओ के आराम के लिए बीस लाख का मन्दिर बनवा देना या तीर्थ के कौओ की प्रियतमाओ को ऋण करके भी पालने वाले बाबू लोगो के लिए सरायखाता बनवाने में करोडो खर्च कर देना यहाँ के लोगो के लिए आसान-सी बात है। पर विज्ञान की वृद्धि में ऐसे दुर्व्ययो का सहस्राश भी निकाल लेना बडे-बडे वक्ताओ और नेताओ के लिये भी कठिन काम है। पर काम कठिन हो या सहज, जब छोटे-बडे सभासम्मेलन आदि देश मे हो रहे है और देशवाले अपनी सभ्यता के गौरव पर इतने जोर से चिल्ला रहे है तो आज उनका क्या कर्त्तव्य है यह हमे कहना ही पडेगा।

शिक्षा के तीन अङ्ग है—सग्रहाङ्ग, सघटनाङ्ग और कार्याङ्ग। जैसे प्राणिमात्र का यह धर्म है कि वह भोज्य पदार्थो को बाहर से अपने अङ्गो में रखता है और उनसे

अपने रुधिर आदि की पुष्टि कर फिर बडे-बडे कार्यो को करता है, वैसे ही प्रत्येक जीवित भाषा की प्राणरक्षा और बल-वृद्धि नवीन, प्राचीन और बाहरी विज्ञानो का सग्रह कर अपने शरीर मे पचा लेने ही से हो सकती है। इसी बाह्य विज्ञान के सचय को सग्रहाङ्ग कहते है। बाहर से लाये हुए विज्ञानो को जब तक ठीक पचाया न जाय तब तक उनके सग्रह का कुछ फल नही। भात, दाल, पूरी, मिठाई आदि मुख के द्वारा पेट मे जाकर पचे तभी बल को बढा सकते है। इन्हे केवल माथे पर रख लेने से गिद्ध, कौओ के झुकने के अतिरिक्त और फल नही हो सकता। सगृहीत विज्ञानो को मुख के द्वारा पेट मे पहुँचाकर उनसे हाथ-पैर आदि की पुष्टि करने को सघटनाङ्ग कहते है। हाथ-पैर आदि की पुष्टि होने पर फिर नये विज्ञान आदि का आविर्भाव करना, प्राचीन विज्ञानो से काम लेना—इसी को कार्याङ्ग कहते है। अभी विद्या का सग्रहाङ्ग तो कुछ-कुछ कितने ही समय से भारत में परिपोषित हो रहा है, पर और दोनो अङ्ग ऐसी हीनावस्था मे है कि भारतीय शिक्षा को यदि इन दोनो अङ्गो की दृष्टि से सर्वथा विफल कहे तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

अग्रेजी शिक्षा भारत मे खूब हो रही है इसमे कुछ सन्देह नही। पर यह शिक्षा भी वैज्ञानिक और दार्शनिक अशो मे ऐसी पूर्ण नही है जैसी काव्य-साहित्य आदि के अशो मे है। अग्रेजी विज्ञान के जो भोज्य पदार्थ भारतवासियो के यहाँ आते भी है वे कही बाहर ही पडे-पडे बासी हो जाते है। भारत-सरस्वती का मुख सस्कृत है। इस मुख तक तो यह विज्ञान अभी पहुँचा ही नही है। जब तक मुख मे नही पडेगा और मुखके द्वारा उपयुक्त होकर अङ्गो के सदृश, हिन्दी, बँगला, तामिल, मराठी आदि भाषाओ मे बल नही पहुँचावेगा तब तक भारतीय शिक्षा का सघटानाङ्ग कैसे ठीक हो सकता है? ज्योतिर्गणित, दर्शन, वैद्यक आदि जो कुछ भारत-सरस्वती के मुख-रूप सस्कृत मे थे, उन्ही के कारण तो कुछ बल और प्रतिष्ठा समस्त देश की जहाँ-तहाँ आज भी हो रही है। हिन्दी, बँगला आदि जो भारत-सरस्वती के हाथ-पैर है, इनके रगो और पुट्ठो मे सस्कृत के रुधिर की ऐसी आवश्यकता है कि बिना उसके वैज्ञानिक और दार्शनिक शब्द ही बन नही सकते। एक अग यदि कुछ शब्द गढ ले तो भी वह दूसरे अङ्गो के अनुकूल नही होता। इसलिये जैसे सग्रहाङ्ग के लिए अग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता है वैसे ही सघटनाङ्ग के लिय सस्कृत की उन्नति की आवश्यकता है। ऐसी अवस्था मे सस्कृत, हिन्दी आदि भारतीय भाषाओ मे शिक्षा-प्रचार का ऐसा आरम्भ होना चाहिए जिससे हमारे देश मे भी विज्ञान का वैसा ही पूर्ण प्रचार हो जसा जर्मनी, इङ्गलेड आदि अन्य देशो मे हो रहा है। इस महायज्ञ के लिए बडे-बडे विश्वविद्यालयो की अपेक्षा है। पर सुनने मे आता है कि विश्वविद्यालय तो ऐसे बनेगे जहाँ बाहरी भाषाओ के पढने से और माला सटकाने मे प्राय कुछ समय ही नही बाकी रहेगा जिसमे विज्ञान की चर्चा हो।

ऐसे बडे कार्य मे दश के जितने नेता है उन सबो को मन, वचन, कर्म से लग जाना चाहिए था। पर पार्ल्यमेट म आसन खोजने से और मजहबी गाली-गलौज से कुछ भी समय बचे तब तो बिचारे दश क नेता इधर दृष्टि दे। जो हो, काय यही उपस्थित

है कि किसी सम्मेलन मे विद्वानो को एकत्र कर एकबार अत्यन्त आवश्यक निमय ग्रन्थो की सूची बनाकर आपस मे कार्य-भार बाँट कर जैसे हो सक—प्राण दकर भी—इन ग्रन्थो के निर्म्माण, प्रकाश और प्रचार के लिए, जिनसे हो सके वे यत्न कर। एक ऐसी सूची बहुत दिन हुए मैंने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को बाबू श्याम-सुन्दर दास के द्वारा दी थी। उससे कुछ भिन्न, परन्तु उसी प्रकार की सूची यहाँ आपके सामने भी उपस्थित करता हूँ। जहाँ तक हो सकता है इन ग्रन्थो के निर्म्माण और प्रकाश के लिए और भी यत्न हो रहे हैं। पर बडे-बडे सज्जन जो सम्मेलन मे उपस्थित है, यदि वे इधर दृष्टि करेंगे तो सम्भव है कि कार्य मे शीघ्र अच्छी सफलता हो।

प्राय सौ विषयो की सूची आगे दी हुई है। इन विषयो पर छोटे-बडे ग्रन्थ बने और उनके प्रकाश और प्रचार के लिए पूर्ण प्रबन्ध किया जाय तो देश का बडा उपकार हो।

१ ज्योतिर्विद्या
२ भूगर्भ शास्त्र
३ भूस्थिति
४ सागर-स्थिति
५ प्राचीन उद्भिद
६ प्राचीन प्राणी
७. उद्भिद् शास्त्र
८ प्राणि शास्त्र
९ प्राचीन तत्त्व-सग्रह
१० मनुष्य शास्त्र
११ मनुष्य-जाति शास्त्र
१२ ध्वनि शास्त्र
१३ प्रभा शास्त्र
१४ ताप शास्त्र
१५ अयस्कान्त शास्त्र
१६. विद्युत् शास्त्र
१७ यन्त्र शास्त्र
१८ औषध वैद्यक
१९. शल्य वैद्यक
२० स्वास्थ्य शास्त्र
२१ पशु वैद्यक
२२ अस्थि-विभाग
२३ शरीर शास्त्र
२४ अक-गणित
२५ बीज-गणित
२६ क्षेत्र-गणित
२७ कोण-गणित
२८ कलन-गणित
२९ त्रिकोणमिति
३० हार्मनिक-गणित
३१ भेक्टर-गणित
३२ गति-गणित
३३ स्थिति गणित
३४ भाव शास्त्र
३५ आचार शास्त्र
३६. न्याय शास्त्र
३७. रेखा-गणित
३८ नीति शास्त्र
३९ अर्थ शास्त्र
४०. व्यवहार शास्त्र
४१. समाज शास्त्र
४२ ईश्वरवाद
४३ धर्म-परीक्षा
४४. मनस्तत्व

४५. सत्परीक्षा
४६. ज्ञान-परीक्षा
४७. पाक-विद्या
४८. कृषि-विद्या
४९. वपन-विद्या
५०. वास्तु-विद्या
५१. नाद-विद्या
५२. रञ्जन-विद्या
५३. आलोक-चित्रण
५४. उत्करण-विद्या
५५ मूर्त्ति-विद्या
५६. आयुध-विद्या
५७. मल्ल-विद्या
५८ नाट्य-विद्या
५९. जलयान-विद्या
६० स्थलयान-विद्या
६१. वायव्ययान-विद्या
६२. खनि-विद्या
६३ जीविका-भेद
६४ क्रीडा-भेद
६५ समय-निर्णय
६६. भारत का इतिहास
६७ इङ्गलैंड का इतिहास
६८ अमेरिका का इतिहास
६९. आष्ट्रिया का इतिहास
७०. फ्रांस का इतिहास
७१. जर्मनी का इतिहास
७२. ग्रीस का इतिहास
७३ इटली का इतिहास
७४ नेदरलैंड का इतिहास
७५. पुर्त्तगाल का इतिहास
७६. रोम का इतिहास
७७. रूस का इतिहास
७८ जापान का इतिहास
७९. स्पेन का इतिहास
८०. टर्की का इतिहास
८१ चीन का इतिहास
८२. भाषा-तत्त्व
८३. लिपि का इतिहास
८४ व्याकरण-तारतम्य
८५ संस्कृत साहित्य
८६. भारत का साहित्य
८७ अरब का साहित्य
८८. फारस का साहित्य
८९ ग्रीस का साहित्य
९०. रोम का साहित्य
९१ अँग्रेजी साहित्य
९२ जर्मन साहित्य
९३. फ्रांस का साहित्य
९४ इटली का साहित्य
९५. रूस का साहित्य
९५. स्पेन का साहित्य
९७. चीन का साहित्य
९८ जापान का साहित्य
९९. वाणिज्य
१०० अलङ्कार

हिन्दी में विश्वकोष की अपेक्षा

आज प्राय सभी सभ्य जातियो मे विश्वकोप वर्त्तमान है। अग्रेजी में तो एक रुपये से लेकर पाँच सौ तक के विश्वकोष देखे जाते है। जर्मन, फ्रासीसी आदि भाषाओ मे भी ऐसा ही है। पर भारत मे जहाँ कम से कम दस करोड मनुष्य हिन्दी बोलते और समझते है, हिन्दी में अभी एक भी विश्वकोष नही है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (अग्रेजी विश्वकोष) की उम्र आज सौ वर्ष से अधिक हो चुकी है। इसका सबसे पहला जन्म तीन जिल्दो में हुआ था। विकसित होते-होते आज यह उन्तीस जिल्दो की मूर्त्ति धारण किये बैठा है।

'कालिदास कौन थे' या 'आरा नगर की जन-सख्या कितनी है' यह देखना हो तो भारतीयो को इसी कोप में ढूँढना पडता है या इसी के बच्चो से काम चलता है। हिन्दी मात्र जानने वाले इन कोपो मे हाथ नही दे सकते। इसलिए उन्हें इन बातो का पता लगाना कठिन होता है। भाषान्तर जाननेवाले हिन्दी भाषाभिज्ञो का धर्म था कि वे प्रत्येक विज्ञान की कम से कम एक पुस्तिका अपनी मातृभाषा मे बनाने की चेष्टा करते और साथ ही एक विश्वकोप भी तैयार करते, जो कि सब विज्ञान, दर्शन आदि का भाण्डागार होता। दो सौ रुपये महीने के व्यय से एक उत्तम मासिक पत्र निकल सकता है, जिसमे क्रम से वैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक आदि प्रबन्ध और एक उत्तम विश्वकोप के खण्ड क्रम मे ही निकल सकते है। क्या दो सौ रुपये महीना देनेवाले भी आदमी या एक रुपया महीना देनेवाले दो सौ आदमी हिन्दी भाषा-भाषियो में से नही मिलेंगे कि जिससे यह कार्य चल निकले? यदि इतना भी नही हो सकता, तो हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने किस भरोसे चले है! विश्वकोप जैसे कार्य मे कुछ सहायता बडोदा आदि की देशभाषोन्नति के लिए स्थापित पूँजियो से भी मिल सकती है। हिन्दीभाषियो में बी० ए०, एम्० ए० आदि उपाधिवाही भी बहुतेरे है। जरा-सा ये लोग चित्त दे, तो विश्वकोप का कार्य शीघ्र चल निकले।

यदि कमी है तो एक बात की। बडी सभा, सम्मेलन आदिको ने अभी इस ओर अपना ठीक चित्त नही दिया है और हिन्दी के बडे नायको ने भी इधर दृष्टिपात नही किया है। बहुत-से कार्य भारत में हो रहे है, जिनमें कितने अपेक्षित है और कितने ही अनपेक्षित है, पर पुस्तक-निर्माण का कार्य बहुत ढीला-सा चल रहा है। साधारण छोटी पुस्तकें भी देशी भाषाओ मे ठिकाने की नही मिलती, तो विश्वकोष की फिर क्या कथा। विश्वकोप की ओर अभी तक केवल बङ्गाली भाइयो की दृष्टि पडी है। एक बङ्गीय विद्वान् ने बडी कठिनाइयाँ झेलकर जैसे-तैसे एक छोटा-मोटा विश्वकोप तैयार किया है। पूरी सहायता न मिलने से बँगला विश्वकोप उत्तम नही बना है।

पर नही से तो अच्छा है। जिस भाषा में उत्तम से उत्तम साहित्य मिलता है, उसी के राष्ट्र-भाषा पद पर पहुँचने की आशा की जाती है। यदि हिन्दी वाले अपनी भाषा को कभी इस पद पर पहुँचाने की आशा रखते है तो अग्रेजी आदि अत्युन्नत भाषाओ के बराबर नही तो बँगला के बराबर तो अपनी भाषा को बढाने का प्रयत्न करना ही चाहिए।

जिस भाषा में विज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि के स्वतन्त्र उत्तम निबन्ध नही, प्राचीन या वैदेशिक आकर-ग्रन्थो के अनुवाद नही, दो एक उत्तम छोटे-बडे विश्वकोष नही, उस भाषा को अपनी मातृभाषा कहने वालो को तो लज्जा के मारे तब तक सभ्य जगत् में मुँह नही दिखाना चाहिये और अपनी भाषा के विषय मे शेखी नही छाँटनी चाहिये, जब तक वे अपने प्रयत्नो से अपनी मातृभाषा के इन कलको को दूर न कर लें। आज यदि हिन्दी भाषा वाले एक बहुत बडा विश्वकोष भी तैयार कर लें तो उन्हें उस यश का लाभ नही हो सकता है जो कि इस कार्य के अग्रणी पाश्चात्य भाइयो को मिला है, क्योकि एक नया काम करने मे पाश्चात्यो का बडा परिश्रम और व्यय हुआ है। हाल मे अग्रेजी विश्वकोष के अन्तिम सस्करण में भी करोडो रुपये व्यय हुए हैं और पन्द्रह सौ वैज्ञानिक तत्त्वदर्शी ऋषियो का परिश्रम लगा है। इस महासहिता के भारत मे आ जाने से और सैकडो वर्ष से आग्ल-शिक्षा के प्रचार होते आने से भारतीय विद्यार्थियो को एक छोटी-मोटी विश्वसहिता बनाने में अब बहुत प्रयत्न और बहुत व्यय की अपेक्षा नही है। हमे तो जहाँ-तहाँ से अनुवाद करके एक सहिता बना लेनी है। पर भारतीय देवताओ की आलस्य-निद्रा ऐसी गहरी है कि इनसे पाश्चात्य ऋषियो के देखे हुए तत्त्वो का अनुवाद मात्र हो जाय और एक विश्वकोष के आकार का सग्रह भी बन जाय, तो इस भाग्यहीन भूमि का फिर भाग्य पलटता हुआ समझा जाय। हे साहित्यसम्मेलन के सभ्य और तमाशबीन महाशयगण! उदार भाव से शीघ्र एक उत्तम हिन्दी मासिक पत्र निकालिये, जिसमे प्रति मास खण्डश· एक बड़ा विश्वकोष, एक सक्षिप्त विश्वकोष और वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थो के अश निकलते जायें। आप लोग आज उसी देश मे साँस ले रहे है, जहाँ हजारो ऋषियो के बनाये हुए मन्त्रो का सग्रह वैदिक सहिताओ में हुआ था, जहाँ शतपथ ब्राह्मण आदि का आविर्भाव हुआ था, जहाँ भारत के युद्ध हो जाने के बाद कलि में भी महाभारत के सदृश पञ्चम वेद या अति प्राचीन विश्वकोष का निर्माण हुआ था। इसी भारतभूमि में हजारो-हजार मुनि लोग पौराणिक सहिताओ को सुनते थे और उसके प्रचार मे लगे रहते थे। आज भी इन्ही लोगो के प्रताप से विचारे कथको की कथाओ से राम, युधिष्ठिर आदि ऐतिहासिक नाम या मङ्गल, बृहस्पति आदि ज्योतिष के नाम घर-घर विदित हैं। धिक्कार है हम नवसिखुओ को कि सैकडो वर्षों से हम अलिकचन्द्र, नयपाल्य आदि की कथाओ को रटते-रटते रह गए, पर आज तक वैज्ञानिक, दार्शनिक. ऐतिहासिक आदि नाम भी हमारे द्वारा हमारी कहानियो से,

हमारे लेखों से, हमारे लेक्चरो से और हमारी गप्पो से हमारे भाइयो मे गली-गली विदित नही हुए। अशिक्षितो की कौन कहे, बड़े-बडे पण्डितो और ग्रेजुएटो की भी प्राय ऐसी दशा बनी हुई है कि, उनमें रामायण, महाभारत, पुराण, तन्त्र, यन्त्र, सामुद्रिक, वैद्यक, ज्योतिष आदि की बातें जिस प्रकार साधारणत भारत में विदित है उसी प्रकार साम्प्रतिक इतिहास, विज्ञान, दर्शन आदि के तत्त्व अभी तक विदित नही हुए। यह अपराध किसका जिससे यह अज्ञान आज तक चला जा रहा है, और वह गुण किसका जिससे प्राचीन तत्त्वो का आज भी अप्रतिहत प्रचार चला जा रहा है? यह अपराध उन स्वार्थियों का जो विद्या केवल नौकरी के लिए पढते है, और टके की नौकरी पा कर मुँह फुलाये या नौकरी भी न पाकर मुँह बनाये बैठे रहते है। वह गुण उन महात्माओं का जो पहले भी विद्या के लिए विद्या पढते थे और आज भी उसी प्रथा को जैसे-तैसे चला रहे हैं। दूर पश्चिम विलायत में अथवा दूर पूरब जापान आदि में महा-पण्डितो की व्यवस्था के डर से आप नही जाते है। पर वङ्ग देश में तो—

"अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमहावेषु च।
तीर्थयात्रां विना गत्वा प्रायश्चित्त समाचरेत्॥"

इत्यादि पवित्र वाक्यो के रहने पर भी कुली से लेकर वकील के काम तक करने को पहुँचते हैं। क्या वङ्गीय विद्वानो को देख कर भी कुछ उत्साह नही होता, कुछ लज्जा नही आती? हिन्दी बोलने वाले अगर डिपटी-कलक्टर, डिपटी सुपरिंटेंडेण्ट या कलक्टर हो गये या कम से कम वकालतखाने में मक्खी भी मारने लगे तब तो इन्हें पढी-लिखी हुई बातो के भूल जाने के अतिरिक्त और किसी काम के लिए समय ही नही मिलता और जिन बेचारो को नौकरी-चाकरी, धन-दौलत नही है उन्हें पेट का ही बहाना है। अब रह गये बीच-बीच वाले एडिटर आदि जो थोडी बहुत हिन्दी सेवा कर रहे हैं। पर वङ्गीयो में देखो तो बंकिम बाबू, आर० सी० दत्त आदि डिपटी कलक्टरी से लेकर कमिश्नरी तक करते थे। वे तो हिन्दी वाले मिस्टरो के सदृश केवल अधिकार-कीट नही थे। उन्होने देश की बहुत कुछ सेवा की। साथ-साथ आफिस का काम भी उनका ठिकाने से ही चलता था और नौकरी में भी हिन्दीवालो से कुछ कम तरक्की उनकी नही हुई। आजकल के बेचारे विश्वकोष आदि लिखने वालो या कितने और साहित्यसेवी वङ्गीयो की दशा देखिये। उन्हें न तो तो नौकरी का ही बल है और न घर का कुछ धन है, तथापि वे कितना काम कर रहे हैं। न अधिकार के बहाने फूले हैं और न पेट के बहाने मुँह बनाये बैठे हैं। रात्रिन्दिव देश की सेवा करते-करते अधिकार में, विज्ञान में, धन में, उत्साह में, शिल्प में, वाणिज्य में यदि आज वे कम हैं तो बाहरी लोगो से कम है, भारत के किसी प्रान्तवासी से कम नही हैं। इन लोगो मे भी तो विद्या का प्रेम सीखो। कुछ काम आरम्भ करो, सभा, समाज, लेक्चर, बक-बक आदि तभी अच्छा लगता है, जब कुछ काम आरम्भ हो।

जब कही सम्मिलित होते हो, तो दस-बीस आदमी मिल कर आपस मे काम बाँटो। तमाशबीनो मे बहुत से ईमानदार आदमी भी आते है। उनसे द्रव्य-सग्रह करो। बाहरी राजे-महराजे, वकील-मुखतार, सुखतार आदि से भी उनके सेत के पैसे मे से कुछ लो। साल के अन्त मे फिर मिलो, तो आपस में यह पूछ-ताछ करो कि, किसने कितना काम किया। खाली वोट में हाथ उठाने से क्या होगा। हाथ-उठाई की सभाये तो देश में बहुत सी मौजूद ही है। बडे प्रारम्भ से असली कार्य आरम्भ होना चाहिए। दस-बीस मनुष्य-भी हाथ-उठाई आदि मे विशेष श्रद्धा न रख कर असली कार्यो का आरम्भ कर दे तो दस-बीस वर्षो मे एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका से तिगुने आकार की एक महासहिता देश मे महिषमर्दिनी भगवती के सदृश उठ खडी हो और अज्ञानरूपी महिष का कही पता न रहे और विलायती या जापानी साहित्य से बढ कर नही तो बराबर गौरव का साहित्य-पूर्णचन्द्र देश मे उदित हो जाय जिससे मोहदम्भ की तामसी सन्ध्या देश को छोड कही दूर पलायित हो पडे।

हिन्दी में उच्च शिक्षा

सभी सभ्य देशो में आज शिक्षा का प्रचार देश ही की भाषा मे हो रहा है। वैदेशिक भाषा मे शिक्षा का प्रचार कदाचित् भारत के ही सदृश दीन-हीन देशो में होता होगा। वैदेशिक भाषा सीखने के लिए कम से कम दस वर्ष समय लगता है, तथापि उस भाषा के बोलने या लिखने मे वैसा कौशल नही होता है जैसा कि अपनी भाषा में प्राय अनायास ही हो जाता है। कहा जाता है कि जिस भाषा मे आदमी सोच न सके, जिसमे आदमी सपना न देखे उस भाषा को अपनी भाषा नही कह सकते। ऐसी भाषा मे चाहे कितनी शिक्षा हो, हृदय नही खुलता है। यही कारण है कि चिर काल से भारत म ज्ञान-विज्ञान का रास्ता बद है। नये आविष्कारो की तो कौन कहे, जितना ज्ञान-विज्ञान दुनिया में आविर्भूत हो रहा है उसका भी आसानी से प्रचार भारत मे नही हो पाता। देशवाले बेचारे वैदेशिक भाषा सीखने मे यौवन की शक्ति गँवा कर, बस्ता बाँध कर कचहरी जाने के समय, जो कुछ थोडा बहुत पढे-लिखे रहते हैं, उसे तिलाञ्जलि देने का प्रबन्ध कर लेते हैं। करें क्या ? जहाँ जाना है, जहाँ से रोटी का प्रबन्ध होगा, वहाँ विद्या का उपयोग नही। एकाध यदि रोटी पर अधिक ध्यान न दे कर इम्तहान पास करने के बाद भी पढने-लिखने की चर्चा जारी रखने लगे तो बेचारे सस्कृत-हिन्दी आदि देश-भाषाओ में लिखने आदि की शक्ति नही रहने के कारण पुरानी कथाओ के अग्रेजी अनुवाद मे भिड जाते है और ऐसे कार्यों से कुछ उपाधि वगैरह हासिल कर लेते हैं। इस तरह इन दो प्रकार के देशी लोगो से तो दश में ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि की ओर एक रत्ती भी सहायता नही मिलती। अब बचे विदेशी लोग। यहाँ आने पर इन लोगो की भी यहाँ के जलवायु के कारण या न जाने क्यो बडी अपूर्व दशा हो जाती है। जैसे भारत के शहरो में धूलि-दुर्गन्ध आदि से इनकी नाक पर कोई असर होता हुआ न देख कर मालूम पडता है कि यहाँ के जलवायु से इनकी बाहरी इन्द्रियो की शक्ति कुछ नष्ट सी हो गई है, वैसे ही इनक अनेक कार्यो से जान पडता है कि इनकी मानस-शक्ति भी यहाँ आने ही से दूषित हो जाती है। जिन लोगो मे देश पर रनजा आदि वैज्ञानिको ने बडे-बडे यन्त्र निकाले है वे ही यहाँ भूत-प्रेत पिशाच आदि पर लेक्चर देते हुए और भोले-भाले लोगो से चन्दा वसूल करते हुए पाये जाते है। भारत मे दो-तीन हजार वर्ष के पुराने गडे हुए मुर्दो या मुर्दमाली चीजो को खोद निकालना और उनके ऊपर अनेक गप्पें छाँटना, यही आजकल मुख्य विज्ञान हो रहा है और भीष्म आदि का प्रेत टेबुल पर बुलाना यही दर्शन हो रहा है। जहाँ देशी-विदेशी सब लोगो मे ऐसी कुबुद्धि जाग

रही है उस देश में प्लेग और दुर्भिक्ष का प्रत्यक्ष नरक प्रजाओ को अपने गर्भ मे निगलता हुआ क्यो न हर साल देख पडे ? यह सब दशा असली ज्ञान और विज्ञान के अभाव से है। पचीस-तीस वर्ष में दुनिया भर का ज्ञान और विज्ञान जापान ने अपनी भाषा में सगृहीत कर लिया। इसके लिए जापान को अनेक कष्ट उठाने पडे है, हजारो व्यक्तियो को यूरोप जा-जा कर रहना पडा है। पर भारत मे कई सदियो से यूरोप सिर पर गड़गडा रहा है, तो भी यहाँ साधारण ज्ञान-विज्ञान का सग्रह आज तक देशीभाषाओ मे नही हुआ और शिक्षा मे उसका निवेश भी नही हुआ। विचारणीय यह है कि यदि एक हजार आदमियो को विलायत से एक-एक सुई लानी हो तो प्रत्येक जा-जा कर अपने लिए सुई लावे या एक ही जा कर एक हजार सुई ला कर सब को दे दे। वैसे ही यहाँ सव ज्ञान-विज्ञान का अनुवाद कर दस-बीस आदमी देश-भापाओ मे उसका प्रचार कर देते ऐसा न कर प्रत्येक व्यक्ति वैदेशिक भाषा पढ कर अपने लिए ज्ञान-विज्ञान के लाभ का यत्न करता है। इस पर कितने लोग यह कहते है कि देश-भाषाओ मे शिक्षा होने से यूरुपीय विज्ञान का यहाँ प्रचार बन्द हो जायगा। कितने यह भी कहते है कि अग्रेजी न पढ़ेगे तो कैसे अग्रेजी-विज्ञान यहाँ अपनी भाषा मे ला सकेंगे। ये लोग सर्वथा अपना चरित्र भूल रहे है। पढते तो है जीविका के लिये या खेल के लिये और झूठ ही कहते है कि हम ज्ञान-विज्ञान का अनुवाद करेगे। हमलोग अग्रेजी पढना सर्वथा वन्द नही करना चाहते। केवल इतना ही चाहते है कि अग्रेजी मे ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थो का अनुवाद कर यहाँ प्रचार करने के लिये भी सौ-पचास आदमी हर साल अग्रेजी पढा करे, न कि केवल नई कमाई करने के लिये या बाप-दादे की कमाई गँवाने के लिये। ऊँची-नीची सब शिक्षा देश की भाषाओ मे हो। अभाव है पुस्तको का, पर मुँहा-मूँही देखने से कुछ भी नही होगा। किसी देश मे ग्रन्थ बनने तक वैदेशिक भाषा में शिक्षा नही होती थी। देश-भाषाओ मे शिक्षा होने के कारण स्वय ग्रन्थ वनते गये है। जव तक वाहर से काम चलता जायगा घर की भाषाओ मे ठिकाने से कितान कभी नही बनेगी। बाजारू विसकुट खानेवाले घर मे रसोई बनाना नही सीख सकते।

अव यहाँ एक प्रश्न उठता है। शिक्षा प्राथमिक तथा उन्नत देश-भाषाओ में क्यो नही हो रही है और किसके करने से होगी ? कितने लोग समझते है कि यह सरकार का दोप है कि शिक्षा देश-भाषाओ में नही हो रही है। बहुत-से लोग समझते है कि जनता का दोप है। वस्तुत यह सव दोष न तो सरकार का है न जन-समाज का। शिक्षा का विषय ऐसा जटिल है और इसमें सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विषय ऐसे मिलते हुए है कि सरकार से तो इसका पूर्ण सुधार हो ही नही सकता है। वाकी वची जनता, सो उस वेचारी को तो नायक लोग जैसा कहते है वैसा करती है। सवेरे नाक वन्द करने के अनन्तर थोडी प्रार्थना कर लेने के वाद अध्ययन के लिए कोई मेम साहिवा स्कूल वनवावे तो उसके लिये लाखो रुपये और सैकडो वीघे जमीन देने के लिये यहाँ

लोग तैयार हैं। कोई एकाध गुरुकुल या ब्रह्मचर्य्याश्रम खोल दे तो उसमें भी सहायता देने को हमलोग तैयार हैं। कोई हिन्दु या मुसलमानी विश्वविद्यालय बने तो उसमे भी हम लोग मुँह नही मोडने वाले है। पर साथ ही साथ यह भी खयाल रहे कि जनता अशिक्षित है, शिक्षित होती तो उसे उपदेश की जरूरत ही नही होती। धार्मिक, सामाजिक, नैतिक ढग पर स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय आदि सभी बन रहे हैं पर सभी में वैदेशिक भाषा ही में मुख्य शिक्षा का प्रबन्ध रखा जा रहा है। जनता बेचारी अज्ञ होने के कारण कुछ बोल नही रही है। सब करामात समाज के थोडे मे नेताओ की है। ये लोग जिधर चाहे सरकार को भी नचा रहे है और जनता को भी घुमा रहे है। ये यदि अनिवार्यभाव से देश मे शिक्षा-प्रचार का प्रबन्ध करना चाहे तो दस-बीस वर्षो में देश-भाषाओं में सब प्रकार के ग्रन्थ भी बन जायँ और सब प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध भी हो जाय।

हिन्दी की उन्नति और प्रचार

देश और देशभाषा के भक्त बहनो तथा भाइयो ! हिन्दी साहित्य की उन्नति और हिन्दी भाषा के प्रचार पर विचार करने के लिये आज सातवी बार आप सम्मिलित हुए है। इस कार्य मे प० मदनमोहन मालवीय और बाबू श्यामसुन्दर दास आदि महोत्साही देश-सेवक और हिन्दी के प्रेमी आपके नेता हो चुके है। इस वर्ष भी सरस्वती के प्रौढ सेवक प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य-समुद्र मे सेतु बाँधने वाले श्यामविहारी मिश्र, विश्वकोष के खजान्ची बाबू नगेन्द्र नाथ बसु, गीता-रहस्य को हिन्दी मे सुलभ करने वाले प० माधवराव सप्रे, वगीय हिन्दी-सेवक बा० शारदाचरण मित्र आदि हिन्दी-मातृक प्रान्तो के तथा अन्य प्रान्तो के हिन्दी-सेवी सुजनो में से किसी एक को आप अपना नेतृत्व दे सकते थे। मेरी अयोग्यता ऐसी स्पष्ट है कि इसे समझने के लिये बहुत अनुसन्धान की अपेक्षा न थी, तथापि अखबार वाले लाल-बुझक्कडो ने बडे परिश्रम के साथ इस अयोग्यता का उद्‌घाटन किया, जिसके लिये उन्हें अनेक धन्यवाद है। पर ऐसी घटना आ पडी कि जिस प्रकार किसी बडे उद्यान मे अनेक अद्‌भुत वनस्पतियो पर न जा कर देखनवालो की दृष्टि नवजात अकुर ही पर प्रणयबद्ध हो जाय, उसी प्रकार आपकी दृष्टि उपर्युक्त महानुभावो की महती देश-सेवा और देशभाषा-प्रेम पर न जमी और मेरी हृदय-भूमि में हिन्दी के लिये जो प्रेमाकुर है उसी पर लुब्ध हो गई। एक गुणाढ्य की एक वृहत्-कथा के स्मरण से विहार के महाकवि बाणभट्ट की जिह्वा भीतर खिंची जा रही थी और कविता में प्रवृत्त होना नही चाहती थी। अब कहिये, अनेक गुणाढ्यो को अनेक लम्बी कहानियो का स्मरण करता हुआ आपका यह विहारी सेवक कैसे अपनी जिह्वा * हिलावे ? बाण हर्ष की भक्ति से हर्षचरित मे प्रवृत्त हुए। मै भी आप हिन्दी-सेवियो मे भक्ति के कारण सहर्ष इस उत्साह के अवसर में सम्मिलित होता हूँ। मेरे द्वारा विहार प्रान्त की विनीत सेवा आप लोग स्वीकार करे। विहार की प्राचीन मागधी का नाम तो फूहड है, वहाँ के लोग भी 'हाथी आती है', 'छडी अच्छा है' इत्यादि गँवारु बोली बोलनेवाले है ; तथापि यह मागधी केवल मागधी नही थी, समस्त भारत की राज-भाषा और राष्ट्र-भाषा थी और साम्प्रतिक हिन्दी की मातृदेवी है। इस सम्बन्ध

---

* आढ्यराजकृतोच्छ्वासैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्त्तते ।।
तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुल ।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ।।
हर्षचरितोपक्रमे ।

का खयाल रखते हुए आप विहार पर प्रेम रखते हैं और इसकी विनीत सेवा आपको अवश्य स्वीकृत होगी।

कर्त्तव्य के अनेक भेद है। कुछ काम ऐसे है, जो इच्छा के प्रतिकूल करणीय होते है, जिनका साधन एक भयानक दण्ड-सा मालूम होता है। कुछ कार्य ऐसे है, जिनका साधन उदासीन बुद्धि से किया जाता है और केवल बाहरी फल के लिये ही एसे कार्यों म मनुष्य पडता है। कुछ कार्य ऐसे है जनके साधन के साथ-साथ फल का भी लाभ होता जाता है और ऐसे कार्यों में मनुष्य बडे उत्साह से पडते है। देश-देशान्तरो से आये हुए सज्जनो का समागम एक ऐसा ही कार्य है जिसके साधन मे अत्यन्त उत्साह होता है और बाह्यफल की अपेक्षा न रख कर कार्यारम्भ के समय ही से चित्त आनन्दित होता जाता है। प्रति वर्ष ऐसा अवसर एक बार आता है जिसमें आप सज्जनो का सम्मेलन होता है, तथापि यह समागम ऐसा रमणीय है कि प्रति वर्ष नवीन ही सा जान पडता है। माघ कवि ने कहा है—"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया।"

पचीस-तीस वर्ष पहले अग्रेजी फीट-फाटवाले बाबू तथा सस्कृत के प्रचण्ड पण्डित दोनो ही हिन्दी भापा की ओर सकुचित दृष्टि से देखते थे। लेटिन, ग्रीक आदि आकर भाषाओ के प्रेम में विह्वल यूरोपवाले भी अग्रेजी, फरासीसी, जर्मन, इटालियन आदि नवीन देश-भाषाओ पर पहले ऐसी ही कुदृष्टि रखते थे, पर विज्ञान के विकास के साथ जव पुरोहित और किरानी आदि से उतर कर कृषीवल, शिल्पी, सौदागर आदि में विद्या पसरने लगी और शिक्षा का असली अर्थ तथा उपयोग लोग समझने लगे, तब समाज के नेताओ की बुद्धि सुधरी और समाज-शिक्षा का मुख्य द्वार देश की प्रचलित भाषा ही हो सकती है, यह बात सबको झलकने लगी। जब से सस्कृत के परिचय से यूरोप में निर्वचन-शास्त्र का आविर्भाव हुआ, तब से देश-भाषाओ का गहन परिचय चला और उनका मूल्य आकर-भाषाओ के बराबर व्याकरण-साहित्य की दृष्टि से भी होने लगा। अब तो उक्षप्रतर, कामसेतु आदि बडे विश्वविद्यालयो में प्रचलित भाषाओ का अद्भुत वैज्ञानिक प्रणाली पर अध्यापन होता है। भारत में भी अब अवस्था बदलने लगी है। शिक्षाधिकारियो की अभी पूर्ण दृष्टि तो इधर नही है तथापि अब देश-भाषाओ के वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन की ओर प्रवृत्ति जनोद्योग से कुछ काल में हो चले तो आश्चर्य नही। विश्वविद्यालयो से कुछ थोडी बहुत सहायता आप को इस कार्य में भले ही मिल जाय पर वस्तुत नागरी-प्रचारिणी सभा, विज्ञान-परिषद्, साहित्य-सम्मेलन तथा हिन्दी के पत्रो और पत्रिकाओ पर ही यह कार्य निर्भर है। अपने गुणो से तथा सूर, तुलसी, हरिश्चन्द्र आदि महाकवियो की अपूर्व प्रतिभासे से हिन्दी केवल भारत में ही नही, द्वीपान्तरो में भी माननीय हो रही है। राष्ट्रभाष तो हिन्दी हो ही रही है, थोडे दिनो में महोत्साह मारवाडी भाइयो के भूव्यापक वाणिज्य आदि से सङ्घीय, नन्दन, और नवार्क मे भी इसका प्रचार होना दुर्घट नही दीख पड़ता।

मुझे जहाँ तक स्मरण है, आपके सुयोग्य सभापतियो ने तथा अन्य व्याख्याताओ ने सम्मेलन के भूतपूर्व अधिवेशनो मे हिन्दी-साहित्य का इतिहास कह सुनाया है, इधर एक बडा इतिहास प्रकाशित हो भी चुका है। इसलिये यहाँ इस विषय पर काल बिताना व्यर्थ है। आप अपने साहित्य को भारतीय अन्य भाषाओ के साहित्यो से तथा वैदेशिक साहित्यो से मिलाकर देखे एव स्वतन्त्र विचार भी करें कि आप के साहित्य मे किन बातो की पूर्त्ति अभी नही हुई है। और उनकी पूर्त्ति किस प्रकार हो सकती है। भारतीय महाकवि वाल्मीकि, व्यास आदि की अपूर्व शक्ति से जगत् मे रामायण, महाभारत आदि अद्भुत महाकाव्यो का आविर्भाव हुआ। सस्कृत साहित्य का एक विशेष धर्म यह है कि प्राय सारा जगत् इसका ऋणी है पर यह अभी किसी देश के साहित्य का ऋणी नही है। यह गुण बढते-बढते आज दोष भाव को प्राप्त हो रहा है। और सस्कृत मे बाहरी साहित्य से सहायता न लेने से इस समय नये-नये अच्छे ग्रन्थ नही बन रहे है। अस्तु, जो कुछ हो, हमारे तुलसीबाबा और सूरदास आदि हिन्दी के कवियो ने मौलिक सस्कृत साहित्य सागर से ऐसे रत्न निकाले है कि आज यदि ससार की समस्त कविता जल जाय तो भी एक मानस रामायण ही से केवल भारत ही नही समस्त भूमण्डल कृतार्थ रहेगा। हमारे यहाँ कविता का अभाव नही है। देश के ही धन से भण्डार खूब भरा है। इस भण्डार की पूर्त्ति सभा-समाजो के द्वारा हो भी नही सकती। काव्य सिद्धवाङ्मय है। रससिद्ध कवीश्वरो के द्वारा काव्य सुवर्ण की घटना साधारण जडी-बूटियो से हुआ करती है। लाखो के प्रयत्न से, कोटियो के व्यय से ऐसी घटना साध्य नही है। चारो ओर की प्राकृत अवस्था के अनुसार ऐसे सिद्धो का जन्म होता है। अवस्थानुकूल ही रस-प्रवाह भी देश मे उमड़ता है। अच्छी दशा मे शृंगार के या वीर के तरग उठते है। मध्यम दशा मे रौद्र के झकोरे उठते है या करुणा का आपूर चढता है, गिरी दशा मे हास्य और बीभत्स की बढती होती है। मम्मट ने ठीक कहा है कि काव्य के लिए स्वाभाविक शक्ति, लोक-शास्त्र, काव्य आदि देखने से निपुणता और काव्यज्ञ की शिक्षा इन तीन बातो की अपेक्षा है। इन तीनो मे मुख्य शक्ति है जो वनावटी हो ही नही सकती—वही प्राकृत अवस्था के अधीन है और इस अवस्था पर किसी एक समाज का सर्वात्मना अधिकार नही है, इसलिये अच्छे श्रव्य या दृश्य गद्यमय या पद्यमय काव्य आज देश मे हो यह बात स्पृहणीय तो अवश्य है, पर साक्षात् साध्य नही है।

तथापि सरस्वती भगवती के दो वासस्थान है। सिद्धवाङ्मय और साध्य वाङ्मय। सिद्धवाङ्मय घना वन है जहाँ मनुष्य के हाथ पडने से शोभा वढती नही, बल्कि घट जाती है। छेड-छाड करने मे कविता खराव होने लगती है। साध्यवाङ्मय कृत्रिम महल और वगीचा है। मुख्यतया मनुष्य के प्रयत्न से वना है। उसी के प्रयत्न से इसका आयाम वढ सकता है और उसी के अनुद्योग से यह खडहर उजाड वाटिका के रूप में परिणत हो सकता है। इस साध्यवाङ्मय के दो अग है, अनुवादात्मक और मौलिक। इन दोनो अगो का परिपोष और प्रचार इस सम्मेलन

का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। प्राय: पन्द्रह करोड भारतीय हिन्दी-मातृक हैं। अनेक देशप्रेमी महात्माओ के पवित्र अनुभाव से भारतभूमि के अन्य प्रान्तो में भी अर्थात् महाराष्ट्र, वङ्गीय आदि अंशो में भी हिन्दी प्रेम अब बढने लगा है। ऐसी अवस्था में सम्मेलन का कर्तव्य है कि भारत में कम से कम जन-शिक्षा के दश केन्द्र बनवाने का प्रगाढ प्रयत्न करें और एक मध्य केन्द्र प्रयाग के आस-पास स्थापित करे। हरिद्वार, लाहौर आदि में ऋषिकुल और धार्मिक कालेज आदि की वृद्धि देख कर हर्ष होता है। मजहबी और नैतिक समाजो ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। बडे हर्ष की बात है कि हिन्दू विश्वविद्यालय का भी कार्य चल निकला है। आर्य समाजी भाई भी अपने गुरुकुलो का काम उत्साह से चलाये जा रहे हैं। मुसलमान भाइयो का विशाल कालेज, पुस्तकालय आदि देख कर बडा उत्साह होता है। पर अभी तक शुद्ध सरस्वतीसेवक किसी समाज ने मजहबी और नैतिक भावो से स्वतन्त्र हो कर भारत में विद्या-केन्द्र स्थापित नहीं किये है। सम्मेलन को शुद्ध सरस्वती-सेवा का अवसर है। हिन्दू, मुसलमान, कृस्तान, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी आदि मतवालो में से तथा गोखलीय, तिलकीय आदि दलवालो में से विद्याप्रेमियो को लेकर हमें एक ऐसा समाज गठित करना चाहिए और एक ऐसी संस्था स्थापित करनी चाहिए, जिससे देश की जनता में अज्ञान दारिद्रय और दुर्बलता का नाश हो और ज्ञानधनबल का क्रम से विकास होता चले। अर्थार्जन श्लाघनीय कार्य है। छोटे से बडे पद पर काम करने वाले देश का उपकार कर रहे हैं। वकील, मुखतार आदि भी कितने ही कार्यो का साधन कर रहे है, पर शिक्षा मे प्रविष्ट सब नवयुवक एक ही प्रवाह में भेडियाधसान की शैली से केवल नौकरी और वकालत ही की ओर यदि चलते जायँगे, तो थोडे ही दिनो में देश की दशा अकथनीय विषमता मे पड जायगी। जितने लोग आज शिक्षा से निकलते है, उनके लिये नौकरी या वकालतखाने में जगह नही है। शिक्षा में इतना धन, समय, शक्ति का व्यय होता है कि शिक्षित युवक को कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि में सहमा लगाना असम्भव-सा हो जाता है। नौकरी भी मिलती नही। फिर विचारा हताश हो कर अनेक दुर्दशाओ में पडता हुआ असन्तान दरिद्र, रोगी हो अल्पायु हो जाता है और मानव लीला का दु खान्त करुण संवरण कर लेता है। इस पाप का बोझा देश के नेताओ पर है। शिक्षा के लिये जैसा महोद्योग प्रजाप्रिय सरकार करती जा रही है और अनेक अन्य कर्तव्यो के रहते भी जहाँ तक हो सकता है, जन-शिक्षा से मुँह नही मोड़ती उसके आधे परिश्रम से भी जनता यदि सरकार की सहायता और उसके कार्यों की पूर्त्ति करती जाती तो देश में एक भी अशिक्षित बालिका या बालक नही मिलता और कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि की अवस्था ऐसी होने नही पाती तथा कोई बालिका या बालक निकम्मे नही पडे रहते और अभाग्य में जीवन नही बिताते। सारा देश हरा-भरा रहता। यह तो बडे भाग्य की बात है कि हमारी सरकार महाप्रभाव और विद्यानुरक्त है नही तो जनता मे जैसा रागद्वेष और आलस्यमय तम का प्राबल्य है, न जाने देश कैसे गढे में पडा होता। घोर दुर्भिक्ष

और प्रवल महाव्याधि जनता के आलस्य से देशभक्षण प्राय प्रतिवर्ष कर जाते हैं। शहर और गाँव की वस्तियाँ चारो ओर नरक मे डूबी पडी है। सरकार हजार प्रयत्न कर रही है, पर जनता के अज्ञान और वैमत्य के कारण आपत्तियाँ दूर नही होने पाती,— "आत्मानमात्मनाररक्षेत् हन्यादात्मानमात्मना"—भगवान श्री कृष्ण का वाक्य है। अपनी सफाई, अपनी शुद्धता, अपना व्यवसाय आप किये विना कभी कल्याण का द्वार खुल नही सकता। केवल आत्मश्लाघा, पूर्वपुरुषो की स्तुति और साम्प्रतिक बडे लोगो की निन्दा करने से आलस्य देव का सन्तोष भले ही हो, अन्य उन्नति की तो क्या कथा उदरपूर्त्ति की भी सम्भावना नही है। ऐसी अवस्था मे समस्त भारत की दृष्टि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलमन पर है। सव लोग यही देखना चाहते है कि यह विशाल आयोजन किस फल मे परिणत होता है। हिन्दी-मातृक लोगो से सामान्यत प्रति व्यक्ति एक रुपया लेने का प्रयत्न होना चाहिये। जो लोग दीन-दरिद्र है, उनसे इतना न लेकर उनके अश की पूर्त्ति उनके धनी पडोसी के द्वारा करनी चाहिए। इस महाधन से ठीक-ठीक कार्य किया जाय तो देशभक्त लोग अल्पमात्र आत्मात्सर्ग करते हुए देश के शिक्षोचित वयवाले सव वालिका और वालको को नौकरी के योग्य तो नही, पर कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि के योग्य अवश्य वना सकते है। देश मे असली विद्या का अभाव और उसके द्वारा दारिद्रय और दुर्वलता का प्रचार, तीन ही कारणो से हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को इतना धन नही कि उपयुक्त शिक्षा पावे। धन होने पर भी इतना समय नही कि राजकीय भाषा का अभ्यास दस-पन्द्रह वर्ष करके फिर किसी एक उपयुक्त विज्ञान में पडे। धन और समय होने पर भी सव को ऐसी शक्ति नही कि अनेक परीक्षाओ को पार करता हुआ अपने उद्देश्य की पूर्त्ति करे। ऐसी अवस्था मे ऐसे शिक्षा-केन्द्रो की स्थापना जनसमाज के द्वारा होनी चाहिए, जिनमे मातृभाषा मे शिक्षा हो अर्थात् भाषा-शिक्षा का विशेष क्लेश छात्रो को न उठाना पडे। फीस छात्र व्यक्तियो से न लिया जाय, जिससे धनी और निर्धन समान सुविधा से पढें। और रस्म के साथ परीक्षाओ का प्रपञ्च न रहे, जिससे थोडे समय मे अपने इष्ट विषय को पढकर छात्र किसी कार्य में लग जायें। सक्षेपत पाँच से दस वर्ष की अवस्था तक वालको को वर्ण-परिचय, थोडा गणित, भूगोल, इतिहास आदि का ज्ञान कराकर किसी एक कल्पनात्मक दर्शन आदि का अथवा कार्यात्मक कलाशिल्प आदि का ज्ञान करा दिया जाय तो वह कही अध्यापन या शिल्प आदि का कार्य करके अपना भी कल्याण करेगा और देश का भी उद्धार करेगा—भूखा कभी नही मरेगा और असन्तुष्ट हो कर दूसरो की हानि करने की आत्म-हानि पर्यवसायिनी चेष्टा मे कभी नही फँसेगा। ऐसी शिक्षा के लिये सप्ताह मे एक विषय का एक घटा अध्यापन पर्याप्त होगा। केन्द्रो की स्थापना मे भी कठिनता नहीं है। हमारे दानशीलवन्धुवृन्द उत्कण्ठापूर्वक जिधर नेता लोग लगा दे उधर ही दान-वृष्टि करने को तैयार है। केन्द्र स्थापित होते ही भारत के उदार शिक्षित सप्ताह में एक घटा समय देने से भी मुह नही मोडेंगे। फिर देशोद्धार के ऐसे उदार कार्य के लिये

सम्मेलन के नेतृगण क्यो विलम्ब कर रहे है, अब तन्द्रा का समय नही है। ज्ञानपूर्वक और भक्तिपूर्वक पूर्ण उद्योग का अवसर है।

शिक्षा-केन्द्रो की स्थापना के लिये उद्योग के साथ-साथ अच्छे पत्र-पत्रिका, अनुवाद-ग्रन्थ तथा स्वतन्त्र ग्रन्थो की हमे बडी अपेक्षा है। मेरा यह अभिप्राय नही है कि साम्प्रतिक दशा में हिन्दी साहित्य अच्छे पत्र या ग्रन्थो से सर्वथा शून्य है, वङ्गाल मे दैनिक भारत मित्र, कलकत्ता-समाचार, साप्ताहिक हिन्दी, वङ्गवासी, विहार मे साप्ताहिक पाटलिपुत्र और शिक्षा, मासिक श्री कमला युक्त प्रदेश में साप्ताहिक अभ्युदय, और आनन्द आदि मासिक सरस्वती, मर्यादा, मनोरमा, काशीनागरीप्रचारिणी पत्रिका और विद्यार्थी आदि मध्य प्रदेश मे प्रभा, पञ्जाव में हिन्दी समाचार, सद्धर्म प्रचारक, बम्बई में दैनिक श्री वेंकटेश्वर और चित्रमय जगत् ये अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अच्छा काम कर रहे है। युक्त प्रान्त तो आज हिन्दी का महाकेन्द्र ही हो रहा है और उसके अभ्युदय के लिये प्रयत्न कर ही रहा है। उत्साह की वात है कि अभी मातृभापा की सेवा में कुछ पीछे पडे हुये मध्य प्रदेश से भी प्रभा की आशाजनक झलक कभी-कभी आ जाती है और बूढे विहार प्रान्तो मे भी मातृभक्त महाराज हथुवा के अनुग्रह से पाटलि-पुत्र के विशेषाक सरीखी उत्तम सुपाठ्य पुस्तिका देखने में आयी है। वैदिक उषादेवी के सदृश सरस्वती पुरानी होने पर भी युवती है। आज भी हिन्दी जगत् में ऐसी विद्वत्ता और परिश्रम से सम्पादित उपयोगी उत्तम चित्रो मे विभूषित और कोई पत्रिका नही है। दैनिक पत्रो में भारत मित्र का सामना करने वाला दूसरा पत्र नही देख पडा। हिन्दी के अनन्य भक्त वावू रामदीन सिंह का तप फल-स्वरूप वाँकीपुर की शिक्षा और प्रयाग का विद्यार्थी वालशिक्षोपयोगी अच्छा कार्य्य कर रहे है। परन्तु इतने ही से हमारा सन्तोष नही, कम से कम एक प्रकृति विज्ञान पर, एक दार्शनिक विपयो पर एक एक कृषि, शिल्प, वाणिज्य पर एक ऐतिहासिक अनुशीलन पर अच्छी सम्पत्ति-शालिनी नियमपूर्वक निकलने वाली सुविद्वत् सम्पादित चित्रित पत्रिका अपेक्षित है। दो एक उत्तम कक्षा के दनिक पत्र अपेक्षित है। राजधानियो में मन्दराज की ओर से एक-भी हिन्दी का पत्र या पत्रिका नही है। हिन्दी में पूर्ण राष्ट्रीयता लाने के लिये दो एक पत्रो की मन्दराज हाते मे और निजामराज्य मे वडी जरूरत है। देश मे दार्शनिक आन्दोलन और वज्ञानिक अनुसन्धान नही के बराबर है। इनके विना जाति निर्जीवप्राय गर्भावस्था म पडी हुई कही जाती है। ऊपरी नैतिक या मजहवी आन्दोलन के आडम्बर से भी विना दार्शनिक गम्भीरता के, विना उच्च आदर्श कल्पना के और विना वैज्ञानिक शक्ति-सञ्चार के सजीव जातीयता देश में नही लाई जा सकती। जवतक ऐसी स्वतन्त्र पत्रिकाये नही है, तवतक विद्वान् लेखको को सरस्वती और काशीनागरीप्रचारिणी पत्रिका के द्वारा इस कार्य को चलाते रहना चाहिए। छोटे-छोटे सुस्पष्ट, सचित्र, हृदयग्राही दर्शन, विज्ञान, इतिहास आदि के ग्रन्थ देश मे अत्यन्त अपेक्षित है। वावू श्याम सुन्दर दास की मनोरञ्जक पुस्तकमाला इण्डियन प्रेस की ऐतिहासिक ग्र ावली और प्रयागस्थ

विज्ञान परिषद की पुस्तिकाओ से हिन्दी साहित्य का दारिद्र्य कुछ दूर हो रहा है। अभी हाल मे आगते महाशय ने ज्ञान सागर-प्रकाशित किया है। यह छोटा-सा ग्रन्थ छात्रो के लिये वडे काम का है और सर्वसाधारण को भी इसे अवश्य हाथ मे रखना चाहिए। ऐसे दस-वीस ग्रन्थ और बन जायँ तो बडा काम हो। गम्भीर बहुश्रुत विद्वान् तिलक महाशय का अलौकिक परिश्रमसूचक भगवद्‌गीतारहस्य, पण्डित माधवराव सप्रे द्वारा हिन्दी मे परिणमित हिन्दीजगत् मे सुलभ सुपाठ्य दार्शनिक ग्रन्थो की कमी को हटा रहा है। वडे कार्यो मे काशी नागरीप्रचारिणी सभा का हिन्दी शब्द सागर और कलकत्ते का हिन्दी-विश्वकोष वडे महत्व के कार्य्य हो रहे है। पर हिन्दी के पाठको के लिये शीघ्र अपेक्षित, प्रत्येक पाठक के हस्त मे सदा सन्निहित रहने योग्य चार ग्रन्थो की बडी अपेक्षा है। सम्मेलन का धर्म है कि राजेमहाराजो से, साधारण जनता से चाहे जैसे हो द्रव्य इकठ्ठा कर इन चारो ग्रन्थो को शीघ्र सगृहीत तथा प्रकाशित करे और थोडे मूल्य मे सब हिन्दीप्रेमियो के हाथ मे दे। एक तो छायापथ से ताराग्रह आदि निकलने के समय से आजतक का सक्षिप्त जगद्विकाश का इतिहास तैयार होना चाहिये। दूसरा नर जातियो के बुद्धि विकास का इतिहास बनाना चाहिये, जिसमे प्रत्येक जाति की उन्नति-अवनति के कारण स्पष्ट दिखलाते हुए, किस आदर्श की ओर मनुष्य जा रहा है और किस आदर्श का अनुसरण दरअसल इसके लिये कल्याणकारक है, यह बात दिखलाई जाय। तीसरा एक अग्रेजी जन-शिक्षक (पपुलर एजुकेटर के ढङ्ग की) पुस्तिका सर्वसुलभशैली पर प्रकाशित होनी चाहिए जो एक प्रकार का सचित्र बालविश्वकोष का काम करेगी। चौथा, एक दस हजार शब्दो की ऐसी सूची बनने की अपेक्षा है, जिसमे बाइसिकिल, फोनोग्राफ, ऐलेक्जाण्डर, इङ्गलैण्ड आदि वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक सज्ञाओ के लिये देशी नाम भी दिये जायँ जिससे देशभर मे इन विषयो पर बातचीत करने मे कठिनता न पडे और इतिहास, भूगोल आदि का सक्षिप्त खयाल रखने मे अग्रेजी नही जानते हुये सस्कृत-हिन्दी आदि के छात्रो को विशेष कठिनता न पडे। सम्मेलन प्राय छोटे-छोटे काकदन्त परीक्षाप्राय कामो मे भी उलझा-पुलझा करता है। मध्यम दशा मे केवल इसी देश मे नही देशान्तरो मे भी लोग ऐसे विचारो मे फँसे पडे रहते थे। ऐसे कार्य्यो मे फँसे रहने से समय, शक्ति और धन तीनो का निरर्थक नाश हुआ करता है। सुई की नोक पर कितने देव एक बार खडे रह सकते है और कितने एक ही बार उसके छिद्र से गुजर सकते है--इत्यादि विचार मध्यम समय के यूरोप मे विद्वत् सभाओ मे हुआ करते थे। ऐसी कुढङ्गी बातो को छोड कर यदि आठ-दस उप-समितियाँ हमलोग बना लें और उनके द्वारा भाषा-निर्वाचन, दर्शनो का तारतम्य, ऐतिहासिक अन्वेषण, साहित्य-समीक्षा, वैज्ञानिक अनुसन्धान ज्योतिषशैली आदि पर विचार हुआ करे और उच्चकोटि के प्रबन्ध इन विषयो पर लिखवाये जायँ तो सम्मेलन के द्वारा भारत-वर्ष का बडा उपकार हो। इस विनीत निवेदन के बाद अपनी टूटी-फूटी बातो को कह डालने पर क्षमा माँगता हुआ आप

हिन्दी-प्रेमियो से मै उपस्थित कार्यों के अनुष्ठान मे प्रवृत्त होने के लिए सानुरोध प्रार्थना करता हूँ। और स्वागतकारिणी सभा के उदाराशय सभापति महाशय को, सदस्यो को तथा अन्य सहायको को सामान्यत पवित्र नर्मदा तट पर वर्त्तमान इस नगर के उत्साही निवासियो को तथा अनेक कष्ट उठाकर बाहर से आये हुए पत्र-सम्पादको को प्रतिनिधियो को तथा समस्त अन्य हिन्दी-प्रेमियो को सविनय सोत्हास अन्तर्हृदय से कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूँ और आपसे पुन प्रगाढ विनयपूर्वक आशा करता हूँ, कि हिन्दी के आश्रयदाता महाराज गायकवाड, महाराज सिन्धिया, महाराज बीकानेर, महाराज इन्दौर, महाराज अलवर, महाराज दतिया आदि उदारहृदय महापुरुषो के उत्साह का स्मरण रखते हुए भारतीय मान्य नेतृवर्ग के हिन्दी के पक्ष मे सपरिश्रम आन्दोलनो का ध्यान रखते हुए अपने ही जीवन तक नही पृथ्वी पर मनुष्य जीवन के पर्यवसान समय तक आप देशभक्ति के प्रधान अग देश-भाषाभक्ति में अटल रहेंगे।

हिन्दी भाषा विज्ञान

भाषा का विषय तीन भागो में बँटा हुआ है (१) भाषा की उत्पत्ति (२) अनेक भाषाओ का परस्पर सम्बन्ध और भाषाओ का वर्गीकरण, (३) भाषा में परिवर्त्तन। भारतवर्ष की मुख्य भाषा सप्रति हिन्दी है, इस लिए इस व्याख्यान में प्राय हिन्दी ही से उदाहरण लेकर भाषा-शास्त्रीय तत्त्व दिखलाये गये है।

(१) भाषा की उत्पत्ति के विषय मे अनेक मत है। कुछ लोग तो कहते है कि मनुष्य के पूर्व पुरुषो को ईश्वर ने भाषा सिखाई।

(२) कुछ लोग कहते है कि सुख-दुख आदि मे मनुष्य स्वभावत कुछ आह, ऊह, अहा, ओहो आदि शब्द निकालते है। ऐसे ही चलने की खडखडाहट, गाडी की गडगडाहट, ताड आदि पत्तो की फडफडाहट आदि विविध शब्दो का आविर्भाव प्राकृतिक पदार्थो में हुआ करता है। बस इन्ही दो मूलो से मनुष्य ने धीरे-धीरे सब शब्द बना लिये। जैसे किसी पक्षी को काँव काँव करते देख उसे लोग कौवा कहने लगे। ऐसे ही गडगडाती हुई सवारी को गाडी और सरसर चलते हुए जन्तु को सर्प कहने लगे। योही किल्लाना, चिल्लाना, खाँसना, किकियाना, मिमियाना आदि क्रियाओ का भी निर्माण हो गया। यह अमेरिका प्रसिद्ध डाक्टर ह्विट्ली का मत है।

(३) कुछ नीतिज्ञ पुरुषो ने एक तीसरा ही कारण भाषा के उद्भव का निकाला है। वे कहते है कि किसी समय मौन रहने से काम न चलता देख जब मनुष्य बहुत ऊब गये और हाथ, पैर, आँख, भौ के इशारो से भी अपने आशय को न प्रकट कर सके, तब उन्होने एक बडी सभा की और उस महासभा या महामडल में उस समय के जो बुद्धिमान और नई रोशनी वाले थे, उन्होने एक भाषा स्थिर करने का प्रस्ताव किया और सब की सम्मति से सैकडो शब्द स्थिर हुए। मालूम होता है कि इस सभा मे केवल मनुष्य ही नही किन्तु पशु, पक्षी, जड, चेतन सभी इकठ्ठे किये गये थे। कार्य आरम्भ होने के समय मूक मडल मेंव डी चूँ चूँ हूँ हूँ खूँ खूँ मची। अन्तत किसी ने एक बैल को पकड कर कहा 'बइल्ला'। बस सभी चिल्ला उठे 'बइल्ला' और यह निश्चित हुआ कि इस जन्तु को बइल्ला कहना। ऐसे ही अनेक शब्द स्थिर हुए। गाय, भैस घोडे, कुत्ते, जौ, गेहूँ, लोटे-थाली आदि के नाम निश्चित हुए। सभा के पति, उपपति, सपादक आदि नियत हुए। और उस दिन से मूक महामडल के अनेक उपदेशक घूम-घूम कर व्याख्यान की पताका उडाते हुए स्थान-स्थान पर सभा के उद्देश्यो का प्रचार करने लगे।

(४) किन्तु पूर्वोक्त तीनों मतो से असन्तुष्ट हो कर कितने विद्वानों ने एक चतुर्थ मत प्रकाशित किया है जिसके अनुसार ईश्वर की दी हुई एक मनुष्य में अपूर्व भाविक शक्ति है जिससे मनुष्य स्वभावत· शब्द बना लेता है। पूर्वोक्त मतो से असन्तोष का कारण यह है कि पहले मत में यह बात आश्चर्य की है कि यदि मनुष्य को ईश्वर से मिलने के समय भाषा-ज्ञान न था तो ईश्वर से उससे बातचीत कैसे हुई। कोई व्याकरण या कोष जिसके द्वारा ईश्वर ने पुरुषो को भाषा सिखलाई होगी, अवश्य उसके ज्ञान के लिये भी अपेक्षित है। दूसरे मत मे एक बडा दोष यह है कि अनुकरण की रीति से दस या बीस शब्द तो भले ही निकल सकते है, पर सपूर्ण भाषा को अनुकरण-मूलक कहना असगत-सा जान पडता है। यदि गाय को लडको सा, 'बाय' कहा जाता तो ठीक था, किन्तु 'गाय' यह शब्द अनुकरण की रीति से कदापि नही निकल सकता। इसी प्रकार मूक महामंडल वाली बात भी ठीक नही मालूम होती, क्योकि मूको का भाषा-ज्ञान जब था ही नही, तब सभा में बातचीत कैसे हुई ? इस प्रकार यह विदित होता है कि चतुर्थ मत ही, जिसका मैक्समूलर ने भी आश्रय लिया है, ठीक है। अस्तु। भाषा की उत्पत्ति का विचार यदि इस प्रकार समाप्त किया जाय तो दूसरा प्रश्न यह उठता है कि पहले पहल क्या कोई एक ही भाषा ससार मे हुई और उससे अनेक भाषाएँ जहाँ-तहाँ देश-काल, जल-वायु, मनुष्यो के आचार-व्यवहार आदि के भेद से भिन्न हुई या प्रथम अनेक स्थानो में भिन्न-भिन्न ही भाषाएँ हुई और अनेक नदियो के सदृश कभी मिलती, कभी पृथक् होती हुई आज भी अनेक ही है। यह प्रश्न गभीर है और इसका समाधान कठिन है, क्योकि इस प्रश्न का विचार केवल भाषा-शास्त्र के अधीन नही है, भूगर्भ-शास्त्र और मनुष्य-शास्त्र से भी इसका सम्बन्ध है। प्रथम यदि इस बात का निश्चय हो ले कि एक कुटुम्ब से सारी पृथ्वी के मनुष्य निकले है या अनेक कुटुम्बो से, तब इसका भी निश्चय हो सकता है कि सब भाषाओ का मूल एक था या अनेक। भाषा-शास्त्र के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि यदि अरबी, सस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि सब भाषाएँ अपनी धातु अवस्था में पहुँचा दी जायँ तो भी भिन्न-भिन्न वर्ग की भाषाओ के धातुओ मे इतना अन्तर पाया जाता है कि अनेक वर्गो के अनेक मूल थे, ऐसा ही कहना पडता है। मनुष्य-शास्त्र से और भूगर्भ-विद्या से यह ज्ञात होता है कि एक ही समय पृथ्वी पर बहुत जगहो मे मनुष्य वर्त्तमान थे। ऐसा अभी तक नही पाया गया कि पृथ्वी की किसी एक ही तह मे एक ही जगह थोडे से मनुष्य थे, और कही मनुष्य थे ही नही। इन बातो से यह विदित होता है कि इस समय जैसी भाषा-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र आदि की अवस्था है, वैसी अवस्था में भाषा का मूल एक था या अनेक, इसका निश्चय नही हो सकता।

भाषा—शास्त्र का दूसरा विभाग अनेक भाषाओ का परस्पर सबध और वर्गीकरण है। पहले तो यह विदित होता है कि भाषाओ का वर्गीकरण बहुत ही सहज है, क्योकि चीन-वर्ग की जो भाषाएँ है उसके साथ भला हिन्दी का क्या सबध हो सकता है ?

पर वस्तुत. यह कार्य अत्यन्त कठिन है। कभी-कभी राज्य-विजय आदि के कारण प्राय. एक देश के शब्द अनेक देशो में फैल जाते है। जैसे कि भारतीय उर्दू में इतने फारसी शब्द है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि उर्दू फारसी-वर्ग में है या सस्कृत-वर्ग में। इसी प्रकार एक ही देश मे पहाड, नदी आदि के अलंघनीय होने के कारण अथवा भापाओ के प्रयोग करने वालो की जाति, प्रकृति आदि अत्यन्त भिन्न होने के कारण परस्पर भाषाओ मे इतना भेद पाया जाता है कि अत्यन्त समीपवासी दो जातियो की भाषाएँ वस्तुत' भिन्न वर्ग की समझी जाती है। जैसे कि उडीसा के निवासियो की भाषा सस्कृत-वर्ग की है, पर उनके पश्चिम मद्रास प्रान्त वालो की भाषा द्रविड-वर्ग की है। ऐसी अवस्था मे वर्ग कैसे निश्चय करना और समान्यतः कितने वर्ग और अन्तर्वर्ग है, यह यहाँ संक्षेप मे दिया जाता है।

भापा का मुख्य रूप शब्द नही है किन्तु उसकी रचना है। अर्थात् एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में आसानी से जा सकते है, पर भिन्न भाषाओ के व्याकरण की रचना प्राय भिन्न होती है। उदाहरण, एक पडित जी कहते है कि "मुझे वाष्प-शकट के विश्राम-स्थान पर प्रस्थान करना है"। एक बगाली बाबू कहते है कि "हम रेलवे स्टेशन के वास्ते स्टार्ट करने माँगता है।" एक बेचारा गँवार कहता है 'हमरा रेलवई इस्टीसन पर जाय के वाटे।" एक शहरू मुसलमान फरमाते है कि "मुझको रेल के स्टेशन पर जाना है।" मैं समझता हूँ कि किसी को संदेह न होगा कि ये चारों साहब अपने-अपने ढग से हिन्दी ही बोल रहे है, क्योकि शब्द चाहे अग्रेजी के या फारसी के या सस्कृत के हो, जब तक टूटी-फूटी किसी प्रकार की रचना हिन्दी की रहेगी तब तक भापा हिन्दी ही समझी जायगी। अब इसी नियम के अनुसार अर्थात् व्याकरण की रचना के अनुसार वर्ग बनाये जायें तो आर्य, अरबी, तुर्की, द्रविड़, चीनी और स्काडनेव ये छ वर्ग होते है। ये मुख्य वर्ग है इनके अतिरिक्त भी कुछ भाषाएँ है जिनका ठीक वर्गीकरण नही हो सका है। प्राय उत्तर भारत की सब भाषाओ को मिलाकर एक शाखा आर्य भापा की समझनी चाहिए। इसकी दूसरी शाखा पारसी और अवेस्ता की भापा है। तीसरी शाखा लैटिन और ग्रीक है। चौथी शाखा अंग्रेजी, जर्मन आदि। पांचवी शाखा केल्टिक और छठी रूस की भाषा आदि। इस रीति से ज्ञात होता है कि हिन्दी-भापा आर्य-भापा की एक शाखा है।

इस प्रकार भापा-वर्गो का कुछ विचार कर अब भाषाओं की अवस्थाओं का विचार करना है। सामान्यत प्रत्येक भाषा की चार अवस्थाएँ होती है; किन्तु इन चारो अवस्थाओं में इतना अतर है कि एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचने तक सैकडो हजारो वर्ष लग जाते है। देश वदल जाता है, भाषाओ के नाम वदल जाते है, प्राचीन अवस्था से नवीन दशा का आविर्भाव होता है अथवा वह सर्वथा लुप्त हो जाती है, इसलिए एक ही भाषा को चारो अवस्थाओं में पाना दुर्घट है। पर अनेक भापाओ को परस्पर भिन्न अवस्था में देख कर उनका तारतम्य करने से इन अवस्थाओ

का वर्णन किया जा सकता है। (१) धातु-अवस्था (२) समास-अवस्था (३) प्रत्यय-अवस्था (४) उपसर्ग-अवस्था। चीन की भाषा सम्प्रति धातु-अवस्था मे है। शब्दो मे प्रत्यय विभक्तियाँ आदि नही लगती, शब्द परस्पर मिलते नही, शब्द पृथक् पृथक् रख दिये जाते है और एक वाक्य बन जाता है। यदि "मनुष्य आम खाता है" यह कहना होगा तो वे लोग 'मनुष्य' 'आम' 'खा' तीनों शब्दो के लिये चीनी शब्द कहेगे। मनुष्य का बहुवचन कहना होगा तो 'मनुष्य' 'झुण्ड' इन दोनो शब्दो के लिये अपने शब्द कहेगे। अभी तक हिन्दी में भी कभी-कभी ऐसा होता है। जैसे मनुष्य का बहुवचन बनाने के लिये प्रत्यय न रख कर 'मनुष्य लोग' 'मनुष्यगण' कह देते हैं। 'आदमी घर में धीरे-धीरे आम खाता है' ऐसा जब इन लोगो को कहना होता है, तब ये लोग दस हाथ का समस्त एक शब्द कहते है। हिन्दी मे इस समासावस्था का उदाहरण 'इस बारात में खूब-खा-पी-घर-मार-गडबड-सडबड हुआ।' इस पद मे बहुत से शब्द एक साथ मिला दिये गये है। इन दोनो अवस्थाओ के बाद तीसरी प्रत्यय-अवस्था आती है। 'खायँ वे' यह प्राय धातु-अवस्था हुई। दोनो को लोग मिलाकर बोलने लगे तब 'खायँ+वे' यह समासावस्था हुई। जब दोनो शब्द ऐसे मिल गये कि एक अश घिसते-घिसते बहुत दुर्बल हो गया तब 'खावे' यह एक शब्द हो गया जिसमें 'खा' धातु में 'वे' प्रत्यय माना जाता है। इसी प्रकार प्रत्यय किसी न किसी स्वतन्त्र शब्द से निकलते है। यहाँ 'वे' शब्द पहले तो समस्त हुआ पर धीरे-धीरे घिस कर अपना स्वतंत्र रूप खो बैठा और प्रत्यय हो गया। इस तीसरी अवस्था का प्रधान उदाहरण सस्कृत है जिसमे बहुत से प्रत्यय है। चौथी अवस्था उपसर्ग-अवस्था है जिसमे प्रत्यय अलग हो कर फिर स्वतन्त्र हो जाता है जैसा हिन्दी या अग्रेजी मे है। इन भाषाओ में प्रत्यय कम हो गये है, क्योकि बहुत से शब्द, जो सबध-वाचक है, स्वतन्त्र अव्यय-रूप से रहते है। अग्रेजी शब्दो में अव्यय प्राय पहले लगते है। हिन्दी मे अव्यय पीछे लगते है जैसे 'घर में' 'उसका' इत्यादि।

भाषा में परिवर्त्तन हो जाया करता है, यह तो सबको विदित है। अब यह परिवर्त्तन प्राय किन कारणो से होता है, इसका कुछ विचार होना चाहिए। इतने मुख्य कारण भाषा मे परिवर्त्तन के पाये जाते है। (१) देश, (२) आलस्य, (३) धर्म, (४) व्यक्ति-स्वभाव, (५) सपर्क, (६) कविता।

देश के भेद से एक ही भाषा भिन्न-भिन्न रूपो की हो जाती है, इसमें किसी को सन्देह नही है। पक्की हिन्दी मे 'आप जाते है' पश्चिम मे 'आप जाते हो' कहते है। विहार में 'रौआँ जाँतानी' काशी मे 'तू जात हौआ' या 'जात बाट' कहते है। एक ही शब्द भैया, भयवा, भाई, भाय, आदि रूप को धारण करता है। एक ही शब्द गौ, गाय, गैया आदि हो जाता है। देश देश का स्वभाव कुछ भिन्न होता है। जल-वायु आदि के भेद के कारण एक अक्षर जो एक देश में सीधा समझा जाता है, दूसरे देश मे कठिन समझा जाता है। हमारे देश में 'ल' एक सीधा अक्षर है, पर महाराष्ट्र उसे प्राय 'ड़'

कहते है। जापान के एक विद्यार्थी हम से पढते थे। उनका यह कहना था कि 'ल' अक्षर से बढकर और कोई कठिन अक्षर है ही नही। और 'ल' को वे 'अर्ड' कहा करते थे।

अग्रेज लोग भीम को बीम, पडित को पेंडित आदि कहा करते है और 'र' अक्षर का प्राय ठीक उच्चारण नही कर सकते। चीन के लोग क्राइस्ट को किली सेत्तू और बुद्ध को फोतो कहते है। यहाँ के गँवार लोग प्रामिसरी नोट को परमेश्वरी लोट और लाइब्रेरी को लर्बरी या रायबरेली कहा करते है। इस प्रकार प्रत्येक देश के भिन्न-भिन्न दोष गुण है जिनके अनुसार भाषा मे परिवर्त्तन हुआ करता है। सस्कृत लक्ष्मण, लक्ष्मी को बगाली लक्खन और लक्खी कहते है। हिन्दी मे लछिमन या लखन (तुलसी दास) और लक्षिमी कहते है।

परिवर्त्तन का दूसरा कारण आलस्य कहा गया है। कोई शब्द जब अत्यन्त कठिन मालूम होता है तब प्राय मनुष्य उसको बदलने लगते है। कज्जल इतना कठिन है कि इसे बदल कर काजल या काजर कर लिया है। कृष्ण से प्राकृतिक कण्हो हुआ। कण्हो से कान्हा, कान्ह, कन्हैया आदि हो गया। ऐसे श्वसुर का ससुर श्वश्रू का सास, ननादा का ननद इत्यादि। खास हिन्दी शब्दो मे प्राय इतने नियम[1] पाये जाते है। तालव्य श और मूर्धन्य 'ष' हिन्दी के शब्दो मे नही है। सस्कृतज्ञ लोग ही सस्कृत के शब्दो मे इन अक्षरो को लिखते है और बोलते है। इससे हिन्दी मे इन अक्षरो का दत्य 'स' हो जाता है। श्री कृष्ण सिरीकिसुन, श्याम, साम इत्यादि। कही-कही आदि मे मूर्धन्य 'ष' का 'छ' हो जाता है जैसे, षष्ठी का छठ, षष्ठ का छठा। 'ड' और 'ढ' का 'ड़' और 'ढ़' हो जाता है। आषाढ आषाढ़ के लिए, खडगपुर, खड्गपुर के लिए। किन्तु आदि मे 'ड' और 'ढ' मिलते है जैसे डाकू, ढकना इत्यादि। ह्रस्व 'ई' और 'उ' प्राय शब्द के अन्त मे दीर्घ-से हो जाते है। जैसे मुनी लोग, साधू आदमी। 'ऋ' प्राय 'ईरि' हो जाता है, जैसे, कृति कीरित। कही 'ऋ' का 'इ' हो जाता है जैसे, कृष्ण का किशुन। 'लृ' तो सस्कृत मे भी एक ही आध जगह मिलता है, हिन्दी मे कौन पूछे। 'ए' 'औ' का उच्चारण पश्चिमी हिन्दी मे 'अय' 'अव' का सा होता है, जैसे कौन है, ऐसा है। 'ए' 'ओ' हिन्दी कविता मे ह्रस्व भी होते है, 'केहि कारन मोहि मारि कै।' विसर्ग हिन्दी मे नही होता। आदि मे प्राय 'य' को 'ज' कहा जाता है 'यज्ञ' का 'जग'। पर कही पर 'य' भी बोला जाता है जैसे या, याने, यहाँ, इत्यादि। 'व' प्राय 'ब' हो जाता है, पर कही 'व' भी बोला जाता है 'वन' 'वहाँ'। 'ञ' 'ण' ये दोनो अक्षर हिन्दी मे नही मिलते। 'ङ' बहुत कम पाया जाता है जैसे कि अङरखा। पर यह भी यदि अँगरखा लिखा जाय तो ऐसे शब्दो मे भी 'ङ' की स्थिति लुप्त प्राय ही है। सयुक्ताक्षर हिन्दी में बहुत कम है जैसे, क्यो, क्या, अच्छा, पक्का, कच्चा इत्यादि। भाषातर के शब्द हिन्दी मे आने पर प्राय अपने सयुक्त अक्षरो मे से एक को खो बैठते है या दोनो अक्षर अलग हो जाते

---

[1]—ये नियम शुद्ध हिन्दी शब्दो के लिए है। सस्कृत आदि से जो शब्द प्रतिदिन मँगनी लिए जाते है, उनके लिए नही।

या दोनो मिलकर[2] एक तीसरा ही अक्षर बन जाता है। उदाहरण, प्रयाण का पयान हो जाता है। यहाँ 'र' का लोप हो गया। स्नान का अस्नान[3] हो जाता है। यहाँ 'स' और 'न' पृथक् हो गये हैं। लक्ष्मण का लखन हो जाता है यहाँ 'क्ष' का 'ख' एक ही अक्षर हो गया है। ऐसे ही और भी वहुत से परिवर्त्तन के नियम है।

परिवर्त्तन का तीसरा कारण धर्म है। कई प्रकार के धर्म सबधी झूठे व सच्चे नियम यानी शास्त्र विहित अथवा भ्रम द्वारा गृहीत प्राय मनुष्यो के हृदय में जमे रहते है। जैसे, जिन्हें जिस शब्द क उच्चारण से घृणा है, वे उस शब्द को कुछ और कहने लगते है। उनके द्वारा कुटुम्व में, कुटुम्ब के द्वारा देश भर मे ऐसे परिवर्त्तित शब्द कभी-कभी फैल जाते है। स्त्री पति का नाम नही लेती, पति स्त्री का नाम नही लता ऐसे ही अत्यन्त शठो का, पतितो का, गुरु का या खाने की चीजो म निषिद्ध वस्तुओ का नाम लोग नही लेते। पश्चिमोत्तर मे कितने लोग गोभी नही खाते, क्योकि इसमे गो शब्द पडा है। विहार के अगरवाले लोग गोभी कहने से वहुत ही चिढत है और कोभी कहने से मजे से उसे खाते है। किसी के गरु का नाम सतुआदास हो तो वह सतुआ कभी नही कहेगा, सीतल बुकनी कहा करेगा। वस चलो, सीतल बुकनी धीरे-धीरे चल निकला।

परिवर्त्तन का चौथा कारण व्यक्तिस्वभाव है। कितने भगत लोग पाँव लगे, पाँय लागे इत्यादि अशुद्ध शब्दो को छोड कर जय श्री कृष्ण, जय गोपाल, भगत जी राम राम इत्यादि पवित्र वाक्यो का प्रणाम में प्रयोग करते है। उनमें भी कितने सीताराम से चिढते हैं, कितने राधाकृष्ण से और इन नामो को कभी नही कहते। ऐसे ही कितने ही शब्दो का प्रयोग लुप्त हो जाता है और कितने नये शब्द उत्पन्न हो जाते हैं। परिवर्त्तन का पाँचवाँ कारण सपर्क है। जिनका सस्कृत-भाषा से सवंध है या सस्कृतज्ञो से अधिक सपर्क है, उनकी हिन्दी सस्कृत शब्दो से भरी हुई होती है। यहाँ तक कि महामहोपाध्याय लोग और उनके मैथिल शिष्य लोग गलियो में सामान्य पुरुषो से वातचीत करने मे अवच्छेदता, प्रकारता, विषयता, प्रतियोगिता आदि का प्रयोग करने लगते है। ऐसे ही अग्रेजी वालो की हिन्दी और खास कर अग्रेजी की हिन्दी कुछ अपूर्व ही होती है। अग्रेजो को पेशाव करने की इच्छा होती है तो चपरासी से कहते हैं कि हम पानी बनाने माँगता है और घोडी के वदले घोडा लावे तो कहते हैं 'हम सा घोडा मत लाओ, मेम साहव का सा घोड़ा लाओ' यानी घोड़ी लाओ। मुसलमान, कायस्थ आदि लोगो की हिन्दी मगरूर, मुलाहिजा, मुमानियत, मुमकिन, दौलतखाना, गरीव-खाना, फर्माना आदि शब्दो से भरी हुई होती है। साधु लोगो की हिन्दी डोलबाल, छोरा, मिष्टान्न[4] दुर्गन्ध आदि शब्दो से भरी हुई होती है।

२—उदाहरण के लिये दोनो कहा गया है। वस्तुत तीन-चार अक्षर भी मिल सकते है।
३—ऐसे शब्दो मे पहले अ इ आदि भी लग जाता है। असनान, इसटेशन इत्यादि।
४—वरागियो की भाषा में अष्टान्न का अर्थ मिष्टान्न याने मिठाई ह। दुग्ध कहते हैं दुग्ध याने दूध को।

भाषा परिवर्त्तन का छठा कारण कविता है। शब्दो के बहुत से नये रूप अवधी या ब्रजभाषा के व्याकरण के देशान्तरीय कविता मे प्रचार आदि के कारण हुए है। तुलसीदास लिखते है 'हँसब ठठाह फुलाउब गालू। एक सग नहि होइ भूआलू' यहाँ भूआलू है। कही तुकमिलाने के लिये भुआला रहता है, कही भुआली मिलता है। इसको देख कर किसी ने अपने लडके का नाम भुआल दास रख लिया। किसी ने भुआल का अर्थ बेवकूफ समझ लिया, और जब कोई बेवकूफी का काम करता है तब वह कहता है "वडभुआलवाड हो"। ऐसे ही अनेक प्रकार की बोली बानी कबीर की, सूर की, नानक की, सन्यासियो की निकली है। यह व्याख्यान बालको के समक्ष है। इस लिए कठिन गभीर बहुत से भाषा-शास्त्र के नियम छोड दिये गये है।

सभ्यता का विकास

यूरोप के दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और ऐतिहासिकों ने नर-जीवन की उन्नति का क्रम इस प्रकार बताया है—वनमानुष जातियों से जब मनुष्य उत्पन्न हुए तब पहले-पहल उनका निवास गरम देशों के वनों में हुआ। हरे वनों में वृक्षों के आश्रय में रहना और उनके फल-मूल खा कर जीना इनके लिये आसान था। अभी आग उत्पन्न करना और उसे सुरक्षित रख कर खाना पकाने के काम में लाना इन्हें विदित न था। इसलिए शीत प्रदेशों में इनका रहना दुस्तर था। डालियाँ आदि काटने के लिये इनके पास आयुध न थे। जन्तुओं को मारने के भी साधन न थे। अभी परस्पर भाषा-व्यवहार भी ये ठीक से नहीं कर सकते थे। इस पशुप्राय अवस्था में पड़े-पड़े न जाने कितना समय बीत गया। चिरकाल के बाद माता-पिता के योग-विशेष से, और योग्य सन्तानों के बचने और अयोग्यों के मरने से एवं कुटुम्ब के बढ़ने से, सामाजिक जीवन का विकास होने लगा और भाषा-व्यवहार बढ़ने लगा। भाषा-व्यवहार नरत्व का प्रथम चिह्न है। इसके बाद नर-जीवन की तीन अवस्थाएँ हुईं—राक्षसावस्था, वर्बरावस्था और सभ्यावस्था। इन अवस्थाओं में प्रत्येक की तीन दशाएँ हैं—अधम दशा, मध्यम दशा, और उत्तम दशा, इसी रीति से हमें नर-जीवन की नौ दशाएँ मिलती हैं—(१) अधम राक्षस-दशा (२) मध्यम राक्षस-दशा (३) उत्तम राक्षस-दशा (४) अधम वर्बर-दशा (५) मध्यम वर्बर-दशा (६) उत्तम वर्बर-दशा (७) अधम सभ्य-दशा (८) मध्यम सभ्य-दशा (९) उत्तम सभ्य-दशा। इनमें यदि पहले कही हुई पशुप्राय-दशा और आज की झलकती हुई आसन्न दशा मिला ली जाय तो नरजीवन की ग्यारह क्रमिक दशाएँ होतीं हैं। पशुप्राय दशा को छोड़ कर और दशाओं का श्लोकसूत्र यह है—

अग्निर्धनुर्धरो जन्तुरयो लेखोऽग्नि चूर्णकम्।
वाष्पोविद्युद्व्योमयानमित्यय सभ्यताक्रम ॥

इसका अर्थ इस लेख के पढ़ने ही से स्पष्ट हो जायगा। जब भाषा-व्यवहार से ऊपर वर्णित जीवों में कुछ मनुष्यत्व आया और धीरे-धीरे पत्थर की पटिया निकाल कर उनसे अस्त्र का काम ये लोग लेने लगे तब विद्युत्पात से जलती हुई या दावाग्नि से जलती हुई शाखाओं से मनुष्यों ने आग प्राप्त की। फिर लकड़ियों की रगड़ से स्वयं आग निकालना भी उन्होंने सीखा। अग्नि के आविष्कार से मनुष्य को बड़ा लाभ हुआ। अब फल-मूल के साथ मांस-मत्स्य भी पकाकर वह खाने लगा। अब पत्थर की छूरियाँ धीरे-धीरे अधिक तीखी और चिकनी बनने लगीं। पत्थर ही के वर्छे की नोक और दाव

भी बनने लगे। पर दूर से लक्ष्य वेधने का काम इन धातुओ से ठीक न होता था। इसलिए काल पाकर मनुष्यो ने धनुष और बाण बनाना आरम्भ किया। इस दशा को पहुँचने पर आग की सहायता से शीत प्रदेशो मे भी नर-जातियाँ रह सकती थी और बाण के द्वारा वेग से चलते हुए लक्ष्य को भी मारकर उसे आग मे भूनकर खा सकती थी। पर अभी भूनने के अतिरिक्त खाना पकाने की और कोई रीति इनको ज्ञात न थी। इस कारण मिट्टी के बर्त्तन बनाये और आग मे पकाये जाने लगे। तब पके बर्त्तनो मे लोग भोज्य वस्तुओ को उबालकर खाने लगे। आज भी कितनी ही वन्य जातियाँ ऐसी है जिनमें से कुछ धनुर्बाण का प्रयोग तक नही जानती।

बर्त्तन बनाने के बाद गाय, बैल, घोडा, कुत्ता आदि जन्तुओ को मनुष्य पालने लगे। उनसे खेत जोतने तथा ईंट, पत्थर आदि के घर बनाने मे सुभीता हो चला। अब झोपडियों मे रहने वाले शिकारी मनुष्य के पुत्र धीरे-धीरे अच्छे मकानो मे रहने वाले तथा सवारी पर दूर-दूर जाने वाले गृहस्थ हो चले। धान्य बोये जाने लगे और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी।

उस समय गृहस्थ-जीवन मे एक बात की कसर रह गई थी। पत्थर, हड्डी आदि के आयुधो से काम न चलता था। नरम धातु, सोना आदि कम मिलते थे तथा काम भी उनसे ठीक न हो सकते थे। किसी सुलभ और कडे धातु की कृषि, युद्ध आदि अनेक कार्यों के लिये अपेक्षा थी। अन्ततः यह धातु भी हमे मिल गया। उसे साफ करने और पीटने आदि की रीति भी ज्ञात हुई। यह था लोहा। इससे बडा काम चला। लोहे के द्वारा गाडी, रथ आदि बनने लगे। सडकें पीटी जाने लगी। उत्तम इमारतें बनने लगी। शहर और किले तैयार हुए। हड्डियो पर तथा हाथी दाँत पर गैंडे, भैंस आदि की खुदी हुई तस्वीरें बनने लगी। ऐसी कितनी ही चीजें आज तक पृथ्वी के भीतर मिलती है। मनुष्य फलाहारी से शिकारी हुए थे और शिकारी से गृहस्थ। अब लोहा मिल जाने से वे यन्त्र-निर्माता भी हुए। दूर-दूर तक होने वाले वाणिज्य-व्यवहार आदि मे चिट्ठी-पत्री आदि की अपेक्षा पडने लगी। तब कई विकसित बुद्धिवाली नर-जातियो ने पहले चित्रों के द्वारा लिखने की भी शैली निकाली। अब तो भोजन के साधन अग्नि आदि, धन के साधन पशु आदि और विजय के साधन अस्त्र-शस्त्र मनुष्य को मिल ही चुके थे। शिक्षा का साधन लेख-प्रणाली के आविष्कार से साधनसमष्टि की पूर्त्ति हुई। कुम्भकारकला के आते-आते जङ्गलावस्था की तीनों दशाएं निकल चली थीं, लेखशैली निकलते-निकलते बर्बरावस्था की भी तीनों दशाएँ समाप्त हुई और सभ्यता का विकास होने लगा। अब अपने विचारों को मनुष्य दूर-दूर के लोगों मे फैला सकता था। केवल यही नही। लेखों के द्वारा एक पुस्तक की बात दूसरी पुस्तकवाले समझ सकते थे और ज्ञान-विज्ञान क्रमिक आगे बढा सकते थे। संक्षेपतः अब मनुष्य शिक्षित या सभ्य होने लगे। बहुत से लोग लेखावस्था को सभ्य दशा मे गिनते है। कितने ही उसे अर्द्धबर्बरावस्था कहते

है। वस्तुतः चित्रलेख तक बर्बरावस्था ही है, पर वर्ण-लेख के साथ सभ्यावस्था का आरम्भ है।

सभ्यावस्था में मनुष्य ने अनेक उन्नतियाँ की। स्थान-स्थान पर अपने ढंग के सभ्यता-केन्द्र उत्पन्न हुए, बढे और नष्ट भी हुए। अजपुत्र असुर, पारसीक, पणीश, मकरध्वज, यवन, रोमक, माक्षिक (Egyptian, Assyrian, Persian, Phonecian, Carthagian, Ionian, Roman, Mexican) आदि सभ्यताएँ उत्पन्न हुई और नष्ट भी हो गई। केवल दो तीन सभ्यताएँ अनेक दशाओ का भोग कर के वर्त्तमान है। चीन और जापान की सभ्यता और भारतीय सभ्यता अत्यन्त प्राचीन होने पर भी ससार में व्यवस्थित है। इनमे भी भारतीय सभ्यता में एक बडी विलक्षणता है। भारतीय आर्यों की अवस्था वेदो से ज्ञात है। वेदो से अधिक प्राचीन लेख और कही नही मिलते। प्रत्यक्ष लेख तो भारत में अशोक के समय ही से अर्थात् आज से सवा दो हज़ार वर्ष पहले से मिलते है। पर अनुमान से जान पडता है कि लेख-शैली यहाँ अशोक से भी हजार वर्ष या अधिक पहले से विद्यमान थी। वर्बरावस्था का अन्त सभ्यावस्था का आरम्भ लेख-दशा ही में हुआ है। क्योंकि लिखे-पढे मनुष्य ही को सभ्य और शिक्षित कहते है। भारतीय आर्य लेखरहित और अशिक्षित कब थे, इसका किसी को पता नही। अर्थात् भारतीय सभ्यता इतनी प्राचीन है कि इसकी वाल्यावस्था के कोई चिह्न इस समय कही भी भूगर्भ में नही मिलते। पर साथ ही साथ इतनी प्राचीन होकर भी अबतक जीती रहना किसी और सभ्यता के भाग्य मे नही। प्राचीनता में चीनवाले भी भारतीय आर्यो की बराबरी नही कर सकते है।

लेख-शैली के साथ-साथ जो सभ्यता चली उसकी प्रथम दशा आज से प्राय एक हज़ार वर्ष पहले बारूद या अग्निचूर्ण के आविष्कार के साथ समाप्त हुई। लोगो का अनुमान है कि चीन या भारत में ही उसका आविष्कार हुआ। इसके बाद या इसके पहले ही से मध्यावस्था समझी जाती है। आज से प्राय पाँच सौ वर्ष पहले बडे-बडे ज्योतिषियो, दार्शनिको और यात्रियो का आविर्भाव हुआ। इन लोगो ने पृथ्वी को चल बताया, प्राचीन विद्याओ में अनुराग रखते हुए उनसे पूर्ण सन्तोष न पाकर आगे बढने की शैली निकाली, तथा अमेरिका आदि का रास्ता दिखला कर मनुष्यो के आलस्य का नाश किया। इसी समय नवीन सभ्यता का आविर्भाव हुआ, जिसमें भाप और बिजली से चलने-फिरने, लिखने-पढने आदि के कार्य किये जाने लगे। अब इस समय कुछ लक्षण इस नवीन सभ्यता को भी समाप्ति के देख पडते है। मनुष्य अब आकाश में भी यन्त्रो से उड़ने लगे है और समुद्र के भीतर-भीतर भी जहाज चलने लगे है।

यहाँ तक मनुष्य की बुद्धि के बाहरी विकास का क्रम दिखाया गया है। इस विकास में प्राय. पांच सौ वर्ष से यूरोपवाले और देशो से बढ गये है। इसमें सन्देह

नही कि आज भारत और जापान आदि मे बहुत से ऐसे वैज्ञानिक हैं जो यूरोप का सब विज्ञान जानते हैं। पर ये यूरोपियो के शिष्य हैं। अब भारतीयो मे जगद्‌गुरुत्व विज्ञान के विषय में नही रहा।

अब हमें ज्ञान और धर्म के विषय पर विचार करना है और दार्शनिक तथा धार्मिक सम्बन्ध मे ससार मे कैसे उन्नति हुई है, तथा इन विषयो मे भारत का स्थान कौन सा है, यह देखना है। साथ ही साथ इस बात पर भी विचार करना है कि इस समय हमारा कर्त्तव्य क्या है।

भारतीयो की दृष्टि मे मनुष्य की तीन अवस्थाएँ हैं--(१) तामसावस्था, जिसमे आलस और अज्ञान की प्रधानता है, (२) राजसावस्था, जिसमे झगडे और जिद की मुख्यता है, (३) सात्विकावस्था, जिसमें ज्ञान और धर्म की मुख्यता है; और सब बातें गौण हैं। ज्ञान और धर्म का सम्बन्ध भी बहुत बडा है। ज्ञानपूर्वक धर्म को ही धर्म कहते हैं। अद्वैत से बढ कर ज्ञान नही और सर्वोपकार से बढकर धर्म नही है। अद्वैत ज्ञान से सर्वात्मभाव की उन्नति होती है, अर्थात् परमार्थ का प्रचार होता है। इन विषयो में भारत का जगद्‌गुरुत्व आज भी बना हुआ है।

भारत मे तीन प्रकार के लोग हैं। बहुतेरे तो अशिक्षित हैं। कुछ थोडे से लोग मुख्यतया वैदेशिक भाषा आदि के ज्ञाता विद्वान् हैं। थोडे सस्कृत के विद्वान् हैं जो अंगेजी भाषाएँ या तो जानते ही नही, या थोडी जानते हैं। हिन्दी, बँगला आदि मे अभी स्वतन्त्र ज्ञान-विज्ञान है ही नही। इसलिए उनके ज्ञाता या तो सस्कृत या अग्रेजी जाननेवालो के अनुयायी हैं। इनकी पृथक् गणना नही की जा सकती। धार्मिक हठ, विचार की परतन्त्रता, अपने स्वार्थ के लिये ही दुनिया से सम्बन्ध रखना, बिना पैसा लिये किसी के काम न आना इत्यादि नवीन सभ्यता के लक्षण हैं। परस्पर स्वार्थ के धक्के मे रात-दिन द्वेष-मोह, मामला-मुकदमा, चोरी-घूस आदि छोटे-छोटे बखेडो से लेकर वीभत्स युद्ध तक ऐसी ही सभ्यता में होते आये हैं। अतएव कहना चाहिए कि इस अवस्था मे ज्ञान-विज्ञान का सदुपयोग नही हो रहा है।

प्राचीन भारत ने ससार मे ज्ञान-विज्ञान तथा धर्म का प्रचार किया था। भारतीय धर्म के प्रचार से चीन और जापान को सभ्यता और शान्ति लाभ हुआ था। सबकी भलाई, सबका सुख-अर्थात् एक 'सर्व' शब्द ही इस धर्म का मूल मन्त्र था। वैदिक समयों के ऋषियो से लेकर भगवान् कृष्ण और गौतम बुद्ध आदि तक ने समय-समय पर इसी धर्म का प्रचार किया। इस धर्म मे दूसरो को अपने धर्म में लाने की चेष्टा न की जाती थी और अपने सुख के लिये दूसरो की हानि की चेष्टा परम दुख बनाया जाता था। इस कारण धीरे-धीरे ससार मे धार्मिक और नैतिक झगड़े दूर होते जाते थे। भारतवर्ष इस शान्ति का घर हो चला था। दूसरे देशो या दूसरे धर्मो पर आक्रमण करने की बात भारतमाता को न सूझी। किसी के मत्थे हम लोग अन्ध-विश्वास न

मढते थे। सबको प्रमाण-पूर्वक वस्तु-ज्ञान कराते थे। धन जितना अपने लिये रखते थे, उससे कही अधिक परोपकार में लगाते थे। बल का उपयोग दुर्बलो की रक्षा ी में समझते थे। आज भी प्राचीन शिक्षावालो की यही समझ है।

अब तो भीतरी और बाहरी अनेक विघ्न-बाधाओ के फेर में पडकर भारतीय धर्म का घर-बाहर सभी कही ह्रास हो गया है। पर यह धर्म सनातन है। इसका सर्वथा प्राणनाश कभी नही हो सकता। धर्मों की उत्पत्ति होती है और नाश भी होता है। ससार मे अनेक धर्म उत्पन्न हुए और गये। दो-तीन हजार वर्ष पहले कोई धर्म न था। इस समय धर्म में किसी की श्रद्धा नही, पर धर्म का नाश नही है। "धर्म्म एव हतो हन्ति धर्म्मोरक्षति रक्षत"—धर्म के तिरस्कार से भयानक नाश उपस्थित हुए है। धर्म-धर्म चिल्लाते हुए लोग दूसरे का गला घोटते आये है। पर सब की दृष्टि फिर धर्म की ओर जा रही है। बिना धर्म के ऐक्य नही, शान्ति नही, धर्म देश-काल से परिच्छिन्न है। धर्म सनातन और व्यापक है। हाल मे अपने समाज के वार्षिक उत्सव के समय व्याख्यान देते हुए रवीन्द्र बाबू ने भी आजकल की अशान्ति को दूर करने का उपाय विश्व-व्यापक धर्म ही बतलाया है। पर साथ ही अपने-अपने दैववादी मत को ही व्यापक धर्म कहा है। बुद्ध, कपिल आदि निरीश्वरवादियो से ऐक्य नही हो सकता। असली धर्म तो भगवान मनु ने कहा है—

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम् ।।

यही धर्म है। सेश्वर, निरीश्वर किसी भी धर्म से इस धर्मांश मे विरोध नही। प्रमाण से जैसी वस्तु सिद्ध हो उसे विद्वान् बिना झगडे के मान लेते है।

अब यह देखना है कि सनातन और व्यापक धर्म के प्रचार मे बाधाएँ क्यो उपस्थित हुई, और इन बाधाओ से उद्धार के उपाय क्या है। जिनको इस धर्म का ज्ञान है उनका आलस ही इसके प्रचार का बाधक ह और उन्ही का उद्योग उद्धार का उपाय है। यहाँ की बाहरी दशा तो पहले से ही बिगड रही थी। इधर थोडे दिनो से धर्मध्वजियो और नीति-निपुणो ने हमारी भीतरी दशा पर भी आघात आरम्भ किया है। नीतिज्ञो का कथन है कि हमारा सारा उद्योग और धन आदि ऐसी ही बातो पर नष्ट हुआ करे जो अपनी कृति से साध्य नही। उधर धर्मध्वजी चाहते है कि यहाँ पिंड देना या नही और मूर्त्ति-पूजा करना या नही, इत्यादि धार्मिक झगडो से लगाकर दर्शन और विज्ञान को तिलाञ्जलि दे दी जाय और बाप-बेटे, स्त्री-पुरुष आदि मे घोर अशान्ति उत्पन्न कर दी जाय। बाप हिन्दू, तो बेटा आर्यसमाजी। स्त्री हिन्दू, तो पति ब्रह्मसमाजी। ऐसी दशा में कैसे-कैसे झगडे खडे हो रहे है, यह सभी जानते है। देश में नैतिक और धार्मिक अशान्ति धीरे-धीरे बढती जा रही है। इन दोनो अशान्तियो को दबाना समाज का धर्म है।

इन झगडों से बचने का एक उपाय है। अज्ञान, निर्धनता और दुर्बलता—यह सब पाप का मूल है। हमारा समाज समझ जाने पर भी धार्मिक कार्यों से मुह नही मोडता। हिन्दू-विश्वविद्यालय आदि के लिये कितनी खुशी से समाज ने दान दिया है, सो किसी मे छिपा नही। पर समाज की दान-शक्ति और प्रतिग्रह-शक्ति बहुत बडी है। सामाजिक दान और प्रतिग्रह की शक्तियाँ कई प्रकार की हैं—साम्प्रदायिक, नैतिक, धार्मिक इत्यादि। साम्प्रदायिक बातो मे अर्थात मन्दिर, मसजिद, गिरजा, विहार आदि के लिये हम दान देते हैं और पुरोहित-पडे आदि से प्रतिग्रह अर्थात् लाभ भी उठाते है। यह कार्य खूब हो रहा है। नैतिक दान भी हमारा विशाल कर देना उचित है। उससे रक्षा का लाभ भी हमें मिल सकता है। इस दान-प्रतिग्रह के बाद भी समाज मे बहुत धन और शक्ति ऐसी पडी है जिससे ठीक काम नही लिया जा रहा है। इस अवशिष्ट शक्ति का ठीक उपयोग धार्मिक कार्यों में होना चाहिए—'अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्, परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम।" शक्ति के अनुसार सब लोग धन-दान करे और उस दान मे ऐसे धर्म क्षेत्र स्थापित हो, जहाँ धनी-निर्धन सभी प्रामाणिक वस्तु-ज्ञान का, सर्वोपकारी धन का एव सर्वरक्षक बल का लाभ करे। तभी हमारी अद्भुत दान-शक्ति का पूर्ण उपयोग होगा।

तीन कारणो से हम अज्ञ, अधम और दुर्बल हो रहे है। हमें वे पैसे की शिक्षा नही मिलती। पैसा सबके पास पहले ही से होना दुस्तर है। फिर शिक्षा-प्रणाली में लम्बी परीक्षाएँ है, जिनमे ऐसे-ऐसे विषय है जिनका न कोई उपयोग है और न जिनमें ठीक परस्पर सम्बन्ध ही है। इसके अतिरिक्त शिक्षा मे वैदेशिक भाषा द्वार-स्वरूप है। सबको भाषा-ज्ञान के लिये दस वर्ष खर्च करने का अवकाश नही। आजकल की शिक्षा-प्रणाली मे पेशकार, वकील आदि तैयार हो सकते है, पर वाग्भट्ट और भास्कर फिर इस देश मे नही हो सकते। इसलिए हमारा धर्म है कि सामाजिक शक्ति से हम ऐसे धर्मक्षेत्रो की स्थापना का उद्योग करे जहाँ विद्यार्थियो को विना फीस दिये, विना दूसरी भाषा पढे, विना लम्बी परीक्षा के ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति का, पुष्टि-साधन का और धनार्जन-योग्य होने का स्वतन्त्र अवसर मिले। जब इस धर्म के लिये धन देना और इस धर्मक्षेत्र मे ज्ञान आदि लाभ करना लोग सीखेंगे तभी देश का कल्याण होगा। धीरे-धीरे समस्त जगत् मे ऐसे ही धर्म-क्षेत्र स्थापित हो जायेंगे और व्यासोक्त परोपकार-मूलक धर्म के प्रचार से जगत् शान्ति लाभ करेगा।

शाश्वत धर्म प्रश्नोत्तरावली

प्र० १—शाश्वत या सनातन धर्म किसे कहते है ?

उ०—शाश्वत अथवा सनातन धर्म उन कर्त्तव्यों का पालन करना है जिनका प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक स्थान तथा प्रत्येक काल में पालन करना चाहिए।

प्र० २—क्या किसी जाति के रीति-रस्म सनातन कहे जा सकते हैं ?

उ०—नहीं, रीति और रस्म एक-देशीय तथा अल्पकालिक होने के कारण सनातन नहीं कहे जा सकते।

प्र० ३—सनातन धर्म के दर्शनानुसार कौन-कौन प्रमाण हैं ?

उ०—प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द—ये तीन प्रमाण हैं।

प्र० ४—शब्द कब प्रमाण माना जाता है ?

उ०—केवल आज्ञासूचक शब्द ही मानने योग्य है (यानी प्रमाणित है) और आज्ञा के विषय में ही उनका प्रमाण है।

प्र० ५—कैसी बात संदिग्ध होती है ?

उ०—केवल वही बात, जो प्रत्यक्ष और अनुमान से जानी जा सके, तबतक संदिग्ध है जबतक उसका ठीक रीति से प्रत्यक्ष अथवा अनुमान न किया गया हो।

प्र० ६—कैसी बात असगत है और इसलिए कभी सत्य हो ही नहीं सकती ?

उ०—जो बात परस्पर-विरुद्ध हो, अथवा किसी ऐसी बात के विरुद्ध हो जो ठीक रीति से प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से जाँची जा चुकी हो, कदापि सत्य नहीं हो सकती।

प्र० ७—कैसी बात को अवश्य ही सत्य मानना चाहिए ?

उ०—जिसका पक्का प्रत्यक्ष हो चुका हो, अथवा पक्का अनुमान हो चुका हो, वह बात अवश्य ही ठीक है।

प्र० ८—सलाह किसे कहते हैं ? आज्ञा किसे कहते हैं ? और वस्तु-स्थिति (Matter of fact) किसे कहते हैं ?

उ०—यदि कोई साधारण उपदेश फल को विचार कर माना जाए, अथवा न माना जाए, तो उसे सलाह कहते हैं। यदि कोई आज्ञा-सूचक उपदेश, फलदायक होते हुए भी, फल का विचार किए बिना ही, पालन किया जाए तो उसे आज्ञा कहते हैं। जो आज्ञा विषय के बाहर हो तथा है या और होगा के रूप का हो वह वस्तु-स्थिति कहलाता है। आज्ञा से 'होना चाहिए' (Oughtness) तथा वस्तु-स्थिति से अस्तित्व (is-ness) जाना जाता है।

प्र० ९—दिव्य शक्ति किसे कहते हैं ?

उ०—असगतियों से रहित तथा ठीक-ठीक विचार करने की शक्ति दिव्य शक्ति है।

प्र० १०—जादू और अद्भुत किसे कहते है? भूत किसे कहते है?

उ०—जादू और अद्भुत दोनो छल है, जिसे झूठ धर्मवाले अथवा अधर्मी, पाखडी और धूर्त दिखाया करते है, और जिसे वैसे ही मूर्ख लोग सत्य समझते है, जो सतर्कतापूर्वक परीक्षण (Observation) नही करते, और न जो किसी वस्तु को परीक्षित (Experiment) करने का ही कष्ट उठाना चाहते है। विचारो (Ideas) के आतकजनक सयोग या वियोग की स्मृति के कारण बाहरी वायुमडल मे, किसी पुरुष, स्त्री अथवा पशु के आकार की प्रतीति होती है—यही भूत कहलाता है और यह भ्रममात्र है।

प्र० ११- क्या कोई व्यक्ति सर्वज्ञ है?

उ०—कोई व्यक्ति सर्वज्ञ नही हो सकता।

प्र० १२—क्या ईश्वर या कोई देवता या पिशाच किसी के लिए पृथ्वी पर आ सकता है या किसी जानवर आदि के रूप मे देखा जा सकता है?

उ०—नही। ईश्वर सर्वात्मा है (Omni-ontal) और उसके बारे मे आने-जाने की चर्चा सर्वथा असगत है। देवता और असुर केवल मानसिक कल्पना है अथवा असुर अच्छे या बुरे प्राकृतिक तत्त्व। वे कदापि जानवर आदि का रूप धारण नही कर सकते। वे अपनी निश्चित गति का अनुसरण करते है, जो किसी को प्रयोजन-सिद्धि के लिए बदल नही सकती।

प्र० १३—प्रकृति किसे कहते है? क्या प्रकृति को किसी ने बनाया है या प्रकृति स्वयभू (Self-Existent) है?

उ०—जो कुछ है, वह प्रकृति है। प्रकृति स्वयभू है। वह न तो उत्पन्न की गई है, न बनाई गई है। केवल प्राकृतिक तत्त्वो का कृत्रिम सयोग (Combination) ही किसी जीव धारी के द्वारा बनाया जाता है।

प्र० १४—ईश्वर किसे कहते है? क्या ईश्वर और प्रकृति दो वस्तुएँ है।?

उ०—शाश्वत धर्म के सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर और प्रकृति एक ही वस्तु (Identical) है। दोनो में भेद नही है। ईश्वर या प्रकृति के अनन्त भेद है। ईश्वर या प्रकृति स्वय सर्वमय है। जो शरीर का अगो से सबध है वही ईश्वर का विविध वस्तुओ से।

उपोद्घात

कई वर्ष हुए मैंने निर्वचनशास्त्र के आधार पर एक नवीन शैली के व्याकरण की रचना कर "देवनागर" मे प्रकाशित कराया था। यह व्याकरण शैली एक नया आविष्कार है। इस व्याकरण को देख "देवनागर" के सम्पादक की बडी उत्कठा हुई कि इस शैली का एक विस्तृत व्याकरण बने, पर अवसर के अभाव से ऐसा व्याकरण नही बन सका।

गत वर्ष बङ्गीय शिक्षा विभाग के अध्यक्ष महाशय के आदेशानुसार मैंने हिन्दी व्याकरण और वाक्यरचना के पढाने के प्रकार पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखा था। और उसमे मैंने यह सूचित किया था कि प्राचीन शैली के व्याकरण अशुद्धियो से भरे है।

इसके थोडे दिनो के बाद बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष ने मुझसे अनुरोध किया कि, आप हिन्दी का एक व्याकरण अपनी शैली पर लिखें। इस अनुरोध के अनुसार मैंने देवनागर में प्रकाशित अपने व्याकरण की शैली पर एक व्याकरण लिखा। पहले पहल इसको वढ़ाना मैंने अच्छा नही समझा। यदि यह शैली हिन्दी-प्रेमियो को अच्छी जान पडेगी तो इसी आधार पर एक अति विस्तृत व्याकरण बनाया जायगा।

मेरे व्याकरण के देवनागर मे प्रकाशित होने पर हिन्दी के प्रेमी देवनागर के सम्पादक बाबू यशोदानन्दन अखौरी मेरी नवीन आविष्कृत शैली का एक बडा व्याकरण अपनी हिन्दी-ट्रैन्स्लेटिङ्ग कम्पनी के लिये चिरकाल से मुझसे माँगते आते थे। पर अवसर के अभाव से बडा व्याकरण अभी तक नही लिखा जा सका।

खड्गविलास प्रेस ने, आज जो व्याकरण पाठको के सामने है, उसे जब अपने कार्य्यों के लिये पर्याप्त नही समझा तब मैंने बाबू यशोदानन्दन अखौरी जी की चिरकालिक प्रार्थना का स्मरण कर इस व्याकरण को प्रकाशित करने के लिये उनसे अनुरोध किया। मेरे अनुरोध को सादर स्वीकार करने के लिये अखौरीजी को अनेक धन्यवाद है।

आषाढ शु० ५ | रामावतार शर्म्मा।

सवत् १९६७

हिन्दी-व्याकरणसार

वाक्य-विस्तार

भाषा लिखने और बोलने में व्यवहार होता है। परन्तु व्यवहार मे सदा भाषा शुद्ध ही रूप से आवे ऐसा नही देखने मे आता। 'गाय चरती है' के बदले बहुत से लोग 'गाय चरता है' लिख देते है, 'पानी बरसता है' के बदले 'पानी बरसती है' लिख देते है, 'आप जाते है' के बदले कितने ही लोग 'आप जाते हो' लिख देते है। ऐसे स्थलो मे कहना कठिन पड जाता है कि 'गाय चरती है' इत्यादि रूप शुद्ध है या 'गाय चरता है' शुद्ध है। ... पो का निश्चय कर व्यवहार मे यथासम्भव अशुद्धियो को न आने देना व्याकरण का काम है। इस लिए व्याकरण उस विद्या को कहते है जिससे भाषा का शुद्ध रूप जाना जाय।

जो जिस भाषा को पहले ही से जानता है उसे उस भाषा के व्याकरण के जानने से उसका शुद्ध रूप जान पडता है और जो उस भाषा को नही जानते है। उन्हे सुगमता से उसका ज्ञान होता है। व्याकरण के ज्ञान का यह भी फल है कि एक भाषा का व्याकरण जानने से दूसरी भाषा सुगमता से लिखी जा सकती है।

भाषा के मुख्य अङ्ग वाक्य है

जब हम लोग 'गाय चरती है' 'घोडा दौडता है' इत्यादि बोलते है तब वाक्यो का प्रयोग करते है। जिससे कुछ पूरा अर्थ निकले ऐसी बात को वाक्य कहते है। 'गाय चरती है' ऐसा कहने से गाय के विषय में एक बात मालूम होती है। केवल 'गाय' कहने से या केवल 'चरती है' कहने से बात पूरी नही होती इस लिए ऐसे शब्दो को वाक्य नही कह सकते।*

अब यह विचार करना चाहिये कि वाक्य का क्या स्वभाव है और उसके कितने अङ्ग है। जब कोई वाक्य हमलोग बोलते है तब उसमे दो अङ्ग अवश्य रहते है, एक अङ्ग वह है कि जिसके विषय मे कुछ कहा जाय। इस अङ्ग को उद्देश्य कहते है।

---

* नोट—जब कभी 'यह क्या है'? 'गाय क्या करती है'? इत्यादि प्रश्नो के उत्तर में 'गाय ' चरती है' इत्यादि कहा जाता है तो यहाँ 'गाय' का अर्थ 'यह गाय है' और 'चरती है' का अर्थ 'गाय चरती है' इत्यादि समझना चाहिए। इसलिए ऐसे स्थानो में 'गाय' एक वाक्य है, क्योकि 'यह गाय है' इसके बदले मे केवल 'गाय शब्द का प्रयोग है और एक ही शब्द से पूरे अर्थ का बोध हो जाता है।

उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाय वह वाक्य का दूसरा अङ्ग है। इस अङ्ग को विधेय कहते है। गाय चरती है इस वाक्य में 'गाय' उद्देश्य है। क्योकि गाय के विषय में कुछ कहा गया है, 'चरती है' विधेय है क्योकि यही बात गाय के विषय मे कही गई है ।

प्रश्न

(१) गाय, घोडा, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, चिडिया और वृक्ष के विषय मे एक एक वाक्य कहो।

(२) उडती है, दौडता है, खाता है, हरा है, चरती है, भूकता है, इन बातो को उचित शब्द मिला कर पूरा करो।

(३) यह फूल लाल है, हाथी बहुत बडा होता है, कौआ काला होता है, बिल्ली बोलती है, लडका घर से आता है, पुस्तक कहाँ है, लेखनी टूट गई, टोपी गिरी, धोती मैली है, कुत्ता भागता है, इन वाक्यो मे कितना उद्देश्य है और कितना विधेय है, बताओ।

जब हम लोग गाय, घोडा इत्यादि वस्तुओ को देखते है तो उनके विषय मे अनेक विचारें उत्पन्न होते है। इन विचारो को छोटे या बडे वाक्यो के द्वारा देख कर एक लडका दूसरे लडके से कहता है कि 'खेत मे गाय चरती है' ऐसे ही सडक पर घोडे को भागते हुए देख कर लडका बोलता है कि 'सडक पर घोडा दौडता है'। कभी-कभी थोडे मे 'गाय चरती है' घोडा दौडता है' इत्यादि कहते है और कभी-कभी 'हरे खेत में प्रात काल राम की गाय धीरे-धीरे घास चर रही है', 'मेरे घर के समीप सडक पर श्याम का लाल घोडा दौडा जा रहा था' इत्यादि विस्तृत रूप से वाक्य कहे जाते है।

ऊपर यह कहा गया है कि वाक्य के मुख्य अङ्ग उद्देश्य और विधेय है। अब यह समझना चाहिए कि जिन शब्दो से उद्देश्य के स्थान, गुण, रूप, स्वभाव इत्यादि का वर्णन किया जाय उन्हे उद्देश्य का विस्तार कहते है। और जिन बातो से विधेय में कुछ विशेष बतलाया जाय उन्हे विधेय का विस्तार कहते है। 'हरे खेत मे प्रात काल राम की गाय धीरे-धीरे घास चर रही है' इस वाक्य मे 'गाय' उद्देश्य है और 'चर रही है' विधेय है। 'रामकी' उद्देश्य का विस्तार है, 'हरे खेत में प्रात काल धीरे-धीरे' यह विधेय का विस्तार है। उसी प्रकार और वाक्यो मे भी समझना चाहिए।

प्रश्न

(१) गाय चरती है, घोडा दौडता है, बकरी बोलती है, वृक्ष गिरा, लडका आवेगा, इन वाक्यो को उद्देश्य का विस्तार लगाकर बढाओ।

(२) लडकी जाती है, कुत्ता भूकता है, चिडिया उडती है, भेडी आती है, बिल्ली भागती है, भैंस दौडती है, गाय आती है, इन वाक्यो को विधेय का विस्तार देकर बढाओ।

(३) गाय आती है, लडका गाता है, ऊँट आता है, आम गिरता है, भैस बोलती है, बिल्ली आती है, गाय जाती है, इन वाक्यो को उद्देश्य और विधेय दोनो के विस्तार देकर बढाओ।

अब यह देखना है कि उद्देश्य का विस्तार कितने प्रकार से हो सकता है और विधेय का विस्तार कितने प्रकार से। काला घोडा आता है, चलती रेलगाडी से वह कूद गया। मोहन की गाय चर रही है इत्यादि वाक्यो के देखने से जान पडता है कि उद्देश्य के विस्तार के मुख्य तीन प्रकार है * (१) उद्देश्य का गुण कहने से या (२) उद्देश्य का कुछ काम कहने से या (३) उद्देश्य का दूसरे से सम्बन्ध कहने से। क्रम से उदाहरण—लाल घोडा दौडता है—यहाँ 'लाल' घोडे का गुण है, चलती गाडी उलट गई—यहाँ 'चलती' (हुई) गाडी का एक काम है, राम का बैल खेत मे चर रहा है यहाँ 'राम का बैल' से सम्बन्ध जनाया गया।

प्रश्न

(१) छोटे-छोटे पाँच ऐसे वाक्य बनाओ जिनमे गुण कहकर उद्देश्य का विस्तार किया गया हो

(२) छोटे-छोटे पाँच ऐसे वाक्य बनाओ जिनमे काम कहकर उद्देश्य का विस्तार किया गया हो।

(३) छोटे-छोटे पाँच ऐसे वाक्य बनाओ जिनमे सम्बन्ध बतला कर उद्देश्य का विस्तार किया गया हो।

शीघ्र दौडो, आम लाओ, वह जाकर पुस्तक लाया, इत्यादि वाक्यो के देखने से जान पडता है कि विधेय का विस्तार प्राय तीन प्रकार से होता है,—(१) या तो विधेय के विशेषणो से, (२) या कारको से, (३) या पूर्वकालिक से। धीरे चलो, शीघ्र आओ इत्यादि वाक्यो मे 'धीरे', 'शीघ्र' इत्यादि विधेय विशेषण है। खेत मे घोडा चरता है, राम को गाय दो, पुस्तक लाओ, घोडे से गिरा, छुरी से काटो इत्यादि वाक्यो में 'खेत मे' 'रामको' 'पुस्तक' 'घोडे से' 'छुरी से' इत्यादि कारक है। वह खाकर घर गया, राम घोडे से गिर कर उठा इत्यादि वाक्यो मे 'खाकर।', 'गिरकर' इत्यादि पूर्वकालिक है।

कारक उन्हें कहते है जो क्रिया की अर्थात् किसी काम की उत्पत्ति मे सहायता दे। 'राम ने घर में आलमारी से श्याम के लिये हाथ से पुस्तक निकाली' इस वाक्य मे निकालना काम अर्थात् एक क्रिया है। इसकी उत्पत्ति मे सहायक राम, घर, आलमारी, श्याम, हाथ और पुस्तक है। इसलिये ये सब कारक है। पूर्वकालिक का अर्थ है जो काम पहले करके दूसरा काम किया जाय।

---

*नोट—उद्देश्य के विस्तार के और प्रकार वाक्यरचना के प्रकरण मे दिये जायँगे।

रामने घर में आलमारी से श्याम के लिये हाथ से पुस्तक निकाली, इत्यादि वाक्य के देखने से विदित होगा कि क्रिया की उत्पत्ति मे छ प्रकार के सहायक हो सकते है। पहला सहायक वह है जो काम करे* जिसे कर्त्ता कहते है, दूसरा सहायक वह है जिस पर उस काम का असर हो जिसे कर्म्म कहते, तीसरा सहायक वह है जिसके द्वारा काम हो जिसे करण कहते, चौथा सहायक वह है जिसके लिये काम किया जाय। जिसे सम्प्रदान कहते, पाँचवाँ सहायक वह है जिसके आश्रय से करनेवाला काम करे जिसे अधिकरण कहते है और छठा वह है जिसके द्वारा एक वस्तु से दूसरी वस्तु का वियोग होता है जिसे अपादान कहते है।

प्रश्न

(१) दौडता है, जाता है, खाती है, सोती है, इन क्रियायो का कर्त्ता के योग मे विस्तार करो।

(२) आया, गया, लाओ, किया, खाओ, इन क्रियाओ का कर्म के योग से विस्तार करो।

(३) काटा, मारा, लाया, किया, खाया, इन क्रियाओ का करण कारक के योग से विस्तार करो।

(४) आया है, गया था, जाएगी, करेगो, लाई थी, इन क्रियाओ का सम्प्रदान के योग से विस्तार करो।

(५) गिरा, छूटा आये, इन क्रियाओ का अपादान कारक के योग से विस्तार करो।

(६) बैठा है, सोती थी, नहाती है, खाती है, लाया था, इन क्रियाओ का अधिकरण कारक के योग से विस्तार करो।

(७) रामने रावण को मारा, उसने छुरी मे आम काटा, मैंने नदी में स्नान किया, वह श्याम के लिये पुस्तक लाया, वृक्ष से पत्ता गिरा इन वाक्यो मे कारको की पहचान करो।

राम ने मारा, पुस्तक लाओ, छरी से काटो, मोहन के लिये आम लाओ, वृक्ष से पत्ता गिरा, नदी में स्नान करता है इत्यादि वाक्यो के देखने से यह विदित होगा कि कारकों की पहचान के लिये कई विशेष शब्द लगाये जाते है। कर्त्ता मे 'ने' लगाया जाता है, कर्म मे 'को' लगाया जाता है, करण मे 'से' लगाया जाता है, सम्प्रदान में 'को या 'के लिये' लगाया जाता है, अपादान में 'से' लगाया जाता है, और अधिकरण मे 'में' 'पै' 'पर' लगाये जाते है। I

---

*उद्देश्य के विस्तार के और प्रकार वाक्य-रचना के प्रकरण में दिये जायँगे।

I नोट—किन्तु 'आम खाओ' 'लडका घुटनो चलता है' इत्यादि वाक्यो के देखने मे जान पडता है कि कही 'को' 'ने' 'से' इत्यादि शब्द नही भी दिये जाते।

मैंने आम खाया, लडकी खाती है, श्याम आवेगा, यदुनन्दन आया होगा, लल्लू ने रोटी खाई, घोडे दौड रहे है, कमला सो चुकी, मधुमक्खियाँ भनभना रही है, इत्यादि अनेक वाक्यो की परीक्षा करने से स्पष्ट जान पडता है कि 'ने' 'मे' और 'पर' इत्यादि ऐसे शब्द है जिनका रूप सदा ज्यो का त्यो रहता है। ऐसे शब्दो को अव्यय कहते है। और काला-काली, घोडा-घोडे, था, थी, इत्यादि कितने ऐसे शब्द है जिनमे अर्थ के अनुसार उनके रूप मे भेद पडता है। जिन शब्दो के रूप में भेद पडता है वे चार प्राकार के है—सज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, और गुणवाचक या विशेषण। जो किसी वस्तु का नाम हो उसे सज्ञा कहते है, जिससे किसी व्यापार का बोध हो उसे क्रिया कहते है, जो सज्ञा के स्थान मे आता है उसे सर्वनाम कहते है और जिससे सज्ञा का गुण प्रकाश हो उसे गुणवाचक या विशेषण कहते है। इस प्रकार शब्दो के पाँच भेद है, (१) सज्ञा (२) क्रिया (३) सर्वनाम (४) गुणवाचक और (५) अव्यय। उदाहरण—राम, कृष्ण, घोडा, आना, जाना, करना, मै, वह, अच्छा, लाल, काला, था की, ओह! इत्यादि।

प्रश्न

(१) राम आता है, मोहन और सोहन ने आम तोडा, लडकियो ने गाया, मुझे कष्ट मत दो, लल्लू या कल्लू आवे, ईश्वर सब प्राणियो का रक्षक है, राम प्रतिदिन आता था किन्तु आज वह नही आया, मै कल आरा जाऊँगा, काली घोडी अच्छी होती है, उस हरी टोपी को लाओ—इन वाक्यो मे सज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, गुणवाचक और अव्यय बताओ।

जिस प्रकार उद्देश्य का विस्तार हो सकता है उसी प्रकार क्रिया और अव्यय से भिन्न जितने शब्द है सभी का विस्तार हो सकता है। केवल गुणवाचक और सर्वनामो के विस्तार मे कुछ विशेष है। गुणवाचको मे विशेष दिखलाने वाले शब्द क्रियाविशेषण के सदृश होते है। सर्वनामो मे गुणवाचक और सम्बन्ध बोधक नही लगते, केवल क्रिया द्योतक ही विशेषण लग सकते है।

कर्त्ता के विस्तार का उदाहरण—दौडती हुई भैंस ने अपने बच्चे को गिरा दिया। राम के घोडे ने सत्तू खाया। छोटे बालक ने आम खाया—इत्यादि।

कर्म्म के विस्तार का उदाहरण—टेबुल पर रखी हुई पुस्तक लाओ। राम की पुस्तक लाओ। वह जिल्दवाली पुस्तक ले गया था—इत्यादि।

करण के विस्तार के उदाहरण—राम ने रावण को चमकते हुए बाण से मारा। बडी तीक्ष्ण छुरी से उसे काटो। राम की छुरी से काटो—इत्यादि।

सम्प्रदान के विस्तार का उदाहरण—मै उत्तम वर्ग मे पढने हुए श्याम के लिये

यह पुस्तक लाया हूँ। उस काली घोडी के लिये यह लगाम अच्छी है। राम की गाय के लिये मै घास लाया हूँ—इत्यादि।

अपादान के विस्तार का उदाहरण—राम के बगीचे के पेडो से पत्ते गिर रहे है। दौडते हुए घोडे से राम गिर पडा, बडे ऊँचे पर्वत से पानी गिर रहा है—इत्यादि।

अधिकरण के विस्तार का उदाहरण—उस तरङ्ग मारती हुई नदी मे नाव डूब गई। उस बडे चौडे कमरे मे कल हरिकीर्त्तन हुआ था। आजकल राम के तालाब मे पानी एकदम नही है—इत्यादि।

प्रश्न

(१) कर्त्ता, कर्म्म, करण इत्यादि छओ कारको के विस्तार का एक-एक उदाहरण दो।

(२) उस ऊँचे काले घोडे पर वह आज जा रहा था, उस बूढे मनुष्य ने आज बडा काम किया, आज उस बडी तरग मारने वाली नदी मे एक नाव डूब गई, मोहन के लडके के लिये इस पीले अमरूद को ले आओ, अहा! उस ऊँचे झरने से पानी कैसा गिर रहा है, इन वाक्यो मे कर्त्ता, कर्म, करण, इत्यादि कारको के कौन-कौन विस्तार है, बताओ। (३) राम ने मारा, पुस्तक लाओ, कुदाली से कोडो, वृक्ष से पत्ते गिरे, बच्चे के लिये यह खिलौना है, घोडे पर राम जा रहा है, इन वाक्यो को कारको के विस्तार दे कर बढाओ।

अब सज्ञा, क्रिया, सर्वनाम और विशेपण के रूपो मे किस प्रकार कैसे-कैसे विशेष पडता है, सो दिखलाया जाता है।

सज्ञा के दो लिङ्ग, दो विभक्ति और दो वचन होते है।

पुरुष जाति अथवा प्रौढ अर्थ के वाचक शब्द पुल्लिङ्ग होते है। स्त्री जाति या सुकुमार अर्थ के वाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग होते है। जैसे, राजा, रानी, दास-दासी, घोडा-घोडी—इत्यादि। नाम से और धातु से कुछ प्रत्यय* ऐसे आते है जिन्हें विभक्ति कहते है। नाम से दो विभक्तियाँ आती है—प्रथमा और द्वितीया। I

---

*प्रत्यय उन अक्षरमय चिह्नो को कहते है जिनका स्वय कुछ अर्थ नही पर दूसरे शब्दो मे मिलने से उन शब्दो के अर्थ मे परिवर्त्तन करते है। हिन्दी में विभक्तियाँ कभी शब्दो मे इस प्रकार मिल जाती है कि स्पष्ट पृथक् नही मालूम होती। भाषा-तत्त्वज्ञो के मतानुसार किसी समय मे प्रत्यय भी पृथक् सार्थक शब्द थे और घिसते-घिसते वर्त्तमान रूप को पहुँचे है।

I सस्कृत आदि प्राचीन भाषाओ में सात विभक्तियो को देख कर हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओ में भी विचारशून्य व्याकरण लेखको ने सात विभक्तियो की कल्पना की ह। आगे स्पष्ट दिखलाया गया है कि हिन्दी मे दो ही विभक्तियाँ है। सस्कृत की विभक्तियो के बदले हिन्दी मे कैसे काम चलता है, सो आगे दिखाया गया है।

प्रथमा दो प्रकार की है साधार और सम्बोधनार्थक। प्रथमा और द्वितीया दोनो म दो वचन होते है—एकवचन और वहुवचन। एक को कहना हो तो एकवचन होता है और एक से अधिक कहना हो तो वहुवचन आता है।

अकारान्त पुँल्लिङ्ग

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	राम	राम	(हे) राम।
व०	राम	रामो	(हे) रामो।

आकारान्त पुँल्लिङ्ग

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	घोडा	घोडे	घोडा, घोडे
व०	घोडे	घोडो	घोडो

सस्कृत के शब्द राजा आदि में द्वितीया के वहुवचन मे 'आ' और 'ओ' और प्रथमा के वहुवचन मे 'आ' का 'ए' प्राय नही होता।

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	राजा	राजा	राजा।
व०	राजा	राजाओ	राजाओ

इकारान्त पुँल्लिङ्ग

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	हरि	हरि	हरि
व०	हरि	हरियो	हरियो

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	बली	बली	वली।
व०	वली	बलियो	वलियो।

उकारान्त पुँल्लिङ्ग

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	प्रभु	प्रभु	प्रभु।
व०	प्रभु	प्रभुओ	प्रभुओ।

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग

	प्र० सा०	द्वि०	प्र० स०
ए०	लड्डू	लड्डू	लड्डू।
व०	लड्डू	लड्डूओ	लड्डूओ।

हिन्दी मे ऋ आदि स्वरान्त शब्द कम होते है। हो तो द्वितीया वहुवचन मे 'ओ" लगाना चाहिए। और वातो मे कोई विशेष नही है।

स्त्रीलिङ्ग

	अकारान्त		आकारान्त	
	प्र०	द्वि०	प्र०	द्वि०
ए०	बात	बात	गैया	गैया
व०	बातें	बातों	गैयें	गैयों

संस्कृत आकारान्त शब्द में 'ए' 'ओ' पूर्वस्वर में नहीं मिलते यही विशेष है जैसे:—

	प्र०	द्वि०
ए०	लता	लता
व०	लताएं	लताओं *

	ईकारान्त		ऊकारान्त	
	प्र०	द्वि०	प्र०	द्वि०
ए०	नदी	नदी	बहू	बहू
व०	नदियाँ	नदियों	बहुएँ, बहुयाँ	बहुओं

सब शब्दों के सम्बोधन का एकवचन प्रथमा के एकवचन-सा होता है और बहुवचन अनुस्वार रहित द्वितीया बहुवचन-सा होता है। जैसे —

हे राम, हे मनुष्यो, हे नदियो, इत्यादि।

सर्वनामों के रूप दोनों लिंगों में

(सर्वनाम सभी के लिये आते हैं। इनमें सम्बोधन प्राय नहीं होता)

	प्र०	द्वि०	प्र०	द्वि०
ए०	वह	उस, उसे	यह	इस, इसे
व०	वे	उन, उन्हें	ये	इन, इन्हें
ए०	तू	तुझ, तुझे	मैं	मुझ, मुझे
व०	तुम	तुम, तुम्हें	हम	हम, हमें
ए०	जो, जौन,	जिस, जिसे	सो, तौन	तिस, तिसे
व०	जो, जौन,	जिन, जिन्हें	सो, तौन	तिन, तिन्हें
ए०	को, कौन	किस, किसे		
व०	को, कौन	किन, किन्हें ‡		

---

* इन रूपों के देखने से ज्ञात होता है कि पुंल्लिङ्ग अकारान्त तथा आकारान्त शब्दों में 'ओं' 'ओं' इकारान्त एवं ईकारान्त शब्दों में 'यों' और उकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों में 'ओं' 'ओं' विभक्ति चिह्न हैं। स्मरण रखना चाहिये कि बहुवचन में विभक्ति-चिह्न के पहले दीर्घ ई और दीर्घ ऊ ह्रस्व हो गये हैं।

‡ तू तुम आदि मध्यम पुरुष के सर्वनाम, मैं, हम आदि उत्तम पुरुष के और शेष अन्य पुरुष के कहे जाते हैं।

विशेषण में केवल इतना ही भेद पडता है कि आकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग मे ईकारान्त हो जाता है, और विशेष्य यदि बहुवचन हो या उसके आगे यदि कारकार्थक अव्यय अथवा का, के, की, लगा हो तो पुँल्लिङ्ग के अन्त 'आ' का 'ए' हो जाता है। जैसे,—काला घोडा, काली घोडी, काले घोडे मे, काले घोडे का इत्यादि। स्त्रीलिङ्ग मे काली सदा ज्यो का त्यो रहता है। जैसे, काली घोडी ने, काली घोडी का इत्यादि।

'आप' दोनो विभक्तियो और दोनो वचनो मे एक-सा होता है। दो तीन इत्यादि सख्यावाचक शब्द और दोनो-तीनो आदि सख्या समुच्चय शब्द नित्य बहुवचनान्त दोनो विभक्तियो मे एक-से रहते है। एक शब्द एकवचनान्त अविकृत रहता है। अनेक शब्द और बहुत शब्द (सख्यावाचक) नित्य बहुवचनान्त है। जैसे —

	प्र०	द्वि०
ब०	अनेक	अनेको

हिन्दी मे दो विभक्तियाँ और दो वचन कहे गये हैं। सस्कृत आदि भाषाओ मे तीन वचन कहे गये हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। किन्तु आधुनिक भाषाओ मे केवल दो वचनो का प्रयोग किया जाता है। द्विवचन के स्थान मे बहुवचन ही लिखा जाता है। सस्कृत मे सात विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी और सप्तमी। सस्कृत मे यही सात विभक्तियाँ सज्ञा आदि के साथ आने वाली कही गई हैं और कुछ विभक्तियाँ क्रिया के साथ लगाई जाती हैं। विभक्ति उन चिह्नो को कहते हैं जिनसे वचनो का बोध हो और जो दो शब्दो का परस्पर सम्बन्ध बतलावे। हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओ मे वचन बोधक प्रथमा और द्वितीया दो विभक्तियाँ है जैसा ऊपर दिखाया गया है। एक शब्द से दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध के बोध के लिये कही तो इन्ही दो विभक्तियो और कही कारकार्थक अव्ययो का प्रयोग होता है और कही तद्धित के प्रत्ययो से काम चलता है। नीचे की सूची से यह विदित होगा कि सस्कृत की विभक्तियो का अर्थ हिन्दी मे किस प्रकार प्रकाशित किया जाता है।

प्रथमा—प्रथमा
द्वितीया—द्वितीया अथवा 'को' अव्यय
तृतीया—'ने' और 'से' अव्यय
चतुर्थी—'को' वा 'के लिये' इत्यादि अव्यय
पञ्चमी—'से' अव्यय
षष्ठी—तद्धित प्रत्यय 'का' *
सप्तमी—'मे' 'पर' इत्यादि अव्यय

---

* 'का' प्रत्ययान्त विशेषण होते है। इनका रूप आकारान्त विशेषणो के ऐसा होता है, जैसे, पुँल्लिङ्ग मे 'काला' और स्त्रीलिङ्ग में 'काली' बहुवचन आदि मे 'काले' होता है। वैसे ही पुँल्लिङ्ग मे 'रामका' स्त्रीलिङ्ग मे 'राम की' बहुवचन आदि में 'रामके' होता है।

काम अर्थात् क्रिया के प्रकारकृत दो भेद होते है—साधारण और सभाव्य।

साधारणक्रिया मे काम का होना कहा जाता है, सम्भाव्य क्रिया मे कहा जाता है कि ऐसा हो। राम जाता है, श्याम जायगा, बालक गया इत्यादि साधारण क्रिया ह, तुम जाओ, वे जायँ (तो खाना पावेंगे), वृष्टि होती (तो सस्ती होती), इत्यादि सम्भाव्यक्रिया है।* साधारण क्रिया मे कालकृत तीन भेद है—वर्तमान, भूत और भविष्य। सम्भाव्यक्रिया में भी भूत और भविष्य दो भेद हो सकते है। साधारण वर्तमान चार प्रकार का है, शुद्ध—सातत्यबोधक, सन्दिग्ध और स्वभावबोधक। राम जाता है—यह शुद्ध वर्तमान है। राम जा रहा है, यह सातत्यबोधक वर्त्तमान है। राम जाता होगा—यह सन्दिग्व वर्तमान है। पृथ्वी सूर्य्य की चारो ओर चलती है—यह स्वभावबोधक वर्तमान है।

साधारण भूत पाँच प्रकार का होता है—शुद्ध, पूर्ण, आसन्न, सन्दिग्ध और अपूर्ण।

जैसे, राम आया—यहाँ 'आया' शुद्ध भूत है। राम आया था—यहाँ 'आया था' पूर्णभूत है। राम आया है—यहाँ 'आया है' आसन्नभूत है। राम आया होगा—यहाँ 'आया होगा' अपूर्णभूत है।

साधारण भविष्य एक ही प्रकार का होता है। सम्भाव्य क्रिया दो प्रकार की होती है—शुद्ध और हेतुहेतुमत्। शुद्ध सम्भाव्य मे कालकृत भेद नही होता है, जैसे—वे जायँ, तुम आओ इत्यादि। हेतुहेतुमत् सम्भाव्य मे कालकृत दो भेद होते है, भूत—जैसे वह जाता तो खाना पाता और भविष्य—जैसे, वह जाय तो खाना पावेगा।

क्रिया में वाच्य कृत तीन भेद होते है—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। कर्तृवाच्य क्रिया के वचन आदि कर्ता के अनुसार होते है। कर्मवाच्य क्रिया के वचन आदि कर्म के अनुसार होते है। और भाववाच्य क्रिया सदा एकवचन पुँल्लिङ्ग रहती है। वाच्य का भेद केवल भूतकालिक क्रिया में होता है। कर्तृवाच्य के कर्ता में कोई चिह्न नही रहता। कर्मवाच्य के कर्म में कोई चिह्न नही रहता और भाववाच्य के कर्ता मे 'ने'† चिह्न और कर्म में 'को' चिह्न रहता है। जैसे कर्तृवाच्य—राम गया। कर्मवाच्य मैंने रोटी खाई। भाववाच्य—सीता ने सखियो को बुलाया। क्रिया मे पुरुषकृत तीन भेद

---

*विधि और सम्भावना के प्रकाशन की रीति मे हिन्दी में कुछ भेद नही है, इसलिये सम्भाव्य ही क्रिया मे दोनो का अन्तर्भाव किया गया है।

† कर्मवाच्य और भाववाच्य के कर्ता मे सदा 'ने' चिह्न आता है। इसका अपवाद खा जा इत्यादि 'जा' धातु से समस्त धातुओ के प्रयोगो मे पाया जाता है। ऐसे धातुओ के साथ कर्त्ता में 'ने' अव्यय के बदले 'से' अव्यय लगता है, जैसे 'मैं खा गया,' इसका कर्मवाच्य 'मुझसे खाया गया है' नकि 'मुझने खाया गया है'। "खाया गया" "खा जा" इस समस्त धातु का कर्मवाच्य है न कि शुद्ध 'खा' का, जैसा सामान्यत लोग समझते है।

होते हैं उत्तम, मध्यम, और अन्य। 'मैं' 'हम' की* समानाधिकरण क्रिया को उत्तम पुरुष की क्रिया कहते हैं। 'तू' 'तुम' की समानाधिकरण क्रिया को मध्यमपुरुष की क्रिया कहते हैं और इनके अतिरिक्त शब्दो की समानाधिकरण क्रिया को अन्य पुरुष की क्रिया कहते हैं। प्रयोजन के भेद से क्रिया दो प्रकार की होती है—परस्मैपद और आत्मनेपद। पर हिन्दी मे प्रयोजनबोध के लिये कोई विशेष उपाय नही है।

वचन के भेद से क्रिया दो प्रकार की होती है —एकवचन और बहुवचन।

क्रिया के इन भेदो के देखने से यह विदित होता है कि 'अह्' धातु के अतिरिक्त और धातुओ के शुद्ध वर्त्तमान बनाने के लिये 'है' इत्यादि रूपो मे 'जाता' 'जाती' इत्यादि क्रियाद्योतक लगाया जाता है। 'जा रहा है' इत्यादि सातत्यबोधक वर्त्तमान के रूप 'जा' 'रह्' और 'अह्' इन तीन धातुओ को मिलाकर बने हैं। चलता होगा इत्यादि सन्दिग्ध वर्त्तमान के रूप 'चल' और 'हो' धातु से मिलकर बने है। स्वभावबोधक वर्त्तमान का रूप शुद्धवर्त्तमान के सदृश है। 'राम आया' इत्यादि मे वस्तुत 'आया' क्रिया नही है, किन्तु विशेषण है। इसीलिये जैसे 'काले घोडे को लाओ' इत्यादि वाक्य कहते हैं वैसे ही 'आये धन को नही छोडना' 'गयी बात को नही पछताना' इत्यादि बोलते हैं। यही कारण है कि ऐसे शब्दो मे लिङ्ग का भेद होता है, अन्यथा क्रिया मे तो लिङ्ग का भेद किसी भाषा मे होता ही नहीं। हिन्दी मे भी 'है' 'आये' इत्यादि क्रियाओ मे लिङ्ग का भेद नही होता। तो किसी क्रिया मे लिङ्ग का भेद हो और किसी मे न हो इसका क्या कारण ? कारण यही है कि वास्तविक क्रियाओ मे लिङ्गका भेद कभी नही होता। पर आया, गया, इत्यादि विशेषण जब क्रिया के बदले आते है तब उनमे लिङ्ग का भेद होता है। जैसे—'आये धन मे' और 'गयी बात मे' लिङ्ग का भेद हुआ है। वैसे ही 'घोडा आया' और 'गाडी गई' मे भी लिङ्ग का भेद है, क्योकि आया, गया इत्यादि तो वस्तुत विशेषण हैं—कभी-कभी क्रिया का काम देते हैं। राम आया था इत्यादि पूर्णभूत 'आया' और 'था' दो भूतकालिक विशेपणो से बने है। राम आया है इत्यादि आसन्न भूत मे 'है' क्रिया के पहले 'आया' विशेषण लगा दिया है, जैसे—'राम काला है' कहे अथवा 'राम आया है' कहे, केवल 'है' ही क्रिया है, 'आया' विशेषण मात्र है। 'राम आया होगा' इत्यादि सन्दिग्ध भूत मे 'आया' और 'होगा' दोनो विशेषण है, यद्यपि 'होगा' विशेषण के ऐसा कभी प्रयुक्त नही होता तथापि 'होगा' 'होगी' इत्यादि लिङ्ग मे भेद होने के कारण इसे वास्तविक क्रिया नही कह सकते। 'राम जा रहा था' इत्यादि अपूर्ण भूत मे तीन धातुरूप मिले हुए है जो 'जा' 'रह्' और 'अह्' धातु से निकले है। 'आवेगा' साधारण भविष्य है इसमे लिङ्ग का भेद हो सकता है। इसलिये इस रूप को कृत्-प्रत्ययान्त विशेषण कहना उचित है, क्योकि ऊपर कहा जा चुका है कि वास्तविक क्रिया मे लिङ्ग आदि के भेद नही होते। केवल इतना समझना चाहिए कि भविष्यकालिक रूप का भाषा के

---

*दो शब्दो के लिङ्ग वचन आदि जब एक रहते है और जब दोनों एक ही द्रव्य से एक ही सम्बन्ध रखते है तब उन दोनो का समानाधिकरण कहा जाता है।

व्यवहार के अनुसार विशेषण के सदृश प्रयोग नही होता, किन्तु चिरकाल, से क्रिया के सदृश ही प्रयोग चला आता है। पर ऐसे प्रयोग से यह नही कह सकते कि यह वास्तविक क्रिया है। क्योकि यदि किसी देश मे गधे को देवता मानने का प्रचार चला आता हो तो यह नही कह सकते कि वस्तुत. गधा कोई देवता है। इस प्रकार परीक्षा से यह जान पडता है कि धातुओ के वर्त्तमान आदि ऊपर कहे हुए रूप क्रिया नही कहे जा सकते। केवल 'अह' धातु के शुद्ध वर्त्तमान 'है' इत्यादि को क्रिया कह सकते है।

शुद्ध सम्भाव्य 'जाय' इत्यादि वास्तविक क्रिया है जैसा ऊपर धातुरूप के प्रकरण में कहा गया है। इसीलिये इसमे लिङ्गका भेद नही होता। हेतुहेतुमत् सम्भाव्यभूत 'जाता' इत्यादि स्पष्ट ही क्रियाद्योतक विशेषण है इसीलिये इसमे 'जाता' 'जाती' इत्यादि लिङ्ग के भेद हो सकते है। हेतुहेतुमत् सम्भाव्य भविष्य 'जाय' इत्यादि वास्तविक क्रिया है इसीलिये इसमे लिङ्ग आदि का भेद नही होता। इन्ही कारणो से ऊपर धातुरूप के प्रकरण मे यह बतलाया गया है कि वर्तमान और सम्भाव्य दो क्रियाये केवल 'अह' धातु से उत्पन्न हो सकती है, और धातुओ से केवल एक ही सम्भाव्य क्रिया उत्पन्न हुई कही गयी है। हिन्दी के प्रचलित व्याकरणो मे गढे हुए क्रिया के जितने और भेद है वे या तो अनेक धातुओ की मिलावट से बने है या व्यवहार में क्रिया के बदले आने वाले विशेषण आदि है। अब यदि 'राम आता है'---यह वाक्य सामने आवे तो यह नही समझना चाहिए कि 'आ' धातु का वर्तमान रूप 'आता है' है, किन्तु यह समझना चाहिये कि 'राम' कर्ता है; 'है' 'अह' धातु की वर्तमान क्रिया है और 'आता' केवल क्रियाद्योतक विशेषण है। इसीलिये आता-आती-आते इत्यादि उसके भेद कर्ता के अनुसार हो सकते है। 'आता' शब्द के रूप वैसे ही चलेगे जैसे काला, नीला इत्यादि शब्दो के। इसी प्रकार अन्य वाक्यो मे भी समझना चाहिए।

शब्दनिर्वचन

शब्द दो प्रकार के है---समस्त और असमस्त। कई शब्दो का मिलकर एक हो जाना समास कहा जाता है। जो शब्द परस्पर सम्बन्ध रखते है उन्ही मे समास होता है। कई शब्द यदि परस्पर सम्बद्ध रहें तो एक-दो छोड दिये जायँ और औरो में समास कर दिया जाय ऐसा नही होता। समास से उत्पन्न शब्द को समस्त कहते है। समस्त शब्द एक हो जाता है। विभक्ति आदि एक ही जगह अन्त मे लगती है, बीच मे नही लग सकती। समस्त शब्द के खण्ड में पुन किसी का सम्बन्ध नही होता। अनेक सज्ञाओ में या सज्ञा और अव्ययो में जो समास होते है वे प्राय चार प्रकार के है---अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व। तत्पुरुष का ही एक भेद कर्म्मधारय है और कर्म्मधारय का एक भेद द्विगु है।*

---

*हिन्दी मे कर्म्मधारय और द्विगु नही आते, केवल सस्कृत से आए हुए शब्दो मे मिल सकते है।

जब दो शब्द मिलकर अव्यय हो जायँ अर्थात् उनका रूप विभक्तियो मे न बदले तब ऐसे समास को अव्ययीभाव कहते है, जैसे, हाथोहाथ।

जिसमे उत्तर पद का अर्थ प्रधान हो उसे तत्पुरुष कहते है। जैसे—कठफोडवा, मुँहतोड, मुँहचोर, इत्यादि।

जिसमे समस्त पदो से अन्य पद का अर्थ प्रधान हो उसे बहुव्रीहि कहते है, जैसे एकरङ्गा, दुरङ्गा, इत्यादि।

जिसमे दोनो पद के अर्थ प्रधान हो उसे द्वन्द्व कहते है, जैसे दालभात, रामकृष्ण इत्यादि।

इसके ऊपर बीस, तीस इत्यादि दस के अपवर्त्य छोडकर जितने सख्यावाचक शब्द है सब द्वन्द्व समास के उदाहरण है। हिन्दी मे धातुओ में भी समास होता है अर्थात् कई धातु मिलकर एक हो जाते है। जैसे—होजा, खाजा, करसक, खाले, इत्यादि। ऐसे स्थल मे समस्त धातुओ मे से पहले मे विकार नही होता। रूप अन्तिम धातु का-सा होता है। ऊपर की बातो से यह जान पडता है कि सक्षेप मे समास चार प्रकार के होते है—कही तो नाम से नाम मिला रहता है, जैसे रसोईश्वर, कही धातु से धातु मिला रहता है जैसे—खाजा, लेजा, कही नाम और धातु मिले रहते है, जैसे—मुँहतोड, बज्रफोड और कही-कही अव्यय से नाम मिला रहता है। जेसे—प्रतिदिन, यथाशक्ति इत्यादि।

समास के सदृश द्विरुक्त शब्द होते है। कभी-कभी द्विरुक्त शब्द के दोनो शब्द एक ही रूप के होते है, जैसे—चोरचोर, देखोदेखो, मारमार इत्यादि। कभी-कभी अन्तिम शब्द का रूप विकृत सा हो जाता है, जैसे कुछ चावल वावल लाओ, दालवाल खरीदो। कभी-कभी अनेक शब्दो के मिलने पर भी एक ही शब्द रह जाता है, और शब्द लुप्त हो जाते है। जैसे—'हसी और हस को देखो' इसके बदले 'हंसो को देखो' ऐसा कहते है। ऐसे अनेक शब्दो में से वचे हुए शब्दो को 'एकशेष' कहते है।

हिन्दी में पृथक्-पृथक् शब्दो में सन्धियो का दर्शन नही होता पर सस्कृत से आये हुए समस्त शब्दो की बनावट जानने के लिये सन्धिज्ञान का काम पडता है इसलिये समास के प्रकरण के समीप ही सन्धियो का निर्देश करना उचित है। पर सन्धि-ज्ञान में अक्षरो के 'स्थान' और 'प्रयत्न' जानने की अपेक्षा होती है इसलिये यहाँ सक्षेप में अक्षरो के 'स्थान' और 'प्रयत्न' बताकर कुछ सन्धियो का निर्देश किया जाता है।

जो अक्षर अपने से अर्थात् विना सहायता के बोले जा सकते है वे स्वर कहे जाते है, जैसे—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ।

जो अक्षर स्वर की सहायता के विना नही बोले जा सकते है अर्थात् जिनके पहले या पीछे स्वर अवश्य होना चाहिये उन्हे व्यञ्जन कहते है, जैसे :—

ह य व र ल ज ब ग ड द श ष स ह्*	ञ म ङ ण न ख फ छ ठ थ	झ भ घ ढ ध च ट त क प

इनमे 'अ' उच्चारण के लिये है। वस्तुत ह् क् इत्यादि रूप है। 'ह' लिखा जाय तो जानना कि 'ह' मे 'अ' लगा है। इनमे तीस अक्षरो को प्राय. नीचे लिखे हुए क्रम से भी लिखते हैं, जैसे :—

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ	ट ठ ड ढ ण त थ द ध न	प फ ब भ म य र ल व	श ष स ह

व्यञ्जनो के पहले या पीछे उच्चारण के लिये स्वर अवश्य प्रयोगो मे आता ह। जैसे 'का' 'अब' इत्यादि। शुद्ध हिन्दी के शब्दो मे प्राय· कवल व्यञ्जनो मे भी 'अ' लगा रहता ह, अर्थात् खण्ड व्यञ्जन 'ब्' इत्यादि नही लिखते, किन्तु ब इत्यादि रूप से लिखते हैं। ङ और ल सस्कृत ही के शब्दो मे आते हैं। ऌ सस्कृत में भी केवल क्लृप्त आदि दो-चार शब्दो मे आता है। स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। ह्रस्व का उच्चारण स्वर के उच्चारण के लिये कम से कम समय मे होता है। दीर्घ दूने समय मे और प्लुत तिगुने समय मे उच्चारित होता है। ऌ दीर्घ नही होता। ए ऐ ओ औ ह्रस्व नही होते।[1]

दीर्घ स्वर—आ, ई, ऊ, ॠ, ए ऐ, ओ, औ।

प्लुत——आ३ ई३ ऊ३ ॠ३ ए३ ऐ३ ओ३ औ३।

प्लुत का उपयोग सम्बोधन आदि मे होता है जैसे—हे कृष्ण३।

दो या अधिक व्यञ्जन बीच मे जब स्वर के बिना मिलते हैं तो सयुक्त कहे जाते हैं। सयुक्त वर्ण प्राय शुद्ध हिन्दी के शब्दो मे नही आते।

अनुस्वार और विसर्ग स्वरो के अनन्तर आते हैं। जैसे—क, स, नि इत्यादि।[2]

सब स्वर और य र ल व नाक से भी बोले जाते हैं। तब वे सानुनासिक वा अनुनासिक भी कहे जाते हैं।

---

*नोट—यह महर्षि पाणिनिके वर्णसमाम्नाय का क्रम है। स्वरो के बाद क्रम से कडे से कडे व्यञ्जन आये हैं और 'प' के बाद फिर मृदु हुए है, इसीलिये 'ह' दो-बार आया है क्योकि वह मृदु से मृदु व्यञ्जन है। वर्णमाला मे इसे मेरु स्वरूप समझना चाहिए।

[1]पर हिन्दी कविता मे ए और ओ ह्रस्व दीर्घ दोनो प्रकार से बोले जाते हैं।

[2]अनुस्वार और विसर्ग भी शुद्ध हिन्दी के शब्दो मे प्राय. नही आते।

कितने अक्षर शिथिल उच्चारण से भी बोले जाते हैं। शुद्ध हिन्दी शब्दो मे ऐ (अय्), औ (अव्) शिथिल ही उच्चारित होते हैं। जैसे—है, हो, इत्यादि।

ड, ढ भी प्राय शिथिल ही आते हैं। जैसे—अढाई, कडाई, इत्यादि।

[1]भाषान्तर के शब्दो मे ज, क, फ, ब, ग, आदि अक्षर भी शिथिलोच्चारणहोते हैं।

[1]ह्रस्व स्वर को लघु भी कहते हैं। दीर्घ स्वर को और जिस स्वरके परे सयुक्त व्यञ्जन रहे उसे गुरु कहते हैं।

अ आ आ३ क ख ग घ ङ ह और विसर्ग का कण्ठ स्थान है। इ ई ई३ च छ ज झ ञ य श का तालु स्थान है। ऋ ॠ ॠ३ ट ठ ड ढ ण र ष का मूर्द्धा स्थान है। लृ त थ द ध न ल स का दाँत स्थान है। उ ऊ ऊ३ प फ ब भ म का ओठ स्थान है। ङ ञ ण न म का अपने-अपने स्थान के अतिरिक्त नासिका भी स्थान है। ए ऐ का कण्ठ और तालु स्थान है। ओ औ का कण्ठ और ओठ स्थान है। व का दाँत और ओठ स्थान है। अनुस्वार का नाक स्थान है। 'प्रयत्न' दो प्रकार के होते हैं—आभ्यन्तर और बाह्य। बाह्य प्रयत्न ग्रन्थ बढने के भय से यहाँ नही दिखाया जाता। हिंदी के छात्रो को इसके जानने की अपेक्षा भी नही है। आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के हैं—अल्पस्पृष्ट, पूर्णस्पृष्ट, अल्प विवृत, पूर्णविवृत और सवृत। य र ल व का अल्पस्पृष्ट प्रयत्न है। श ष स ह का अल्पविवृत प्रयत्न है। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म का पूर्णस्पृष्ट प्रयत्न है, अ छोडकर, सब स्वरो का पूर्णविवृत प्रयत्न है, ह्रस्व अ का सवृत प्रयत्न है।

दो अक्षरो की मिलावट को सधि कहते हैं। कही-कही दोनो अक्षरो मे परिवर्तन होता है। कही-कही एक ही मे परिवर्तन होता है, दूसरा ज्यो का त्यो रहता है। कही-कही दोनो के बदले तीसरा ही अक्षर आता है। जब सधि मे अथवा और किसी प्रकार से एक अक्षर से दूसरा अक्षर होने लगता है तब प्राय· पहले अक्षरो के बदले आनेवाला अक्षर स्थान और प्रयत्न से जहाँतक हो सदृश होता है। यही अक्षरो के बदलने का तत्त्व है और इसी विषय मे स्थान प्रयत्न के ज्ञान का उपयोग है।

(१) [2]ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ ऋ के बाद क्रम से ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ ऋ आवे तो दोनो मिलकर उसी क्रम से दीर्घ आ ई ऊ ॠ हो जाते हैं। जैसे, रत्न+आकर=रत्नाकर, प्रति+इति=प्रतीति, विधु+उदय=विधूदय, पितृ+ऋण=पितॄण, इत्यादि।

(२) ह्रस्व या दीर्घ इ उ ऋ के बाद कोई भिन्न स्वर हो तो क्रम से इ का य्, उ का व्, ऋ का र् हो जाता है जैसे—प्रति+अङ्ग=प्रत्यङ्ग, अनु+अय=अन्वय, भ्रातृ+अर्थ=भ्रात्रर्थ इत्यादि।

---

[1] ऐसे अक्षर फारसी अग्रेजी आदि भाषाओ मे प्राय मिलते हैं। हिन्दी मे भी इन भाषाओ के शब्द कभी-कभी प्रयुक्त मिलते हैं।

१ कविता मे इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं।

[2] प्लुत अक्षरो में सधि प्राय. नही होती।

(३) ए ऐ ओ औ के बाद स्वर होने से क्रम से ए का अय्, ओ का अव्, औ का आव् होता है। जैसे,—नै+अन=नयन, भो+अन=भवन, पौ+अक=पावक, नै+अक=नायक, इत्यादि।

(४) ह्रस्व या दीर्घ अ के बाद ह्रस्व या दीर्घ इ हो तो दोनो मिलकर ए हो जाता है। ह्रस्व या दीर्घ अ के बाद ह्रस्व या दीर्घ उ हो तो दोनो मिलकर ओ हो जाता है। ह्रस्व या दीर्घ अ के बाद ह्रस्व या दीर्घ ऋ हो तो दोनो मिलकर अर् हो जाता है। जैसे—महा+ईश=महेश, गज+इन्द्र=गजेन्द्र, महा+उदय=महोदय, देव+ऋषि देवर्षि, इत्यादि।

(५) अ या आ के बाद ए या ऐ रहे तो मिलकर ऐ होता है, अ या आ के बाद ओ या औ रहे तो मिलकर औ होता है। जैसे—एक+एक=एकैक, महा+ऐश्वर्य=महैश्वर्य्य, महा+ओघ=महौघ, महा+औदार्य्य=महौदार्य्य, इत्यादि।

(६) स या तवर्ग के पहले या पीछे श या चवर्ग रहने से स और तवर्ग का क्रम से श और चवर्ग हो जाता है। जैसे—निस्+चय=निश्चय, समुत्+चय=समुच्चय, उत्+चारण=उच्चारण, इत्यादि।

(७) प्राय पद के अन्त मे वर्गो के प्रथम तृतीय अक्षरो के स्थान मे पञ्चम वर्ण हो जाता है यदि आगे किसी वर्ग का पञ्चम वर्ण हो तब। जैसे—वाक्+मय =वाङ्मय, उत्+नति=उन्नति, इत्यादि।

(८) ल के पहले त का ल और न का सानुनासिक लँ होता है। जैसे—तत्+लीला=तल्लीला, महान्+लाभ=महाँल्लाभ, इत्यादि।

(९) पद के अन्त मे प्राय वर्गो के प्रथम अक्षर का तृतीय अक्षर हो जाता है, वर्गो के प्रथम और द्वितीय और श ष स परे न हो तब। वाक्+ईश=वागीश, दिक्+गज =दिग्गज, अप्+धि=अब्धि, इत्यादि।

(१०) स्वर के बाद छ रहने से छ के पहले एक च आ जाता है। स्व+छन्द =स्वच्छन्द, प्रति+छाया=प्रतिच्छाया, इत्यादि।

(११) विसर्ग के पहले और पीछे अ हो तो तीनो मिलकर ओ हो जाता है। जैसे—मन+अवधान=मनोवधान, इत्यादि।

(१२) विसर्ग के पहले अ हो और आगे वर्गो के प्रथम द्वितीय और श ष स छोडकर कोई व्यञ्जन हो तो अ और विसर्ग मिलकर ओ हो जाता है। जैसे—मन+रथ+मनोरथ, सर+ज=सरोज, मन+ज=मनोज, पय+द=पयोद, इत्यादि।

(१३) त थ और स के पहले विसर्ग का स होता है। जैसे—नि:+तार=निस्तार, नि+सार=निस्सार, इत्यादि।

(१४) च छ और श के पहले विसर्ग का श होता है। जैसे—नि:+चल=निश्चल, नि:+छल=निश्छल, नि+शरण=निश्शरण, इत्यादि।

(१५) ट ठ और प के पहले विसर्ग का ष होता है। जैसे—धनु+टकार=धनुष्टंकार, इत्यादि।

(१६) अ आ के अतिरिक्त किसी और स्वर के बाद विसर्ग हो तो उसका र् हो जाता है वर्गो के प्रथम द्वितीय और श ष स के अतिरिक्त कोई अक्षर परे रहे तब। जैसे—वहि+गत=वहिर्गत, नि+वाद=निर्वाद, दु+गति=दुर्गति, इत्यादि।

सस्कृत मे ऊपर दिये हुए सन्धि के नियमो के अतिरिक्त और भी बहुत से सन्धि के नियम है जिनका प्रयोजन हिन्दी मे बहुत ही कम पडता है इसलिए ऐसे नियम यहाँ नही दिये गये है।

ऊपर कहा गया है कि शब्द दो प्रकार के होते है—'समस्त' और 'असमस्त' और समस्त शब्दो का सक्षिप्त वर्णन भी किया जा चुका है। अब 'असमस्त' शब्दो के विषय मे कुछ कहना है। 'असमस्त' शब्द दो प्रकार के है—'व्युत्पन्न' और 'अव्युत्पन्न'। जो शब्द किसी दूसरे शब्द मे कोई प्रत्यय लगाकर बनते है वे 'व्युत्पन्न' कहे जाते है और जिनमे प्रत्यय नही लगे है वे 'अव्युत्पन्न' कहे जाते है। अव्युत्पन्न शब्दो का जड-पता वताना भाषातत्त्व का काम है। व्याकरण का काम केवल व्युत्पन्न शब्दो का जड-पता बताना है। अव्युत्पन्न शब्द चार प्रकार के होते है—नामज नाम, नामज धातु, धातुज नाम, और धातुज धातु। क्रिया के अतिरिक्त जितने शब्द है सभी को सस्कृत मे नाम कहते है। यहाँ इस व्याकरण मे भी नाम शब्द का यही अर्थ समझा गया है। जिन प्रत्ययो के लगाने मे नामज नाम बने है वे दो प्रकार के है—स्त्रीप्रत्यय और तद्धित। नामज धातु को नामधातु भी कहते है। जिन प्रत्ययो से धातुज नाम बनता है उन्हे कृत्प्रत्यय कहते है।

नामज नाम अर्थात् स्त्रीप्रत्यान्त और तद्धितान्त

(१) स्त्रीप्रत्यय

जिन प्रत्ययो के लगाने से पुल्लिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग हो जाते है उन्ही को स्त्रीप्रत्यय कहते है। ई, नी, आनी, आइन, आई, इन, इया, इत्यादि स्त्रीप्रत्यय है।

ई—घोडी, पगली, करनेवाली, विल्ली, भेडी। प्राय आकारान्त शब्दो का स्त्रीलिङ्ग ऐसे ही बनता है।

नी—सिंहनी, राजपूतनी।

आनी—पण्डितानी, महन्थानी, गुरुआनी,

आइन—गुरुआइन, सहुआइन।

आई—लुटाई।

इन—डोमिन, पण्डाइन।

इया—लोटिया (यहाँ स्त्रीप्रत्यय लघुत्वार्थक है)। कही कही पुल्लिङ्ग शब्दो मे स्त्रीप्रत्यय लगाने के समय कुछ परिवर्त्तन भी हो जाता है। जैसे—राजा, रानी।

(२) सादृश्यार्थक प्रत्यय

सा, हरा, आदि सादृश्यार्थक प्रत्यय हैं, जैसे—कालासा, ऐसा, कैसा, वैसा, तैसा, जैसा, सोनहरा, रुपहरा, इत्यादि ।

(३) लाघवार्थक प्रत्यय

वा, या आदि लाघवार्थक प्रत्यय हैं, जैसे—घोडवा, घोडिया, इत्यादि ।

शब्दो को सक्षिप्त कर देने से भी छोटे अर्थ का बोध होता है, जैसे—राजेन्द्रका राजू या राजा । ऐसे प्रयोग प्राय प्रेमद्योतन करने के लिये आते हैं ।

(४) महत्त्वार्थक प्रत्यय

अङ्ग इत्यादि महत्त्वार्थक प्रत्यय हैं, जैसे—लठङ्ग (अर्थात् बडी लाठी), इत्यादि ।

(क) उत्कर्षार्थक प्रत्यय 'तर' और 'तम' हैं । दो में अधिक कहना हो तो 'तर' आता है । बहुत मे अधिक कहना हो तो 'तम' आता है जैसे—लघुतर, लघुतम ।

(ख) समूहार्थक प्रत्यय 'आयत' आदि हैं, जैसे पञ्चसमूह पञ्चायत ।

(५) सम्बन्धवाचक प्रत्यय

सम्बन्धवाचक प्रत्यय 'का' 'रा' (स्त्रीलिङ्ग 'की' 'री') 'या' 'ऊ' 'वाला' 'हारा' (स्त्रीलिङ्ग 'वाली' 'हारी') आदि हैं, जैसे—उसका, मेरा, [1] गँवइया, शहरू ।

(६) पूरणार्थक

एक—पहला दो—दूसरा, तीन—तीसरा, चार—चौथा, पाँच–पाँचवा, छ—छठा, सात—सातवाँ, आठ—आठवाँ, नव—नवाँ, दस—दसवाँ । इसके बाद सब मे 'वाँ' लगता है ।

संस्कृत मे जन्यजनक भाव के तथा सामान्य सम्बन्ध के बोधक 'अ' 'इ' 'एय' 'इय' 'ईय 'ईन' इत्यादि प्रत्यय हैं, जसे—शिव से शैव, पाण्डु से पाण्डव, दशरथ से दाशरथि गङ्गा से गाङ्गेय, रथ से रथिक, मालव से मालवीय, वङ्ग से वङ्गीय, विश्वजन से विश्वजनीन इत्यादि ।

संस्कृत में स्वत्वबोधक प्रत्यय मत्, वत्, इन्, धन से धनवत (पुल्लिग मे धनवान, स्त्रीलिंग में धनवती । विन्, इत्यादि हैं , जैसे—श्री से श्रीमत् (पुल्लिङ्ग मे श्रीमान् स्त्रीलिङ्ग में श्रीमती) कर से करिन् (पु० मे करी, स्त्री० मे करिणी) हस्त से हस्तिन् (पु० में हस्ती, स्त्री० में हस्तिनी) माया से मायाविन् (पु० में मायावी, स्त्री० में मायाविनी) इत्यादि ।

संस्कृत मे कई सहस्र तद्धित प्रत्यय हैं जिनका विशेष वर्णन हिन्दी के व्याकरण में असम्भव है ।

---

[1] उसका मेरा इत्यादि तद्धित शब्दों के रूप काला, गोरा इत्यादि विशेषण शब्दों के सदृश होते हैं ।

यहाँ जो प्रत्यय नही कहे गये है उन्हे शब्दो की परीक्षा कर स्वय अनुमान कर लेना चाहिए। जैसे—लोमश मे लोम शब्द से स्वत्वार्थक 'श' प्रत्यय है, पुच्छल मे पुच्छ शब्द से स्वत्वार्थक 'ल' प्रत्यय है, इत्यादि। 'ल' 'श' इत्यादि सस्कृत प्रत्ययो के जोडने मे भी हिन्दी भाषा सर्वथा सस्कृत का अनुसरण नही करती। सस्कृत के नियमो के विरुद्ध भी हिन्दी शब्दो मे प्राय सस्कृत प्रत्यय पाये जाते है।

नामज धातु या नामधातु

प्राय नाम से धातु बनाने के लिये 'आ' या 'या' लगते है, जैसे—खटखट से 'आ' लगाकर खटखटाता है, इत्यादि बनते है। पानी से 'या' लगाकर पनियाता है, इत्यादि। इसी प्रकार लात से लतियाना, हाथ से हथियाना, इत्यादि बनते है।

धातुजनाम या कृदन्त

शुद्ध काम का बोध कराने के लिये धातु मे 'ना' लगा दिया जाता है। जैसे—जाना, खाना, गाना, सोना, बोना, इत्यादि। कही-कही 'आई' 'आव' इत्यादि प्रत्यय भी धातु के आगे लगाये जाते है, जैसे—पढाई, चढाव, इत्यादि। काम जारी रखने का बोध कराने के लिये ता प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—जाता, खाता, गाता, सोता, इत्यादि किन्तु स्त्रीलिङ्ग मे 'ता' का ती हो जाता है, जैसे—आती खाती, गाती, सोती, इत्यादि। पूर्ण हुए काम के बोध के लिये प्राय 'आ' अथवा 'या प्रत्यय लगता है जैसे—हुआ, गया, खाया, सोया, गाया इत्यादि। किन्तु स्त्रीलिङ्ग मे आकार का ईकार हो जाता है। जैसे—हुई, गयी, खायी, सोयी, गायी, इत्यादि। किसी-किसी धातु मे 'आ' लगाते समय बहुत परिवर्त्तन हो जाता है। जैसे—अह धातु से था, थी इत्यादि।

सस्कृत आदि भाषाओ मे भूतकालिक क्रिया का जैसा प्रयोग होता है, वैसा ही हिन्दी मे प्राय गया, खाया, सोया, इत्यादि का प्रयोग होता है। खाया, गया इत्यादि रूप सकर्मक धातु से उत्पन्न हो तो प्राय कर्मवाच्य होते है और अकर्मक धातु से उत्पन्न हो तो कर्तृवाच्य होते है। किसी-किसी वाच्य मे सकर्मक धातु से उत्पन्न होने पर भी बुलाया इत्यादि भाववाच्य हो जाते है। कर्तृवाच्य प्रयोग के लिङ्ग, वचन, कर्त्ता के लिङ्ग वचन के अनुसार, कर्मवाच्य प्रयोग के लिङ्ग वचन कर्म के लिङ्ग, वचन के अनुसार और भाववाच्य प्रयोग के लिङ्ग वचन सदा पुल्लिङ्ग और एक वचन होते है। उदाहरण—

* कर्तृवाच्य—बालक गया, बालिका आयी, वीरलोग आये, इत्यादि।

कर्मवाच्य—मैने आम खाया, उसने रोटी खायी, राम ने केले खाये, इत्यादि।

---

*साधारण व्याकरण मे 'रामने खाया' इसको कर्तृवाच्य समझ के 'राम से खाया गया' यह इसका कर्मवाच्य बतलाया जाता है। वस्तुत 'खाया गया' केवल 'खा' धातु का रूप ही नही है, यह तो 'खा जा' समस्त धातु का रूप है।

भाववाच्य—रामने रावण को मारा, वानरो ने राक्षसो को मारा, सीताने सखियो को बुलाया, आज मेरे यहाँ खाया जाय, इत्यादि।

कर्तृवाच्य के कर्त्ता मे कोई चिह्न नही रहता, कर्मवाच्य मे कर्म मे कोई चिह्न नही रहता और भाववाच्य मे कर्ता और कर्म दोनो मे चिह्न रहते है। जो क्रिया होने वाली है उसके वोध के लिये धातु मे 'गा' प्रत्यय लगता है, किन्तु स्त्रीलिङ्ग मे 'आ' का 'ई' हो जाता है और बहुवचन मे 'आ' का 'ए' हो जाता है। प्राय धातु और 'गा' के बीच मे 'य' अथवा 'ए' 'वे' इत्यादि लगते है। बहुवचन मे अक्षर सानुनासिक हो जाते है, जैसे, जायगा, पढेगा, आवेगा, इत्यादि और बहुवचन मे जायँगे, पढेगे, आवेंगे, इत्यादि। एक काम करके कोई दूसरा काम किया जाय तो पहली क्रिया के वाचक धातु मे 'कर' लगता है जैसे—जाकर खाकर, इत्यादि।

धातुज धातु।

धातु से अनेक प्रकार के धातु वनते है, जैसे, प्रेरणार्थक, अतिशयार्थक, इच्छार्थक, इत्यादि।

(१) प्रेरणार्थक—'पी' से पिला, 'दे' से दिला, 'खा' से खिला, 'सो' से सुला, 'देख' से दिखा, दिखला इत्यादि।

(२) अतिशयार्थक—'टर्रा' से टरटरा।

(३) इच्छार्थक—'पीया' से पियासना, 'भूकना' से भुकवासना, इत्यादि।

वाक्य-रचना और वाक्यो के परस्पर सम्बन्ध

'राम आता है', 'राम आता है' और 'श्याम जाता है' और 'मैने देखा कि राम आता है' ये तीन वाक्य हम लोगो के सामने है। इन तीनो वाक्यो की परीक्षा करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि कितने ही वाक्य अपने ही मे पूर्ण रहते है, किसी दूसरे वाक्य से सम्बन्ध नही रखते। जैसे—राम आता है, इत्यादि। इसलिये प्रथम वाक्य के नमूने के जो वाक्य है वे शुद्ध वाक्य कहे जाते है। दूसरे और तीसरे वाक्य में देखा जाता है कि कई छोटे-छोटे वाक्य मिले है। जैसे—'राम आता है', और 'श्याम जाता है' इनको मिलाकर एक वाक्य, 'राम आता है और श्याम जाता है' वना। ऐसे ही तीसरे वाक्य में भी दो वाक्य मिले है। ऐसे वाक्यो को मिश्रितवाक्य कहते है। पर मिश्रित वाक्य के भी जो दो उदाहरण ऊपर दिये गये है उनके देखने से विदित होगा कि कुछ मिश्रित वाक्य ऐसे है जो दो या अनेक वरावर दर्जे के वाक्यो से वने है। जैसे—'राम आता है और श्याम जाता है' ये दोनो वाक्य वरावर दर्जे के है। इनका 'और' शब्द से योग कर दिया गया है जिसमे 'राम आता है और श्याम जाता है' ऐसा वाक्य बन गया है। इस नमूने के वाक्यो को ससृष्ट-वाक्य कहते है। पर कुछ मिश्रित वाक्य ऐसे होते है जिनमे एक वाक्य मुख्य रहता है, और वाक्य उसके अङ्ग रहते है। जैसे— मैंने देखा कि राम आता है। इसमे 'मैने देखा', यह मुख्य वाक्य है और 'राम आता है' यह उसका अङ्ग है। ऐसे वाक्यो को सकीर्णवाक्य कहते है।

राम आता है और श्याम जाता है, राम आता है या श्याम आता है, राम आता है परन्तु श्याम नही आता, राम जाय किन्तु श्याम नही जाय, इन वाक्यो के देखने से स्पष्ट जान पडता है कि बराबर दर्जे के वाक्य 'और' 'या' 'परन्तु' 'किन्तु' आदि शब्दो के जोडने से बनते हैं।

मैंने देखा कि राम जाता हैं, बाघ जो गोली से मारा गया शहर के बाहर मैदान में बैठा था, मै सो जाऊँगा क्योकि मै थका हूँ—इत्यादि वाक्यो के देखने से जान पडता है कि अङ्गवाक्य कही सज्ञा का काम करते है, कही विशेषण का काम करते है और कही क्रियाविशेषण का काम करते है। क्रम से ऐसे वाक्यो को सज्ञावाक्य, विशेषण वाक्य और क्रियाविशेषण वाक्य कहते है । मैंने देखा कि राम आता है—इसमे राम आता है' इतना अश सज्ञावाक्य है, क्योकि वह सज्ञा का काम करता है और 'देखा' का कर्म है। सज्ञावाक्य कर्ताकर्म इत्यादिक होता है । 'बाघ जो गोली से मारा गया शहर के बाहर मैदान मे बैठा था', इसमे 'जो गोली से मारा गया' इताना अश विशेषण वाक्य है क्योकि यह बाघ का विशेषण है और उसका गुण बतलाता है । 'मै सो जाऊँगा क्योकि मै थका हूँ' इसमे 'क्योकि मै थका हूँ' इतना अश क्रियाविशेषण वाक्य है क्योकि यह सोने का कारण बताता है।

इतनी परीक्षा से यह स्पष्ट विदित होता है कि एक निरपेक्ष पूर्ण अभिप्राय जिससे प्रकाशित हो उस पद या पदसमुदाय को वाक्य कहते है। वाक्य के तीन प्रकार भी कह आये है—शुद्ध, ससृष्ट और सकीर्ण। मनुष्य जिन अर्थो को प्रकाशित कर सकते है वे अर्थ अनेक प्रकार के है, किन्तु वे सब मनुष्यो के लिये समान है । उनको वाक्यो मे कैसे प्रकाश करना, यह प्रत्येक भाषा का विशेष धर्म है। इसलिये मनुष्यो के वाक्यो मे कितने खण्ड हो सकते है इसका विचार पहले करके हिन्दी भाषा मे उसका किस रीति से प्रकाश किया जाता है, दिखाया जायगा । चाहे कैसा भी छोटा वाक्य क्यो न हो उसमे दो खण्ड अवश्य रहते है—उद्देश्य और विधेय। कही-कही उद्देश्य अपने विशेषणो के साथ रहता है और कही-कही विना विशेषण का रहता है—ऐसे ही विधेय भी। इसलिये वाक्य के मुख्य चार खण्ड है—उद्देश्य और उद्देश्य के विशेषण या विस्तार, विधेय और विधेय के विशेषण या विस्तार।

पहले कहा गया है कि क्रिया के साधक छ कारक है—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। वाक्य यदि कर्तृवाच्य हो तो कर्त्ता उद्देश्य रहता है, कर्मवाच्य हो तो कर्म उद्देश्य रहता है और भाववाच्य मे वस्तुत· उद्देश्य और विधेय छिपे रहते है। पर काम चलाने के लिये कर्त्ता ही को उद्देश्य समझ सकते है। विधेय का काम सदा क्रिया से होता है।

कारको के विस्तार सात प्रकार से होते है—गुणवाचक से, क्रियाद्योतक से, परिमाण-वाचक से, सख्यावाचक से, सम्बन्धबोधक, से, निर्देशार्थक से और प्रश्नार्थक से। काला घोडा आता है। यहाँ 'काला' गुणवाचक है। 'दौडता हुआ बालक आया' यहाँ 'दौडता

हुआ' क्रियाद्योतक है। 'सेर भर चावल लाओ' यहाँ 'सेर भर' परिमाणवाचक है। 'चार पैसे मे पाँच आम मिलते हे' यहाँ 'चार' और 'पाँच' सख्या वाचक है। 'राम के घोडे से श्याम गिरा' यहाँ 'राम के' सम्बन्धवोधक है। 'वह घोडा यहाँ आ रहा है' यहाँ 'वह' निर्देशार्थक है। 'आपको कैसा घोडा चाहिये'' इसमे 'कैसा' प्रश्नार्थक है।

क्रिया का विस्तार तीन प्रकार से कहा जा चुका है—विशेषणो से, कारको से या पूर्वकालिक से। शव्दो का परस्पर सम्बन्ध देखा जाय तो यह विदित होगा कि क्रिया सर्वदा उद्देश्य के अनुसार रहती है अर्थात् उद्देश्य के वचन आदि के सदृश क्रिया के वचन आदि होते हैं। केवल भाववाच्य क्रिया सदा पुल्लिङ्ग एक वचन होती है जैसे पहले ही कहा गया है। क्रियाओ मे, धातुज विशेषणो मे, पूर्वकालिक मे और धातुज भावार्थक मे कर्त्ता, कर्म आदि प्राय सब कारको का अन्वय हो सकता है। धातुज के इन सब रूपो मे कर्तृवाच्य होने पर कर्त्ता के अनुसार, कर्मवाच्य होने पर कर्म के अनुसार वचन आदि होते हे और भाववाच्य होने पर रूप सदा एक वचन पुल्लिङ्ग रहता है। इसलिये 'मुझे किताब पढनी है' यहाँ 'पढनी है' के स्थान मे 'पढना है' होना चाहिये क्योकि 'पढना' भावार्थक है।

जव उद्देश्य में कई खण्ड, 'और' 'या' इत्यादि अव्ययो से जोडे हुए रहते हे तव यदि सव उद्देश्य एक ही पुरुश के हो तो क्रिया वहुवचन होती है।

सज्ञा आदि के विशेषण कभी पहले आते हे कभी पीछे आते है। विशेषण चाहे कही रहे उसके लिङ्ग वचन और कारक विशेष्य के सदृश होते है।

हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओ मे प्राय वाक्य के अङ्गो का ठीक क्रम रहता है। जैसे सस्कृत आदि भाषाओ मे कर्ता, कर्म, क्रिया आदि को चाहे जिस क्रम से रख सकते हे वैसा हिन्दी मे नही हो सकता। तथापि हिन्दी मे वाक्य के कई अङ्गो के दो क्रम है। मुसलमानी हिन्दी अर्थात् उर्दू के क्रम कभी-कभी हिन्दुस्तानी हिन्दी से भिन्न होते हैं। इस प्रकरण मे हिन्दी शब्द से प्राय हिन्दुस्तानी हिन्दी समझना चाहिए। हिन्दी मे प्राय पहले कर्त्ता, तब कर्म, सब के अन्त में क्रिया, इसी क्रम से शब्द रखे जाते है, और यदि वाक्य मे कारक हो तो कर्ता और कर्म के बीच में प्राय उलटे क्रम से रखे जाते हे अर्थात् पहले अधिकरण, तव अपादान, तव सम्प्रदान, तब करण। पर कर्त्ता और कर्म को छोड कर और कारको का क्रम नियत नही है।

विशेषण प्राय अपने विशेष्य के पहले रहते है, क्रियाविशेषण क्रिया के पहले रहता है। विशेषण के वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते है। क्रियाविशेषण अव्यय है। इसलिये उनमे वचन आदि का भेद नही होता।

विशेषण दो प्रकार के होते हे—अनुवाद्य और अपूर्व। जिस विशेषण से विशेष्य के जाने ही हुये गुण प्रकाशित किये जाते हे उसे अनुवाद्य विशेषण कहते है, जैसे, काला घोडा लाओ—यहाँ 'काला' घोडे का अनुवाद्य-विशेषण है। सफ़ेद कपडा काला हो

गया—यहाँ कपडे का 'काला' गुण पहले से ज्ञात नही है इसलिये 'काला' अपूर्व विशेषण है।

अनुवाद्यविशेषण सदा विशेष्य के पहले रहता है, पर अपूर्वविशेषण सदा विशेष्य के वाद ही आता है, अपूर्व विशेषण को कितने लोग विधेयविशेषण भी कहते हैं। यहाँ, वहाँ, कैसे, वैसे इत्यादि क्रियाविशेषण कभी-कभी वाक्य मे सब से पहले आते हैं, राम को यहाँ बुलाओ, राम को कैसे देखूँ, यहाँ रामको बुलाओ, कैसे राम को देखूँ—इत्यादि कई प्रकार से वाक्य लिखे जाते हैं। जिस शब्द पर अधिक जोर दिया जाता है उसका स्थान वाक्य मे कुछ बदल जाता है। जैसे—पीटने पर यदि अधिक जोर देना हो तो 'उसको पीटो छोडो मत' के पहले 'पीटो उसको छोडो मत' कहते हैं। 'ने' इत्यादि कारकार्थक अव्यय कारको के बाद आते है।

शब्दो का विभाग

पहले कह आये हैं कि वाक्य मे पाँच प्रकार के शब्द आते हैं—सज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, विशेषण और अव्यय। निर्वचन के प्रकरण मे यह भी कहा गया है कि कितने शब्द दूसरे शब्दों से निकले हैं और कितने ही किसी दूसरे शब्द से नही निकले हैं। इस प्रकार जितने शब्द कहे गये हैं सब अर्थ के अनुसार तीन प्रकार के होते हैं—रूढ, योगरूढ, और यौगिक। रूढ वे हैं जिनकी व्युत्पत्ति नही है अथवा व्युत्पत्ति हो भी तो व्युत्पत्तिका अर्थ से कोई सवध नही, जैसे—गज, घोडा, गध इत्यादि।

योगरूढ वे हैं जिनका अर्थ व्युत्पत्ति से कुछ कुछ मिले, पर सर्वथा व्युत्पत्ति के अनुसार न हो, जैसे—सरोज, हनुमान, पकज, अङ्गरखा, जलज, इत्यादि।

यौगिक वे हैं जिनका अर्थ व्युत्पत्ति से ठीक-ठीक मिले, जैसे—सज्जन, मनुज, देवालय, शिवालय, इत्यादि।

सज्ञा के भेद

जातिबोधक, गुणबोधक, क्रियाबोधक, द्रव्यबोधक, व्यक्तिबोधक, भावबोधक और समूहबोधक—ये सज्ञा के सात भेद हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, गाय, भैंस, अंग्रेज, फ्रासीसी आदि जातिबोधक सज्ञा हैं। रङ्ग के अर्थ मे काला, पीला, इत्यादि गुणबोधक सज्ञा हैं। रङ्गीन वस्तु के अर्थ मे ऐसे शब्द सज्ञा नही कहाकर विशेषण कहाते हैं। स्तुतिपाठको को बुलाओ, एक पाचक लाओ—इत्यादि वाक्यो मे 'पाठक' 'पाचक' इत्यादि क्रियाबोधक सज्ञा हैं। आटा, घी, सोना, चाँदी, इत्यादि द्रव्यबोधक सज्ञा हैं। साधारण रीति से द्रव्यबोधक बहुवचन नही होता, पर जब एक ही द्रव्य अनेक प्रकार का हो तो बहुवचन का प्रयोग होता है और ऐसी अवस्था मे द्रव्यवाचक सज्ञा जातिवाचक हो जाती है, जैसे—तुम्हारे पास कितने प्रकार के आटे हैं—यहाँ आटा जातिबोधक सज्ञा है, द्रव्यबोधक नहीं है। राम, श्याम, गङ्गा, हिमालय, भारत, चीन, फ्रान्स, आदि व्यक्तिवाचक सज्ञा हैं। कभी-कभी व्यक्तिवाचक सज्ञा व्यक्तिविशेष के गुणो की प्रसिद्धि के

कारण उस गुण के रखने वाले सब पदार्थो के लिये आती है। ऐसी अवस्था मे व्यक्तिवाचक सज्ञा जातिवाचक हो जाती है; जैसे—'अल्प्स यूरोप का हिमालय है', 'होमर यूरोप के वाल्मीकि है', 'समुद्रगुप्त भारत के नेपोलियन थे', इत्यादि वाक्यो मे हिमालय का अर्थ ऊँचा पहाड है, वाल्मीकि का अर्थ महाकवि है, नेपोलियन का अर्थ बडा वीर है। इसलिये ऐसी सज्ञाओ को व्यक्तिवाचक न कह कर जातिवाचक कहेंगे। बचपन, जवानी, बुढापा, मीठापन, कालापन, आदि भाववाचक सज्ञा है, प्राय इनका भी बहुवचन नही होता। झुण्ड, गुच्छा, झोझ, सभा आदि समूहार्थक सज्ञा है।

क्रिया दो प्रकार की होती है—सकर्मक और अकर्मक। जिसमे कर्म लग सके उसे सकर्मक और जिसमे कर्म नही लग सके उसे अकर्मक क्रिया कहते है। बालक आम खाता है—यहाँ 'खाना' सकर्मक क्रिया है, क्योकि 'आम' 'खाना' क्रिया का कर्म है। श्याम सोता है, इसमे 'सोना' अकर्मक क्रिया है क्योकि इसमें कर्म नही है।

सर्वनाम पाँच प्रकार के है, —पुरुषवाचक, निर्देशार्थक, सम्बन्धसूचक, प्रश्नार्थक और अनिश्चयार्थक। पुरुषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के है —मै, हम, उत्तमपुरुषके, तू, तुम, मध्यमपुरुष के, और वह, वे, अन्य पुरुष के सर्वनाम है। यह, ये, वह, वे विशेषण के विना रहे तो निर्देशार्थक सर्वनाम है। जैसे—यह लाओ, वह अच्छा नही है। जो, जौन, सो, तौन, सम्बन्धसूचक सर्वनाम है। को, कौन, कोई, क्या, प्रश्नार्थक सर्वनाम है। कुछ, कोई इत्यादि अनिश्चयार्थक सर्वनाम है। यह, जो, कौन, आदि शब्द विशेष्य के साथ रहे तो सर्वनाम नही है, विशेषण है।

गुणवाचक या विशेषण, गुण, क्रिया, परिमाण, सख्या, पूरण, निर्देश प्रश्न और अनिश्चय होने के कारण, आठ प्रकार का होता है। काला, पीला, आदि गुणबोधक विशेषण है। मारता हुआ, खाता हुआ इत्यादि क्रियाद्योतक विशेषण है। छोटा, लम्बा, चौडा, बडा, आदि परिमाण-सूचक विशेषण है। एक, दो आदि संख्यावाचक विशेषण है। पहला, दूसरा, इत्यादि पूरणार्थक विशेषण है। विशेष्य के साथ यह, वह[1]—इत्यादि निर्देशार्थक विशेषण है। विशेष्य के साथ कौन, कोई इत्यादि प्रश्नार्थक विशेषण है। विशेष्य के साथ कुछ, कोई इत्यादि अनिश्चयबोधक विशेषण है।

अव्यय के चार विभाग है—कारकार्थक, क्रियाविशेषण, योजक (समुच्चायक) और क्षेपक। को, ने, से, इत्यादि कारकार्थक अव्यय है। खूब, धीरे, इत्यादि क्रिया—विशेषण अव्यय है। 'और' 'या' इत्यादि योजक अव्यय है। आ, अरे, हाय!, इत्यादि क्षेपक अव्यय है।

---

[1] यह, वह इत्यादि विशेष्य के साथ आवे तो विशेषण है और विना विशेष्य के आवें तो सर्वनाम है।

वाक्यविभाजन और पदनिर्देश

जब कोई वाक्य सामने आवे तब उसके अङ्गो का परिचय करने के लिये पहले यह देखना चाहिये कि वाक्य शुद्ध है या ससृष्ट है या सकीर्ण है। ससृष्ट हो तो किन वाक्यो के ससर्ग से बना है और वे वाक्य किस शब्द से जोडे गये है यह समझना चाहिये। यदि वाक्य सकीर्ण हो तो यह देखना चाहिए कि कौन मुख्य वाक्य है और कितने उसके अङ्ग हैं एव कौन अङ्ग मुख्य वाक्य से क्या सम्बन्ध रखता है। इसके बाद शुद्ध वाक्य हो तो समूचे वाक्य के और सकीर्ण और ससृष्ट वाक्य हो तो पृथक्-पृथक् छोटे से छोटे वाक्यो को निकाल कर उन वाक्यो के उद्देश्य, विधेय, उद्देश्य का विस्तार और विधेय का विस्तार, बतलाना चाहिये। फिर क्रम से उद्देश्य आदि में कौन शब्द किस वर्ग का है, उससे और शब्दो का क्या सम्बन्ध है यह दिखलाना चाहिए।

उदाहरण—बाघ जो गोली से मारा गया था मैदान में बैठा हुआ पाया गया था।

क—वाक्य का नाम—सकीर्ण वाक्य

ख—घटकवाक्य	१ बाघ मैदान मे बैठा हुआ पाया गया था—प्रधान वाक्य। २ जो गोली से मारा गया था—अङ्ग वाक्य।
ग—प्रति वाक्य के उद्देश्यादि	१ उद्देश्य—बाघ, विधेय—था, विधेय का विस्तार—मैदान मे बैठा हुआ पाया गया। २ उद्देश्य—जो, विधेय—था, विधेय का विस्तार—गोली से मारा गया।
घ—पदनिर्देश और पदसम्बन्ध	बाघ—जातिवाचक सज्ञा, एकवचन, अन्य पुरुष, पुल्लिङ्ग, 'था' का कर्त्ता, प्रथमा विभक्ति। जो—सम्बन्धवाचक सर्वनाम, बाघ के लिये आया है, 'था' का कर्त्ता, लिङ्गादि बाघ के सदृश। गोली—जातिवाचक सज्ञा, 'से' कारकार्थक अव्यय के योग में द्वितीया विभक्ति। से—कारकार्थक अव्यय, कारणका द्योतक।

घ—पदनिर्देश और पदसम्बन्ध

- मारा गया—मारा जाना इस समस्त क्रिया का भूतकालिक अपूर्व विशेषण, लिङ्ग आदि वाघ के सदृश।
- था—अकर्मक अह् धातु से उत्पन्न भूतकालिक, अपूर्व विशेषण, व्यवहार में क्रिया का काम देता है, लिङ्ग आदि वाघ के सदृश।
- मैदान—जातिवाचक संज्ञा में कारकार्थक अव्यय के योग में द्वितीया विभक्ति।
- में—कारकार्थक अव्यय, अधिकरण-द्योतक।
- बैठा—अकर्मक, 'बैठ' धातु का भूतकालिक विशेषण।
- हुआ—अकर्मक 'हो' धातु का भूतकालिक विशेषण।
- पाया—सकर्मक 'पाना' धातु का कर्मवाच्य भूतकालिक विशेषण।
- गया—अकर्मक धातु का कर्तृवाच्य भूतकालिक विशेषण।
- था—पहले 'था' के सदृश।

वाक्य परिवर्त्तन

क्रिया के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य—जैसे, घोडा घास खाता है, इत्यादि।

कर्मवाच्य—जैसे, मैंने आम खाया, इत्यादि।

भाववाच्य—जैसे, सीता ने सखियों को बुलाया, आया जाय, चला जाय, इत्यादि।

अर्थ के अनुसार वाक्य चार प्रकार के होते हैं—

(१) विज्ञापक, (२) विधायक और संभावक, (३) हेतुहेतुमत् और (४) प्रश्नार्थक।

विज्ञापक—जैसे, वह जाता है, वह गया इत्यादि।

विधायक और सम्भावक—जैसे, आइये, गाइये, आवें, जावें, इत्यादि।

हेतुहेतुमत्—जैसे, पानी बरसता तो सस्ती होती, इत्यादि।

प्रश्नार्थक—जैसे, वह कौन है? क्या आप जानते हैं? इत्यादि।

सम्बन्ध के अनुसार वाक्य दो प्रकार के होते हैं, विधायक और निषेधक।

विधायक—जैसे, वह जाता है, क्या वह आवेगा? इत्यादि।

निषेधक—जैसे, क्या राम नहीं जायगा? राम नहीं जावेगा, इत्यादि।

व्याप्ति के अनुसार वाक्य दो प्रकार के होते हैं—समस्तगामी और अल्पगामी।

समस्तगामी—सब मनुष्य मरते हैं, घोड़ा घास खाता है, इत्यादि।

अल्पगामी—कुछ घोडे लाल होते है, कितने लोग नही पढते, इत्यादि।

स्वरूप के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के पहले ही कहे गये है—शुद्ध, ससृष्ट और सकीर्ण।

शुद्ध—जैसे, राम जाता है, वह घर गया, इत्यादि।

ससृष्ट—जैसे, राम आता है और श्याम जाता है, इत्यादि।

सकीर्ण—जैसे, उस ब्राह्मण को दान देना चाहिये जो दरिद्र हो, इत्यादि।

एक प्रकार के वाक्य को शब्द, अर्थ आदि के द्वारा यथासम्भव सम्बन्ध रखते हुए दूसरे प्रकार के वाक्य मे ले जाने को वाक्यपरिवर्तन कहते हैं। जैसे—कर्तृवाच्य वाक्य को कर्मवाच्य बनाना, विधेय वाक्य को निषेध वाक्य बनाना, शुद्ध को ससृष्ट या ससृष्ट को शुद्ध बनाना अथवा सर्वगामी वाक्य को अल्पगामी बनाना, इत्यादि।

विराम और विच्छेद

हिन्दी मे वस्तुत एक ही विराम है जिसे पूर्ण विराम कहते है, जिसका आकार (।) खडी रेखा-सा है। अग्रेजी से अल्प विराम (,) और अर्ध विराम (,) आदि अनेक-अनेक विरामो के चिह्न हिन्दी मे लिये गये है।

विरामो के अतिरिक्त उद्धृतिचिह्न ("—"), प्रश्न चिह्न (?) विस्मय चिह्न (!), इत्यादि अनेक चिह्न लिये गये है।

जब अनेक वाक्यो में एक पूरा अर्थ समाप्त होता है तब प्रकरण का विच्छेद किया जाता है, इसलिये विच्छेद को अग्रेजी मे पैराग्राफ कहते है।

लेखशैली

लेख के गुण दो प्रकार के है—वाह्य और अन्तर। वाह्य गुणो मे अक्षरो की स्वच्छता, सुन्दरता और विराम के चिह्नो का यथायोग रहना इत्यादि है। अन्तर गुण इतने है—अर्थ की स्पष्टता, वातो का सिलसिला, व्यर्थ शब्दो का न रहना, अश्लील वातो का न आना, और व्याकरण, तर्क आदि की अशुद्धियो का अभाव।

इति

पीलु-विजय

पीलु प्रदेश अमेरिका की पर्णमय ग्रीवा के दक्षिण है। यहाँ चिरकाल मे सूर्य-वशीय राजा लोग राज्य करते आये थ। कुछ लोग तो कहते हैं कि परशुराम आदि ब्राह्मणो से निकाले हुए भारतीय क्षत्रिय चीन के ईशान कोण से होते हुए अमेरिका मे जा बसे थे। सम्भव है कि उन दिनो अमेरिका जम्बु-द्वीप से सटा ही हुआ हो। तब हो सकता है कि भारतीय या जम्बुद्वीपीय क्षत्रियो को अमेरिका जाने में क्लेश न हुआ हो।

जो कुछ हो, पीलु देशवाले चिरकाल तक सुख से रहे। उन्हे बाहर के ससार का प्राय कुछ ज्ञान नही था। देश मे सोना-चाँदी, अन्न-पानी इतना होता था कि वे सोने के बड़े-बड़ सूर्य बनाकर उन्हे सोने-चाँदी के मदिरो मे स्थापित कर पूजते थे और सुख से अपना काल काटते थे। उनके यहाँ ऐसे धनी थे कि लकडी, ईंट, पत्थर आदि के बदले सोना-चाँदी का उपयोग होता था। उन्हे बहुमूल्य रत्नो का भी अभाव नही था। इतना ही नही, सूर्य-मदिरो मे वृक्ष, लता, फूल-पत्ती, फव्वोर, तालाब, मछली, चिडिया आदि भी सोने-चाँदी और रत्न के बने हुए थे। पीलु प्रदेशवाले बाहर के संसार से अनभिज्ञ थे। बाहरी ससार की ओर भी उनका ध्यान नही था। सुख-चैन से जबतक दिन कटते रहते है और मनुष्य अज्ञान मे पडा रहता है तब तक कौन किसको पूछता है? पर दरिद्रता देवी और लक्ष्मी का घनिष्ट सम्बन्ध है। दरिद्र होने पर मनुष्य उद्योग करता है और लक्ष्मी पाता है, फिर लक्ष्मी होने पर आलस्य के मारे तथा दुर्व्यसनो में पडकर दिवाला मारने लगता है और दरिद्रता का आश्रय बनता है।

एक समय पर्णमय ग्रीवा में रहते-रहते सुफेन (स्पेन) के अहेरियो को कुछ पीलु प्रदेश के धन-धान्य की महक मिली। कुछ लोग पर्णमय ग्रीवा से दक्खिन को चले। बेचारे भूखो मर रहे थे। किसी छोटे-से टापू मे उतर पडे। बडे क्लेशो के बाद उन्हे यह टापू मिला था। उस टापू मे कुछ समुद्री पक्षियो के अतिरिक्त और किसी का निवास नही था। कही अन्न का नाम नही था। समुद्री घोघे के अतिरिक्त भोजन की कोई वस्तु नही मिलती थी। सब लोग हतोत्साह हो रहे थे। सबके शरीर मे अस्थियाँ मात्र रह गयी थी। राज-प्रतिनिधि ने समाचार भेजा कि तुम लोग लौट आओ। बस, अब क्या था, अस्थिशेष सिपाहियो की धसी हुई आखो से ही नया प्रकाश चमकने लगा। सबको फिर से जीवन की आशा हुई। इतने मे सिपाहियो का नायक, जिसका नाम प्रियजार था, आगे निकल कर खडा हुआ। अपने सूखे हाथ में लम्बी तलवार लेकर प्रियजार ने टापू के जमे हुए बालू पर पूरब-पच्छिम रेखा बनाई। इस रेखा का निर्देश कर उसने सिपाहियो से कहा, "वीर भाइयो! इस रेखा से दक्खिन सोने-चाँदी का बना हुआ पीलु प्रदेश है। स्थान तो भयानक है, पर धन और यश दोनो

इसी ओर है। रेखा के उत्तर पर्णमय ग्रीवा है। आलस्य, दुख और दारिद्र्य तीनो इस ओर है। तुममे से जिसको जिधर जाने की इच्छा है जा सकता है।" यह कह कर प्रियजार स्वय रेखा पार कर उसके दक्षिण जा खडा हुआ। एक-एक कुटके तेरह सिपाही रेखा लाघ कर प्रियजार के साथ हुए। शेष पोत पर चढ कर पर्णमय ग्रीवा की ओर चले। तेरहो सिपाही दक्षिण की ओर जाते-जाते अन्त मे पीलु प्रदेश मे पहुँचे। श्वेत वर्ण के अतिथियो को देखकर पीलु प्रदेश का राजा अष्टशूर्य बडा आनन्दित हुआ। उसने उन्हे सब प्रकार से सुख पहुँचाया। कुछ काल के बाद जिस राजकीय गृह मे ये लोग रहते थे वहाँ स्वय राजा अष्टशूर्य आया। विश्वासघाती सुफेन के सैनिको ने भोले अष्टशूर्य को बन्दी कर कोठरी मे रख लिया। उसके अनुयायियो के प्राण गोली मार कर ले लिये। अब तो राज्य मे बडा हलचल मच गया। गोलियो के डर से अग्न्यस्त्र के अनभिज्ञ पीलु-प्रदेश वाले सुफेनो से जल्दी बोलना पसन्द नही करते थे। अन्तत इन राक्षसो की चेष्टा से अष्टशूर्य ने सोचा कि उन्होने केवल धन-लोभ से कृतघ्नता का महापातक किया है।

एक दिन जिस कोठरी मे राजा बन्द था उसकी भूमि पर सकेत देकर उसने बतलाया कि यदि आप लोग मुझे छोड दे तो मै इस भूमि को सोने से ढँक दूँगा। सुफेन वालो को उसकी बातो पर विश्वास नही हुआ। तब राजा ने क्रोध से खडे होकर कहा,"तुम लोग समझते हो कि मै कोठरी की भूमि सोने से नही ढँक सकता। मै इससे भी अधिक कर सकता हूँ। जितनी दूर मेरे हाथ की पहुँच है वहाँ तक इस कोठरी को सोने से भर दे सकता हूँ।" इस पर सुफेन वाले बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने बात पूरी हो जाने पर राजा को छोड देने का वचन दिया। बस अब क्या था! अब कोठरी भरने के लिये मन्दिर-महल आदि से सोना लाया जाने लगा। दूर-दूर से सोना लाने मे कुछ विलम्ब अवश्य हुआ। इन पर सुफेन वाले बिगडे। समय के पहले ही इन राक्षसो ने राजा को पशु के सदृश मार डाला। जितना सोना कोठरी मे जमा था उन्होने आपस मे बाँट लिया।

अभी कोठरी में पोरसा भर सोना नही हुआ था तथापि एक-एक व्यक्ति के हिस्से करोड से अधिक मूल्य का सोना पडा। अब तो घी देने से जैसे आग बढे वैसे-वैसे सोना पाने से सुफेन राक्षसो का लोभ बढा। बिचारे भोले-भाले अष्टशूर्य को मार कर सुफेन वाले पीलु राज्य मे विचरने लगे। अन्त में ये सौर काची मे पहुँचे। वहाँ मनु के समय का प्राचीन सूर्य-मन्दिर विराजमान था। मन्दिर के भीतर बहुमूल्य रत्नो से जडी हुई बडी मोटी और बडी चौडी गोल सोने की मूर्त्ति थी। सोने के बरतनो मे प्राचीन 'इका' अर्थात् पीलु राजाओ के शव मसालो से सुरक्षित थे। बाहर उद्यान मे फल, मूल, फूल, जीवजन्तु आदि सोने-चाँदी और रत्न के बने थे। बहुत कुछ धन और जितनी सूर्य की मूर्त्तियाँ थी, सुफेनो के भय से पीलु वालो ने पहाड की सुरगो मे रख दी। तथापि बहुत धन सुफेनो के हाथ लगा। अन्तत पीलुवालो का सर्वनाश हुआ। जो भीतर गाड दिया गया उसका आज तक पता नही है। निदान पीलु प्रदेश सुफेन साम्राज्य का एक भाग हुआ।

हमारा संस्कार

असभ्य जातियो मे अपना सस्कार या अपनी शिक्षा नही रहती। अपना कोई धर्म भी नही रहता, और अपनी शिल्पकला उनके वशजो की निकाली हुई नही होती। इसलिये वे दूसरे देशवालो की शिक्षा आदि लेकर सभ्य बनने का यत्न करते है। इनका रहन, महन, बोल, चाल, वेश, वस्त्र आदि देशातर की नकल पर अवलवित रहता है। परन्तु भारत की ऐसी दशा नही। हमारा सस्कार, हमारा धर्म, हमारी शिक्षा और हमारा वेश, वस्त्र आदि अनादि काल से अपना ही चला आ रहा है। दूसरे देशो के गुणो के हम कायल है। उनकी अच्छी बाते हम न ले, यह हमारा तात्पर्य नही। लेकिन केवल उन्ही की नकल पर हम सब काम किया करें, अपनी देशकालानुकूल बातो को भी सर्वथा छोड दे, यह कभी उचित नही, और ऐसा कभी नही हो सकेगा। अँगरेजी-शिक्षा के द्वारा सरकार ने हमारा बडा उपकार किया है। इस शिक्षा के कारण हमे देश-देशान्तर की बहुत-सी खबरे मिलती है। छोटी-बडी नौकरिया मिल रही है, जिससे हजारो कुटुम्ब आराम में पडे-पडे अपना निर्वाह कर रहे है। परन्तु द्रव्य और समय आदि के अभाव से सैकडे पीछे एक-आध के सिवा बहुतेरे ही इस शिक्षा से वचित है। जो लोग इस शिक्षा मे जाते भी है, वे जितना खर्च करते है, उसका आठ आने सैकडा सूद भी मिलना दुस्तर है। पाँच हजार खर्च करके जो बी० ए०, एम्० ए०, बी० एल्० आदि होते है, उन्हें पचीस रुपये की नौकरी भी सुलभ नही। नौकरी और वकील आदि के स्थान बहुत कम है, और पढने वालो की सख्या हर साल बढती जा रही है। जिन्हे 'स्कौलरशिप', पद की गारटी आदि मिले, या घर मे रुपये बहुत हो वे ऐसी पढाई पढ सकते है। पर जिन गरीबो को, बढई लोहार, चमार आदि को, या कथक, पुरोहित आदि को पन्द्रह वर्ष की उमर से बूढे मा-बाप आदि कुटुम्ब का पालन करना है, वे इस शिक्षा मे नही आ सकते। इसके अतिरिक्त हमे देखना है कि इस देश मे शकर, भास्कर, अमरसिंह आदि के समान पुरुष होते थे, और देशान्तरो मे आज भी होते है। जर्मनी के डॉक्टर आइन्सटाइन आज भास्कर और न्यूटन के उत्तराधिकारी है। उनकी शिक्षा अपनी भाषा मे हुई है, विदेश की भाषा मे नही हुई। वैदेशिक शिक्षा से ऐसे आचार्य या उन आचार्यो के सग्राहक नही हो सकते।

सक्षेप से सब स्त्री-पुरुष यह समझ सकते है कि जैसे उदार भाव से, बडी आयोजना से और बडी बुद्धिमानी के साथ कचहरी, पुलिस आदि के काम के लिये सरकार हमारे उपकार के हेतु तथा अपना साम्राज्य चलाने के लिये अँगरजी शिक्षा देकर अपना कर्त्तव्य कर रही है, उसी प्रकार दशीय रीति पर, देश की भाषा मे शिक्षा का प्रचार

इस देश की प्रजा को भी बडे-बडे आचार्य और बडे-बडे शिल्पकलाभिज्ञो के आविर्भाव के लिये जातीय विद्या-केन्द्र स्थापित करने चाहिये। इस देश के लोग कुछ समय से विद्या-बुद्धि-हीन होने के कारण केवल नकल करने मे प्रवीण है। देश के लोग उदार है। इनके सूराखदार पाकेटो मे से हजार और लाख नही, करोडो रुपये ऐसे लोगो के व्यर्थ बक-बक पर पानी के समान बहा करते है, और देश की दशा दिन-दिन हीन होती जाती है। हमारे रुपये भी चले जा रहे है, और सरकारी तथा पूज्य मालवीय जी महाराज आदि के सरकार की नकल मे बने हुए करोडो के मकानात वाले विद्यालयो मे से अब हजारो ऐसे ही आदमी निकल रहे हैं, जो बी० ए०, एम्० ए० पास कर नौकरी न मिलने के कारण और अन्य किसी काम के योग्य न होने से भिक्षा, आत्मघात, परद्रोह आदि की शरण ले रहे है, और विज्ञ श्रमजीवियो तथा असली विद्वानो के अभाव से देश रसातल को चला जा रहा है। ऐसी सस्थाओ मे हमारे करोडो रुपये लग चुके, और अब करोडो के लिये लोग फिर अपील कर रहे है। जब सरकारी काम के लिये जितने अफसर अपेक्षित है, उनसे हजार गुने अधिक सरकारी विश्वविद्यालयो ही से निकल रहे हैं तो फिर हजारो-लाखो बी० ए०, एम्० ए०* भिक्षुक, आत्मघाती, परद्रोही, देशनाशक, विद्या-विलोपक उत्पन्न करने के लिये हम अपने पाकेट से और सहायता क्यो दे ! अब बहुत हुआ, अब देशवालो को चेत जाना चाहिए।

अब हमे तो सरकार की व्यर्थ नकल करने वाली सस्थाओ को अपनी वर्त्तमान स्थिति मे रखकर ऐसे विद्या-केन्द्र अपने तन, मन, धन की सहायता से स्थापित करना चाहिए, जिससे फिर देश मे प्राचीन भारतीयो के सदृश तथा नूतन यरोप आदि देशो के समान अच्छे ग्रथकार और अच्छे शिल्प-कलाभिज्ञ उत्पन्न हो, जो किसी नौकरी का उद्देश्य न रखकर, अपने पैरो पर खडे होकर, देश-देशान्तर से धन-मान पावे। अपनी रीति पर शिक्षा पाकर बी० ए० आदि डिग्री न लेने से ये स्वय नौकरी न पावेगे, और सर्वात्मना ज्ञान-विज्ञान की उन्नति में और नए आविष्कारो मे लगे रहेगे।

इस कार्य के लिये भारत मे एक-एक करोड के पच्चीस-तीस केन्द्र अपेक्षित है। पहले हमलोग वहाँ एक आदर्श केन्द्र स्थापित करना चाहते है। इस केन्द्र मे चारो ओर क्रोटन और पान के गमले रखकर वडे-वडे खिलान, मेहराब और मदिर-द्वारो बरसातियो के बीच और पढाई का प्रबध नही होगा। औषधोद्यान मे प्राणरक्षोपयुक्त लता-वृक्षादि का अपनी भाषा मे (न कि वडे-वडे लैटिन, ग्रीक के शब्दो मे) परिचय करते हुए चरक और सुश्रुत आदि की विद्याओ की रक्षा करते हुए देश की अनादिकालिक विद्या की पुस्तको के बीच मे रहकर, सैकडो विद्वान् की भाषाओ मे यहाँ ग्रन्थो का निर्माण

---

*अब से जो बी० ए०, एम० ए० हो, वे स्वतत्र जीविका योग्य थोडी सख्या में हो, और देश के भारभूत न हों, यही मेरा तात्पर्य है।

किया करेंगे, और जो ज्ञान-विज्ञान का अन्वेषण करगे, वह सब स्त्री-पुरुषो को सुलभ रहा करेगा। आजकल के नए ढग के विद्वानो की क्या दशा है, उनके कुछ उदाहरण आप देख सकते हैं और खयाल कर सकते है। मै कई एम्० ए० पास विद्यार्थियो का पालन कर रही हूँ। इनका पालन छोड दूँ, तो कल से इनको फाका करना पडे। कहिए, एम्० ए० होकर प्राण-रक्षा के लिये इस प्रकार दुर्दशा में रहना कैसी निन्दा की बात है। और देखिए, इन बेचारो की शिक्षा ही क्या होती है। मुझे ऐसे एम्० ए० लोगो की खबर है, जो कैथा (कपित्थ) और बडहल नही पहचानते। उनका जन्म और जीवन इस देश मे हुआ है। ये कैथे का अर्थ बेल कहते है, और बडहल का तो कुछ अर्थ ही नही समझते है।* क्रोटन के बागो मे बिजली के पंखे वाले आधुनिक विश्वविद्यालयो के उन्नतिशील विद्यार्थियो मे से बहुतेरे की यही गति रहा करेगी। इन्हे न खाने को मिलेगा, और न इनमें निरीक्षा और परीक्षा की शक्ति होगी, न ये किसी स्वतन्त्र जीविका के योग्य ही रहेंगे। हमारे नवीन विद्या-केन्द्रो मे ऐसी बाते नही होंगी। ऑख और स्वास्थ्य बिना खोए, फीस मे बिना हजारो लगाए, साम्प्रतिक जर्मन, जापानी बालको के सदृश हमारे गरीब बालक यहाँ स्वतन्त्र जीविका योग्य विद्या पढ सकेंगे। चदे से आश्रम चलगा। विद्यार्थियों से कुछ नही लिया जायगा। सबको इस आश्रम से लाभ होगा। परन्तु आधुनिक शिक्षा का एक और उदाहरण देखिए। हमारे आधुनिक विश्वविद्यालयो मे बडी-बडी वैज्ञानिक गप्पे छाटी जाती हैं। परन्तु यदि कोई चमार चमडा साफ करने का मसाला जानने के लिये साइस-कॉलेजो के किसी अध्यापक के पास जाय, तो क्या उमे बिना गर्दनियाँ दिए वे रहेंगे? ये तो चमडा साफ करने का मसाला बी० एस्०-सी० करके एम्० एस्०-सी० वाले छात्रो को बतलावेंगे, जिन्हे कभी चमडा छूने का अवसर ही नही आवेगा, और पुलिस या कचहरी की नौकरी ही खोजते जन्म बीतेगा।

इसलिये हमारा प्रस्ताव है कि आधुनिक शिक्षा की पूर्त्ति के लिये देश-भाषा मे सब ज्ञान-विज्ञान आदि सर्वसाधारण को सिखाने वाले विद्याकेन्द्र स्थापित किए जायँ, और सब देश-प्रेमी स्त्री-पुरुषो के पाकेट से निकली हुई धन-धारा इन्ही केन्द्रो में लगे।

मैंने अपने धन से प्रतिमास सैकडो रुपये खर्च कर ऐसा एक छोटा विश्वविद्या-केन्द्र स्थापित किया है। कहा जा चुका है कि इसमे कई विद्वानो का पालन हो रहा है। जिनमें कितने ही एम्०ए० है। कुछ पुस्तक आदि का प्रबध हमारे कुटुम्ब के व्यय से हो रहा है। कुछ पुस्तक आदि की सहायता विद्या में प्राय सर्वस्व व्यय करने वाले श्रीमान् शिवप्रसाद जी के द्वारा मिल रही है। परन्तु इस केन्द्र मे एक बडे देशीय औषधोद्यान

---

*आमरकोष समान्यत यहाँ के सब विद्यार्थी पढते है। प्रथमा का यह कोर्स है। पर निरीक्षक, परीक्षक और अध्यापक, कोई इसका वनौषधि वर्ग नही समझता। जैसे एम्० ए०, वैसे आचार्य फिर ऐसी पढाई से क्या फल?

की अपेक्षा पड रही है, जिससे हमारे यहाँ जो महानिघान आदि का सग्रह हो रहा है, उसका वनौषधिवर्ग आदि पूर्ण उपयोगी रूप मे परिणत हो। यहाँ काम करने वाले विद्वानो के लिये एक बडे पुस्तकालय की भी अपेक्षा है। अभी दो-तीन विभागो का कार्य हो रहा है। परन्तु पूर्ण प्रबध के लिये बीस विभागो की अपेक्षा है। प्रत्येक विभाग मे पाँच-पाँच कार्यकर्त्ता यदि रहेगे, तो सौ अधिकारियो के लिये प्रबध करना पडेगा। लगभग बीस वर्ष से सक्षिप्त रूप से कार्य हो रहा है। इधर दस वर्षो से बडे जोर-शोर से काम हो रहा है। तथापि प्राय विना बाहरी सहायता के एक साधारण कुटुम्ब अपने व्यय से देश-भर मे कोष, काव्य, दर्शन आदि के उत्तमोत्तम प्रचार के कार्य मे कहाँ तक प्रयत्न कर सकता है। इसलिए अब देश को चाहिए कि जगत् के अन्य प्रदेशो की तरह अपना मुख उज्ज्वल करने के लिये रस्मसहिता के कार्यो से तथा बकबकी लोगो के निरात्मक इष्ट कालमो से कुछ धन, शक्ति, समय आदि बचाकर अब इन कार्यो को अपनावे, और इस महायज्ञ के लिए विशाल देश-व्यापक आयोजन करे। ठीक से इसका प्रबध होगा, तो हमारा कुटुम्ब तन, मन, धन से पूर्ववत् सहायता करता रहेगा। मै अपने कुटुम्ब की कमाई से सैकडो की सहायता करती रहूँगी, और मेरे कुटुम्ब के लोग शरीर, विद्या, बुद्धि आदि से भी अमूल्य सहायता देते रहेगे।

— रत्नावती देवी

(साहित्याचार्य पाडेय रामावतार जी शर्मा, एम्० ए० की धर्मपत्नी)

पुराण-तत्व

उक्तियाँ प्राय तीन प्रकार की होती हैं—स्वभावोक्ति, रूपकोक्ति और अतिशयोक्ति। वैज्ञानिक बाते स्वभावोक्ति में लिखी जाती है। हमारे यहाँ आयुर्वेद, गोलविद्या आदि विषय इसी ढग पर चलते है। वैदिक सहिताओ की बाते बहुधा रूपकमयी है। पुराणो की प्रधान बाते अतिशयोक्तिमयी है। पूर्ण चन्द्रोदय के समय समुद्र की लहरे ऊँची उठती है, क्योकि चन्द्र के प्रति पृथ्वी अधिक आकृष्ट होती है। ऐसे वर्णन को स्वभावोक्ति कह सकते है। पर यदि इसी बात को इस प्रकार कहा जाय कि समुद्र पिता है, चन्द्रमा उसके पुत्र है, और पुत्र की पूर्णता देखकर समुद्र उमड उठता है, तो इसको रूपकोक्ति कह सकते है। पुन इसी बात की यदि एक कथा बनाई जाय कि सागरदेव नाम के एक राजा है, जिनका एक अति सुन्दर बालक चन्द्रदेव नाम का है, इसका जन्म ऐसे नक्षत्र मे हुआ है कि ज्योतिषियो ने प्रतिमास एक बार उसके पूर्ण मुखावलोकन का सौभाग्य पिता को बतलाया है तो इस कथा को अत्युक्तिमयी कह सकते है। आलकारिको ने कहा है कि बालक, पशु आदि के कार्य रूप आदि का शब्दो मे यथास्थित चित्र खीचना स्वभावोक्ति अलंकार है। मुख चन्द्र के समान है, ऐसे वाक्यो मे मुख आदि वर्णनीय या उपमेय वस्तुओ को विषय कहते है। चन्द्र आदि उपमान वस्तुओ को विषयी कहते है। स्वभावोक्ति मे केवल विषय का उल्लेख रहता है। रूपक-उपमा आदि में विषय-विषयी, दोनो ही पृथक्-पृथक् दिए रहते है। किन्तु अतिशयोक्ति मे विषय को एकबारगी विषयी खा लेता है। इसीसे अतिशयोक्ति मे पढने पर लोग बहुत घबराते है। कुछ लोग अतिशयोक्ति की कविता की बडी निन्दा करते है। दूसरे लोग अतिशयोक्ति का मौलिक अर्थ न समझकर केवल बाहरी अर्थ का खयालकर व्यामोह मे पडते है। अँगरेजी मे अतिशयोक्ति को एलेगरी (Allegory) कहते है। बनियन का 'पिलग्रिम्म प्रोग्रेस' अतिशयोक्ति का एक प्रसिद्ध उदाहरण है। अपने यहाँ पुराण अतिशयोक्ति-प्रधान है, यह कहा जा चुका है। 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' मे लिखा है कि क्रिस्तान साहब एक बार एक लुभावने किले में गये। लोग कहते है कि एक हिन्दुस्तानी बारिस्टर लदन के आस-पास एक बार हाल ही मे इस लुभावने किले का अन्वेषण करना चाहते थे। यह नही समझते कि हर आदमी क्रिस्तान साहब कहा जा सकता है और लुभावना किला हर जगह मौजूद है। आजकल अज्ञानियो के हाथ में पडकर पुराणो की बडी दुर्दशा है। ये पौराणिक अतिशयोक्तियो का अर्थ नही समझते। समझे भी कैसे,

जबतक स्वाभावोक्तिमय ज्योति सिद्धात आदि से तथा रूपकमय वैदिक साहित्य से पौराणिक कथाएँ न मिलाई जायँ, तबतक इनका यथार्थ अर्थ नही लग सकता।

प्राय सब वस्तुओ मे स्त्री-पुरुष की भावना स्वाभाविक है। समस्त जगत् तथा उसके अग-प्रत्यग के प्राकृतिक दृश्यो को, काम-क्रोध आदि मनोभावो को आधि-व्याधि-शीतला आदि को, अनेक अघोर आदि मतो के आदर्शो तथा अन्य पदार्थो को मनुष्य भारत मे तथा देशान्तरो मे स्त्री-पुरुष के कल्पित रूप मे समझता आ रहा है और समझता रहेगा। होमर से ब्राउनिङ्ग तक, ऋग्वेद के ऋषियो से लेकर तुलसीदास तक यही दशा है। जब समस्त जगत् या महापरिमाण आकाश आदि को मनुष्य पुरुष समझते है, तो उसे ईश्वर, खुदा, विष्णु और शिव आदि महादेवो के नाम से पूजते और पुकारते है। और उसे अनन्त, सहस्रबाहु से लेकर आठ, चार, दो बाहु आदि का भी समझते हैं। उसकी प्रीति के लिये पशु-पक्षी, हलुआ और पूरी इत्यादि चढाते या आग मे डालते है। इसी प्रकार शरीर पर ममता रखने वाले ज्ञान को भी लोग इन्द्रियो का अध्यक्ष, इन्द्र, शिव, विष्णु आदि अनेक रूप का अथवा अरूप समझते है। उसे स्वर्ग-नरक की सैर करनेवाला, चौरासी योनियो मे भ्रमनेवाला, प्रेत-पिशाच होकर खाना माँगनेवाला या टेबुल हिलाने वाला, दूसरे के मन मे घुसनेवाला आदि समझने लगते है। जब इन्ही आकाश आदि वस्तुओ को स्त्री समझते है, तो सूर्य-चन्द्रमा रूप कुण्डलवाली काली आदि समझते है। सयाने लोग ऐसी कथाओ को परिस्तानी गल्पो की तरह आनन्द से पढते और सुनते है। इनसे विज्ञान का काम लेने का यत्न नही करते। बच्चा भी बुढिया की कहानी मे उडन-खटोले की कथा सब देशो मे सुनता है। परन्तु उडन-खटोले के पीछे अपना पढना-लिखना, रोजी-रोजगार नही छोडता। जो व्यक्ति या जो देश इन कथाओ के अक्षरार्थ मे पडते है और इन अतिशयोक्तियो का मूलार्थ नही सुन या समझ पाते, वे नष्ट हो जाते है। अन्य देश इस दशा से निकलते जा रहे है, पर भारत अभी इसी घोर अधकार मे पडा है, और इन अतिशयोक्तियो को वैज्ञानिक स्वभावोक्ति समझकर मूर्ख लोग ठगे जा रहे है। ऐसा समझाते हुए धूर्त लोग उन्हें ठगते जा रहे है। भगवान् व्यास या भागवतकार ने सर्प के मस्तक पर पृथ्वी रखी, और "भवानेक शिष्यते शेषसज्ञ" यह भी कहा। वे नही सोचते थे कि उनके वशज ऐसे होंगे कि सचमुच साँप पर पृथ्वी समझने लगेंगे।

सूर्य की किरणे ओस की बूदे तथा कटे हुए रत्न, काँच आदि मे, रंग-विरगे मालूम पडते हैं। सातरग की किरणो को लोगो ने सात अश्व कहा। अश्व धातु का अर्थ है व्यापना, शीघ्र चलना। इसीलिए वेदो मे अश्व शब्द घोडे और किरण, दोनो अर्थो मे आता है। प्रात काल की लालिमा के पीछे सूर्य आता है। कवि लोग जैसे मुख को कमल आदि कहते है, वैसे ही सूर्य को सप्ताश्व और अरुण को उसका सारथि। इस लालिमा को लोगो ने सूर्य के आगे रथवाह बनाया। दूसरी कल्पना मे इस लालिमा को या रात्रि के अन्त की श्वेत प्रभा को लोग उषादेवी कहने लगे। सुमेरु (होमर) कवि ने

उषा की गुलाबी उँगलियों का वर्णन किया है। उषादेवी अमर है। अहल्या उसे कहते है, जिसका हनन न हो। बोली में प्राय नकार का लकार हो जाया करता है। इससे लोगो ने उषा को अहल्या और उसका पीछा करने वाले सूर्य को इन्द्र बतलाया है। उर्वशी, पुरूरवा आदि की अनेक और भी कथाएँ इस मूल पर बन गई। उर्वशी अर्थात् बहुत दूर तक व्यापने वाली उषादेवी ही है। इसी अर्थ मे वेदो मे उर्वशी शब्द का प्रयोग है।

सामान्यत पौराणिक कथाओ के तीन मूल है—आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक। आधिदैविक मूल पर अनन्त आकाश को शरत्कालिक स्वच्छरूप मे विष्णु कहते है। सूर्य, चन्द्रमा इनकी आँखे है। चार महीने आँख मूँदने के बाद यह देव कार्तिक मे उठते है। लक्ष्मी, श्री या शोभा इनकी स्त्री है। वेदो में भी 'द्यौ पिता' लिखा है। इसी बुनियाद पर पश्चिम के लोगो मे द्युपितर या 'ज्युपिटर' की कल्पना हुई। वेद टटोलने पर इस मूल का पता यूरोपियन लोगो को मिला। इसी आकाश के सन्ध्या-कालिक रूप को चन्द्रशेखर, व्योमकेश, दिगम्बर और शिव कहते है। वर्षाकालिक, नील मेघाच्छन्न नभस्थली को काली कहते है। सूर्य-चन्द्रमा इसके कर्ण-भूषण है। आकाश पर ऐसी अनेक कल्पनाएँ हुई है। जैसे, विद्युन्मय आकाश के अंक मे इन्द्र आदि तैतीस कोटि तारा-रूपी दव-देवियाँ है। आध्यात्मिक मूल पर आत्मा को विष्णु, इन्द्र और शिव आदि कहते है। आधिभौतिक मूल पर किसी सुन्दर, वीर, सुभग, अवतार पुरुष यथा राम, कृष्ण आदि को विष्णु का अवतार कहते है। भयानक हनुमान् आदि को रुद्र का अवतार कहते है। सुन्दर रुक्मिणी, सीता, प्रद्युम्न आदि को लक्ष्मी, काम आदि के अवतार कहते है। इसी प्रकार अन्य आदर्शों के भी अवतार होते है।

कई पौराणिक अतिशयोक्तियाँ बहुत ही सुन्दर और प्रसिद्ध हैं। इनमें तीन-चार और उदाहरण यहाँ दिये जा रहे है। नृसिहावतार की कथा सब लोग जानते है। पर इसके मूल का खयाल लोग नही करते। देव-दैत्य अमर है। हिरण्यकशिपु और उसके पुत्र प्रह्लाद, दोनो ही आजकल भी वर्त्तमान है। भगवान् भी सदा जागरूक है। जहाँ-जहाँ हिरण्यकशिपु को पाते है, उसकी छाती फाड देते है। आपलोग इन देव-दैत्यो का सदा दर्शन करते है, पर इनके रूप-नाम मे परिचित नही। अब आइए, फिर हम लोग इनका प्रत्यक्ष दर्शन करे या दर्शन तो करते ही है, इस बात को समझ ले। हिरण्यकशिपु शब्द का अर्थ है सोने की शय्या या सुनहली शय्या पर सोने वाला पुरुष। ऐसे अमीर हिरण्यकशिपु आज भी बहुतेरे है। कशिपु का शय्या या तोशक अर्थ भागवत ही मे "सत्या-क्षितौ किं कशिपो प्रयासै" इस श्लोक में आया है। सोने की शय्या वाले को हर्ष उत्पन्न होता है। प्रह्लाद कहते है हर्ष को। पर ये शौकीन धनी लोग प्रह्लाद की क्या दशा करते है। ये लोग समुद्र की सैर करते है। प्रह्लाद तो समुद्र मे नही डूबता। जहाजी सुख लूटने के बाद ये पहाडी होटलो मे जाते है। पर प्रह्लाद पहाड पर भी चूर नही होता। अनेक मेह, उपदंश आदि आधि-व्याधि होने पर भी ये समझते है कि

हमको ईश्वरीय दण्ड नही मिलता है। खयाल करते हैं कि ईश्वर है ही कहाँ, पर एक अव्यक्त बालक की-सी बोली इन्हे बताती है कि ईश्वर तो हममे, तुममे, खड्ग-खभ मे सब जगह है। जब ये अपने अत्यन्त कुकार्यो से मरने लगते हैं तो इन्हे सामने ही के खभे, दीवार या हवा मे विकराल भगवान् की मूर्ति नजर आती है। अन्त मे मेह उपदश आदि की भयानक व्यथाओ से इनकी छाती फट जाती है और मरने के बाद हमारे राजा या महाराजा, धनी और शौकीन चिरकाल गर्भ मे रहकर कुमार हिरण्य-कशिपु के रूप मे फिर उत्पन्न होते है। फिर तारुण्य मे इस नये हिरण्यकशिपु की लीला का नाटक वैसे ही चल निकलता है, और उसकी भी छाती भगवान् के भयानक नखो से पहले के समान फाडी जाती है।

अब आइए, साक्षात् महिषमर्दिनी, शुभ-निशुभ-नाशिनी चडी भगवती दुर्गा जी का प्रत्यक्ष दर्शन करे। सुरथ राजा का नष्ट राज्य इनकी कथा सुनने तथा इनके पुरश्च-रण से फिर मिल गया था। कदाचित् हमारे देश के दीवालिये सेठो को भी कुछ धन-दौलत इस देवी के दर्शन से फिर मिल जाय। दुर्गा, भगवती, सर्वदेवमयी, गौरी, विज्ञानमयी, चण्डी शासन-शक्ति है। यह सनातन नियम है कि दुर्बल, मूर्ख, जगली लोगों पर प्रबल ज्ञानवान् सभ्यो का शासन हुआ करता है। प्रकृति का स्वभाव या परमेश्वर की व्यवस्था (जिसमे आपका विश्वास हो) ऐसी कभी नही हो सकती कि इस व्यवस्था मे प्रबल वैज्ञानिको पर मूर्ख और दुर्बलो का शासन हो। यह शक्ति जब आगे बढती है तब इन्द्र, वरुण, और यम, सब अपने शस्त्र इसे दे देते हैं। जब आर्य-शक्ति सिन्धु-तट से पूर्व-दक्षिण की ओर चली तो विन्ध्यवन से अक्षरश सत्य महिषा-सुर निकला। उसकी सेना मे विडालासुर, चिक्षुरासुर (गिलहरी) आदि निकले। पर इन जगली भैसो, वनबिलाव आदि तथा जगली आदमी कोल, भिल्ल, गोड, मुडा आदि को मारती तथा वश करती हुई, जगलो को जलाती और साफ करती हुई, दुर्गम पहाडो मे प्रवेश करती हुई आर्य-शक्ति (आर्य-शक्ति से आर्यसमाज की शक्ति न समझिएगा) सब अनार्यो पर शासन करने लगी। हमे इस देवी का आज भी प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। यही प्रचड आर्य-शक्ति, आज फिर क्षीर-सागर के मध्य मे वर्त्तमान अद्भुत श्वेतद्वीप से निकलकर चारो ओर के जगलो को साफ करती हुई हरित भूमि (Green Land) से नवजीवन भूमि (Newzealand) तक शासन कर रही है। इस शक्ति से असली आराधको ने ससार मे कैसा गौरव पाया है, सो सभी लोग जानते है। चिरायता शब्द जपने से ज्वर नही जाता, उसके अर्थ का उपयोग करने से लाभ होता है। वैसे चडी-स्तोत्र पाठ करने से क्या फल होगा? चाहे स्वय पाठ कीजिए या आठ आने पर पडित जी से पाठ कराइए, विना अर्थानुष्ठान के फल नही।

मत्रवादियो की तीन अवस्थाएँ इतिहास मे देखी जाती है। एक वह जिसमे लोग बिना बोले मन से मत्र के अर्थ का ख्याल कर, तदनुसार अनुष्ठान कर बडे-बडे कार्यो मे सफल होते थे। इस अवस्था का वर्णन श्रुति-स्मृतियो मे है। मनु ने "साहस्रोमानस.

स्मृत" कहा है अर्थात् मत्रानुष्ठान का फल मत्र के मानस-खयाल से, बोलने की अपेक्षा, सहस्रगुण होता है। छादोग्योपनिषद् मे भी लिखा है—"यथा अग्नेर्मन्थनमाजे सरण दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानस्तत्करोति" अर्थात् अग्निमथन आदि बलकर्म साँस के लिए बिना किया जाता है। जोर से कान मे उगली डालकर, चिल्लाकर मत्र पढने मे ऐसे कार्य नही होते। इसके बाद दूसरी अवस्था है, जब लोग लकडी रगडते और "अरण्योर्निहितो जातवेदा" कहते जाते थे, जैसे श्रमजीवी लोग रोलर खीचते और 'हैयो-हैयो' आदि चिल्लाते जाते है। पर इसके बाद एक तीसरी अवस्था और भी अद्भुत आई, जो आज तक इस देश मे वर्त्तमान है। इस अवस्था मे लोग यह समझने लगे कि कार्य की या उसके साधारण साधनो की कोई जरूरत नही, केवल मन की कल्पना से या "ह्रा-ह्री कलकत्तेवाली कमच्छेवाली धर-मार-चीर-फाड' आदि पवित्र मत्रो के कहने से जो चाहे मिल सकता है, आग-पानी उत्पन्न हो सकते है या जिसको चाहे मारा या जिलाया जा सकता है। व्यामोह की यह परम और चरम सीमा है। इस मे पडे हुए देश पराधीनता, प्लेग और दुर्भिक्ष के प्रत्यक्ष घोर नरक मे सडते रहते है। असल मे देशो तथा मनुष्य-जातियो की दो ही गतियाँ होती है, वास्तव विकास या औत्प्रेक्षिक संक्षेप। वास्तव विकास वाले पहले बैल या घोडागाडी आदि पर, इसके बाद रेल धुआँकश आदि पर और अन्त को वैद्युत वायुयान आदि पर चलते हुए ससार को अपनी मुट्ठी मे रखते है। पर औत्प्रेक्षिक सक्षेप वालो का चरित बडा विलक्षण होता है। देखिए, श्री रामचन्द्रजी को बहुत बखेडा करना पडा था। भगवान् वाल्मीकि लिखते है कि आपने अयोध्या से गगा तट तक सपत्नीक सुमत्र के रथ पर यात्रा की। पर गगा मे वह रथ न चल सका। निषादराज गुह की नौका पर राजकुमार को अपने कोमल चरण रखने पडे। फिर लका से लौटती बार आकाश-मार्ग से आने मे महाराज रामचन्द्रजी को कुबेर के वायुयान पुष्पक की शरण लेनी पडी। यह बखेडा हमारे महाकवि कालिदास को सह्य नही हुआ। वशिष्ठजी के मंत्र के प्रताप से दिलीप की अकेली घोडागाडी ही पहाड, समुद्र तथा आकाश में उड जाती, ऐसा खयाल इनके मन मे आ गया, और उन्होने लिख दिया—

वशिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य॥ (रघु० ५।२७)*

कालिदास के बाद, या कुछ पहले ही से तान्त्रिको ने तो इन प्रयत्नो को भी व्यर्थ समझा और वे पादुका-गुटका आदि को, शून्य ध्यान से उडने को तथा प्राकाम्य

---

*वशिष्ठ के मन्त्रजल के छीटों के प्रभाव मे वह रथ पर्वतो के ऊपर और आकाश मे उड चला। वायु जिसकी सहायता कर रही हो वैसे मेघ की गति के समान उसकी गति अप्रतिहत थी। —सम्पादक

आदि सभी सिद्धियो को आसान समझने लगे। हमलोग आज इसी औत्प्रेक्षिक संक्षेप-रूपी मनोमोदक को खाते हुए, मूँज की रस्सी से बँधी हुई बैलगाडी पर सुख से चलते है। त्रिकालदर्शिनी अँगूठी और आइने के मौलिक आविष्कारक, क्षुवतश्च मनोरिक्ष्वाकुर्घ्राणतो जज्ञे" इस विष्णुपुराणीय मत्र के अनुष्ठान से हाथी छीकने की सिद्धि रखनेवाले, नेसोग्राफ के द्वारा बिना तार और बिना खभे के तार के केवल नाक ही के द्वारा हजारो मील खबर भेजनेवाले वरुणलोकज, सप्रति हाजीपुर-निवासी, श्री १०८ हिज सुप्रीम होलिनेस (His Supreme Holiness) मैत्रेयावतार श्री स्वामी मुद्‌गरानंदजी हमलोगो को इसी औत्प्रेक्षिक सक्षेप को न मानने से नास्तिक कहते है।

अथ श्रीसत्यदेव कथा

एकदा मुद्गरानन्दं भगवन्तं महामतिम् ।
पप्रच्छु सुहृदस्तस्य काशीक्षेत्रे मनोरमे ।।१।।

श्रीसत्यदेव कथा । पहला अध्याय

किसी समय मनोहर काशीक्षेत्र में महा बुद्धिमान् भगवान् मुद्गरानन्द से उनके मित्रो ने पूछा ।।१।।

सुहृद ऊचुः ।

भगवन्मूर्खताग्रस्तं भारतं पापदूषितम् ।
तस्योद्धारः कथं भावी तद्भवान्वक्तुमर्हति ।।२।।

मित्रो ने कहा हे भगवन् ! यह भारत मूर्खता से ग्रस्त हो रहा है और पाप से दूषित हो गया है । सो आप बतावे कि इसका उद्धार कैसे होगा ।।२।।

सत्यदेवकथा यादृक् साधुनान्यैस्तथा श्रुता ।
कालेन च विलुप्ता तां तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ।।३।।

जैसी सत्यदेव की कथा साधु, बनिया तथा और लोगो ने सुनी थी सो कालक्रम से लुप्त हो गई है । उसको आप ठीक-ठीक कहे ।।३।।

इति श्रुत्वा वचस्तेषां सुहृदां शुद्धचेतसाम् ।
भगवान् मुद्गरानन्द प्रीतिमानिदमब्रवीत् ।।४।।

शुद्ध हृदय वाले मित्रों का ऐसा कहना सुनकर भगवान् मुद्गरानन्द जी प्रसन्न होकर यो बोले–।।४।।

मुद्गरानन्द उवाच ।

सत्यप्रियैः श्रुता पूर्वं श्रूयमाणा च तादृशैः ।
ईदृक् सुमहती विप्राः ! सत्यदेवकथाद्भुता ।।५।।

मुद्गरानन्द जी बोले—हे ब्राह्मणो ! यह सत्यदेव की अद्भुत कथा बहुत बडी है । सत्य के प्रेमी लोग ऐसी ही कथा पहले सुना करते थे तथा आज भी सुनते है ।।५।।

कालेन सा विलुप्ताभूद्दोषान्मूर्खपुरोधसाम् ।
तां पुनर्व प्रवक्ष्यामि श्रद्धया श्रोतुमर्हथ ।।६।।

वह कालक्रम से मूर्ख पुरोहितो के अपराध से लुप्त हो गयी थी । उसे मै आपलोगो से कहता हूँ, श्रद्धा से सुनिए ।।६।।

सर्वात्मा भगवान्यस्मिन्वैचित्र्य शाश्वतस्थितम् ।
अनाद्यनन्तो देहेस्यासख्या विश्वपरपरा ॥७॥

इस सर्वात्मा भगवान् में वैचित्र्य सदा वर्त्तमान है, यह आदि अन्त रहित है। और, इसके शरीर में अनगिनत ससार विद्यमान है ॥७॥

न कश्चित्तस्य माहात्म्यं ज्ञातु शक्नोत्यशेषत
यथा कथंचिदशानां ज्ञातार सन्ति भूतले ॥८॥

उस (सर्वात्मा) के माहात्म्य को समग्र रूप से कोई भी नही जान सकता। इस पृथ्वी पर उसके किसी-किसी अशमात्र के जाननेवाले हैं ॥८॥

द्रष्टारमिन्द्रिय दृश्य यः स्वस्मिन्विभुरीक्षते ।
साक्षी स भगवानेष सर्वमेतत्तदात्मकम् ॥९॥

जो सर्वस्वरूप सर्वात्मा देखनेवाले की देखी हुई वस्तु को तथा इन्द्रियो को भी देखता है, वह यही साक्षी परमात्मा है और सब उसी का रूप है ॥९॥

सर्वात्मनः समुद्रस्य यस्य विश्वानि बिन्दव. ।
स्वकायमप्यशेषेण विजानन्वेत्तु क किल ॥१०॥

जब कोई अपने शरीर को भी अशेष रूप से नही जान सकता तो भला उस सर्वात्मा समुद्र को कैसे जाने जिसमें ये सब ससार विन्दु के समान है ॥१०॥

अर्द्धं दृश्यमिदं विश्वं भूपृष्ठादेकमीदृशम् ।
ताराग्रहाविभिर्व्याप्तमप्रमेयं महाद्भुतम् ॥११॥

यह वि व पृथ्वीतल से आधा ही देख पडता है। यह एक भाग भी ताराग्रह आदि से व्याप्त बहुत बडा और अद्भुत है ॥११॥

यत्रेदृशान्यसंख्यानि विश्वानि स्वप्रमात्मनि ।
कः कार्त्स्न्येन परिच्छेद विदध्यात्तस्य पूरुषः ॥१२॥

जो अपना प्रमाण आप ही है उस सर्वात्मा मे ऐसे असख्य विश्व है। ऐसे परम पुरुष का सम्पूर्ण रूप से वर्णन कौन कर सकता है ॥१२॥

अस्यैकस्यापि विश्वस्य माहात्म्यं परमाद्भुतम् ।
असंख्यास्तारकाः सूर्या यत्राकाशे महीयसि ॥१३॥

विशाल आकाश मे असख्य तारा रूपी सूर्य जहाँ वर्त्तमान है, इस एक विश्व का भी माहात्म्य परम अद्भुत है ॥१३॥

तत्रातिसन्निकृष्टो यः सूर्य एको धरातलात् ।
कोटियोजनतोऽप्यस्य विप्रकर्षोऽधिको मत ॥१४॥

इन तारा-सूर्यो में जो सबसे निकट है वह पृथ्वीतल से करोड योजन से भी अधिक दूरी पर है ॥१४॥

सार्द्धद्वादशलक्षाणां परिमाण भुवां तु यत् ।
तावन्मितोयमादित्यो देवोऽप्यद्भुतशक्तिमान् ॥१५॥

इस अद्भुत शक्ति वाले सूर्यदेव का परिमाण पृथ्वी से साढे बारह लाख गुना है ।।१५।।

अस्यैव तेजसा वारि वाष्पीभूतं भुवस्तलात् ।
पुनर्वृष्टिस्वरूपेण जीवनायैति जन्मिनाम् ।।१६।।

इसी के तेज से पृथ्वीतल का जल पहले वाष्प होकर फिर जन्मधारियो के जीवन-हित वृष्टि रूप से आता है ।।१६।।

अयं ब्रह्माण्डरूपेण पुराभूत्तेजसां निधिः ।
व्यभज्यत च कालेन ग्रहोपग्रहकेतुषु ।।१७।।

पहले यह आदित्य तेज का समूह रूप ब्रह्माण्ड हुआ, फिर समय बीतने पर ग्रह, उपग्रह और पुच्छल तारो में विभक्त हो गया ।।१७।।

बुधः कविर्मही भौमो जीवश्चैव शनिस्तथा ।
उरणो वरुणश्चैव महान्तोऽष्टौ ग्रहा इमे ।।१८।।

बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, गुरु, शनि, उरण और वरुण, ये आठ बडे ग्रह है ।।१८।।

ग्रहाः किलोपसाहस्रा ये क्षुद्रा भौमजीवयोः ।
अन्तरे परिवर्त्तन्ते ते तथा केतवः परे ।।१९।।
सर्वे देवं विवस्वन्तं परितो यान्ति सर्वदा ।
अन्योन्याकर्षणाधीना गतिस्तेषां विनिश्चिता ।।२०।।

ये आठ बडे ग्रह तथा लगभग एक हजार क्षुद्र ग्रह जो मगल और गुरु के बीच घूमते रहते है, और कितने केतु भी, ये सब भी सूर्यदेव के चारो ओर सर्वदा चलते रहते है और परस्पर आकर्षण के अधीन इनकी गति निश्चित है ।।१९, २०।।

अयनान्यृतवश्चैव तथैव ग्रहणादिकम् ।
गतेरधीनमीदृश्या इति ज्योतिर्विदो विदुः ।।२१।।

ज्योतिष के जाननेवालो का सिद्धान्त है कि अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन) ऋतु (वसन्त-ग्रीष्म आदि) तथा ग्रहण आदि ऐसी ही गति के अधीन है ।।२१।।

स्वतन्त्रगतिकः सूर्यः सूर्याधीनगतिर्ग्रहः ।
ग्रहाधीनगतिश्चन्द्रस्तस्यैवोपग्रहाभिधा ।।२२।।

सूर्य की गति स्वतन्त्र है । ग्रहो की गति सूर्य के अधीन है । ग्रहो के अधीन चन्द्रो की गति होती है । इन्ही चन्द्रो को उपग्रह भी कहते है ।।२२।।

महीग्रहस्य तत्रैकश्चन्द्रो ज्ञात उपग्रहः ।
वरुणस्य तथैवैको द्वौ भौमस्य प्रकीर्तितौ ।।२३।।
अष्टजीवस्य विदिताश्चत्वार उरणस्य च ।
शनेर्दशाधुनाज्ञातास्ते षड्विंशतिरिन्दवः ।।२४।।

इनमें एक चन्द्र पृथ्वी-ग्रह का उपग्रह विदित है । वैसे ही वरुण का एक, मगल के दो, वृहस्पति के आठ, उरण के चार, और शनि के दस—ये छब्बीस चन्द्र अभी तक ज्ञात है ।।२३, २४।।

सौराण्डान्निर्गता भूमिः पुरासीत्तप्तगोलका ।
अथ सैकार्णवीभूता क्रमात्तापविनिर्गमे ॥२५॥

सूर्य के अण्डे से निकली हुई यह पृथ्वी पहले आग के समान थी। फिर धीरे-धीरे ताप घटने पर यह एकार्णव रूप हो गई ॥२५॥

जलप्रवाहनीते च पङ्के पुञ्जीभवत्यथ ।
क्रमात्प्रस्तरतां याति गिरिसागरशालिनी ॥२६॥

इसके बाद जल के प्रवाह से पक जमा हो जाने पर क्रम से पत्थर होने लगा और इसी पृथ्वी मे समुद्र और पर्वत हुए ॥२६॥

तप्तकेन्द्रोद्भवज्जीवविकाशाभूदियं मही ।
नानाजीवसमाकीर्णा लतागुल्मादिशोभिनी ॥२७॥

केन्द्र में ताप रहते ही रहते इस धरती पर जीव उत्पन्न हुए और अनेक प्रकार क जीवो से यह भर गई और लता, झाडी आदि भी हो गये ।

मत्स्यकूर्मवराहाद्या वन्याः सभ्याश्च मानवाः ।
लतागुल्मादिशालिन्यां क्रमादुदभवन्भुवि ॥२८॥

मछली, कछुए, शूकर आदि तथा जङ्गली और सभ्य मनुष्य इस लता-गुल्म वाली पृथ्वी मे उपजे ॥२८॥

इति श्रीमदभिनवभागवते श्रीसत्यदेवकथाया भूसृष्टिर्नाम प्रथमोध्यायः॥ ॐ सर्वात्मने नम ॥

अब श्रीमदभिनव भागवत की सत्यदेव कथा का, पृथ्वी की सृष्टि नाम का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ ॐ सर्वात्मने नम ॥

द्वितीयोऽध्यायः

अधुनास्मिन्धरापृष्ठे स्थलमेकांशमात्रकम् ।
अंशत्रयं महाम्भोधिः क्षारवारिमय स्थित ॥१॥

इस समय इस पृथ्वीतल पर स्थल एक ही हिस्सा है और तीन हिस्सा खार पानी का महासमुद्र पडा है ॥१॥

इत्थ प्राणिसहस्राणामावासेत्र महीग्रहे ।
द्वीप-वारिधिशैलादि-स्थितिं ब्रूमोधुनातनीम् ॥२॥

जिस पृथ्वी पर सहस्रो प्राणी वसते हैं उसमें टापू, समुद्र, पर्वत आदि इस समय किस प्रकार स्थित हैं सो आगे कहते हैं ॥२॥

महासागर एकोत्र भूगोले समवस्थितः ।
न विभक्त क्वचिद्भूम्यास्तस्य स्थानादितोभिदा ॥३॥

इस गोली पृथ्वी पर एक ही महासागर सब ओर फैला पडा है। इसमें पृथ्वी से कहीं भी टुकडे नहीं हुए हैं, केवल स्थानभेद से इसमें भेद है ।।३।।

द्वौ धरायां महाद्वीपावेकोर्धेस्मिन्नवस्थितः ।
अर्धान्तरे परस्त्वस्ति देशा बहुविधास्तयोः ।।४।।

पृथ्वी मे दो महाद्वीप है। पृथ्वी के एक आधे में एक महाद्वीप ह और दूसरे आधे मे दूसरा महाद्वीप है। इन महाद्वीपो मे नाना प्रकार के देश है ।।४।।

उपद्वीपास्तु बहवो यत्र तत्र पयोनिधौ ।
क्षुद्राश्चैव बृहन्तश्च नानाजनपदान्विता ।।५।।

इनके अतिरिक्त कितने ही बडे-छोटे उपद्वीप (टापू) समद्र मे जहाँ-तहाँ पडे है, जिनमें नाना प्रकार के देश हैं ।।५।।

अर्धेऽस्मिन्यो महाद्वीपो दक्षिणांशोस्य भारतम् ।
तस्योत्तरस्यां शीताद्रिर्दक्षिणस्यां तु सागर ।।६।।

पृथ्वी के इस आधे मे जो महाद्वीप है उसके दक्षिण भाग मे भारत है और भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण मे समुद्र है ।।६।।

समीपे भारतभुव स्थितो दक्षिणसागरे ।
सिंहलाख्य उपद्वीपो मातुः पार्श्वे शिशुर्यथा ।।७।।

भारत के समीप ही दक्षिण सागर मे सिंहल नामक उपद्वीप वर्तमान है जैसे माता के पास बालक हो ।।७।।

शीताद्रेरुत्तरस्या तु चीनारूष्यास्ततः परम् ।
उत्तरस्यां तु रूष्येभ्य औदीच्य शीतसागरः ।।८।।

हिमालय (शीताद्रि) के उत्तर चीन देश, उसके बाद रूष्य देश, और रूष्य देश से उत्तर उत्तरी शीतसागर है ।।८।।

ब्रह्मश्यामनामदेशाः पूर्वस्यां भारतात्क्रमात् ।
अनामचीनरूष्येभ्य पूर्वस्यां शान्तसागरः ।।९।।

भारत के पूरब क्रम से ब्रह्मदेश, श्याम देश और अनामदेश है। और अनाम, चीन तथा रूष्य देशो के पूरब शान्तसागर है ।।९।।

श्यामदेशाद्दक्षिणस्यां देशो मलयनामक. ।
ततः सुमित्रवर्णाख्यावुपद्वीपौ यमाविव ।।१०।।

श्याम दश के दक्षिण मलय देश है। उसके दक्षिण सुमित्र और वर्ण नाम के दो उपद्वीप जुडवाँ बच्चों के समान है ।।१०।।

दक्षिणस्यां ततस्ताभ्यामुपद्वीपो यवाभिध: ।
औष्ट्रालयाभिधो द्वीपस्तत आग्नेय दिग्गत ।।११।।

इन दोनो के दक्षिण यव नाम का उपद्वीप है और उससे अग्निकोण की दिशा मे औष्ट्रालय द्वीप वर्तमान है ।।११।।

काम्बोजाश्च तुरुष्काश्च भारतात्पश्चिमा क्रमात् ।
काम्बोजेभ्यो दक्षिणस्यां पारसीकास्तत.स्थिताः ।।१२।।

भारत के पश्चिम काम्बोज और तुरुष्क देश है और काम्बोज देश से दक्षिण पारसीक देश है ।।१२।।

आरव्या पारसीकेभ्यस्ततो दक्षिणपश्चिमाः ।
आरव्याणां दक्षिणत स्थितो देशोऽफ्रिकाभिधः ।।१३।।

पारसीक देश से दक्षिण-पश्चिम आरव्य देश है और आरव्य देश के दक्षिण अफ्रिका देश स्थित है ।।१३।।

आश्लिष्य परितश्चास्ते पयोधिः परितोऽफ्रिकाम् ।
महामानां महासत्त्वो जीवितेशः प्रियामिव ।।१४।।

विस्तृत अफ्रिका के चारो ओर अनेक महासत्त्वो से युक्त समुद्र इस प्रकार लिपटा हुआ है—जैसे कोई पुरुष अपनी प्रिया का आलिगन करता हो ।।१४।।

अफ्रिकायास्तथारव्यभूमेर्डमरुमध्यवत् ।
सम्बन्धकारिणी भूमिः सुबीजाख्या सुविश्रुता ।।१५।।

अफ्रिका भूमि और आरव्य भूमि को सम्बद्ध करनेवाली जो भूमि डमरू के मध्य भाग की-सी है वह सुबीज के नाम से प्रसिद्ध है ।।१५।।

सुबीजभूमेः पूर्वस्यामफ्रिकारव्यमध्यगः ।
बाहुर्भारतपाथोधे प्रसिद्धो रक्तसागरः ।।१६।।

सुबीज भूमि के पूरब और अफ्रिका तथा आरव्य देश के बीच मे भारत सागर की भुजा रक्तसागर नाम से प्रसिद्ध है ।।१६।।

आग्नेय्यामफ्रिकाभूमेर्मदागस्कर नामकः ।
उपद्वीप सविस्तीर्णं स्थितो दक्षिणसागरे ।।१७।।

अफ्रिका भूमि से अग्निकोण की ओर दक्षिण सागर मे एक बहुत बडा उपद्वीप जिसका नाम मदागस्कर है ।।१७।।

पूर्वतश्चीनरूष्येभ्य. शान्तसागरवर्त्तिनी ।
द्वीपावली वलीयस्या प्रजयाध्युषिता स्थिता ।।१८।।
कर्पूरद्वीपनाम्नैषा प्राचां सुविदिता किल ।
जापानदेशनाम्नास्या प्रसिद्धिः साम्प्रतं भुवि ।।१९।।
पश्चिमायां सबीजस्योत्तरस्यां चाफ्रिकाभुव ।
वक्ष्यमाणस्य तुङ्गाब्धेर्भुजो मध्याब्धिनामक ।।२०।।

चीन और रूष्य के पूर्व शान्तसागर मे एक द्वीपसमूह है जिसमे बडी वलवती प्रजा निवास करती है । पुराने लोगो को यह द्वीपावली कर्पूरद्वीप के नाम से विदित थी । इस समय जापान देश नाम से पृथ्वी पर इसकी प्रसिद्धि है । सुबीज के पश्चिम और अफ्रिका भूमि से उत्तर तुङ्गसागर का भुजरूप मध्य समुद्र है ।।२०।।

सुवीजकुल्या फ्रांसीयैर्व्ययेन महता कृता।
कीताङ्गलराजैर्मध्याब्धिरक्ताब्ध्योर्योगकारिणी॥२१॥

मध्यसागर और रक्तसागर को मिलानेवाली सुवीज नहर फ्रांसीसियो ने बड़े व्यय से बनाई थी। आँग्ल राजाओ ने मध्यसागर और रक्तसागर को मिलानेवाली इस नहर को खरीद लिया है ॥२१॥

काम्बोजपारसीकेभ्यो देशो यः पश्चिमो महान्।
यूरोपनाम्ना तस्यास्ति प्रसिद्धिर्जगतीतले ॥२२॥

काम्बोज और पारसीक देशो से पश्चिम जो महान् देश है पृथ्वी पर उसकी यूरोप नाम से प्रसिद्धि है ॥२२॥

यवना रोमकाश्चैव सुफेनाश्च क्रमात्स्थिताः।
यूरोपदक्षिणांशेषु मध्यसागर तिषु ॥२३॥

यूरोप के दक्षिण अश में मध्यसागर के पास-पास क्रम से यवन देश, रोमक देश, और सुफेन देश हैं ॥२३॥

तुरुष्का पश्चिमायां ये काम्बोजेभ्यश्च वर्णिता।
तत प्रतीच्यामौष्ट्रीया शर्मण्याश्च :परम् ॥२४॥

काम्बोज क पश्चिम जो तुरुष्क देश कहा गया है उसके पश्चिम औष्ट्रीय देश है और उससे पश्चिम शमण्य देश है ॥२४॥

शर्मण्यानां सुफेनानां चान्तरे फ्रांसकाः स्थिताः।
येषां सम्राडेकवीरो नयपाल्याभिधोभवत् ॥२५॥

शर्मण्य और सुफेन देशो के बीच मे फ्रांस देश स्थित है जहाँ का सम्राट् नयपाल्य जगत में एक ही वीर था॥२५॥

तत पर पयोराशेरङ्के पुत्र इव प्रियः।
आँग्लदेशस्तनुत्वेऽपि राजते जगतोगुरु. ॥२७॥

इसके वाद समुद्र के वीच उसके पुत्र के समान आग्ल देश, विस्तार में छोटा होने पर भी जगत् मे वहुत वडा विराज रहा है ॥२६॥

आँग्लदेशाश्रयोवार्धिस्तुङ्गसागरनामकः।
अमेरिकाभिधा तस्य पारे भूर्महती स्थिता॥२७॥

आग्ल देश का आश्रय रूप समुद्र तुङ्गसागर है। उसके दूसरे पार मे अमेरिका नाम की विस्तृत भूमि स्थित है ॥२७॥

अमेरिका विभक्तासौ दक्षिणोत्तरभागयोः।
महानदनदीशैलवनपत्तनपूर्णयो ॥२८॥

अमेरिका दो भागो में विभक्त है—उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका। ये दोनो भाग वडे नद, नदियाँ, पर्वत जगल तथा नगरो से भरे हैं ॥२८॥

श्यामदेशस्य पुरतो वर्णित शान्तसागरः।
स एवामेरिकायास्तु पश्चिमायामवस्थितः ॥२६॥

इति श्रीमदभिनवभागवते श्रीसत्यदेवकथायां भूस्थितिर्नाम द्वितीयोध्याय समाप्त ।

श्याम देश के आगे जिस शान्तसागर का वर्णन किया गया है, वही अमेरिका क पश्चिम भाग मे सटा हुआ स्थित है ॥२७॥

अब श्रीमदभिनव भागवत की सत्यदेव कथा का पृथ्वी की स्थिति नाम का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ॐ सर्वात्मने नम. ॥

तृतीयोध्यायः

आविर्भूता सुभूपृष्ठे क्रमेण नरजातिषु।
सभ्याः कृष्यादिकुशला अभूवन्नार्यजातय ॥१॥

सृष्टि-क्रम से पृथ्वीतल पर मनुष्यो के आविर्भाव के बाद खेती आदि जाननेवाली आर्यों की सभ्य जाति हुई ॥१॥

एकाहोरात्रवर्षषु ध्रुवभूषितमूर्धसु ।
पुरा मेरुप्रदेशेषु न्यवसन्नार्यजातयः ॥२॥

पहले आर्य जाति के लोग मेरुप्रदेश मे निवास करते थे, जहाँ एक ही दिन-रात का एक वर्ष होता है और जिसके ऊपर ध्रुव शोभा देता है ॥२॥

ऋषीणामुग्रतपसामतिमानुषवर्चसाम् ।
वेद प्रादुरभूत्तत्र विद्यास्थानोपबृंहित ॥३॥

महाशक्ति और अद्‌भुत तेज वाले ऋषियो को वही वेद प्रकट हुआ जो विद्याओ के मूलतत्वों से भरा हुआ है ॥३॥

अथ कालवशादार्याः सर्वतो मेरुमण्डले।
प्रालेयप्रलयाक्रान्ते प्रस्थिता दक्षिणां दिशम् ॥४॥

कालवश जब मेरुमण्डल मे तुषारपात से प्रलय हो गया तब आर्य लोग वहाँ से दक्षिण दिशा में चले ॥४॥

आक्रामन्त क्रमाद्वीराः सरितः सागरान्गिरीन् ।
जयन्तोनार्यजातींश्च सर्वतस्ते प्रतस्थिरे ॥५॥

ये वीर आर्य क्रम से नदी, सागर और पर्वतो को लाँघते और अनार्य जातियो को जीतते हुए चारो ओर बढे ॥५॥

क्रान्त्वा हिमालय केचित्प्राप्ता पश्चिम भारतम्।
कृते युगे महोद्योगाः सप्तसिन्धुपरिप्लुतम् ॥६॥

कुछ महोद्योगी लोग हिमालय को पारकर कृतयुग में सात नदियो के जल से सीचे जाते हुए पश्चिम भारत में पहुँचे ।।६।।

विजित्य नरजातीश्च भारते प्रथमोषिता ।।
पश्चिमोत्तरभागेषु सभ्यतां ते वितस्तरुः ।।७।।

जो जाति भारत मे पहले बसती थी, उसे जीतकर इनलोगो ने भारत के पश्चिमोत्तर भाग मे अपनी सभ्यता फैलाई ।।७।।

कलि शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ।।८।।

कलि में नीद रहती है। द्वापर मे जमुहाई का समय है। त्रेता उठ खडा होता है और कृतयुग मे कार्य होता है ।।८।।

इति श्रुतेर्महोद्योगनिस्तन्द्रप्रायपूरुषम् ।
कृताभिधानं प्रथितं युगं तत्कृतिशालिनाम् ।।९।।

इस श्रुति के अनुसार इन कार्य करनेवालो का (आर्यो का) युग इनके महान् उद्योग और आलस्यरहित पौरुष के कारण कृतयुग नाम से विख्यात हुआ ।।९।।

सुदाहरिश्चन्द्रनला. पुण्यश्लोकास्तथापरे ।
भगीरथाद्या अभवन्कृतात्मानः कृते युगे ।।१०।।

कृतयुग में सुदास, हरिश्चन्द्र, नल तथा और बडे यश वाले भगीरथ आदि बडे उदार-चरित राजा हुए ।।१०।।

अथ त्रेतायुगे रामो भ्रमन्दशरथाज्ञया ।
नीतवान्कीर्त्ति मार्याणा लकाद्वीप सुदुर्गमम् ।।११।।

इसके बाद त्रेतायुग मे दशरथ की आज्ञा से जगलो में भ्रमण करते हुए श्रीरामचन्द्र जी आर्यो की कीर्ति को लकाद्वीप तक ले गये ।।११।।

द्वापरेऽप्यभवन्नेवं भूपा भीष्मादिपूर्वजाः ।
क्रमेण भारतीयानां ह्लासमापन्नु गौरवम् ।।१२।।

इसी प्रकार द्वापर में भीष्म आदि और उनके पूर्वज राजा लोग हुए। फिर क्रम से भारतीयो का गौरव घटने लगा ।।१२।।

ऊनाशीत्यधिकामेकत्रिशदब्दशतीमिह ।
शकाब्दारम्भतः पूर्वं प्रादुरासीत्कलिः किल ।।१३।।

इसके बाद शक सम्वत् से तीन हजार एक सौ उन्नासी वर्ष पूर्व कलि का प्रादुर्भाव हुआ ।।१३।।

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणानामभवन्कुरुपाण्डवाः ।।१४।।

जब कलियुग छ सौ तिरपन (६५३) वर्ष बीत चुका था, तब पृथ्वी पर कुरु और पाण्डव लोग हुए ।।१४।।

श्रीकृष्णसचिवा वीराः पार्था बलमदोद्धतान्।
दुर्योधनादीन्संग्रामे सुखेनैव विजिग्यिरे ॥१५॥

श्रीकृष्ण के मंत्रित्व से वीर पाण्डवो ने वल के घमण्डी दुर्योधन आदि को सहज ही में महाभारत क सग्राम मे जीत लिया ॥१५॥

कुरूणां पाण्डवानां च काले प्रायोभवन्भुवि।
असुरा अजपुत्राश्च पार्श्वयोर्लोहिताम्बुधेः ॥१६॥

प्राय कुरुपाण्डवो के समय ही मे रक्त सागर के दोनो ओर असुर और अजपुत्र लोग पृथ्वी पर उपजे ॥१६॥

ब्राह्मणानां शतपथप्रभृतीनां क्रमेण च।
छान्दोग्याद्योपनिषदां प्रादुर्भावोभवद्भुवि ॥१७॥

क्रम से शतपथ आदि ब्राह्मणो का और छान्दोग्य आदि उपनिषदो का जगत् में प्रादुर्भाव हुआ ॥१७॥

आदौ कालः संहितानां ब्राह्मणानां ततः परम्।
सूत्राणां समयः पश्चात्काव्यानां समयस्ततः ॥१८॥

सवसे पहले ऋग्वेद आदि सहिताओ का समय है। उसके पीछे ब्राह्मणो और इनके वाद काव्यो का समय है ॥१८॥

भाषानुसारतः प्रायः कालस्थितिरितीदृशी।
जनोद्योगानुसारेण कृतादिस्थितिमूचिरे ॥१९॥

यह ममय की स्थिति प्राय भापा के अनुसार है। कृत आदि युगो की स्थिति मनुष्यो के उद्योग के अनुसार कही गई है ॥१९॥

अथ कृष्णे गते घोरः कलिः प्रावर्तत क्षितौ।
सार्धपचशती प्रायो वर्षाणां क्लेशयञ्जनान् ॥२०॥

जव कृष्ण चल वसे तव ससार मे घोर कलियुग छा गया और प्राय. साढे पांच सौ वर्षों तक लोगो को वहुत क्लेश होता रहा ॥२०॥

व्यनश्यद्वैदिकं ज्ञानमितिवृत्तं व्यलुप्यत।
भूतप्रेतपिशाचादिपूजनं सर्वतोभवत् ॥२१॥

(कलि के व्यापते ही) वैदिक ज्ञान का नाश हो गया, इतिहास का लोप हो गया और भूत, प्रेत, पिशाच आदि की पूजा सव जगह चल पड़ी ॥२१॥

ततः सन्देहरूपोभूद्द्वापरो यमजः कलेः।
धर्माधर्मविमूढानां विनिपातस्य कारणम् ॥२२॥

इसके वाद धर्माधर्मविमूढ लोगो का नाश करने वाला कलियुग का यमज 'जुडवाँ' भाई सदेह उत्पन्न हुआ ॥२२॥

भारतीयेष्वनुद्योगदग्धेषु प्रायशः कलाः।
यवनान्रोमकांश्चैव पाश्चात्येषु समाश्रिताः ॥२३॥

जब भारतीय लोग आलस्य की आग से दग्ध हो चुके तब सभी कलाएँ पच्छिमी यवन--रोमक लोगो की शरण मे गईं ।।२३।।

इति श्रीमदभिनवभागवतान्तर्गतायां श्रीसत्यदेवकथायां आर्येतिवृत्तं नाम तृतीयोध्याय समाप्त ।

अब श्रीमदभिनव भागवत की सत्यदेव कथा का आर्यो का इतिहास नाम का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

ॐ सर्वात्मने नमः ।

चतुर्थोध्यायः

द्वापरे संशयग्रस्ते भारते मोहविक्लवे ।
असत्यासुर उद्भूतो जनानां विनिपातकृत् ।।१।।

जब द्वापर युग मे भारत सदेह से ग्रसा जा रहा था और मोह से व्याकुल था तब मनुष्यो का नाश करनेवाला असत्यासुर उत्पन्न हुआ ।

कारुण्यकपटेनासावनुद्योगमुपादिशन् ।
भिक्षुवेशो भ्रमद् भूमौ ख्यापयन्सर्वशून्यताम् ।।२।।

करुणा के छल से यह उद्योग छोड़ने का उपदेश देता हुआ, सब शून्य है, यही (शून्यवाद का) सिद्धान्त फैलाता हुआ भिक्षु का वेश धारण कर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा ।।२।।

मायामयं जगत्सर्वं कर्मबद्धोखिलो जनः ।
इत्यादि भावनायोगान्मुक्तिः शून्यात्मता भवेत् ।।३।।

समूचा ससार माया है, सब लोग कर्म से ही बन्धन मे पडे है । ऐसी भावना कर लेने ही से शून्य भाव रूप मुक्ति होती है ।।३।।

इतीदृशैरसद्वादैर्मोहयन्जनतामिमाम् ।
प्रमादोपहताञ्चक्रे सत्यदेवपराङ्मुखीम् ।।४।।

ऐसे-ऐसे असद्वादो से जनता को मोहते हुए सभी लोगो को भ्रम मे फँसा कर उसने सत्यदेव से विमुख कर दिया ।।४।।

असत्यासुरसन्तानैरसद्वादपरैस्ततः ।
विप्लावितेयं जनता सत्यदेवं न मन्यते ।।५।।

फिर असत्यासुर की सन्तान के इसी असद्वाद से उपद्रव मचाये जाने के कारण जनता सत्यदेव को नही मान रही है ।।५।।

सदप्यसदिति ब्रूते नास्तिक्यं चावलम्बते ।
वन्ध्यापुत्रानुसन्धानसमितिं चानुगच्छति ।।६।।

जो लोग सत् है उसको भी लोग असत् कहते है, नास्तिक्य का अवलम्बन करते है, और बाँझ के बेटे की खोज करनेवाले समाज के पीछे-पीछे चलते है ।।६।।

हृत्वाभासैरमुष्यैव मोहिता जनताखिला ।
अवलम्बित निर्वेदा चिरं दुःखैरतप्यत ।।७।।

इन्ही दिखाऊ हेतुओ के प्रचार से मोह मे पड़कर जनता बहुत काल तक दुख से अत्यन्त पीड़ित रही ।।७।।

आर्याश्च यवनाश्चैव रोमकाश्चैव सर्वशः ।
तस्योपदेशैर्व्यामूढा अनुद्योगपराः क्रमात् ।।८।।

उसी (असत्यासुर) के उपदेश से व्यामोह मे पडकर आर्य, यवन और रोमक लोगो ने क्रम से उद्योग छोड दिया (और आलसी हो गये) ।।८।।

अजायन्त व्यसनिनस्तामसा धर्मकञ्चुकाः ।
निरस्यन्तः शुभां विद्यां विपन्निरयपातिनः ।।९।।

धर्म का जामा पहनने वाले ये लोग तामसी और व्यसनी हो गये तथा पवित्र ज्ञान को छोडकर विपद्ग्रस्त हुए ।।९।।

नाशं व्रजन्त्या प्राचीनसभ्यतायां ततः शनैः ।
विनष्टः शाश्वतो धर्मः सत्यदेव उपेक्षितः ।।१०।।

इस प्रकार जब प्राचीन सभ्यता धीरे-धीरे नष्ट हो गई तो शाश्वत धर्म का भी नाश हुआ और सत्यदेव का अनादर हुआ ।।१०।।

दम्भ सत्यो धनं सत्यं सत्या च स्वैरिणी किल ।
विद्या मिथ्या गृहं मिथ्या भार्या मिथ्येतिवादिन ।।११।।

तस्यासत्यासुरस्यैते पुत्राः पौत्राश्च भूतले ।
जनान्प्रचेरुः कुर्वाणा सत्यदेवपराङमुखान् ।।१२।।

दम्भ सत्य है, धन सत्य है, स्वेच्छाचारिणी स्त्री सत्य है, विद्या मिथ्या है, गृह मिथ्या है, पत्नी मिथ्या है। उसी असत्य रूपी असुर के ये पुत्र और पौत्र पृथ्वी पर लोगो को सत्यदेव के प्रति उदासीन बनाते हुए इस प्रकार से प्रचार करने लगे ।।११, १२।।

सम्प्रदायसहस्राणि मतभेदाश्च भूरिशः ।
धर्मे विनष्टे जायन्त व्यामोहाय नृणां क्षितौ ।।१३।।

धर्म के विनाश के बाद लोगो को भ्रांत बनाने के लिए पृथ्वी पर अनेक संप्रदाय और वाद उत्पन्न हुए ।।१३।।

शैशुनागाश्च नन्दाश्च मौर्या शुङ्गाश्च काण्वका ।
आन्ध्राः शकाश्च गुप्ताश्च द्वापरे भारतं दधु ।।१४।।

द्वापर में शैशुनागो, नन्दो, मौर्यो, शुङ्गो और काण्वको ने तथा आन्ध्रो, शको और गुप्तो ने भारत पर शासन किया ।।१४।।

बिम्बिसारो जरासधपुरे राजगृहाभिधे ।
राज्यं चक्रे महातेजाः शिशुनागकुलोद्भवः ।।१५।।

जरासंध की नगरी राजगृह मे शिशुनाग वंश मे उत्पन्न परम तेजस्वी बिम्बिसार ने राज्य किया ॥१५॥

अजातशत्रुस्तत्पुत्रो जित्वा कोशलमैथिलान् ।
मगधान्प्रशशासाथ भूमिपालो महाबल ॥१६॥

उसके पुत्र अजातशत्रु ने कोशल और मिथिला को जीत कर मगध पर राज्य किया। वह महा बलशाली राजा था ॥१६॥

ततो नन्दा विजयिन समस्तां भारतावनिम् ।
नृपा सहस्रकोटीशा पालयामासुरुद्धताः ॥१७॥

इसके उपरान्त समूची भारतभूमि पर विजय प्राप्त करने वाले असंख्य प्रजाजनो के प्रभु उद्धत नन्दो ने शासन किया ॥१७॥

नन्दै प्रपालितां प्राचीमदृष्ट्वैव जिघृक्षिताम् ।
उद्दामोलिकचन्द्रोगात्सिन्धुतीराद्यथागतम् ॥१८॥

पूर्व में इन नन्दो के द्वारा सुरक्षित प्रदेश को देखे बिना उद्दण्ड अलिकचन्द्र ने भारत पर आक्रमण किया पर सिन्धुतीर से उसी प्रकार लौट गया जिस प्रकार आया था ॥१८॥

नन्दान्विनाश्य चाणक्यसचिवोथ महाबलः ।
शशास चन्द्रगुप्तोसौ मौर्यवंशदिवाकरः ॥१९॥

तदनतर महाबली सचिव चाणक्य ने नन्दो का विनाश कर दिया और उसने तथा मौर्यवंश के सूर्य के समान चन्द्रगुप्त ने शासन किया ॥१९॥

शल्यकाद्यवनाधीशाद्बलेन विजितादसौ ।
गान्धारादीन्समाच्छिद्य चक्रवर्तित्वमाप्तवान् ॥२०॥

चन्द्रगुप्त ने शल्यक (सेल्यूकस) आदि यवनो के द्वारा बलपूर्वक जीते हुए गान्धार आदि देशो को छीन कर चक्रवर्तित्व प्राप्त किया ॥२०॥

चन्द्रगुप्तस्य पौत्रेण भारते प्रियदर्शिना ।
विहाय शाश्वतं धर्मं बौद्धमतमुपाश्रितम् ॥२१॥

फिर भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त के पौत्र प्रियदर्शी (अशोक) ने शाश्वत धर्म का परित्याग कर बौद्धमत स्वीकार किया ॥२१॥

संत्यज्य वैदिकान्यागान्समुपेक्ष्य कुटुम्बकम् ।
भिक्षवः संचरन्तिस्म समाः पशुमनुष्ययोः ॥२२॥

वैदिक यज्ञो को छोड कर और परिवार की उपेक्षा कर बौद्ध भिक्षु आधे पशु और आधे मनुष्य के समान देश में विचरण करने लगे ॥२२॥

अर्जिता चन्द्रगुप्तस्य महोद्योगस्य विक्रमात् ।
हारितेयं मही पुत्रै भिक्षुभिः प्रियदर्शिनः ॥२३॥

कठिन उद्योग करने वाले चन्द्रगुप्त के पराक्रम से अर्जित पृथ्वी को प्रियदर्शी के भिक्षु पुत्रो ने हाथ से निकल जाने दिया ॥२३॥

बृहद्रथं विनिष्पिष्य भिक्षुणामन्तिमं नृपम् ।
पुष्यमित्रोथ शुङ्गेन्दुः प्रशशास धरामिमाम् ॥२४॥

इन भिक्षु राजाओ मे अतिम, बृहद्रथ, को मार कर शुङ्गवश के चन्द्रमा के समान पुष्यमित्र ने राज्य किया ॥२४॥

चिरादशोकस्याज्ञाभिर्निर्यज्ञा भारतावनिम् ।
पुष्योश्वमेधकल्पेन सयज्ञामतनोदिमाम् ॥२५॥

अशोक की आज्ञाओ से जिस भारतभूमि पर बहुत दिनो से यज्ञ नही हुए थे उस पुष्पमित्र ने अश्वमेधयज्ञ से पवित्र किया ॥२५॥

भारतो भिक्षुसम्बन्धादार्यधर्मोपि दूषितः ।
निर्वेदभवनं भूत्वापुनर्नापि स्थिरां श्रियम् ॥२६॥

इन भिक्षुओ के कारण न केवल भारतवर्ष बल्कि आर्यधर्म भी दूषित हुआ। भारत वैराग्य का भवन वन गया और उसे फिर कभी स्थिर राज्य-लक्ष्मी प्राप्त नही हुई ॥२६॥

यदा कदाचिद्विधृता याज्ञिकैश्चण्डविक्रमैः ।
हारिता भूर्व्यसनिभिस्तद्वंश्यैर्धर्मकञ्चुकैः ॥२७॥

कभी-कभी प्रचण्ड विक्रम वाले और यज्ञ करने वाले राजा लोग कुछ काल तक इस भारतभूमि का धारण, रक्षा और पालन करते तो थे परन्तु उन्ही के वंश के धर्म का जामा पहनने वाले व्यसनी इसे फिर-फिर हार जाते थे ॥२७॥

निहत्य नाट्यशालायां चरमं शुङ्गवर्करम् ।
अशिषन्ब्राह्मणाः काण्वा मगधांश कियच्चिरम् ॥२८॥

शुङ्गवंश के सबसे अन्तिम, बकरे सदृश, राजा को नाट्यशाला मे मारकर, कण्ववशी ब्राह्मणो ने कुछ काल तक, मगध के एक अश पर शासन किया ॥२८॥

नन्दैर्मौर्यैश्च शुङ्गैश्च काण्वैश्च विधृत चिरम् ।
आन्ध्रैर्दक्षिणदेशीयैर्जितं पाटलिपत्तनम् ॥२९॥

जिस पाटलिपत्तन (पाटलिपुत्र) को बहुत काल तक नन्द, मौर्य, शुङ्ग और कण्व राजाओ ने अधिकार मे रखा था उसे दक्षिण देश वाले आन्ध्रो ने जीत लिया ॥२९॥

येर्दिता मौर्यसिंहानां प्रतापनखरैः खरै. ।
आन्ध्रयूथाधिनाथास्ते स्वतन्त्रा भारतेभ्रमन् ॥३०॥

जो आन्ध्र सेनापति मौर्य वश के सिंह समान राजाओ के तीक्ष्ण प्रतापरूपी नखो से त्रस्त रहते थे वे अब भारत में स्वतन्त्र घूमने लगे ॥३०॥

आन्ध्रमुख्योभवद्वीरः सातवाहनभूपतिः ।
शालिवाहननाम्नापि यस्य ख्यातिर्महीतले ॥३१॥

आन्ध्रो का प्रधान वीर सातवाहन राजा हुआ, जिसका दूसरा नाम शालिवाहन पृथ्वी पर प्रसिद्ध है ॥३१॥

मौर्येषु क्षीणवीर्येषु क्रमात्पश्चिमभारतम् ।
यवनैश्च शकैश्चाभत्समाक्रम्य वशीकृतम् ।।३२।।

जिस समय मौर्य लोगो का बल घट चला था उसी समय पश्चिम भारत को यवनो ने, और उनके बाद शको ने, आक्रमण कर अपने वश मे कर लिया ।।३२।।

पुरुषाख्ये पुरे राजा कनिष्कोभून्महाबलः ।
रुद्रदामा च सौराष्ट्रे शकवंशधरावुभौ ।।३३।।

पुरुषपुर मे महाबली राजा कनिष्क हुए और सौराष्ट्र मे रुद्रदाम हुए। ये दोनो शकवश के थे ।।३३।।

रुद्रदामसुतैश्चाथ सौराष्ट्रादौ विनिर्जिते ।
हृते कनिष्कदायादैः क्रमादुत्तरभारते ।।३४।।
सातवाहनवंश्यानामान्ध्राणां राज्यमर्जितम् ।
सार्धे गते शकाब्दानां व्यशीर्यत शनैः शनैः ।।३५।।

जब रुद्रदाम के पुत्रो ने सौराष्ट्र आदि को और कनिष्क के उत्तराधिकारियो ने उत्तर भारत को क्रमश विजित कर लिया तब सातवाहन के वश वालो का समृद्ध राज्य धीरे-धीरे एकाब्द के डेढ़ सौ वर्ष बीतते-बीतते नष्ट हो गया ।।३४-३५।।

अथ प्रयाते काले च विनाथां भारतावनिम् ।
समुद्रगुप्तो विक्रम्य वशीचक्रे महामनाः ।।३६।।

कुछ काल बाद जब भारत-भूमि अनाथ हो रही थी उस समय तेजस्वी समुद्रगुप्त ने अपने विक्रम से इसे अपने वश में किया ।।३६।।

समुद्रगुप्तस्य सुतश्चन्द्रो दुर्वारविक्रमः ।
विक्रमादित्य इत्यासीद्विश्रुतो भूतले नृपः ।।३७।।

अतुल पराक्रमी समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त पृथ्वीतल पर विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।३७।।

इति श्रीमदभिनव भागवते श्रीसत्यदेवकथायां भारतेतिवृत्तं नाम चतुर्थोध्याय समाप्तः।

अब श्रीमदभिनवभागवत की सत्यदेव कथा का भारत का इतिहास नाम का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

ॐ सर्वात्मने नम ।

पंचमोऽध्यायः

द्वापरस्यावसानेथ दम्भाद्रिक्षोभितादभूत् ।
सर्वात्मवारिधेर्वन्यविसर्पाख्यो हलाहलः ।।१।।

अब द्वापर के बीत जाने पर पाषण्डरूपी (दम्भाद्रि) पहाड़ से मथे हुए सर्वात्मरूपी समुद्र से जङ्गलियो का बाढरूपी कालकूट (विष) उत्पन्न हुआ ।।१।।

हूणैर्गौथैस्तुरुष्कैश्च वन्यरन्यैस्तथा जनैः ।
आर्ययावनरोमीयसभ्यता कवलीकृता ॥२॥

हूण, गौथ, तुरुष्क तथा अन्यान्य जगली लोगो ने आर्य, यवन और रोमीय सभ्यता को चवा डाला ॥२॥

असत्यासुरमन्त्रेण विपन्ना प्राच्यसभ्यता ।
सास्थिमासं कवलिता विकटैः कुणपाशिभिः ॥३॥

जव असत्यासुर के मन्त्र से प्राच्य सभ्यता नष्ट हो गई तो विकट राक्षसो ने इसे हड्डी-मास सहित ही अपना ग्रास वना लिया ॥३॥

वन्यताकालकूटेन विज्ञाने कवलीकृते ।
असत्यासुरसन्तानैः सर्वं विश्वं वशीकृतम् ॥४॥

जव वन्यता (जङ्गलीपना) का विप विज्ञान का भक्षण कर गया तव असत्यासुर की सन्तान ने सारे जगत् को अपने वश में कर लिया ॥४॥

ज्ञानसूर्यः प्रयातोऽस्तं न दृष्टा भक्तिचन्द्रिका ।
छन्ने मोहान्धकारे च नास्फुरन्कर्मतारकाः ॥५॥

ज्ञानरूपी सूर्य अस्त हो गया, भक्ति की चन्द्रिका लुप्त हो गई और कर्म के नक्षत्रो ने भी चमकना छोडा ॥५॥

मायावादान्धतामिस्रे दम्भोलूकनिषेविते ।
धर्मकञ्चुकिभिर्दृष्टा हन्त विद्या व्यपद्यत ॥६॥

पापण्डरूपी उल्लुओ से सेवित मायावादरूपी प्रचण्ड अन्धकार में धर्म का जामा पहिने हुए केचुलवाले सर्पो से डँसी हुई विद्या मर गई ॥६॥

वीरत्वं व्यभिचारेऽभूद्भक्तिरासीत्पिशाचगा ।
असत्यकल्पना विद्या दम्भोऽभूद्धर्मनामभृत् ॥७॥

वीरता व्यभिचार करने में रह गई, भक्ति पिशाचो मे हुई, असत् (जो नही है उस) मे सत् (जो है उस) की कल्पना ही विद्या समझी जाने लगी और पाषण्ड ही का नाम धर्म हो गया ॥७॥

अथ मध्याम्बुधेस्तीरे धन्वन्तरिरिवोदभूत् ।
विज्ञानपीयूषकरः सत्यदेवः पुनः क्षितौ ॥८॥

अव मध्यसमुद्र के तीर पर धन्वन्तरि तुल्य, विज्ञानरूपी अमृत को हाथ में लिये हुए सत्यदेव जी फिर पृथ्वी पर प्रकट हुए ॥८॥

वत्सरार्धसहस्रेण धर्मं विद्यां वलं यशः ।
पीयूषपाणिर्देवोऽसौ पाश्चात्यानामजीवयत् ॥९॥

अमृतमय हाथ वाले इस देव ने पाँच सौ वर्षों में पश्चिमी लोगो के धर्म, विद्या, वल और यश को फिर से जिला दिया ॥९॥

पक्षैः प्रबाधमानाश्च तं दवं दम्भकौशिकाः ।
हठान्निरस्ता न स्थानमलभन्त तमःप्रियाः ॥१०॥

अन्धकार के प्रेमी दम्भरूपी उलूक, सत्यदेव को अपने पक्षो की फड़फड़ाहट से दबाने की चेष्टा करने लगे; पर उनके बल से पराजित होकर उनके समीप स्थान नही पा सके ॥१०॥

देशभक्तैर्जनैर्वीरैः सत्यदेवप्रियैरपि ।
रक्षिते भारते दैत्यो महादम्भं ततान सः ॥११॥

सच्चे विज्ञान में प्रेम रखने वाले देशभक्त नेताओ से रक्षित भारत-भूमि पर भी असत्यासुर ने अपना दम्भ न जाने कैसे फैला दिया ॥११॥

तमोलिकूटः पत्न्याथ भ्रमैर्ल्लाभोत्सुकाख्यया ।
महादम्भस्वरूपश्च बबाधे भारताम्बुजम् ॥१२॥

महादम्भरूपी असत्य-राक्षस अज्ञानरूपी भ्रमरो के समूह के रूप में, लाभ की उत्कण्ठा नाम की अपनी सहधर्मिणी के साथ, आकर भारतरूपी कमल पर गिरा ॥१२॥

तत्संपर्केण कलुषे पौरस्त्यहृदयाम्बुजे ।
पुण्या नवीन विज्ञानज्योत्स्ना न लभते पदम् ॥१३॥

इसी असत्य राक्षस के सम्बन्ध मे कलुषित पूर्वी मनुष्यो के हृदयरूपी कमल पर नवीन विज्ञान की पवित्र चाँदनी भी स्थान नही पा रही है ॥१३॥

इति श्रीमदभिनवभागवते श्रीसत्यदेवकथायां असत्यासुरोद्भवो नाम पंचमोऽध्याय ।

अब श्रीमदभिनव भागवत की सत्यदेव कथा का 'असत्यासुर का जन्म' नाम का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

ॐ सर्वात्मने नमः ।

षष्ठोऽध्यायः

चतुर्दशशती याता त्रेतायाः किल भूतले ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्ना देशाः प्रायोभवन्भुवि ॥१॥

त्रेता युग के चौदह सौ वरस वीत गये और पृथ्वी पर प्रायः सभी देश ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न है ॥१॥

अधर्मस्य पदं चैकं यत्प्रमादाख्यया श्रुतम् ।
तत्सत्यदेव वैमुख्यात्पतितं भारते हठात् ॥२॥

सत्यदेव से विमुख रहने के फलस्वरूप, अधर्म का एक चरण जो प्रमाद (भ्रम) नाम से प्रसिद्ध है, बलात् भारत पर आ पड़ा है ॥२॥

शासकैर्ज्ञाननिलयैः सत्यदेवप्रियैरिदम् ।
उत्थापयितुमेवेष्टं जनानां न तु तत्प्रियम् ॥३॥

सत्यदेव को प्रिय समझनेवाले ज्ञानी शासनकर्त्ता इस भ्रम को उखाडना चाहते है, परन्तु यह काम जन-समुदाय को प्रिय नही है ॥३॥

असत्यप्रियता यावद्वन्ध्यापुत्रानुसारिणी ।
प्रचरिष्यति देशेऽस्मिंस्तावन्नास्योन्नतिर्भवेत् ॥४॥

जबतक बाँझ के बेटे को खोजनेवाली असत्यप्रियता इस देश मे प्रचार पावेगी तबतक इसकी उन्नति नही होने को ॥४॥

असत्यासुरसन्तानैर्वन्ध्यापुत्रानुसारिभिः ।
अन्येष्वलब्धप्रसरैर्भारतीयाः प्रतारिताः ॥५॥

वन्ध्यापुत्र के सदृश बेठिकानी बातो की खोज मे पडी हुई इसी दम्भ नामक असत्य-राक्षस की सन्तान दूसरी जगह स्थान न पाकर, भारतवालो को ठग रही है ॥५॥

भूतप्रेतपिशाचादीनसतोऽपि सतो यथा ।
वन्ध्यापुत्रानुसन्धानसमितिर्दर्शयत्यलम् ॥६॥

वन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज का यही काम है कि वह भूत, प्रेत, पिशाच आदि झूठी वस्तुओ को सत्य के समान दिखलाता है ॥६॥

प्रज्ञावावान्प्रभाषन्ते मिथ्याविज्ञानवल्लभा ।
विप्लावयन्ति विज्ञान प्राच्यं नव्यं च भूतल ॥७॥

(वन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाजवाले) झूठी वुद्धि की बातें करते है, झूठे विज्ञान मे लिपटे रहते है और नये-पुराने समस्त विज्ञान का पृथ्वी से लोप कर रहे है ॥७॥

आज्ञा राज्ञामृषीणां वा मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
निर्हेतुकं ग्रहीतव्या स्थितिः सभ्यजनस्य सा ॥८॥

राजा की, ऋषियो की, माता-पिता की तथा गुरु की आज्ञा का, विना फल का विचार किये ही, पालन करना चाहिए। सभ्य लोगो का ऐसा ही व्यवहार होता है ॥८॥

वस्तुस्थितौ तु केषांचिन्न शब्दानां प्रमाणता ।
शब्दैरुक्तेप्यनुक्तेपि ,वस्तुन्यनुभवः प्रमा ॥९॥

वस्तु की स्थिति मे (क्या है, क्या था, क्या होगा इत्यादि में) किसी के भी वचन का प्रमाण नही। जो वात है उसे चाहे किसी ने कहा हो अथवा नही कहा हो उसमें अनुभव ही प्रमाण है ॥९॥

यन्नानुभूयते साक्षान्न चैवाप्यनुमीयते ।
तादृशे शब्दमात्रोक्ते सन्देहो व्याहतिर्न चेत् ॥१०॥

जिसका साक्षात् अनुभव नही हो सके अथवा जो अनुमान में न आवे वैसी केवल शब्दमात्र से कही वात में सन्देह रहता है—यदि वात बेठिकानी न हो ॥१०॥

व्याहतेतु न सन्देहः सद्यश्चासत्यताग्रहः ।
सत्याराधनशीलानां सभ्यानां स्थितिरीदृशी ।।११।।

जो बात बेठिकानी हो उसमे सन्देह भी नही करना चाहिए। उसे झट झूठा समझना चाहिए। सत्य को पूजनेवाले सभ्य लोगो का ऐसा ही व्यवहार है ।।११।।

जलमानय पुत्रेति विधेयाज्ञा पितुर्द्रुतम् ।
वाराणसी हिमाद्राविलयपरीक्ष्य न मन्यते ।।१२।।

"हे बेटा! जल लाओ" ऐसी बाप की आज्ञा का तुरन्त पालन करना चाहिए। परन्तु "बनारस हिमालय पर है" बिना परीक्षा किए इस बात को नही मानना चाहिए ।।१२।।

वन्ध्यापुत्रशिरोवर्त्तिहेमपात्रं गृहान्तरे ।
तदानयेति व्याघातग्रस्त सद्य उपेक्ष्यते ।।१३।।

"घर मे बाँझ का बेटा है, उसके सिर पर सोने का बरतन रखा है, उसे लाओ" ऐसी बेठिकानी बात की झट उपेक्षा कर देनी चाहिए ।।१३।।

अलिकूटस्थविधवा शम्भली विकटानना ।
माधवीनाम वाचाला पूतना बालभक्षिणी ।।१४।।
द्विजिह्वया तया दष्टा धर्मकञ्चुकिभार्यया ।
मूर्च्छिता न विजानन्ति निरये स्वां स्थितिं जनाः ।।१५।।

अन्धकाररूपी भ्रमर-समूह के साथ रहनेवाली, भयकर मुँह की, ठगनी पूतना के सदृश, बालको को खाती हुई, बहुत बकती हुई, मधु अर्थात् मद्य के सदृश लोगो को भ्रम में डालने वाली जो मूर्तिमती अविद्या है, जिसका पालन आजकल धर्म का जामा पहरने वाले कर रहे है, उसी केंचुलवाली विषधरी से डसे हुए मूर्च्छित जन नरक में अपनी स्थिति नही जानते है ।।१४-१५।।

तस्याः प्रमाणमैतिह्यं विद्या चासत्यकल्पना ।
पिशाचाराधनं भक्तिः किंवदन्ती महाश्रुतिः ।।१६।।

जो पहले के लोग कहते आये है वही उसके लिए प्रमाण है, जो असत्य है उसकी कल्पना कर लेना ही उसकी विद्या है, पिशाचो की पूजा उसकी भक्ति है और किंवदन्ती ही उसके लिए वेद है ।।१६।।

शिखासूत्रादिचिह्नेषु पितृदेवादिमूर्त्तिषु ।
विद्युच्चुम्बकशक्त्त-यादेरुत्प्रेक्षास्याश्च विज्ञता ।।१७।।

यज्ञोपवीत और शिखा आदि चिह्नो में तथा देव, पितर आदि की मूर्त्तियो में बिजली तथा चुम्बक की शक्ति समझ लेना ही उसकी बुद्धिमानी है ।।१७।।

प्रेतबन्धनविस्फोटो मन्त्रैरित्यादिजल्पनैः ।
मूर्खान्विमोहयत्येषा वज्रमूर्खैः प्रपूज्यते ।।१८।।

मन्त्र पढ़ने से प्रेत का बन्धन टूट जाता है इत्यादि गप्पें हाँकती हुई यह मूर्खों को मोहती है और वज्रमूर्ख लोग इसे पूजते हैं ।।१८।।

धर्मकञ्चुकिनश्चैव बहवस्तदनुव्रताः ।
मोहयन्तश्चरन्तीमामधन्यां भारतावनिम् ।।१९।।

धर्म की कंचुली पहने हुए उसके बहुतेरे अनुगामी हैं। वे इस भाग्यहीन भारत देश में मोह फैलाते हुए विचर रहे हैं ।।१९।।

केचित्पुमांस स्त्रीवेषाः पुंवाचालाः स्त्रियः पराः ।
उपवीतार्पणव्यग्रा मद्यपेषु तथा परे ।।२०।।

कुछ पुरुष स्त्रीवेष में हैं तो कुछ स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक बकबक करनेवाली हैं और, कुछ लोग मद्य पीने वालो के गले में भी जनेऊ बाँधने को व्यग्र हैं ।।२०।।

अपरे वेदशिबिकावहनाल्लब्धजीविकाः ।
श्राद्धदक्षिणाया वेश्यास्तपर्यन्तस्तथापरे ।।२१।।

कुछ लोग वेद की सवारी ढोकर जीविका निर्वाह करने वाले हैं तथा कुछ श्राद्ध की दक्षिणा से वेश्याओं को प्रसन्न करने वाले हैं ।।२१।।

तान्त्रिकाः सर्वभक्षाय व्यभिचाराय मान्त्रिकाः ।
धार्मिका. कूटसाक्ष्याय पुण्यायोत्कोचवल्लभाः ।।२२।।

कितने ही सब कुछ खाने के लिए तान्त्रिक बनते हैं, व्यभिचार करने के लिए मन्त्र जपते हैं, झूठी गवाही देने के लिए धार्मिक बन जाते हैं तथा पुण्य के लिए घूस लेते हैं ।।२२।।

छात्रायुः क्षपणायैव वाक्प्रपंचपरायणाः ।
अज्ञाननिलया विज्ञा धर्मवादाश्च पापिनः ।।२३।।

कितने ही विद्यार्थियों का समय नष्ट करने वाले वाक्प्रपंच में चतुर व्यक्ति हैं, और कितने अज्ञान की खान होते हुए भी बुद्धिमान् बनने वाले, पापी होते हुए भी धर्म-धर्म चिल्लानेवाले हैं ।।२३।।

श्राद्धिनो भूतवित्रस्ताः स्त्रीलुब्धास्तीर्थयात्रिणः ।
अनीतिसक्ता नीतिज्ञाः सत्यज्ञाः कल्पनाप्रिया ।।२४।।

कितने ही भूत के डर से श्राद्ध करने वाले, स्त्रियों के लालच से तीर्थयात्रा करनेवाले, अनीति में रत रहनेवाले नीतिज्ञ, कल्पना पसन्द करने वाले सत्यज्ञ लोग हैं ।।२४।।

इति दाम्भिकमूर्खाणां प्रचारैर्विक्लवीकृते ।
सत्यदेवस्य देशेऽस्मिन्नादरो दृश्यते क्वचित् ।।२५।।

इस प्रकार मूर्ख पाखण्डियों के प्रचार से व्याकुल इस देश में कहीं भी सत्यदेव का आदर नहीं दीख पड़ता ।।२५।।

मायाशून्याद्यसद्वादाः पिशाचाद्यर्चनानि च ।
सद्विज्ञानेष्वभक्तिश्च यावद्देशेऽत्र वर्तते ।।२६।।
तावन्नास्योन्नतिः क्वापि कदाचित्सम्भविष्यति ।
मर्त्यतायामभक्तिर्हि लक्षणं परमुन्नतेः ।।२७।।

जबतक इस देश मे मायावाद (सब ससार मायामय है) तथा शून्यवाद (सब कुछ शून्य है) रहेंगे, जबतक प्रेत, पिशाच आदि की पूजा होती रहेगी और जबतक सच्चे विज्ञान मे भक्ति नही होगी, तबतक इसकी किसी प्रकार की उन्नति कभी सम्भव नही है, क्योंकि मूर्खता में भक्ति न रखना उन्नति का प्रधान लक्षण है ।।२६-२७।।

प्राप्य विज्ञवरान्वीरान्सत्य सन्धान्महामतीन् ।
नायकान्देशभक्तांस्तु हन्त भारतमीदृशम् ।।२८।।
देशभक्ति ज्ञानभक्ति सत्यभक्ति च दूरतः ।
परिहृत्य महामूर्खव्याख्यानैर्यातिनारकान् ।।२९।।

इति श्रीमदभिनवभागवते श्री सत्यदेवकथायां दम्भदूषणं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

अत्यन्त बुद्धिमान्, वीर, सत्यान्वेषी, चतुर, तथा देशभक्त नेताओ को पाकर भी यह भारत देशभक्ति, ज्ञान की भक्ति और सत्य की भक्ति का दूर से ही परित्याग कर, महामूर्खों के व्याख्यान मे मोहित होकर, नरक मे गिर रहा है ।।२८-२९।।

अब श्रीमदभिनव भागवत की सत्यदेव कथा का दम्भदूषण नाम का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।

।। ॐ सर्वात्मने नम ।।

सप्तमोऽध्यायः

अविद्याकुट्टनीं जिह्मां दुर्गमारण्यकप्रियाम् ।
घोररूपां जराग्रस्ता बालमोहनतत्पराम् ।।१।।
पारमार्थिकरामस्य सुमित्रानन्दवर्धन ।
अनुजन्मा व्यधामेनां विनासां विगतश्रुतिम् ।।२।।

जिसे घोर जगली अधिक चाहते है, जिसका रूप भयकर है, जो बहुत पुरानी है और जिससे कच्ची बुद्धिवाले जल्दी ठगे जाते है ऐसी अविद्यारूपी ठगनी को पारमार्थिक रूपी राम के अनुयायी और अच्छे मित्रो के आनन्द बढाने वाले, मैंने ऐसा कर दिया है जिससे इसकी स्थिति कहीं न हो और जिससे इसकी बात कोई सुने नही (शूर्पणखा के पक्ष मे—जो अविद्या का जाल फैलाती है, कुटिल है, जिसे दुर्गम अरण्य प्रिय है, जिसका रूप विकट है, जो बच्चो (राम-लक्ष्मण) को फँसाने की कोशिश करती है, उसे पारमार्थिक राम के अनुज, सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण ने नासिका और कर्ण से रहित कर दिया है) ।।१-२।।

श्रुतिहीना स्मृतित्यक्ता विनासा गतबान्धवा ।
मायाहरिणमद्भाव्य विकटारण्यचारिणी ।।३।।
घोरा निशाचरी हन्त भिक्षुभिर्योगमागता ।
असत्यासुरसन्तानै. स्वार्थसाधनतत्परै ।।४।।

अब इसकी बात कोई सुनता नही, इसका स्मरण कोई नही करता, इसके रहने का ठिकाना नही, इसके बन्धुओ का पता नही, माया के हरिण को प्रकट कर विकट जगलो मे घूमती हुई यह भयकर राक्षसी, बडे आश्चर्य की बात है, ऐसे भिक्षुओ से जा मिली है जो असत्यासुर की सतान है और स्वार्थ-साधन मे तत्पर रहते है ।।३।।४।।

घोररूपा माल्यधरा काषायाम्बरधारिणी ।
पोटेयं विकटा स्त्री वा पुमान्वेति न निश्चयः ।।५।।

भयकर इसका रूप है, धर्म की कठी और गेरुआ वस्त्र पहने रहती है, इसके लक्षण स्त्री और पुरुष दोनो के है, इससे यह नही पता लगता कि यह भयकर राक्षसी स्त्री है या पुरुष है ।।५।।

कोस्या धर्मः किमुद्देश्यं के तयास्याः सहायकाः ।
इत्यादि नैव जानन्ति मूढास्तत्त्वेन भूतले ।।६।।

इसका क्या धर्म है, इसका उद्देश्य क्या है तथा इसकी सहायता करनेवाला कौन है—इत्यादि बातो को मूढ लोग ठीक-ठीक नही जानते है ।।६।।

स्वार्थसाधननिष्ठेयमसत्यासुरकामिनी ।
बालमोहनमुद्देश्यमस्या इति सतां मतम् ।।७।।

यह अविद्यारूपी कुट्टनी असत्य राक्षस की सहचारिणी है और अपना मतलब साध रही है, और कच्ची बुद्धि वालो को ठगना ही इसका कार्य है—यही सज्जन लोगो का कथन है ।।७।।

मिथ्यैतिह्यादिविज्ञानमीदृशैर्मोहकारिभि ।
प्रख्यापितं विहायाद्य विप्रा विज्ञानवल्लभाः ।।८।।
पारमार्थिकविज्ञाने विधत्त सुदृढां मतिम् ।
पारमार्थिकविज्ञानादुन्नतिर्न हि दुर्लभा ।।९।।

ऐसे मोह म डालने वालो के गप्परूपी मिथ्या और दिखाऊ विज्ञान को छोडकर, हे विज्ञान के चाहने वाले विप्र लोग, आप पारमार्थिक विज्ञान मे दृढ प्रवृत्ति कीजिये, क्योकि—।।८-९।।

कथाप्रपञ्च सकलो यच्चैतिह्य जने स्थितम् ।
कार्योपयोगिविज्ञाने परिनिष्ठास्य कीर्त्तिता ।।१०।।

जो कुछ कथा का प्रपञ्च जन-साधारण में 'बाबावाक्य' की भाँति है उसको उपयोगी विज्ञान के रूप में लाना ही उसका पर्यवसान है ।।१०।।

शास्त्रं शिल्पं च यत्सत्यं सत्यदेवप्रियैः श्रितम् ।
सर्वात्मना तत्सर्वात्मप्रीतये परिषेव्यताम् ।।११।।

शास्त्र, शिल्प, सत्य और सत्यदेव के भक्तो द्वारा ब्रह्म को सम्पूर्ण मन से, सर्वात्मा को प्रसन्न करने के लिए, सेवन करो ।।११।।

धर्मार्थकामा उद्योगादनुद्योगस्त्रिवर्गहा ।
त्रिवर्गसेवासर्वात्मप्रीतये मोक्षरूपिणी ॥१२॥

धर्म, अर्थ और काम, ये तीनों उद्योग ही से साधे जायेंगे और आलस्य से त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की हानि है। त्रिवर्गसेवा सर्वात्मा की प्रसन्नता है और यही मोक्षस्वरूप है ॥१२॥

देश-भक्तिर्मातृभक्ति पितृभक्तिस्तथापरा ।
भक्तिरध्यापके चैव चतस्रो भक्तयः शिवाः ॥१३॥

देशभक्ति, माता की भक्ति, पिता की भक्ति और अध्यापक की भक्ति—ये ही चार कल्याण देने वाली भक्तियाँ हैं ॥१३॥

दाम्भिकेषु तु मूर्खेषु तन्त्रमन्त्रादिवादिषु ।
परोक्षदृष्टिसिद्ध्यादिस्थापकेषु न विश्वसेत् ॥१४॥

जो पाखंडी हों, मूर्ख हों, तन्त्र-मन्त्र की गप्पें मारते हों, परोक्ष वस्तु देखना आदि सिद्धि की डींग मारते हों, उनमें कभी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१४॥

मूर्खभक्त्या हि संन्यस्य कुटुम्बमवसादयेत् ।
शून्यध्यानजपैः सिद्धिं मृषा वाञ्छञ्जड़ कुधी ॥१५॥

जो कोई निर्बुद्धि मूर्ख में भक्ति करके सन्यास ले लेता है वह अपने कुटुम्ब को कष्ट देता है और व्यर्थ ही शून्य के ध्यान तथा जप से सिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करता है ॥१५॥

यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां शास्त्रं शिल्पं च संगतम् ।
पवित्रं तत्समं नास्ति तदधीनाश्च सिद्धयः ॥१६॥

शास्त्र और शिल्प, जो प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों से ही सङ्गत हैं, उनके जैसा पवित्र कुछ भी नहीं है और सभी सिद्धियाँ उन्हीं के अधीन हैं ॥१६॥

मृत पिता तवायाति खेचरोहं तपोवशात् ।
इत्यादि धूर्त्तवादेषु क श्रद्धां कर्तुमर्हति ॥१७॥

'तुम्हारा मरा बाप आ रहा है' 'तपस्या के बल से मैं आकाश में उड़ता हूँ' इत्यादि धूर्त्तों के वचन में कौन श्रद्धा करेगा ॥१७॥

घृताक्तं मन्यते भक्तं न बिडालोपि वाक्यत ।
आघ्राय तु घृत तस्य भोजने सम्प्रवर्त्तते ॥१८॥

केवल कहने से बिल्ली भी भात को घी से सना नहीं मान लेती। पहले घी सूँघ लेगी तब खायगी ॥१८॥

वाङ्मात्रेण महात्मायं सिद्धोयमिति यः पुन ।
यं कञ्चित्पूजयेन्मूढ स पशोरधम स्फुटम् ॥१९॥

परन्तु जो किसी को, केवल यह सुन कर कि ये महात्मा हैं, ये सिद्ध हैं, पूजे, तो साफ है कि वह पशु से भी अधम है ॥१९॥

युधिष्ठिरस्य वाङमात्रे विश्वसंस्तद्गुरुर्हतः ।
अपरीक्ष्य न कस्यापि श्रद्दधीत वचस्ततः ॥२०॥

युधिष्ठिर के वचनमात्र मे विश्वास करने के कारण उनके गुरु (द्रोणाचार्य) मारे गये, इसलिए विना परीक्षा किये किसी की भी बात मे श्रद्धा नही करनी चाहिए ॥२०॥

परीक्षापि न कर्त्तव्या व्याहतानां कदाचन ।
वन्ध्यापुत्रोस्ति नास्तीति न केनापि परीक्ष्यते ॥२१॥

जो वाते बेठिकानी हो उनकी कभी परीक्षा भी न करना । बाँझ को बेटा है या नही, इसकी कोई भी परीक्षा नही करता ॥२१॥

मृतैर्वार्त्ता पिशाचैश्च रक्षा दिव्यैः समागम ।
नद्या घृतं तथामंत्राद्द्रव्य योगात्खचारिता ॥२२॥

मरे लोगो से बातचीत करना, प्रेत-पिशाचो से रक्षा करना, देवताओ का समागम होना, नदी से घी आना, मन्त्र से द्रव्य का आना, योग से आकाश मे चलने की शक्ति पाना—॥२२॥

भक्तार्थं रामकृष्णादि-सत्त्वानां भूतल भ्रम ।
अन्यदृष्टस्य संकेतं विनैवान्येन वेदनम् ॥२३॥

भक्त के लिए राम-कृष्ण आदि के भूतो का पृथ्वी पर घूमना, दूसरे की देखी वस्तु को विना इशारे ही जान लेना— ॥२३॥

दृष्टि परोक्षवस्तूनामनुमानं विनैव च ॥२४॥

विना अनुमान किये, जो आँख के सामने नही, उसे देख लेना—॥२४॥

धूर्तप्रख्यापितानेतान्मिथ्यावादानितीदृशान् ।
न सत्यदेवभक्तस्तु श्रद्दधीत कदाचन ॥२५॥

धूर्तों की कही इन झूठी बातो मे तथा ऐसी ही अन्य बातो मे सत्यदेव के भक्त कभी श्रद्धा नही करते ॥२५॥

नैवेदृशप्रलापानां व्याहतानां कदाचन ।
परीक्षायां प्रकुर्वीत कालशक्तिधनव्ययम् ॥२६॥

ऐसी-ऐसी बेठिकानी गप्पो की परीक्षा करने मे भी समय, शक्ति और धन का व्यय नही करना चाहिए ॥२६॥

भ्राता ते वाष्पयानेन समायातीति शृण्वता ।
सम्भाव्य तस्यागमनं पाकाद्यं हि प्रवर्त्यते ॥२७॥

'तुम्हारा भाई रेलगाड़ी से आता है', ऐसा सुनकर उसका आना सम्भव जानकर रसोई आदि की जाती है ॥२७॥

स चेदायाति तद्भुंक्ते परेभ्यो दीयतेन्यथा ।
न तत्र महती हानिर्नैवार्थो व्याहतो ह्यसौ ॥२८॥

यदि वह आया तो खायगा, यदि न आया तो उसका अंश दूसरे को दे दिया गया। इसमे कोई बडी हानि नही है, न यह बात ही बेठिकानी है ॥२८॥

आता ते पादुकाशक्त्या खेचरन्नेति तं व्रजेः ।
इति श्रुत्वा न बालोपि प्रत्युद्व्रजति सोदरम् ॥२९॥

'तुम्हारा भाई खड़ाऊँ की शक्ति से आकाश मे उडता हुआ आ रहा है, उसकी आगवानी करने चलो', ऐसा सुनकर कोई बालक भी भाई की अगवानी नही करता ॥२९॥

न च लक्षव्ययं कृत्वा मेरोः स्वर्णतृणं यदि ।
आनीय भक्षयेत्कश्चित्तदास्यादजरोमरः ॥३०॥
इति कस्यापि मूर्खस्य श्रुत्वा धूर्त्तस्य वा वच' ।
प्रदाय दक्षिणां तस्मै मेरुं धावति कश्चन ॥३१॥

'मेरुप्रदेश मे सोने की घास है, यदि उसको लाख रुपया खर्च करके खाय, तो अजर-अमर हो जाय'--किसी मूर्ख या धूर्त्त की ऐसी बात सुनकर कोई भी उसे दक्षिणा देकर मेरु की ओर नही दौडता ॥३१॥

तस्मान्मूर्खप्रलापेषु सत्यदेवप्रियैर्नरैः ।
श्रद्धालेशो न कर्त्तव्यो न तदर्थो व्ययस्तथा ॥३२॥

इसलिए मूर्खो की गप्पो में किसी भी सत्यदेव को चाहने वाले को लेशमात्र भी श्रद्धा नही करनी चाहिए, न इसके लिए कुछ व्यय ही करना चाहिए ॥३२॥

धूर्त्तैर्मूर्खैश्च संबाधा मोहयन्ती जनान्मुहुः ।
वन्ध्यापुत्रानुसन्धानसमितिः सत्यनाशिनी ॥३३॥

धूर्त्त और मूर्खो की भीड से भरी ई और मनुष्यो को मोह में डालती हुई वन्ध्यापुत्रान्वेषण-सभा सत्य का नाश कर रही है ॥३३॥

सत्यप्रकृतिविज्ञानविरुद्धाः ख्यातयः कृताः ।
तथैव जनपूजार्थं तासु तस्याः प्रवृत्तयः ॥३४॥

उसी ने सच्चे और प्राकृतिक विज्ञान के विरुद्ध कितनी ही बाते चलाई है और लोगो से पुजाने के लिए ही उसमें प्रवृत्ति रखती है ॥३४॥

सत्यदेवप्रियाणान्तु मातापितृनृपादयः ।
निर्हेतुकाज्ञानुष्ठानैराराध्याः सर्वदा भुवि ॥३५॥

जो सत्यदेव को चाहने वाले है उनके लिए माता, पिता, राजा आदि, फल का विचार किये विना ही, आज्ञा-पालन द्वारा सदा पूजा के योग्य है ॥३५॥

आज्ञातिरिक्तं यत्किञ्चिन्न च सिद्ध्येत्कथंचन ।
प्रत्यक्षेणानुमानेन तदुपेक्ष्यं तु दूरतः ॥३६॥

आज्ञा के सिवा जो कुछ है, वह यदि प्रत्यक्ष और अनुमान से ठीक न जँचे, तो उसका दूर से ही अनादर कर देना चाहिए ॥३६॥

इति वः कथिता दिव्या सत्यदेवकथाद्भुता।
सक्षेपेण महाभागाः प्रचारोऽस्या विधीयताम् ॥३७॥

यही आपलोगो से सक्षेप मे मैंने सत्यदेव की दिव्य और अद्भुत कथा कही। अब, हे महाशयो, आपलोग इसका प्रचार करे ॥३७॥

इत्युक्त्वा सुहृद. सर्वान्काशीक्षेत्रे मनोरमे।
भगवान्मुद्गरानन्दः कार्याय विससर्ज तान् ॥३८॥

इति श्रीमदभिनवभागवते श्रीसत्यदेव कथाया सप्तमोध्यायः।

॥ समाप्ता चेयं कथा ॥

मनोहर काशीक्षेत्र मे अपने सब मित्रो से ऐसा कहकर भगवान् मुद्गरानन्द ने उन्हे अपना-अपना काम करने के लिए विसर्जित (विदा) किया।

अब श्रीमदभिनवभागवत की सत्यदेवकथा का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ। अब सत्यदेवकथा समाप्त हुई।

॥ ॐ सर्वात्मने नम ॥

पूजाविधिः

अनुपपन्नस्य छात्रस्य सीदत्कुटुम्बस्याध्यापकस्य वा ॥
माल्यवस्त्रपुस्तकाविभिः पूजा ॥

पूजाविधि—दीन विद्यार्थी अथवा दु खी परिवार वाले अध्यापक की पूजा माला, वस्त्र, पुस्तक आदि से करनी चाहिए ॥

ॐ सर्वात्मने नम इति मन्त्रः ॥
ॐ सर्वात्मने नम. यही मन्त्र है ॥

प्रार्थना— सर्वात्मीयोपहारेण सर्वात्मीयशरीरिणा।
सर्वात्मीयो मयेष्टस्त्व सर्वात्माराधको भव ॥

प्रार्थना— सर्वात्मा का मैं एक रूप हूँ। मैंने सर्वात्मीय द्रव्यो से सर्वात्मीय आपकी पूजा की है। आप सर्वात्मा के सेवक हो।

आशीः— परमार्थपरास्सर्व्वेजायन्तां भवत. कुले।
सरस्वतीमुपासीना महोद्योगा गतभ्रमा· ॥

आशीः— आपके कुल मे सभी परमार्थ-परायण हो, सरस्वती के उपासक हो तथा उद्योगशील और भ्रमरहित हो ॥

अथ ध्यानम्— आकाशस्त्वगनन्त आदिरहितस्सर्वात्मभतो विभु-
स्तारासूर्यसहस्रभास्वरतनुः स्वस्मिन्नशेषेक्षिता।
निर्मायोपरिमेयशाश्वतजगद्वैचित्र्यरूपः सदा
भातु प्रेमनिधिः सुखैकनिलयः श्रीदेवदेवः स नः॥

ध्यान— आकाश जिसकी त्वचा है, जो आदि-अन्त-रहित, सर्वात्म-स्वरूप तथा व्यापक है, हजारों तारा-सूर्यों से जिसका शरीर चमकता है, जो अपने में ही सब कुछ का द्रष्टा है; जो माया-रहित है; जिसका रूप ऐसा है कि उसमें अपरिमेय विचित्रता सदा बनी रहती है; जो सब की प्रीति का आश्रय है और सुख का एकमात्र आगार है; वही देवदेव हम लोगो के लिए सदा अभीष्ट रहें।

इति पूजाविधि समाप्ता।

———

मुद्‌गरानन्दचरितावली

प्रथम अध्याय ।

जन्म

मुझे इस छोटे पृथ्वीग्रह पर लोग अँगरेजी भाषा में His Holiness Sri Swami Mudagaranand कहते हैं। सूर्य के वाद वुध, उसके वाद शुक्र, तब पृथ्वी, फिर मगल, फिर वृहस्पति, फिर शनैश्चर, तब उरण और उसके वाद वरुण, यह है। वरुण को यहाँ वाले नेप्चून (Neptune) भी कहते हैं।

वरुण के ऊपर मेघ-भूमि मे शव वर्ष से दस हजार वर्ष पहले मेरा जन्म हुआ। इन्द्रदेव की इच्छा से अमैथुन सृष्टि द्वारा मैं उत्पन्न हुआ। मेघो की गर्जना ही मेरी मातृभाषा हुई। घड़ घड घड दड़ दड इत्यादि शब्द, जिनका अर्थ प्राय यहाँ लोग नही समझते, मुझे भगवत्कृपा से समझ में आने लगे। मै जब उत्पन्न हुआ उसी समय यहाँ के वीस वर्ष के पुरुष के समान मेरा आकार था। यहाँ के जलवायु के कारण अनेक परिवर्त्तन होने पर भी मैं आज ११८३२ वर्ष की अवस्था में भी प्राय: वैसा ही हूँ।

कुछ समय के वाद उपनिषद् वालो की* पञ्चाग्नि विद्या के अनुसार मै मेघभूमि से वरुण ग्रह की खास जमीन पर पहुँचा। वहाँ पर पाँचवी आहुति में शाण्डिल्य वंश के एक ब्राह्मण के घर मेरा प्रादुर्भाव हुआ। कृष्ण के प्रादुर्भाव से जो आनद नन्द को नही हुआ था वह मेरे माता-पिता को हुआ। मेरे पूर्वज शाण्डिल्य ने भक्तिसूत्र बना रखे हैं जिनपर स्वप्नेश्वराचार्य का भाष्य और कितने ही महामहोपदेशको की टीका-टिप्पणियाँ हैं।

कुछ काल तक मैं अपनी दिव्य शक्ति से अनेक ग्रहो की, मेघभूमियो मे इन्द्र-धनुष से, विजली के गेंदो से, वर्फ के रुमालो से, देवताओ के विमानों से खेलता रहा।

वरुण ग्रह में अनेक विद्यालय, अविद्यालय, स्वर्ग, नरक, अजायवघर, कब्रगाह, मदिर चिड़ियाखाना आदि बने हैं जिनकी खूवसूरती और वदसूरती दोनो ही अद्भुत हैं। बाँकीपुर, हवडा आदि की नालियो मे, गड्ढो में, अस्पतालो मे जो मल और गध दुर्लभ हैं वे वहाँ सहज सुलभ हैं। जैसे नरको का भागवत के पचमस्कन्ध मे वर्णन ह उनसे कही वढे-चढे नरक वहाँ जहाँ चाहिये मिल सकते हैं। सभापर्व मे जैसी देव-सभा का वर्णन नही पाइएगा वैसी देवसभाएँ यहाँ सर्वत्र दीख पडती है। हीरे की ईंटो के मकान, रत्न की सीढियाँ, मोती की झालरें, मूँगें की लकड़ी की कुर्सी

---

* प्रपाठक ५, खंड ३–१०, छादोग्योपनिषद् तथा वृहदारण्यक, ६–२–१–१६ तक।

और पलँग आदि तो वहाँ साधारण चीज समझी जाती हैं। यही नही, अनेक अपूर्व बातें जिनकी मिल आदि दार्शनिकों ने पृथ्वी के बाहर सभावना की थी वहाँ बराबर अनुभव मे आती रहती हैं। दो सीधी रेखाओ से घिरे हुए बहुत-से ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अनेक बन्ध्यापुत्रो के किले, तालाब, बाग आदि बने हुए हैं। आठवें स्वर मे गाती हुई स्त्रियाँ और चिडियाँ दूध के समुद्र के किनारे वहाँ खेलती हैं। बाजार मे खरहो के सीध की कधियाँ बहुतायत से मिलती हैं। सत्तामात्र निर्विशेष निराकार का प्रत्यक्ष, जो शकर भगवान् को तीस वर्ष की अवस्था में हुआ था, वहाँ पाँच वर्ष के भिक्षुओ को भी हुआ करता हैं। पाँच हजार वर्ष की समाधि के बाद पत्थर के परमाणुओं में लीन हो जाने की जो शक्तियाँ यहाँ हिमालय और तिब्बत के साधुओ तथा ग्रेजुएट महात्माओ ने पाई है, वे शक्तियाँ वहाँ मैथम, इकथियौ, सौरस, रीया, हाथी, ऊँट, शार्दूल आदि विशाल जतुओ मे भी पाई जाती हैं। जब चाहो जिसका धन, जिसकी स्त्री उठवा मँगाओ। भूत-प्रेत आदि को चाहे जहाँ से खीच मँगाने की साकल्पिक सिद्धि वहाँ एक साधारण खेल हैं। सासिद्धिक भाव जो यहाँ रसिक भक्तो ही मे जदतब देख पडता हैं, वहाँ महत्तर बालको में भी पाया जाता हैं। वहाँ के सरकारी आफिसो मे कभी किसी को छुट्टी लेने की जरूरत नही पडती। यदि कोई कारणवश दस-बीस राज घर बैठ जाय तो उसके रूप में राम, कृष्ण, भीष्म आदि काम कर दिया करते हैं।

बचपन ही से माता-पिता की कृपा से मुझे, जब चाहूँ हजारो वर्ष के लिए, समाधि ले लेने की शक्ति हो गई थी। किसी दिव्य शक्ति की कल्पना नही की जा सकती, जो स्वप्नेश्वर आदि के स्वप्न मे ही देखी जा सकती हैं, जो मुझे, अमैथुन सृष्टि करनेवाले माता-पिता की कृपा से, बचपन ही मे न मिल गई हो। कई सतान होने पर भी मेरे पिता का ब्रह्मचर्य और मेरी माता का कुमारीपन नष्ट नही हुआ था। पिता जी का भीष्म से बढकर आदर होता था और माता जी पंचकन्याओ से अधिक पवित्र समझी जाती थी।

मेरे ग्रह मे सामाजिक स्थिति भूग्रह से कही बढी-चढी हैं। विवाह की प्रथा बहुत कम हैं। स्त्री-पुरुष का भेद विशेष नही ह। स्त्री पुरुष का वेष धारण कर सकती ह और पुरुष स्त्री का। वहाँ वस्तुत वे नही हैं। इच्छा मात्र से इन्द्रियो का आकार बदल देना, मटकना, चटकना आदि विलासो का धारण कर लेना अत्यन्त आसान ह। विवाह की आवश्यकता इसलिए नही पडती कि तान्त्रिक रीति से, खंजन की शिखा शरीर के किसी रन्ध्र में रखकर, जब चाहे तब अदृश्य होकर स्त्री-पुरुष व्यवहार कर सकते हैं।

मन्त्रो की शक्ति ऐसी प्रबल ह कि एक-एक अक्षर को जपकर हाथ झाड दे तो रेलवे इजन निकल आवे, छीक दें तो पट्ठा मनुष्य या हाथी सामने खडा हो जाय। इसलिए समाज को सवारी आदि के विशेष प्रबध की आवश्यकता नही पड़ती। भगवत्कृपा से स्वर्ग-नरक भोगने के लिए यदि दूसरे ग्रहो से लोग पहुँचें और उन्होने वहाँ

रेल, जहाज आदि खोले तो खोलने वालो पर कुछ कृपाकर, कुछ भाडा उन्हे देकर लोग टिकट लेने की धक्कमधुक्की का क्लेश सह लेते है, नही तो एक प्राणायाम मे चाहे जितनी दूर चले जायँ। चिठ्ठी-पत्री, तार आदि का व्यवहार भी वहाँ के निवासी पसन्द नही करते, त्रिकालदर्शी आईने से ससार भर की खबर जाना करते है, प्लैनचेट की सब बाते पूछ ले सकते है। इसलिए कचहरी आदि मे गवाही की जरूरत नही पडती। जो कार्य आईने और प्लैनचेट से नही होता वह दिव्य दृष्टि से हो जाता है। मत्रो मे ऐसी शक्ति है कि श्राद्ध-तर्पण आदि के समय मूर्ख से मूर्ख पुरोहित ने मुँह से शब्द निकाला नही कि मेघवासी पितरो के बधन धड-धड धड-धड टूटने-फूटने लगे।

उस ग्रह की राजधानी का नाम निर्वाणपुर है। इस निर्वाणपुर मे अनेक महात्माओ के ब्रह्माश्रम, बिहार, कुज, योगाश्रम, सयोगमठ, गढी और पिण्डालय आदि बने है।

शहर के बीच भगवान् भूतनाथ का मदिर है। इसमे अद्भुत ज्योतिर्लिंग स्थापित है, जिससे चाहे जो वस्तु छुला दो वही सोना हो जाय। इस लिंग मे चुम्बक शक्ति ऐसी है कि व्याधि-ग्रस्त स्त्री-पुरुष इसे छू दें तो इसमे व्याधि घुस जाय, बुद्धिमान् या मूर्ख इसे छू दे तो बुद्धि या मूर्खता उसमे घुस जाय। कभी-कभी इस चुम्बकशक्ति से व्याधि आदि का सचित असर निकलने भी लगता है। ऐसे अवसरो पर प्लेग और हैजा आदि फैल जाते है।

इस नगर मे अनेक कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु आदि सदा सुलभ है जिनसे जो चाहो मिल सकता है। पर सकल्पसिद्धि और सासिद्धिक भाव यदि न होते तब तो इनसे माँगने की आवश्यकता होती। इस पृथ्वी ग्रह के गँवार मनुष्यो को ऐसी बाते बराबर असभव-सी मालूम पडती है। पर अब ऐसा समय न रहा कि इन बातो को कोई असभव कहे।

पहले-पहल जब मैं पृथ्वी ग्रह पर आया तब मैं अकेला ही था। मुझे यहाँ आए आठ हजार वर्ष से ऊपर हो गये। इस बीच मे मैंने कितनो ही को वरुण ग्रह पर ले जाकर उसकी शोभा दिखलाई है। इन महात्माओ के लेख अनेक ग्रन्थो मे उपस्थित है। इन लेखो की गवाही से मेरी बातो की सचाई स्पष्ट विदित हो सकती है। फिर भी जो नास्तिक लोग लेखो की गवाही नही मानते उनके लिए मैंने आज भी कई ऐसे स्त्री-पुरुष को तैयार किया है जो निर्वाणपुर के अनेक दृश्य अपनी आँखो से देख आये है। आरा नगर मे एक बूढे अफसर है, जो बहुत दिनो तक निर्वाणपुर रह आये है। काशी मे एक ऐसी समिति है जहाँ अनेक स्त्री-पुरुष ने हमारे कुजो की देखा-देखी यहाँ भी ऐसे कुज बनवाये है, जिनमे दिव्यदृष्टि से दूर की बाते देखने वाले प्राणायाम से उडने वाले तथा अवतारो और भूत-प्रेत आदि से बातचीत करने वाले उपस्थित है। कई तीर्थो में पुरुष से स्त्री बन जाने वाले महात्मा आज भी वर्त्तमान है, जिनके पास राम आदि अब भी जाते है। इन लोगो से यदि सतोष न हो तो प्रयाग,

अपने इष्टदेव वन्ध्यापुत्र के साथ खेलते-खेलते मैंने तीनो काल और चौदहो भुवन की यात्रा आरभ की। छायापथ के अशो से ब्रह्माडो के निकलने का तमाशा मैंने देखा। एक-एक ब्रह्माड से तारा रूपी सूर्य, अनेक ग्रहो अनेक उपग्रहो के निकलने का दृश्य मैंने खूब देखा। अग्निगोलकमयी पृथ्वी ब्रह्माड से निकलकर अपने बडे भाई सूर्य प्रजापति के सदृश तप करते-करते, ताप कम होने पर, जलमयी हो गई। इस तमाशे को मैंने देखा। पानी मे कीचड जमते-जमते कही ऊँची जमीन और कही समुद्र के खड्ड पड गये। कही-कही ज्वालामुखी पर्वत के भयानक उद्भेद से काले-काले पहाड निकल पडे। इस दृश्य को भी मैंने देखा। धीरे-धीरे इस पर कीडे-मकोडे, मछली-कछुआ, सुअर-सिह, बन्दर, जगली मनुष्य आदि मनु शतरूपा के रूप मे परिणत भगवती वसुन्धरा के शरीर से निकले—सो भी मैंने देखा।

कुछ काल के बाद और ग्रहादिको से मेरी प्रीति न जाने क्यो कम हो चली। पृथ्वी ग्रह से मुझे बडी प्रीति उत्पन्न हुई। इसका कारण मै अपनी दिव्यदृष्टि से भी समझ नही सका तब मैंने इस विषय मे अपने इष्टदेव जी से प्रश्न किया। उन्होने यह बतलाया कि इस ग्रह पर भ्रष्ट युग मे एक त्रिमूर्त्ति और दो एकमूर्त्ति देवता उत्पन्न होने वाले है। त्रिमूर्त्ति मे तो एक पुरुष दो स्त्रियाँ होगी, जिन लोगो के व्याख्यान और लेख आदि से पृथ्वीवालो को मेरी (वन्ध्यापुत्र की) स्थिति मे पूर्ण विश्वास हो जायेगा। ये लोग वन्ध्यापुत्रान्वेषिणी महासभा स्थापित करेगे। वट-वृक्ष की-सी इस सभा की अनेक शाखाये-प्रशाखाये होगी। अवस्कर सप्रदाय के अनेक मठो की उपयोगिता वैज्ञानिक रीति से यही समाज साबित कर सकेगा। एकमूर्त्ति ऐसी उत्पन्न होगी जिसके उगलदान से बिजली के छर्रे निकल-निकल कर प्रकाश रूप से सतसगियो के दिमागो मे जिह्वा द्वारा जाया करेगे। एक दूसरी मूर्त्ति ऐसी उत्पन्न होगी जो पुरुष से स्त्री होकर अपने बीभत्स नृत्यो से जगत् के भक्तो को कृतार्थ करेगी।

बस अब क्या था। इन बातो को सुनकर पृथ्वी ग्रह पर मेरी प्रीति और भी उमडी और मैंने सकल्प किया कि अब मै कम-से-कम अपनी एक आत्मा को बराबर पृथ्वी ही पर रखूँगा।

मै यह ध्यान कर ही रहा था कि ऊपर कहे हुए भ्रष्ट युवा के पाँच भावी महात्माओ का स्मरण और कीर्तन करते-करते मेरे इष्टदेव जी मे एक अत्यन्त पवित्र और अद्भुत आवेश-सा आया। कछुये के रोये के सदृश उनके रोये खडे हो गये। पुण्डरीक के सदृश उनकी तीनो आँखे लाल हो आई। क्षीर समुद्र, मद्य समुद्र और ईख के रस की धारा की तरह उनकी आँखो से आँसू की धारा बहने लगी। वरुणग्रह के ऊपर घटा गरजने और बिजली चमकने लगी। सूर्य प्रजापति का मुख काला हो गया। श्यामवर्ण आकाश, विष्णु के शरीर, पर धूल छा गई। ब्रह्मा से लेकर सारा जगत् काँप उठा। एक करोड़ क्रकचद्वीप अर्थात् (Krakatoa) के अकस्मात्

उद्भूद होने के सदृश घोर अनर्थ और उत्पात होने लगा। दुर्य्योधन के शान्त होने क समय महाभारत मे और भगवान् बुद्धदेव के जन्म के समय पाली साहित्य में जितने उत्पात लिखे हुए है वे सब आ उमडे।

नेपोलियन के मरने के समय अथवा क्रामवेल के जन्म के समय जो उत्पात हुये थे उन क्षुद्र उत्पातो की इन उत्पातो से क्या तुलना की जाय। मेरी दिव्य आँखे भी इन भयानक उत्पातो से अधी हो चली। सौ करोड सूर्य से जडे हुए कृष्ण के शरीर को देखने से जो घबराहट अर्जुन को न हुई थी वह घबराहट मेरे दोनो शरीर और दोनो आत्माओ पर छा गई। बवडर के हाहाकार चारो ओर से आने लगे। अधकार अधिक हो जाने के कारण प्राय कुछ भी नही सूझता था। लव के हाथ से जृम्भकास्त्र चलने पर जो अवस्था राम की आश्वमेधिक सेना की हुई थी या वन्ध्या-पुत्रानुसधानसमिति के व्याख्यानो के बाद जो अवस्था श्रोताओं की होती है वैसी अवस्था चौदहो भुवन की हो चली थी। इसी बीच एक आकाश-वाणी-सी हुई कि 'वन्ध्यापुत्र' कैलास गत।'

इतने मे ही ये वाक्य वन्ध्यापुत्र के किले के बीच की दीवार पर बिजली के अक्षरो में लिखे हुए देख पडे, जिससे मुझे अपनी त्रिकाल-यात्रा के समय देखी हुई 'वेबीलन' के नाश होने की लिपि का स्मरण आया। इस समय अवस्कर सप्रदाय के जितने विरोधी थे उन लोगो का कलेजा काँप उठा और वे ऐसी अवस्था मे पहुँच गये कि चाहे उनसे मूर्त्ति पुजवा लो, चाहे निराकार ब्रह्म का ध्यान करा लो, चाहे जैसे-तैसे अवतारो मे विश्वास करा लो। मै तो आज केवल दिव्य शक्तियो से इन बातो को साक्षात् देख रहा हूँ। उस समय तो मुझे होश-हवाश न था।

तीसरा अध्याय

हेमकूट पर्वत

जब मुझे होश हुआ तब मै क्या देखता हूँ कि हेमकूट पर्वत पर कश्यप जी की झोपडी के द्वार पर मै खडा हूँ। प्रिय पाठक! हेमकूट का वर्णन मै क्या करूँ? जिन्होने वशिष्ठ के मत्र से दिलीप की घोडागाडी तथा पृथ्वी, आकाश और समुद्र पर चलनेवाले महाकवि कालिदास की शकुन्तला देखी है उन्हे तो इस पर्वत का दृश्य, मारीच का आश्रम और मेरा स्वरूप कभी भूलेगा ही नही। पर जिन लोगो को शकुन्तला के देखने का सौभाग्य नही हुआ है उनके लिए मै थोडा-सा उन दृश्यो का वर्णन कर देता हूँ—

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने।
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्म्माभिषेकक्रिया ।।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो।
यत्कांक्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ।।

हेमकूट की रमणीयता देखकर मुझे अपनी पूर्व-दशा का स्मरण हो आया। सच है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्।
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः॥
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं।
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥

वहाँ की बातो का स्मरण करते-करते जब मुझे अपने इष्टदेव का खयाल आया तब मै सद्य समाधि—मूर्च्छा मे पड गया। कहने से तो बहुत-से नास्तिको को असभव-सा मालूम पडेगा, पर साक्षात् अनुभवी लोग अपनी ही-सी अथवा अपने इष्टदेवो की-सी इन मेरी बातो का भी विश्वास अवश्य ही करेगे। इस समाधि मे पडे-पडे मुझे दस हजार वर्ष से कुछ अधिक हो गये थे। जब दस हजार वर्ष बीते तो मै मकर की सक्राति के मेले के समय प्रयाग मे समाधि से उठा। पर आपलोगो को स्मरण रहे कि मेरे दो शरीर और दो आत्माये है। एक शरीर और एक आत्मा को तो मैंने समाधि मे हेमकूट में रहने दिया और दूसरे शरीर और दूसरी आत्मा से मै बी० एन० डबल्यू० रेलवे (B. N W Railway) के दाऊदपुर स्टेशन के समीप एक अपूर्व महात्मा के घर प्रादुर्भूत हुआ। इस आत्मा का जीवन और हेमकूट की आत्मा का जीवन ऐसा कुछ मिला-जुला है कि दोनो का साथ ही साथ बयान होगा।

चौथा अध्याय

वरुण ग्रह के लिए कान्त (Kant) आदि दार्शनिको के कल्पित दिक्काल अथवा नवतनु (Newton) आदिको द्वारा कल्पित आकर्षण आदि के नियम-बधन नही है। ये सब क्षुद्र नियम केवल इस क्षुद्र ग्रह के जीवो के लिए ही है। इनमे भी कितने ऐसे सिद्ध-महात्मा है जो जब चाहें तब इन नियमो को तोडकर मनमाना काम कर सकते है। बापूदेव और सुधाकर आदि ज्योतिषी दृग्गणित से आनेवाले ग्रहण का घटा-मिनट भले ही कह दे और टके के पञ्चांगवाले भी जैसे-तैसे पुराने गणित से घंटा-मिनट नही तो ग्रहण का दिन भले ही जान ले, पर अमावास्या-पूर्णिमा के बदले अष्टमी के दिन को चद्रग्रहण और रात को सूर्यग्रहण कह देना और अपनी दिव्यशक्ति से वैसा ही दिखला देना, केवल वरुण ग्रह के साधारण महत्तरो मे और यहाँ के कतिपय महानुभावो मे ही पाया जाता है। साधारण अको को लेकर गुणा-भाग करनेवाले गणितज्ञो में यह सामर्थ्य कहाँ? एक ही समय मे श्रीकृष्णजी यशोदा की कोठरी मे तथा जमुना के किनारे वाले वट के नीचे रह सकते थे, क्षणभर में द्वारका से हस्तिनापुर पहुँच द्रौपदी के कपडे के रूप मे परिणत हो सकते थे। इसके

गवाह बड़े-बड़े पुराण हैं और आजकल भी इसके साक्षी काउंसिलो के बड़े-बड़े मेम्बर हैं। क्या अलिफलैला आदि पवित्र ग्रंथो के अतिरिक्त और कहीं इस टक्कर का इतिहास कोई दिखला सकता है? प्राय एक हजार वर्ष के भीतर के सब कवि कालिदास, भवभूति, माघ आदि जिन्होंने एक दूसरे का मुँह भी न देखा होगा राजा भोज के समय मे एक साथ ही बाराती शास्त्रार्थ करते पाये जाते हैं। इसका साक्षी वल्लाल पडित का भोजप्रबध है। रामायण और श्रीमद्भागवत ग्रंथ साक्षी हैं कि सादीपनी का मरा लड़का तथा और भी ब्राह्मणो के मरे लड़के अद्भुत उपायो द्वारा यमलोक से बुला लिये गये। यूनानी पुराणो मे भी अद्भुत बाजा बजाकर एक पुरुष अपनी मरी स्त्री को यमलोक की आधी राह से फेर लाया था। ऐसे-ऐसे पक्के प्रमाणो से युक्त कथायें किस देश के पवित्र पुराणो और दतकथाओ में नहीं मिलती? क्या इन बातो पर कोई भी भक्त अविश्वास कर सकता है? क्या पुष्पक विमान के अस्तित्व मे भी किसी को सदेह है? लाखो, करोड़ो, चाहे जितने आदमी बैठें, उसका एक कोना खाली ही रहता है। जब राम जी चाहते तब वह पुष्पक विमान प्राचीन लामा कुबेर के तिब्बत से, भगवान् शिव के कैलास को लाँघता हुआ, धड़ाके के साथ अयोध्या में, सरयू के किनारे, जा खड़ा होता और फिर वहाँ से जहाँ राम जी चाहते उड़ जाता था। कौन ऐसा मूर्ख है जो ऋषियो की ऐसी-ऐसी उक्तियो मे लेशमात्र सदेह करे? आँख मूँद कर तीनो काल और चौदहो भुवन की बात जानने वाले कौल ब्रह्मचारी क्या आज भी नहीं पाये जाते? अपनी देह का भस्म विधवा पर डालकर उससे लड़का पैदा करने वाले साधु क्या वर्त्तमान नहीं हैं? अजी ऐसी बातो को मन मे रखकर श्रीकठ भवभूति ने भी अपने 'उत्तररामचरित' में लिख मारा है—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्त्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

फिर ऐसी बातो मे कतिपय अल्पज्ञ वैज्ञानिको के कल्पित दिक्, काल, कार्य, कारण, भावादि नियमो के विरोध से सदेह करना क्या मूर्खता और ढिठाई नहीं है? यहाँ इतना कहने का यह तात्पर्य है कि आगे जो मेरा पवित्र जीवन-चरित्र लिखा जायेगा उसमे दिक्-काल आदि के नियमो का यदि कोई विरोध हो तो प्रिय भक्तजन मूर्ख वैज्ञानिको के कहने से उसे असगत न मानें। मेरी तीनो काल और चौदहो भुवन की यात्रा के परिशिष्ट वृत्तात मे वैज्ञानिको के क्षुद्र नियमो से ऐसे ही विरोध पड़ेंगे जैसे ऊपर कही हुई बातो में पड़े हैं। यदि भोज के समय मे, अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी में, चतुर्थ शताब्दी के विक्रमादित्य के समय के कालिदास, और सप्तम शताब्दी के हर्षवर्धन के समय के बाण, और अष्टम शताब्दी के यशोवर्म्मा और ललितादित्य के समय के भवभूति, एक ही समय मे पाये जाते थे तो मेरी जीवनी में सत्ययुग और अष्टयुग की बातें, दस हजार वर्षों के क्षुद्र अन्तर के रहते भी, एक साथ पाई जायँ तो क्या बड़ी बात है? अतिम बर्फ के प्रलय के बाद, आर्य्यजाति-कृत ध्रुवत्याग के

प्राय एक हजार वर्ष के पीछे, हेमकूट पर मेरी समाधि-मूर्च्छा का आरभ हुआ था और उसी समय १८१२ शकाब्द मे बी० एन० डब्ल्यू रेलवे (B N. W. Railway) के समीप मेरा पृथ्वी पर भी प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनो घटनाओ के बीच प्राय दस हजार वर्ष के क्षुद्र समय का अतर पड़ता है, पर वरुणग्रह के मनुष्य के लिए इतने समय के व्यवधान का कुछ भी खयाल नही किया जा सकता है। इसलिए मै अपने शिष्य वल्लाल पडित के सदृश और अपने गुरु उन विद्वानो के साथ, जो मनुस्मृति आदि मे कहे हुए १२०० वर्ष के कलि को लाख वर्ष से ऊपर समझते है, तुच्छ कालनियमो का खयाल न कर, अपनी दोनो आत्माओ का वृत्तात साथ ही साथ कहूँगा।

जब मेरा एक शरीर और एक आत्मा हेमकूट पर समाधिस्थ होकर विराजता था उस समय महाराज दुष्यत अपनी शकुन्तला के विरह मे मारीच के आश्रम मे गये थे। वहाँ उन्हे मेरे सूक्ष्म शरीर का दर्शन हुआ था जिसका वर्णन महाकवि कालिदास ने यो किया है—

वल्मीकाग्रनिमग्नमूर्त्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा
कंठ जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडित ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्रस्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥

अहा! यह सूक्ष्म शरीर भी कैसा विलक्षण है! जिन्हे इसका ज्ञान और अनुभव नही वे हजार विज्ञान के रहते भी जीवन से वचित ही है। परमात्मा को अपने कोशो मे लिपटाये हुए यह शरीर हेमकूट पर तप भी कर रहा था और मेरे भविष्य भ्रष्ट-युगीय स्थूल शरीर और जीवात्मा को भी देख रहा था। इतना ही नही, मेरे इष्टदेव वन्ध्यापुत्र जी के कैलासवास के समय तीनो काल चौदहो भुवन की जितनी यात्रा बाकी रह गई थी उसकी समाप्ति करने मे भी लगा था। समाधि की शून्यावस्था के वृत्तात का तो कुछ कहना ही नही है, उसे तो निरुपाख्य, अनिर्वचनीय तुरीयावस्था कहते है। अब केवल दो धाराओ का वर्णन मै तबतक करता रहूँगा जबतक प्रयाग के मेले मे शक १८२२ मे मेरे समाधिभग का अद्भुत वृत्तात और मेरे शत्रु दारोगा लाडूसिह द्वारा मेरे ऊपर लाये हुए सच्चे अभियोग का हाल न आ जायगा।

पाँचवाँ अध्याय

बी० एन० डब्ल्यू० के पास भी मै वैसा ही वीस वर्ष का-सा पट्ठा उत्पन्न हुआ जैसा वरुणग्रह पर अमैथुन सृष्टि से हुआ था। वीस वर्ष की अवस्था होने पर भी मेरी मूँछे नही निकली थी, इसका कारण मै किससे पूछता? इस क्षुद्र ग्रह के किसी पंडित

से पूछता ता वह बेचारा कह ही क्या सकता था! दक्खिन के किसी राजा का रुपया मिल जाय, जिसपर सीता-राम की मूर्त्ति हो, तो ये पडित खुश हो जाते हैं कि खास रामजी का रुपया मिल गया। यदि कही दो-चार सौ वर्ष के पुराने अक्षर मिले तो ये बाँच नही सकते। प्रियदर्शी (अशोक) आदि प्राचीन राजाओ की प्रशस्तियो के अद्भुत अक्षर देख ये लोग बराबर यही कहते रहे कि यह बीजक है, इन्हे जो पढ लेगा उसे किसी का गाडा अतुल धन मिल जायेगा। प्रिंसेप आदि अँगरेज यदि परिश्रम करके इन अक्षरो को बाँचते नही तो 'बमभोलानाथ' लोग इन प्रशस्तियो को पाडवो के गुप्त अक्षर ही बतलाते रहते। अब रहे मेरे इष्टदेव जी। वे भी कैलास के पत्थर के परमाणुओ मे लीन हो गये। अब कोई बात पूछता तो किससे पूछता? तव मैंने सूक्ष्म शरीर की शरण ली। समाधि के प्रभाव से उससे तो कोई बात छिपी नही थी। उस शरीर की शरण लेने ही से मुझे अपनी मूँछो के अभाव का कारण मालूम हो गया। महाराज दुष्यत मेरी समाधि के आरभ के कुछ काल पीछे मर गये। मरने के वाद राजा दुष्यत क्या हुये, इस पर बडा झगडा है। 'दारुवीणमहर्षि प्रजा.' इस श्रुति के विरोधी "कापेय्य प्रजा' इस मत्र के द्रष्टा और काश्यप के अनुयायी तो कहते है कि वे अपने पुत्र राजा भरत के रूप मे उत्पन्न हुए। भारत के ऋषियो ने भी 'आत्मावै पुत्रनामासि' कहा ही है। पर बुद्ध भगवान्, कबीरदास और तुकाराम आदि एतद्देशीय और अनेक देशातरीय साक्षर और निरक्षर उपदेशको के गढे हुए अनेक सप्रदायो के अनुसार नाना मतोवाले पुनर्जन्म को पक्का समझते हुए और जीव को शरीर पजर का पक्षी मानते हुए, कहते है कि विना वेदविधि की ब्याही हुई धर्मपत्नी शकुन्तला को दु.ख देने के कारण महाराज दुष्यत एक बौडहे हाथी हो गये। उनके बौडहेपन के कारण झुड की कोई हथिनी इनके पास नही आती थी, इस बात का प्रमाण पद्मपुराण का पातालखड है। पद्मपुराण से बबई का छपा हुआ हिंदुओ का पद्मपुराण या जैनो का पद्मपुराण न समझियेगा। विलायती छपे हुए या विलायती छापो के द्वारा भारत मे छपे हुए, वेद, पुराण, निरुक्त आदि प्राय: असली ग्रथ नही है। महर्षि जैमिनि के द्वितीय सूत्र* के अनुसार धर्मानुष्ठान पर भक्ति रखने वाले अनेक विद्वान् और विद्वानो के शिरोमणि जगद्गुरु श्री शिव कुमार शास्त्री जी ने कई बार स्पष्ट कहा कि छपे हुए वेद-पुराण आदि पर विशेष श्रद्धा नही रखनी चाहिए, ये असली ग्रथ नही है। वन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज के प्रेसीडेट-जेनरल ने भी कई बार भयानक स्वर से कहा है कि असली वेद-पुराण तो तिब्बत मे है, भट्ट मोक्षमूलर आदि को असली ग्रथ मिले ही कहाँ? महाराज दुष्यत ने दु खी-विरही मतवाला हाथी होकर कितने ही सकट भोगे और चौरासी लाख योनियो मे घूमते-घूमते अत मे वी० एन० डब्ल्यू० रेलवे के इजन के रूप में परिणत हुए और हाल ही मे सोनपुर के समीप

---

* चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म.।

दूसरे इंजिन से धक्का खाकर चूर-चूर हो गये। इस धक्के से कितनी ही ब्रह्महत्या और शूद्रहत्या इनके सिर पर पडी है, इसका लेखा महाराज यमराज के सिरिश्तेदार मुन्शी चित्रगुप्त साहब के कागजात में दर्ज है। इन हत्याओ के कारण भी महाराज दुष्यत को अभी न जाने कितने जन्मो तक कष्ट भोगने पडेगे। किसी सूर्य-ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र मे जाकर यदि कोई बछिया दान करेगा तो वही बछिया चित्रगुप्त के यहाँ पहुँचेगी और उसी बछिया के घूस से प्रसन्न होकर सिरिश्तेदार साहब इजलास पर मुकद्दमा पेश करेगे, नही तो मामला पेश होना दुर्घट ही मालूम पडता है। आप कहेगे कि कुरुक्षेत्र मे ग्रहण के समय अनेक बार अनेक बछिया दी गई होगी, फिर क्यो दुष्यत का मामला नही पेश हुआ। इसका उत्तर मै यही समझता हूँ कि जबतक काशी के पडितो से या वन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज के सभापति से पता लगाकर असली वेद के मत्रो द्वारा एक बछिया किसी उबाले हुए चावल या पवित्र पाव रोटी खाने वाले ब्राह्मण को न दी जायेगी और पवित्र गोमेध की विधि से वह बछिया वैतरणी के पार न भेज दी जायेगी, तबतक महाराज बहादुर का मुकद्दमा नही पेश होगा। यदि कोई नास्तिक पूछे कि ऐसी विधि से बछिया वैतरणी के पार कैसे जा सकेगी, तो इसका उत्तर मूर्ख से मूर्ख पुरोहित यह दे सकता है कि जिस प्रकार मत्रो के बल से तिल और भात के पिंडे अथवा श्राद्ध मे अर्पित मास या पत्ते मे लपेटे हुए मलुआ तबाकू के हुक्के, चुरुट, रोटी, शराब आदि धडाके से यमलोक में पहुँचा करते है, उसी प्रकार बछिया भी पहुँच जायेगी। ऐसें विषयो में यदि अधिक प्रमाण की आवश्यकता हो तो भारतरत्नो और विद्यावारिधियो की मूर्त्ति-पूजाविषयक पुस्तके देख लीजिये, जिसमे नास्तिको की धज्जियाँ उडाई गई है और आस्तिको के खान-पान, आचार-विचार पर नास्तिको के कटाक्ष, गणिका-अजामिल की कथाओ से खडित किये गये है। यहाँ पर महाराज दुष्यत का मामला पेशी मे छोडकर मुझे अपनी मूँछो का वृत्तात सुनाना है। सत्ययुग बीतने पर जब त्रेता युग आ पहुँचा तब पुष्पक विमान के आविर्भावक प्राचीन लामा कुबेर के छोटे भाई लखनलाल जी की भक्ता और पतिव्रता सुपनखिया के बडे भाई लकेश्वर श्रीमान् महाराज रावणजू के (जिनके पुष्पक विमान का अभिमान आज भी उनको अपना पूर्वज मानने वाले आर्य्य सतानो के हृदय मे है) ताल-वृक्ष सदृश चरणकमल, फूल के ऐसे सुकुमार पुष्पक विमान पर, कैलास पहाड पर पहुँचे। महाराज रावण कितनी ही बार इधर आये। मै उन्हे दिव्यदृष्टि से बराबर देखता रहा। जब वे पहिली बार आये तब हेमकूट पहाड ज्यो का त्यो पडा हुआ था। यहाँ वृहस्पति की पोती, कच की बेटी, वेदवती चित्त से भगवान् को पति करने के लिए तप कर रही थी। रावण ने उसको कुछ तग किया। इस पर वह पहाड के शिखर से गिर कर मर गई। इससे मेरा सूक्ष्म शरीर काँप उठा पर समाधि-भग नही हुआ। फिर दुबारा रावण आया। जिस प्रकार भगवान् महामोदावतार ने बारह-चौदह बार भारतवर्ष पर अनुग्रह किया था और श्री सोमनाथ जी पर अपना

अटल प्रेम दिखलाया था उसी प्रकार रावण भी कैलास नाथ पर बहुत ही प्रीति रखता था। जब-जब वह हेमकूट पर चरण देता था तब-तब पहाड़ कुछ न कुछ धँस जाता था। उसकी तृतीय यात्रा के समय मेरे ऊपर बड़ी भारी आफत आई। उस समय हजारों वर्ष की समाधि के बाद मेरी मूँछें लंबी हो गई थी कि बाईं ओर की मूँछ तो कैलास शिखर के पास लामा कुबेर जी के बगीचे में भगवान् भूतनाथ के वट वृक्ष में लिपट रही थी, और दाहिनी ओर की मूँछ गंधमादन पर्वत पर भविष्य काल में श्रीराम जी के सरयू-प्रवाह के बाद आने वाले श्री हनुमान् जी की पूँछ में लिपट गई। जब तीसरी बार रावण पहुँचा और उसने अपने गुरु शिवजी से कुछ खफा होकर कैलास को हाथ पर उठा लिया उस समय का मेरा क्लेश पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। एक ओर की मूँछ तो गंधमादन पर्वत पर और दूसरी ओर की रावण के हाथ के साथ सप्तर्षि-मंडल के ऊपर।

भगवती भवानी तो सब क्रोध छोड़ सौतिन गंगा का कुछ खयाल न कर शिव जी से लिपट गईं। माघ कवि ने भी कहा है—

समुत्क्षिपन् य पृथिवीभृतां वरं,
वरप्रदानस्य चकार शूलिन।
त्रसत्तुषाराद्रिसुता ससंभ्रमं
स्वयं महाश्लेषसुखेन निष्क्रियम्॥

कैलास के उठ जाने से भगवान् भूतनाथ को भी बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने अपने अँगूठे से कैलास को कुछ दबाया। अब तो 'सो चलि गयउ पताल तुरन्ता' की हालत हुई। रावण तो राजा बलि के लोक में पहुँचा। कैलास फिर अपने खड्ड में जा बैठा। पर इस हलचल में भगवती वसुन्धरा की स्थिरता विचलित हुई। बेचारा हेमकूट पहाड़ कश्यप जी के दस हजार विद्यार्थियों के विश्वविद्यालय के सहित न जानें कहाँ चला गया। कोई-कोई कहते हैं कि उसी विद्यालय के पुनर्जन्मस्वरूप बालादित्य का नालन्दा विश्वविद्यालय हुआ जो हुआन्साङ्ग के समय में मगध में था। कितने लोग कहते हैं कि वह भारतधर्ममहामंडल के गर्भस्थ विश्वविद्यालय के रूप में अभी प्रकट होगा। कोई-कोई यह भी कहते हैं कि कश्यप का वह पौराणिक विद्यालय अब कौराणिक विद्यालय के रूप में किसी शमसी मत के अधिष्ठाता की कृपा से मुसलमान भाइयों की भलाई के लिए उत्पन्न हुआ।

हेमकूट के धँस जाने से मेरी ऐसी दुर्दशा हुई जैसी कैलास के उठ जाने से भी नहीं हुई थी। मैं रोता हुआ, निराश्रय, केवल मूँछों के बल, न जाने कितने काल तक ॱगा रहा। पर बेचारी पुरानी मूँछें कहाँ तक सँभाल सकें? अन्त को वे जड़-मूल से उखड़ चली। राम जी के तोड़े हुए शिव के धनुष के टुकड़े जैसे पत्थर हो-होकर आज भी जनकपुर में पड़े हैं वैसे ही मेरी मूँछें काली-काली शिलाएँ होकर गंधमादन

और कैलास पर वर्त्तमान है। बुद्ध भगवान् के दाँतो की क्या वैसी पूजा होगी जैसी मेरी मूँछो की पूजा और भक्ति अनेक सिद्ध लोग करते हैं।

पाठक गण! यदि मुझे उस समाधि का बल न होता जिसके भरोसे आजकल के पूरबी और पश्चिमी सिद्ध लोग कागज की मूरत उडा कर लोगो से कहते है कि मेरे गुरु जी उड रहे है, तो मै न जाने गिरते-गिरते रावण की तरह बलि राजा की घरनियो के रूप मे जा पडता या बलि राजा के उन मुद्गरो के माथे पर जा गिरता जिन्हे रावण भी नही हिला सका था और यथार्थ ही मे मुद्गरानद या और कुछ हो जाता यह कौन कह सकता है। पर समाधि के बल से मूँछो के उखड जाने और मारीच के विश्वविद्यालय के धँसने पर भी मै आसमान मे ज्यो का त्यो खडा रहा।

छठा अध्याय

हेमकूट के स्थान पर कुछ काल के बाद, एक बहुत भारी तालाब दिखलाई पडा। इस तालाब पर रावण के आने की वार्त्ता महाकवि क्षेमेन्द्र के दशावतारचरित मे भलीभाँति लिखी हुई है। तबसे इस तालाब मे अनेक कमल उत्पन्न हुए थे। पर सब से अद्भुत बीच का कमल था। यह कमल समस्त पृथ्वी-मडल से भी बडा था। यदि यह पूछो कि पृथ्वीमडल के एक टुकडे मे एक छोटे तालाब के बीच समूचे पृथ्वीमडल से बडा एक कमल क्यो कर रह सकता है, तो इसका उत्तर सत्यवती-पुत्र महासत्यवादी पुराने व्यास जी और जीते-मरे अनेक सर्वानन्द, राधाकृष्ण आदि व्यास आसानी से दे सकते हैं। समूचे ससार को पेट के एक कोने में लेकर ससार के एक क्षुद्र बिन्दु के समान इस पृथ्वी के एक कोने मे स्थित क्षीरसमुद्र के भीतर वट के पत्र के ऊपर या शेष जी के फण के नीचे विष्णु भगवान् कैसे रहते हैं? और उनकी नाभि के कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा अपने चारो ओर समस्त संसार को कैसे रच जाते है? जो रावण, कुभकर्ण आदि सूर्य और नक्षत्रो को हाथ से खीच सकते थे और जो श्री हनुमान् जी मेरुमदर-सकाश थे वे लका या ऋष्यमूक की झोपडियो मे कैसे रह सकते थे?

अरे मूर्ख नास्तिको! 'मसक समान रूप कपि धरी' आदि चौपाइयाँ भी भूल गये? मेरु-मदर-सकाश आदि सस्कृत की उक्तियाँ तो कहाँ से याद आवेंगी? मूर्ख वैज्ञानिको आदि पर श्रद्धा कर दिव्य बातो में भी अश्रद्धा करने लगे? देश की क्या दशा करोगे? जिस अन्धश्रद्धा से फिर उन्नति की संभावना थी उसे भी विज्ञान की झझटो मे फँसाने लगे? हाय! वन्ध्यापुत्रानुसधान-समिति और अवस्कर सप्रदाय आदि के व्याख्यानो का भी कुछ असर न पडा! धन्य! मेरी पवित्र कथायें, भगवान् न करें, तुम्हारे हाथ में पडें! जैसे रूपकला के चरित्र आदि ग्रंथ नास्तिको के हाथ में नही दिये जाते वैसे

ही मेरे भक्त लोग भूल कर भी मेरी जीवनी तुम्हारे हाथ में नही देंगे। चाहे तुम विश्वास करो या न करो महात्माओ के चरित्र सुनने वाले बहुत-से भक्त हैं। उन्ही को मैं अपनी कथा सुना रहा हूँ।

हे भक्तो! ठीक मानो, मेरी बात पक्की समझो। श्रद्धा करोगे तो कच्ची बात भी पक्की हो जायेगी। इसका भी खयाल रखो कि मैं अपनी अधोदृष्टि से प्रत्यक्ष देखी हुई बात कह रहा हूँ कि ठीक मेरे नीचे वह मणिकर्णिकायुक्त सोने का महा-कमल पृथ्वी-मडल से बडा होने पर भी पृथ्वी के एक छोटे तालाब में खिल रहा था, जब कि महाराजाधिराज लकेश्वर फिर मेरे समाधिगगन के पास पहुँचे। रावण ने चट हिमाचल का एक बडा भारी शृग तोडकर इसी तालाब के किनारे रख दिया। फिर उसी को वह शिवलिंग मानकर पूजने लगा। सभी कमल शिवजी पर चढाने के बाद अंत को वह तालाब में तैरकर बडे कमल को भी तोड लाया। उस कमल के भीतर क्या देखता है कि थोडे दिनो की जन्मी हुई एक कन्या पडी है। वेदवती मरकर इस कन्या के रूप मे जन्मी थी। अब अमैथुन सृष्टि का खडन करने वाले और पुनर्जन्म को न मानने वाले नास्तिको के मुह पर स्याही लगनी चाहिए। क्या व्यासदेव और बौद्ध महाकवि क्षेमेंद्र की कपोल-कल्पनाओ से भी पुनर्जन्म के सबध मे अश्रद्धा न हटेगी! आधुनिक हिंदू धर्म वाले ही पुनर्जन्म कहते है, अन्य धर्म वाले नही कहते, ऐसी बात भी तो अब रही नही! आधुनिक हिंदू धर्म का पुनर्जन्म रूपी महास्तम्भ अब वामन जी के चरण की भाँति बढेगा। किसी नास्तिक के तोडने से यह टूटेगा थोडे ही। तो शिवजी की पूजा समाप्त कर कन्या को गोद में लेकर रावण अपने घर गया। कन्या मन्दोदरी को सौंप दिया। मेरे प्राचीन मित्र देवर्षि नारद के उपदेश से मन्दोदरी ने उस कन्या को बक्स में बद कर तिरहुत की भूमि मे गडवा दिया। वही कन्या हल जोतते समय जनक जी को मिली थी। वही श्री जनकलली जी हुई, जिनकी अपूर्व कथा प्रत्येक हिंदू को विदित है। गो-ब्राह्मणभक्षक रावण को प्रत्यक्ष अधोदृष्टि से देखकर और हिंदूमत के शत्रु, बौद्ध मत के अनुयायी एक कवि की आप्तवाणी को प्रमाण मानकर, मैंने श्री महारानी जी की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार बत-लाई है। मुर्दे मे लिपट कर नदी को तैरने वाले और साँप को पकड कर अपनी स्त्री की खिडकी पर चढ़ने वाले अद्भुत महात्मा श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के मानस -रामायण के क्षेपको की जागती वानी के अनुसार भी सीताजी घडे में रखे हुए मुनियो के रुधिर मे सुकुमार पिल्लू की तरह निकल पडी थी। अथवा क्षेमेंद्र की उक्तियो के अनुसार कमल की धूल में मधुकरी की तरह लिपटी हुई थी। भक्त लोग इसका विचार स्वय कर लें।

सातवाँ अध्याय

गत अध्याय म तो मै अपनी मूँछ और हनुमान् की पूँछ मे ऐसा उलझा हुआ था कि निकलना मुश्किल था। खैर, अब निकल आया तो त्रिकाल यात्रा का परिशिष्ट अश समाप्त करना चाहिए। हल जोतने से सीताजी की उत्पत्ति हुई। शर्मन्य देश के और भारतवर्ष के कुछ लोग राम जी को कृषक-समष्टि और सीताजी को लाङ्गल-पद्धति कहते है और बन्दर-राक्षस आदि को उस समय के असभ्य मनुष्य वतलाते है। मुझे इनसे कुछ कहना नही है। मै समाधि मे अदृश्य हेमकूट के ऊपर खडा-खडी जिन बातो को अपनी प्रत्यक्ष अधोदृष्टि से देख चुका था उन बातो मे सदेह कैसे करूँ ? आजकल के क्षुद्र पडित लोग अधोदृप्टि के नाम पर मुस्कराते है। क्यो न मुस्कराये! उन लोगो को तो योगदृष्टि और दिव्यदृप्टि आदि पर भी विश्वास नही! 'ङ्, क्, ञ्, करणे' पढते-पढते और 'डॉग, कैट' के मानी घोखते-घोखते इन लोगो को मनुस्मृति तो याद ही नही रही, जिसमे मैत्राक्षज्योतिष्क नामक प्रेत का वर्णन है, जिसकी अधोदृष्टि ऋषियो ने मानी है। समाधि-शक्ति से [हजार मैत्राक्षज्योतिष्क की अधोदृष्टि मेरे अधोभाग में वर्त्तमान थी। ऐसी दृष्टि की देखी हुई बाते कुछ मुँह की वाते नही है कि उनको कोई झूठ मानेगा। सीताजी के प्रादुर्भाव के वाद रामायण की समस्त कथा अनेक रूपो मे प्रसिद्ध ही है। इसलिए मै इन विषयो मे फिर से उलझना नही चाहता। ऐसी कहानियाँ हनुमान् जी की पूँछ की तरह घटतीवढती रहती है। आनद-रामायण, अद्भुत-रामायण आदि की महिरावण की कथा जिन्होने देखी है उन्हे मेरी वातो पर श्रद्धा अवश्य होगी। मुझे एक बार हनुमान् जी की पूँछ मे उलझने का अनुभव हो चुका है। अव फिर मै ऐसी लबी चीज मे उलझना नही चाहता। मौके-मौके से अपनी त्रिकाल-यात्रा मे रामायण, भारत आदि की पवित्र कथाओ को छू-छा लूँगा।

मै समाधि मे पडा ही पडा अपनी त्रिकाल-यात्रा मे सभी वृत्तातो को देखता चला। अपने इष्टदेव के विरह में कितनी ही वाते मेरी यात्रा मे छूट भी गईं। जैसे, सगर के साठ हजार वेटो का पातालस्थ कपिल के कोप से भस्म होना, राजमहल से लेकर गगा-सागर तक भगीरथ के द्वारा गगा की नहर का खोदा जाना, वेणु के शरीर के ऋपियो द्वारा महे जाने पर राजा पृथु की उत्पत्ति, मन्दराचल से समुद्र का मथा जाना आदि वातें ऐसी हैं जो मुझे अपने इप्टदेव के विरह मे कुछ धुँधली-सी मालूम हो कर रह गईं। इसलिए इनका खासा चित्र खीचकर मै अपने पाठको के सामने नही रख सकता। पाठक क्षमा करें। जो मुझसे छूटा-वचा रहेगा उसका दृश्य पाठको के सामने आजकल के व्याख्याता लोग रखें होगे। अगर व्याख्याता लोगो से भी वचा तो त्रिकाल-दर्शी रसिक लोग ऐसी वातो को कभी छोडने वाले नही। रामायण का अत होने पर मै अपनी मैत्राक्ष दृष्टि से सीताजी का अग्नि-प्रवेश देखता रहा। आजकल की तरह उस

समय भी नास्तिक थे ही । कितनो को नागेशभट्ट आदि की टीकाओं में दिये हुए क्षेपको का न ज्ञान ही था और न विश्वास ही हो सकता था, इसलिए उनको माया रूपिणी सीता के बदले मे असली सीता के हरे जाने का खयाल हुआ। ऐसे नास्तिको ने ही हल्ला-गुल्ला करके बेचारी सीता को राम के यहाँ से निकलवा दिया। बहुत दिनो तक मै देखता रहा कि रामजी जब चाहते है तब ध्यान करके कुबेर के यहाँ से पुष्पक विमान मँगाकर अपना काम करते है। दशरथ जी की पुरानी गाडी, जो देव-लोक में उडी थी और उडते-उडते जिसका धुरा टूट जाने पर कैकेयी ने अपनी बाहुलता लगाई थी, वह कुछ बिगड गई थी, नही तो पुष्पक विमान बुलाने के लिए बार-बार रामजी को ध्यान करने का कष्ट न उठाना पडता। तबतक उडनेवाले खडाऊँ और खेचरी गुटिका आदि तान्त्रिको ने नही बनाई थी कि भगवान् रामजी ध्यान के कष्ट से बचते। हाय! जब निराकार, निर्विकार, निर्गुणपरमेश्वर के ऐसे अवतारो के कायिक, मानसिक और वाचिक क्लेश देखते है तब हृदय विदीर्ण हो जाता है। प्रायः साठ हजार वर्ष की उम्र मे, किसी-किसी के मत से दस-हजार वर्ष की छोटी उम्र मे, दशरथ जी के लडके हुए थे। एक पुश्त में कैसा परिवर्त्तन हो गया था कि दशरथ जी तो साठ हजार वर्ष बीतने पर भी जवान ही थे और रामजी को सोलह वर्ष मे ब्याह की जरूरत पडी। और, सीताजी तो आठ वर्ष की गौरी थी। उसी समय उन्हें अपने भावी पति के लिए अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ। आजकल जैसा मामला नही था कि लडको को तो छै ही वर्ष मे ब्याह की जरूरत पडे और लडकियाँ—अट्ठारह-बीस वर्ष की होकर भी विवाह की चर्चा सुनते ही लज्जा करे। इतने बडे घरो मे भी बाल पक जाने पर भी कुमारियो मे प्रेम-भाव का आविर्भाव नही होता। इसलिए दाँत गिर जाने पर शायद प्रेम-भाव का आविर्भाव हो, इस आशा से उनका विवाह लोग बच्चो के साथ कर देते है जिससे लडके के दूध के दाँत टूटते ही लडकी के बुढापे के दाँत टूट जायँ और दोनो अपनी वेदान्ती अवस्था देख कर परस्पर प्रेम से मोहित हो जायँ। हाल ही में सुनने में आया है कि एक राजकुमार की ऐसी ही शादी हुई थी, जिस पर राजकुमार ने प्रेम-परवश होकर अपने ललाट-चन्द्र में बदूक की गोली रख ली थी ।

ऐसे ही परिवर्त्तनो के कारण दशरथ के समय मे जो शूद्र-मुनि को मारना पाप समझा गया था, वही रामजी को पुण्य समझ कर करना पडा। भगवान् की क्या ही विचित्र माया है कि अन्धमुनि के पुत्र को मारने के कारण तो दशरथ की पुत्र-शोक से मृत्यु हुई और शम्बूक-मुनि का सिर काटने से रामजी को इतना पुण्य हुआ कि ब्राह्मण का मरा हुआ लडका उनके राज्य में जी गया। जिस राम के नाम मे ऐसा प्रताप है कि 'नाम जीह जपि जागहिं जोगी' उस राम के हाथ से पाप का पुण्य और पुण्य का पाप हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है। शम्बूक मुनि के मरने के बाद राम जी ने पवित्र अश्वमेध यज्ञ किया। अश्वमेध यज्ञ में जो वेइज्जती द्रौपदी आदि को

पीछे भोगनी पडी उससे श्री सीता जी महारानी बची रही। घोडे के मरने के रात का वीभत्स वैदिक कल्प सीता जी की सोने की मूर्त्ति के साथ हुआ। राज्य से अकुला कर, स्त्री, भाई आदि के त्याग का पुण्य सचित कर, भगवान् रामचद्र जी समस्त अयोध्या के साथ सरयू मे डूबे और डूबते ही सब लोग वैकुठ पहुँच गये। रामचद्र के वश मे कुश से अग्निवर्ण तक या अग्निवर्ण से लेकर सुमित्र तक कोई ऐसी विशेष वात नही हुई जिसपर मेरी सामान्य-दृष्टि या मैत्राक्षदृष्टि पडे। केवल कुश का अद्भुत स्वप्न, उनका नाग-कन्या कुमुद्वती से विवाह और देवी-बीज आ जाने से सुदर्शन की अकस्मात् राज्य-प्राप्ति आदि कुछ ऐसी वाते हुई जिनके स्पर्श से मै अपनी जीवनी को पवित्र कर सकता हूँ। इस प्रकार मेरे समाधि-स्वप्न मे त्रेता, द्वापर और प्राय आधा, यानी छै सौ वर्ष, कलि वीत चला। इधर मेरा भावी स्थूल शरीर दाऊदपुर मे परिपुष्ट हो ही रहा था। उसे पृथिवी ग्रह के कुछ अक्षर आदि का परिचय हो चला था।

इसी समय पवित्र सत्यवती के अगो से उनके अविवाहित पति पराशरजी का सबध होने से भगवान् व्यास जी उत्पन्न हुए। भगवान् व्यास तुमको प्रणाम! समय कुछ ऐसा सभ्य (Enlightened) था कि वे जाति मे ही रखे गये। इसी समय गगा नदी से भीष्म जी का जन्म हुआ। कलि आने पर भी सृष्टि के विलक्षण व्यापार रुके नही थे। लकडियो से शुकदेव जी हुए, नदी से भीष्म जी हुए, देवताओ से कर्ण-पाडव आदि हुए। भगवान् की विचित्र महिमा को नमस्कार और नास्तिको को धिक्कार!

कुछ दिनो के बाद व्रज मे श्रीकृष्णचद्र जी का आविर्भाव हुआ। इनका कुछ विलक्षण जीवन रहा। मेरे सदृश इनके भी दो शरीर और दो आत्माएँ थी। और भी अधिक शरीर और आत्माएँ रही हो— कौन जाने! पौराणिक भक्त शुकदेव आदि के लिए तथा आधुनिक भक्त मालवीयजी के लिए तो ये अद्भुतो के लिए निधान थे। इनके लिए वचपन मे ही राक्षस-राक्षसियो को मारना, आग पीना और स्त्रियो के साथ रास करना कोई वात ही नही थी। पर और बातो मे जयदेव आदि के लिए ये प्रौढ जवान थे। जयदेव आदि अँगरेजी न जानने वाले भक्तो के लिए ये जवान थे और जवानो का काम भी खूब करते थे। पर अँगरेजी-शिक्षा की व्यर्थ की निन्दाओ से डरने वाले अँगरेजीदाँ भक्तो के लिए स्त्रियो के समस्त कार्यो में ये भोले-भाले वच्चे ही थे। इतना ही नही, ये ऐसे अद्भुतो के निधान थे कि क्षणभर में द्वारका से हस्तिनापुर आकर कपडे का रूप घर कर द्रौपदी के रजोदूपित शरीर में लिपटे और दु शासन से उमकी इज्जत वचाई। भक्तिवल और योगवल के इन इतिहासो के टक्कर के इतिहास, यदि अलिफलैला आदि पवित्र ग्रथो को छोड और कही न मिलें, तो आश्चर्य क्या है?

इस प्रकार तो श्रीकृष्णचद्रजी का अद्भुत चरित्र भक्त लोग कहते है। पर थोडे से 'अरवी न फारमी, मियाँ जी वनारमी' के ढग के लोग आजकल निकले है

जिनका कृष्णचरित कुछ और ही ढग का है। इनके हिसाब से भी कृष्णचद्र लडकपन म ही एक विलक्षण पुरुष थे। जगल के बाघ-सिंह से बचने के लिए जब यशोदा जी इन्हे भगवान् का ध्यान करना बतलावे तब वे बुढिया की बेवकूफी पर मुस्करा कर रह जायें। जब अहीरो ने इन्द्र की पूजा से फसल और चौपायो की भलाई करनी चाही तब इन्होने वैदिक पूजा व्यर्थ बतलाकर पूजा की सब मिठाई आप खा ली। गीतो मे भी उन्होने वेदवाद की निन्दा की। ऐसे कहने वालो के लिए तो कृष्ण लूथर (Luther) के समान एक साधारण रिफार्मर बन गये। ऐसे लोगो से मै कुछ विवाद करना नही चाहता। ऐसे लोगो से हार मानने मे ही कल्याण है। महाभारत में पाडवो की विजय हुई। श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र लेकर गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा करते रहे। श्रीकृष्ण जी की इस रक्षा के कारण अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र ने कुछ काम न किया। परीक्षित जी उत्पन्न हुए। शुकदेव जी से श्रीमद्भागवत सुनते-सुनते साँप के काटने से बेचारे मर भी गये। हे भगवान् ! ऐसे पुरुवश की यह दशा! परीक्षित जी का सर्प-दशन देख मेरा तारा-शरीर करुणा की लहरो मे आकुल हुआ और भारत से उदास होकर पच्छिम की ओर चला।

आठवाँ अध्याय

इधर मेरा भावी शरीर भी जैसे ही छै वर्ष का हुआ, पिताजी चल बसे। माताजी ने मुझे सयाना देखकर सोचा कि कही बहुत बडा हो जाने पर शायद लडकी न मिले तो लोग समझेंगे कि लडके में कोई दोष है इसी से अभी तक शादी नही हुई। यही सब सोचकर माताजी ने ऋण लेकर छै वर्ष की ही अवस्था मे मेरा विवाह कर दिया। इधर अट्ठारह वर्ष की अत्यत छोटी कन्या से विवाह होने के कारण मै कुछ मुँहबँधुआ हो रहा था। मै सोच ही रहा था कि क्या कहूँ 'वर लागत है जस नारि को नाती' के अनुसार मोटी-ताजी स्त्री न मिली!

इतने ही मे मेरी समाधिस्थ आत्मा अजपुत्र (Egypt) देश में जा पहुँची। कुछ दिनो तक मेरी आत्मा यही लाल समुद्र के दोनो बगल नीलनद के किनारे अज-पुत्रो की ओर उत्पया (Eyphratus) के दोआब मे असुरो की प्राय कुरु-पाडव समकालिक सभ्यता देखकर हर्ष और विस्मय से भरी रही। अजपुत्र और असुरो के देश वडे अपूर्व है। यहाँ आप ही आप जमीन से गेहूँ निकलता है और पिण्ड-खजूर इतने अधिक होते है कि एक पैसे रोज मे एक आदमी अच्छी तरह अपना निर्वाह कर सकता है। इन देशो की प्रशसा यवन ऐतिहासिक हरदत्त (Herodotus) ने खूब की है। अजपुत्रो के सम्मपूर्व और असुरो के भव्यलूनपूर (बाबीलन) की शोभा

देखते ही बनती थी। अब तो ये स्थान खण्डहर के रूप मे यो ही पडे हुए है। हाल मे जहाँ-तहाँ खोदकर पाश्चात्यो ने कई स्थानो का महत्त्व समझा है। अजपुत्रो (Egyptians) के सबसे प्राचीन लेख विलक्षण ही होते है। पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के आकार के ये अक्षर होते थे। असुरो के अक्षर छोटे-छोटे बाण के फल के आकार के होते थे। अजपुत्रो के राजा शुम्भ (Khufu) के समय मे एक बडा कोणागार (Pyramid) बना। एक-एक पत्थर पचास-पचास हजार मन तक के इसमें लगाये गये। इनको खान से खीचकर लाने मे कितने ही वर्ष लगे थे। जब साढे चार सौ फुट ऊँचा यह कोणागार बनकर तैयार हुआ तब मुझे कुभकर्ण के सर और सुपनखिया की नाक का स्मरण आया। ऐसे बडे मकानो का उद्देश्य यह था कि मसालो से सुरक्षित राजकीय मुर्दे उनमे रखे जायँ और नित्य उनका धूप-दीप किया जाय। क्या ही उदार उद्देश्य था! आजकल के कितने ही मतवालो के सदृश अजपुत्रो का यह विश्वास था कि कयामत के दिन मुर्दे उठकर वहिश्त मे चले जायेगे। इसी से उनकी रक्षा के लिए उन्होंने इतना प्रयत्न किया था। मरे को मरा समझकर जलाकर खाक कर देना कैसा नास्तिक्य है! हाँ, समझदार लोग पूजा में तथा पिरामिड-मकबरा, मूरत, स्मारक आदि बनवाने में समस्त पृथ्वी के धन का व्यय भी कुछ नही समझेंगे—चाहे इस व्यय से जीवित लोगो को कोई लाभ पहुँचे या हानि। पूर्व पुरुषो के भक्त लोग ऐसे व्यय से कभी मुँह न मोडेगे। अजपुत्रो को धर्म पर ऐसी श्रद्धा थी कि उनके यहाँ बाज, बिल्ली, कछुआ कितने ही जानवर पवित्र माने जाकर मन्दिरो मे रखे रहते थे। इनमे से किसी जानवर को यदि कोई मारे तो उसकी जान लिये बिना धार्मिको को विश्राम नही होता था। पशुदया यदि इनकी किसी से कम थी तो उस राजा से जिसने एक जूँ सिर से निकालकर नख पर कडकडाने के अपराध मे एक मोटे सेठ जी को सकुटुब देशनिकाले और सर्वस्व-हरण का क्षुद्र पारितोषिक दिया था।

अजपुत्रो मे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन जातियो की व्यवस्था थी। चित्रकारी, रत्न काटना, मकान बनाना आदि अनेक कलाओ में ये अत्यत प्रवीण थे। कितने लोग यह भी कहते है कि ये लोग गणित में भी निपुण थे। उक्लेदा पडित की ज्यामिति की प्रथम पुस्तक की ४७ वी प्रतिज्ञा मे यह दिखाया गया है कि समकोण के कर्ण का वर्ग, भुजवर्ग के योग के समान होता है। यह नियम पहले-पहल यवन महर्षि पृथुगोर (Pathagorus) ने अजपुत्रो से ही सीखा था।

असुरो के दो मुख्य नगर थे—निन्हवपुर (Ninveh) और भव्यलूनपुर (Babylon)। इन दोनो ने आपस में लडते-लडते अपने सर्वनाश का उत्तम दृश्य दिखाया था। मैंने अपनी दिव्यदृष्टि से साम्प्रतिक नदन (London) नगर भी देखा है। एक नदन क्या पाँच नदन यदि मिलें तो इसके विस्तार मात्र का अनुकरण तो कर सकते है पर इसकी शोभा की समता नही कर सकते। स नगर

और देशो का तो वर्त्तमान काल की बातो से कुछ प्रयोजन भी निकल आता है पर भारतीयो के लिए अपने प्राचीन गौरव की कहानियो के अतिरिक्त और रह ही क्या गया है? पर प्राचीन गौरवो के लिए भी भारतवासी स्वय जमीन खोदने का कष्ट नही उठाते। दन्तकथाओ मे कौन-से गौरव की बात नही आई है जिसके लिए जमीन खोदें। पत्थर खोदने वाले क्या दन्तकथाओ के टक्कर की कोई बात निकाल सके है या निकाल सकेंगे? हाँ, कोरे सस्कृत के पडितो और देवबुद्धिवादी अँगरेजीदाँ के अतिरिक्त और लोगो मे यह गुण अवश्य है कि खोद-खाद, छानबीन कर यदि किसी अँगरेज ने कोई प्राचीन गौरव की बात निकाली तो ताली पीटने का कष्ट अपने अवश्य उठा लेते है और देशभर मे यह आनद छा जाता है कि पीपा के पुल, पाया के पुल, जल के नीचे-नीचे पुल, चालीस-चालीस मजिल के मकान, रेल, तार, विमान, व्यवहितदर्शक किरण आदि अद्भुत चीजे चार पैसे के रोजगार के लोभ से पच्छिमी लोग चाहे जितनी दिखलावे, पर मुर्दो के रहने के लिए या जिंदे आलसियो के कौतुक के लिए, करोडो की सपत्ति लगाकर और लाखो आदमियो का प्राण लेकर, निष्काम, निष्प्रयोजन उद्योग के आदर्श स्वरूप, बडे-बडे खम्भे, पिरामिड आदि तो नही बना सकते।

नवाँ अध्याय

क्रीतद्वीप की सभ्यता मे यवन देश की सभ्यता हुई। मध्यसागर मे तीन प्रायद्वीप है। सबसे पश्चिमी प्रायद्वीप को सुफेन कहते है। बीचवाले प्रायद्वीप मे रोमक लोग रहते थे। पूरब वाले प्रायद्वीप मे और उसके आसपास की भूमि मे यवन लोग रहते थे। प्राचीनकाल में काव्य, कला, नीति आदि मे यवनो के समान कुशल कोई नही हुआ। सुव्रता और अर्थना यवनो के दो नगर बहुत बढे-चढे थे। छोटे-छोटे प्रजा-राज्य यवनो मे बहुत थे। प्राचीन समय मे इन्ही प्राचीन यवनो से हरिकुल आदि बडे-बडे वीर हुए, जिनके वीभत्स अगो और वीभत्स व्यापारो को देखकर मुझे हनुमान्, भीमसेन, घटोत्कच, कीचक आदि अतीत महाबलियो का स्मरण होता था। रुस्तम आदि भविष्य वीरो की उनके सामने क्या गिनती थी! इन्ही वीरो के समय मे सुव्रता की जारव्रता रानी शीला ने इलेश्वरकुमार परेश के साथ भागकर अपने व्रत का पालन किया था, जिसके कारण एक दूसरी रामायण यवन देशो में ठनी! इस रामायण के ऋषि महाकवि सुमेर बाबा है। शीला के चरित्र को देखकर मुझे अनेक भावी कवियो की उक्तियाँ याद पडी जिनमें से दो-एक यहाँ दे देता हूँ—

(क) मया कुमार्यापि न सुप्तमेकया
न जारमुत्सृज्य पुमान्विलोकिता।

अनेनगोत्र-स्थिति-पालनेन
प्रसन्नतामेत्य भवोपकारिणी ।।

(ख) वयं बाल्ये बालांस्तरुणिमनि यूनः परिणता ।
अभीच्छामोवृद्धांस्तविह कुलरक्षा समुचिता ।।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न नो गोत्रे, पुत्रि, क्वचिदपि सतीलाञ्छनमभूत् ।।

इस द्वितीय रामायण के बाद सुव्रता वाले अपनी वीरता से और अर्थना वाले अपने कला-कौशल से बहुत प्रपन्न हुए। पारस से पश्चिम के यवन जब राजद्रोह मचा कर पारस वालो से बिगडे तब अर्थना की नौकाओ ने उनकी मदद की। इस पर क्रुद्ध होकर पारस वालो ने कई बार यवनो पर चढाई की। मारस्थूण की तराई के और सारमेय-मुख के स्थलीय और जलीय युद्धो मे कई लाख पारस वाले मारे गये। अत में पारस वालो के जराक्ष (Xerxes) महाराज जान लेकर अपने देश में भागे। इन युद्धो के बाद सुव्रता और अर्थना का आपस की फूट से नाश और स्थविसपुर के वीरवर अभिमन्यु की विजय, और श्रीसुन्दर के हाथ से अर्थना के नाश आदि के दृश्य मे बडी करुणाभरी दृष्टि से देखता रहा। नाश होने के समय जाति की बुद्धि भी कैसी हो जाती है! महर्षि सुक्रतु अपने उपदेश से चाहते थे कि अर्थनापुरवालो को भ्रम से बचावे, पर उन्हे नास्तिक बतलाकर अर्थनावालो ने हलाहल पिलाया। अत में मगद्रोणी से विषधर सर्प के समान निकल कर राजा ने यवनो की बची-बचाई स्वतत्रता चाट ली। अब तो स्वतत्रता खोकर यवनो ने चावल-दाल की दूकानो के बदले गाँजा-भाँग की दूकानो को छानना आरभ किया। प्रतनु, अरिष्टात्तर आदि बडे-बडे दार्शनिक हुए, जिनकी दूकानो से मादक द्रव्य ले-लेकर बहुत दिनो तक पच्छिमी सघुक्कड समाधिनिशा में मग्न थे। दो-चार चिलम जूठे गाँजा का महाप्रसाद पीकर अब भी पूर्वीय लोग कृतार्थ है और कभी-कभी समाधिनिशा में पड ही जाते है। सच है ऐसी चीजो के लिए अपने-परायो का विचार क्या? अफीम, गाँजा, भाँग, जहाँ से मिले वही से सग्रह करना चाहिए। चीन में जबतक पच्छिमी तत्त्ववाद (Materialism) नही घुसा था तबतक परम पूज्य भगवान् बुद्ध के जन्म-देश के अहिफेनामृत की वे कैसी कद्र करते थे!

फणप के मरने के बाद एक उससे भी बढकर भयानक भूत निकला, भारतीय तो कहते है कि बाप से बढकर बेटा हो ही नही सकता। क्या ऋषियो से बढकर आजकल वाले हो सकते है? पर फणप का बेटा अलीकचद्र इस नियम का अपवाद हुआ। मेरी दिव्यदृष्टि मे तो यह आता है और बडे-बडे ऐतिहासिको ने भी ऐसा ही लिखा है कि अलीकचद्र फणप का बेटा ही नही था, द्युपिता साक्षात् इद्रदेव ने जैसे गोतमजी के रूप में अहल्या पर कृपा की थी, वैसे ही अजगर के रूप में उन्होने अलीकचद्र की माता को कृतार्थ किया था। इस देवपुत्र अलीकचद्ररूपी,

महाकुड मे यवनो ने अपनी बची-बचाई स्वतंत्रता का हवन कर, सालोक्य, सायुज्य निर्वाण आदि से बढकर दास्यरूपिणी मुक्ति पाई। यवन दासो की बहुत बड़ी सेना लेकर दारदुश पारसीक को जीतता हुआ अलीकचद्र सिन्ध के पास तक पहुँचा। मैं भी उसके साथ-साथ उसकी सब कार्रवाईयाँ देखता रहा। चद्रगुप्त मौर्य अभी बिल्कुल बच्चा था और मेरे सामने ही अलीकचद्र से मिलने के लिए आया था। पर दोनो मे कुछ ऐसी बात छिडी जिससे दोनो मिलकर कुछ काम नही कर सकते थे और आपस मे ही झगड गये। अलीकचद्र नन्दो से पाली हुई प्राची को जीतने को तरसते ही रह गये। पर भगवती भारत वसुन्धरा की ऐसी कृपा है कि यहाँ पैर देते ही वीर से वीर आलस्य-निद्रा मे पड जाते हैं। अलीकचद्र के सिपाहियो ने यहाँ अनेक नागाओ के दर्शन किये। न जाने इन लोगों के दर्शन से या भारतभूमि के पवित्र स्पर्श से कुछ ऐसी घोर अनुद्योगनिशा यवनो पर आ पडी कि अलीकचद्र ने कितना ही समझाया और लोभ दिखाया पर उन्होने एक न सुनी और वितस्ता से पूर्व एक कदम भी बढना अस्वीकार किया।

मैं तो इसका कारण समझ गया। अलीकचद्र के आने से कई सौ वर्ष पहले ही भारतभूमि मे श्री शाक्यसिह और महावीर जिन का अवतार हो चुका था। शाक्य की करुण लहरियाँ देशभर मे लहरा रही थी। फिर ऐसे देश मे चद्रगुप्त मौर्य आदि थोडे मे पाषाण-हृदयो के अतिरिक्त किसकी हिम्मत थी जो यहाँ हिंसा का साहस दिखलावे। धन्य हैं वे भारतीय जो आज भी वैदिक-अवैदिक सब प्रकार की हिंसाओ को छोड, मास-भक्षण, को कौन कहे, चिकित्सा के अभ्यास के लिए भी मास-स्पर्श तक न करने की दृढ प्रतिज्ञा का पालन करते जाते हैं। बौद्ध जातियाँ तो मासभोगिनी हो भी गईं पर भारतीय तो घासपार्टी की वृद्धि के लिए प्राण तक स्वाहा करने को उद्यत हैं। मनुष्यो के प्राणो को स्वाहा करना तो और प्राणियो की हिंसा के बराबर पापजनक हो ही नही सकता, खासकर उनलोगो के लिए जिनके यहाँ काशी-करवट, प्रयाग-करवट आदि में प्राण देना तपश्चरण की पराकाष्ठा समझी जाती है।

साराश यह कि अलीकचद्र साहब को पटने की म्यूनिसपैलिटी के दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। वे इधर ही से लौट गये और भव्यलूनपुर मे बुखार से मर गये। उस समय मेरी अजीब हालत हुई, मैं बडे फेर में पड गया। जैसे मूँछो को उखडने के समय मुझे यह नहीं मालूम पडता था कि समाधिबल से कैलास के साथ ऊपर को जाऊँ या हनुमान् जी की पूँछ के साथ नीचे ही रह जाऊँ, अथवा जैसे वनकटा के पास अपनी अट्ठारह वर्ष की छोटी दुलहिन को देखकर मुझे यह नहीं समझ पडता था कि उसे मैया कहूँ कि काकी, वैसे ही पशोपेश में मै फिर पड गया। मैं यह नहीं निश्चय कर सकता था कि चद्रगुप्त के साथ भारत में रहूँ या अलीकचद्र के सेना-नायको के साथ पश्चिम जाऊँ। दो शरीर और दो आत्माएँ तो पहले से ही थीं अब कितने कायव्यूह करूँ? हिंदू कसाई चद्रगुप्त ने जब वैदिक ब्राह्मण चाणक्य की

सहायता से नदो को मारकर नरमेध यज्ञ का दृश्य दिखलाया और बेचारे शल्यक आदि यवन राजाओ को सिंधु के किनारे से निकाल कर उन्हे अन्न-पानी का क्लेश दिया तब मुझे बडी करुणा उत्पन्न हुई। मेरे ऐसे विरक्त का भारतवर्ष से जी भर गया। भावी राजा प्रियदर्शी के कारुणिक कार्यो को देखने के लिए भी मै न ठहरा। पश्चिम को भागते-भागते मै एकदम रोमक और करध्वज के बीच मध्यसागर के ऊपर जा खडा हुआ।

दसवाँ अध्याय

मध्यसागर के ऊपर मैं गुब्बारे की तरह आसमान मे एक बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचा, जिसमें अलिकचद्रिया पुरी की, भारत की, और रोम-स्पेन की सब बातें देखता रहूँ। पर अब विशेष दृष्टि मेरी रोम पर थी। यहाँ पहुँचने के कुछ दिन पहले मैंने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा था कि मगलग्रह के साथ समागम के कारण एक कुमारी को राम और रौमिल नाम के दो पुत्र हुए थे। नास्तिक सामाजिको के डर के मारे कुमारी ने लडको को जगल मे फेक दिया था। वहाँ एक हुँडारिन ने दूध पिलाकर बच्चो को जिलाया था। रौमिल ने मातृ-हत्या कर रोम नगर बसाया। रोम नगर मे पाँच-सात राजाओ के बाद तूर्क नाम का एक राजा हुआ। यह बडा अभिमानी और अन्यायी था, इसलिए इसे राज्य छोडकर भागना पडा और रोम में प्रजा-राज्य स्थापित हुआ। प्रजा में से चुने हुए दो शासक सब राज-काज किया करते थे। द्विजो (अमीरो) और शूद्रो (गरीबो) के बीच इस नगर में बडा झगडा चला। इस झगडे का अत नही हो पाया था और पडोसियो को दबाकर रोमवाले कुछ प्रबल हो ही रहे थे कि इसी बीच साक्षात् हनुमान् जी का अवतार महावीर हनुबल, करध्वजपुर का सेनापति, सुफेन होकर पूर्व और अल्प पर्वतो को लाँघता हुआ रोम के पास आ पहुँचा। कई बरस तक आठ सेनानायको को फँसाये हुए और देश को खूब तग करते हुए, इसने अपनी युद्धलीला दिखलाई। अत में श्रीप्रिय नामक मध्यसागर पार कर करध्वजपुर मे पहुँचा और वहाँ उसने ऐसा उपद्रव मचाया कि करध्वजपुर वालो को हनुबल को बुलाना पडा।

यमक क्षेत्र के युद्ध में श्रीप्रिय ने करध्वजियो को जीता। करध्वजियो को जीतने के बाद रोम का सामना करनेवाला कोई न रह गया। इन लोगो ने धीरे-धीरे अल्प पर्वत के पार की अन्य जातियो को, यवनो को, अजपुत्रो को तथा और अनेक देशो को जीतकर अपना बहुत बडा साम्राज्य स्थापित किया। मेरे आने के प्राय दो सौ वर्ष के बाद केशरी (Caesar) नामक एक वीर रोम मे उत्पन्न हुआ। इसने श्वेत द्वीप तक शर्मण्य आदि अनेक देशो को विजय कर अत में रोम में अपना आधिपत्य

स्थापित किया। पपीय आदि जितने इसके प्रतिद्वन्दी थे सभी की पराजय हुई और एक सम्राट् के राज्य का आरम हुआ। केसरी को ब्रूतुस (Brutus) आदि ईर्ष्यालु लोगो ने रोम की वृद्ध सभा में छल से मार डाला। ये लोग फिर से प्रजा-राज्य स्थापित करना चाहते थे। पर इन लोगो का मनोरथ सफल नही हुआ। देश की कुछ ऐसी अवस्था हो गई थी कि विना एक प्रचण्ड पुरुष के आधिपत्य के जनता कुछ भी नही कर सकती थी। केसरी के मरने के थोड़े ही दिनो बाद उसके भानजे का राज्य हुआ। इतिहास में वह अगत्स्य सम्राट् के नाम से प्रसिद्ध है। अगत्स्य के पीछे रोम मे बडी खलबली मची। बीच-बीच मे कभी भिजन जैसे अच्छे सम्राटो का आधिपत्य होने से कुछ दिनो तक शाति रहती थी, नही तो प्राय व्यभिचार, दुर्व्यसन, सैनिको के विद्रोह, परस्पर मार-काट आदि के कारण देश की ऐसी दुरवस्था हुई जैसी अवन्तिवर्मा के बाद कश्मीर की होने वाली है। यहाँ से मैं देख रहा हूँ कि रोम की दशा को सर्वथा भूलकर प्राचीन भारत के एक ऐतिहासिक कश्मीर का वृत्तात लिखते समय लोगो के बीच गप उडावेगे कि ऐसा उपद्रव और ऐसा अनाचार पृथ्वी पर कही नही हुआ था, पर मेरा तो यह अनुभव है कि कश्मीर की अतिम अवस्था से कही बढ़-चढ कर रोम की अतिम अवस्था के उपद्रव हुए थे।

आगे चलकर आपको मालूम होगा कि मेरी दोनो आत्माये और दोनो शरीर ऐसे प्रबल है कि मेरे माथे से आग निकलेगी तो भी मैं नही घबराऊँगा और मेरी अँतडियो से ज्वाला निकलेगी तो भी मुझे क्षोभ नही होगा। अभी आपलोग देख चुके है कि अपनी मूँछो के उखडने के समय मे मै कैसा उलझा-पुलझा था और मेरी शाति भग नही हुई थी। पर रोम माता के सर्वांग से अनाचार और दुर्व्यसन की चिनगारियाँ निकलती हुई देखकर मुझे बडा क्षोभ हुआ। केवल मुझे ही क्षोभ नही हुआ, रोम माता को और सीता मैया की माता और इन दोनो के सबध से मेरी डबल नानी सर्वस्वदा भगवती वसुन्धरा को भी ऐसा क्षोभ हुआ कि विपुवीय अग्नि-पर्वत के कधररूपी मुख से उन्हें भीषण अग्नि की कै आने लगी। सैकडो योजन तक उनका शरीर कांपने लगा। घडघड़ाता, घडघड़ाता हुआ द्रवीभूत पाषाण का प्रवाह नानी साहवा के मुख-कदर से ऐसे वेग से चला कि हरिकुल और पपिय नामक दो नगर तो देखते-देखते लहराती हुई राख के नीचे गड गये। शहर से भाग कर लोग जहाजो पर समुद्र की शरण लेते थे। पर शरणागत परित्याग-पातकी सागर बाबा भी भयानक हिलोरो मे जहाजो को किनारे पर फेंक स्वय कोसो हट जाते थे। यदि उन्होंने किसी जहाज को अपनी गोद मे रख भी छोडा तो लपकती हुई कोई सैकडो मन की चट्टान धधकते हुए पहाड के मुख मे आकर, जहाज ही पर सब यात्रियो का गरमागरम अग्नि-सस्कार कर देती थी। मेरे श्री अगो तक भी गरमी पहुँचने लगी। अनन्त बाल गोपाल जी के समान करुणा मे आर्त्त होकर विपुवीय आग को मै पी गया। आग पीने की विद्या मैने बडे परिश्रम से सान्दीपिनी के एक शिष्य से

सीखी थी। आग पीकर सर्वस्वदा नानी को कुछ समाधि-मूर्च्छा मे डालकर कई सौ बरस तक मै रोम वालो के दुर्व्यसन और अनाचारों को देखता रहा।

अब कलि के बाद वाले द्वापर का अत हो रहा था। त्रेता का आरभ हो चला था। भिक्षुरूप धारण कर जिन असत्यासुर की सतानो ने बडा भारी अनुद्योग फैलाया था और जिनके महात्म्य से अशोक के वश का नाश हुआ और जिनकी कृपा से पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि बडे-बडे पराक्रमी आर्यवीरो से भी डूबती हुई भारतभूमि की रक्षा न हो सकी और आखिर प्राचीन भारत काल के मुँह मे धँस ही गया, उन्ही महाशयो के दुर्मन्त्र से यवन और रोम आदि देशो में भी खूब दुर्व्यसन, अनाचार और असत्य फैला। झूठे बाराती शास्त्रार्थ, झूठी कल्पना, थिएटर, कुश्ती, बाललीला, व्यभिचार-लीला, आदि बीभत्स दृश्यो से, और उनमें देश के धन के दुर्व्यय से, अगस्त्य के चार-पाँच सौ वर्ष के बाद और चद्रगुप्त, विक्रमादित्य के मरने के कुछ दिन पीछे, भारत से लेकर रोम तक, पृथ्वी के प्राचीन गोलार्द्ध की कुछ ऐसी दशा हो गई, जिसको देखने के लिए मेरी समाधिदृष्टि, दिव्यदृष्टि, अधोदृष्टि, कोई भी पर्याप्त नही थी। मेरे इष्टदेव जी के कैलासवास के समय जैसा अन्धकार मेरी दोनो आत्माओ और दोनो शरीरो पर नही छाया था वैसा इस समय छा गया। इस प्रकार मै डबल समाधि मे पडे-पड़े आधुनिक वेदान्तियो जैसे शून्य ध्यान का अनुभव कर ही रहा था कि दंभरूपी मदराचल के द्वारा सर्वात्म समुद्र एकाएक ऐसे जोर से हिलोरा गया और इतने काल तक उसका मथन हुआ कि वन्यविसर्प नामक कालकूट सर्वात्म से निकल ही तो पडा। अब इस कालकूट को पिए कौन? रावण ने कैलास के साथ शिवजी को ऐसा कुदाया था कि उनकी तो नसें ढीली हो गई थी। मै अभी अचिरभक्षित-विषुवीय आग को पचा रहा था और समुद्र-मथन के दृश्य देखने का कौतुक भी मुझे हो रहा था, इसलिए मैने भी छोड दिया।

यक्षार्त्ति नदी के आसपास से हूण, तर्तर, कर्मुक, आदि बीभत्स वन्य कुछ तो भारत का आचमन करने निकले और कुछ दानव (Danube) नद के समीप आ पहुँचे। अब तो दानव नद के चारो ओर के राक्षस गौथ, गौर आदि के होश भी ठडे हो गये। बैलगाडियो पर अपना बरतन-बिस्तर लेकर ये लोग रोम मे पहुँचे। अब बेचारे रोम के सम्राट् ऐसी दशा मे पडे जैसी दशा में विश्वामित्र और देवताओ के बीच में पडकर हरिश्चन्द्र के बाबूजी पडे थे, अथवा मै उस समय पडा था जब मेरी एक ओर की मूँछ रावण के हाथो पर शिवजी के बड के साथ उलझ रही थी और दूसरी ओर की मूँछ गन्धमादन पर हनुमान् जी की दुम से लिपट रही थी। सम्राट् न तो ऐसे प्रबल ही थे कि इन्हे अपनी भूमि में न आने दे और न ऐसे मूर्ख ही थे कि ऐसे समय भयानक पडोसियो को अपने घर में घुसने देने के बाद आनेवाली विपत्तियो को न समझे। रोम मे घुसने के थोडे ही दिनो के अनन्तर गौथ लोग बिगड़े और अपने नायक अलर्क को ढाल पर रखकर, 'राम नाम सत्य' करते

हुए रोम नगर पर चढे। इस सवारी की तुलना किससे करूँ? भूत और वर्त्तमान मे तो कोई उपमा मिलती नही। भविष्य की ओर देखता हूँ तो शास्त्रियो के साथ वेद भगवान् की सवारी की यात्रा के समय जो हुल्लड मचता है उसी से कुछ-कुछ अलर्क-यात्रा के हुल्लड की तुलना की जा सकती है। अलर्क के अनुगामियो ने रोम को लूट लिया, और जो दशा मेरी अघाग्नि से खखनदेव शर्मा के पडोसी दुसाध की झोपडी की आगे होनेवाली है, उसी मे उसे डाल दिया। इसके बाद कई बार कितने दिनो तक यही दशा रोम की रही। गौर, भाडल, मूलक आदि से कई बार जब रोम जलाया जा चुका तब शर्मण्य उदयाकर ने पश्चिम रोम का राज्य अपने हाथ मे किया और अगस्तिन नामक बच्चे को, जो उस समय गद्दी पर था, पेन्शन देकर साम्राज्य-बधन से हटाया। अगस्तिन के बाद रोम साम्राज्य का पच्छिमी हिस्सा, जिसकी राजधानी कसतन्तुपुरी थी, बहुत दिनो तक स्वतत्र रहा। पर यहाँ भी रोम की तरह शाति स्थायिनी न रही। अपनी भविष्य-यात्रा मे मै इसके अतिम दिनो का पवित्र वृत्तात कहूँगा।

ग्यारहवाँ अध्याय*

मै अपनी दिव्य-दृष्टि से दशकुमारचरित के नायक राजवाहन से भी विलक्षण चौदहो भुवन और तीनो काल की यात्रा कर रहा था। नीलनद पर अजपुत्रो की और उत्पथा तट पर असुरो की कुछ वार्त्ता आपको सुना ही चुका हूँ। जी तो चाहता है कि और भी कथा विस्तार से सुनाऊँ पर ऐसा करूँ तो महाभारत बन जाय। खैर कुछ मुख्तसर सुनिये। मेरी समाधिस्थ आत्मा ने अजपुत्रो का और असुरो का पिण्ड छोडा। वहाँ से कुछ उत्तर की ओर जाकर मैने मेदक और पारसीको की तूती बोलती पाई। मेदक वीर कायक्षार ने असुरो की निहूवपुरी का विध्वस किया। मेदकवीर कायक्षार का बेटा आस्तीक हुआ। इसका नाम था कारूवीर। इसी के नाम कारू का खजाना आज तक मशहूर है। कारूवीर ने पहले तो अपने ननिहाल पर हाथ साफ किया, फिर

---

*हाल में स्वामी जी (श्री मुद्गरानन्दजी महाराज) पृथ्वी से रुष्ट होकर फिर अपनी जन्मभूमि वरुणलोक में चले गये हैं। बीबी बसन्ती के ऊपर मद्रास में मुकद्दमा चलता हुआ सुनकर स्वामी जी एक दिन रुष्ट होकर चिल्लाये कि अब मैं इस अपवित्र पृथ्वी ग्रह पर नहीं रह सकता, जहाँ ऐसे महात्माओं पर अभियोग हों। बहुत कहने-सुनने से एक अपने ही सदृश महात्मा श्रीसुवर्णजिह्व को वे पृथ्वी के कल्याण के लिए रख गये। उन्हीं को अपने शेष जीवन आदि का नोट भी दे गये। सुवर्णजिह्वजी कुछ भद्दे-से हैं। उनसे नोट आदि का मिलना कठिन होता है। इसीसे इस चरितावली के अंशों के निकलने में बिलम्ब हो जाता है।—लेखक।

लवद्‌ठीपेश्वर कृशाण्व को जीतकर इसने यवन देश को जीता। सिंधुनद के पश्चिम तट से लेकर मध्यसागर के पूर्वीय तट तक सब देशो को जीत कर इसने असुरो की भव्यलूनपुरी का नाश किया। यक्षाद्रि से रक्तसागर तक और सिंध से यवनसागर तक विस्तृत राज्य अपने पुत्र द्वितीय काम्येश को देकर कारूवीर मर गया। काम्येश बडा क्रूर था। अजपुत्रो का सत्यानाश कर इसने आत्महत्या कर अपने जीवन की समाप्ति की। काम्येश का पुत्र दराय् हुआ। बीस प्रातो के शासक इसके बीस छत्रप थे। इसके राज्य में डाक और सडक का बदोबस्त अच्छा था। बसत मे यह शूषा मे रहता था, ग्रीष्म मे अश्वपत्तन मे और जाडे मे भव्यलून मे।

जब सुमेरु प्रदेश मे प्रालेयप्रलय हुआ था और आर्य वशधर लोग वहाँ से चारो ओर चले थे तब भारतवाले और पारसी लोग सिंधुनद के दोनो ओर आ बसे। यवन और रोमक मध्यसागर के किनारे गये। शर्मण्य आदि तुगसागर तक पहुँचे। मध्यसागर के उत्तर तीर पर तीन प्रायद्वीप है। पहले का नाम है यवन, दूसरे का नाम है रोम, तीसर का नाम है सुफेन। यवन, जिन्हे लोग यूनानी भी कहते है, बडे स्वातन्त्र्यप्रिय थे। य वीर, दार्शनिक, नीतिज्ञ और शिल्प-निपुण थे। बहुत प्राचीन समयो मे यहाँ बडे-बडे वीर हरिकुल आदि कुश्ती मे और लडाई मे लगे रहते थे। ये वीर ऐसे थे कि आजकल के सडो और राममूर्त्ति आदि को तो इनके अँगूठे का भी बल नही होगा। जब पहले-पहल मुझे हरिकुल मल्ल का दर्शन हुआ तब उसकी गदा देखकर मुझे भीम की गदा और अपने मुद्‌गर का खयाल आया। कर्म-विपाक वाले तो कहते है कि जैसे युधिष्ठिर की बाँह का हीरा कोहनूर घूमते-घामते रणजीत सिंह के हाथ से निकल कर आजकल आँग्ल राजाओ के पास पहुँचा है, वैसे ही भीम की गदा हरिकुल के हाथ पडी थी, वही काल-क्रम से सोमनाथविनाशी महामोद जी के हाथ लगी थी। कितने बेवकूफ तो यह समझते है कि वही गदा गजनी में सडती-गलती महर्षि मुद्‌गरानद जी के मुद्‌गर के रूप में परिणत हुई है। यह गप्प वैसी ही है जैसी कि हाल मे सोनपुर के मेले में मेरा टोप देखकर एक पादरी चिल्ला उठा था कि यह मेरा ही टोप तुमने ले लिया है।

जो कुछ हो हरिकुल आदि वीरो के समय मे एक बडा अपूर्व उपद्रव हुआ था। इलाधिपप्रिय राजा का बेटा परेश था। इसने यवनराज मानलव की बहू शीला का हरण किया। फिर शीला को लाने के लिए ऐलेयो से और यवनो से बडी लडाई हुई, जिसकी कथा महाकवि सुमेरु बाबा ने अपने अयलेय काव्य में दिखलाई है। कितने लोग तो कहते है कि रावणकृत सीताहरण की कथा, यानी समस्त रामायण, सुमेरु बाबा के काव्य ही का अनुकरण है। बहुतेरे समझते है कि बाबा सुमेरु का काव्य ही रामायण का अनुकरण है। क्या तत्त्व है इसका ठीक पता मुझे दिव्यदृष्टि से भी नही लगता, हाँ इतना कह सकता हूँ कि मैने प्रत्यक्ष रावण को भी देखा है जैसा कि मेरी मूँछो की कथा में आपलोग सुन चुके है और इलावाले भी मेरी आँख के सामने से गुजर चुके है। दोनो की बाते असली मालूम पड़ती है। हाल मे इलास्थान खोदने से भी ऐसे ही

पता लगा है। आखितेश, मुगस्य, आदि बडे-बडे वीरो के मारे जाने पर एक चालाक बूढ़े ने, जिसका नाम उड्डीस था, उड्डीस तत्र का विचित्र नमूना दिखाया। जैसे वत्सराज उदयन को किलिञ्ज हस्ती (कल का हाथी) से कौशाम्बीश्वर प्रद्योत ने बझाया था, वैसे ही किलिञ्जाश्व यानी सिपाहियो से भरे कल के घोडे के प्रयोग से, उड्डीस ने, इला का किला दखल किया।

अब जगत् मे यवनो का बहुत कुछ बन पडा। जबूद्वीप के पश्चिम प्रातो मे, श्रीशल्य में, सुफेन मे इनके उपनिवेश बने। शकाब्द से पहले नवम शतक मे यवनो के अनेक छोटे-छोटे स्वतत्रनगर राजा हुए। इन राज्यो मे अर्थना और सुव्रता का बहुत नाम चल निकला। सुव्रता वाले बडे वीर होते थे और अर्थना वाले शिल्प-कला आदि में तेज होते थे। सुव्रता वालो का जीवन श्री गर्गजी के धर्मशास्त्र के अनुसार चलता था। कसरत, कवायद, लडाई आदि में ये बडे कुशल हुए। सुव्रता वालो के उद्दड राज्य मे हरिहर महादेव की तरह दो राजा साथ ही शासन करते थे। इनके स्त्री-पुरुष सभी वीर थे। स्त्रियाँ भगोडे सिपाहियो का मुँह नही देखना चाहती थी। इनके यहाँ शिल्प का प्रचार कम था। ये लोग बहुत कम बोलते थे। शूद्रो से इनका काम चलता था और दिल के ` बहुत कडे होते थे। इधर अर्थनावालो का अतिम राजा कद्रु जब मर गया तब अर्थनापुरी स्वतत्र हो गई और वहाँ एक प्रजाराज्य का स्थापन हुआ। पुराने द्राह्मुनि के लिखे हुए धर्मशास्त्र से असतुष्ट होकर अर्थनावाले सूरस्मृति का अनुसरण करके अपना व्यवहार करने लगे। अर्थना राज्य बिना माथे का ही रहा था। यहाँ प्रिशास्त्र, श्रीस्तन आदि प्रबल पुरुषो ने प्राय शासन अपने हाथ मे रखा। इसी बीच मौके से दोनो पडोसियो मे यानी यवनो मे और पारसीको मे, टक्कर लगा। कारू ने पारसीको की जड बाँधी थी, काम्येश ने उसे बढाया था, और, दराय् ने उसे मजबूत कर रखा था। अर्थनापुरी के फौजी जहाजो की सहायता से जबूद्वीप के यवनो ने अपने शासक पारसीको से झगडा ठाना और बडा उपद्रव किया। पारसीको के शाह ने उपद्रव जान कर क्रोध के मारे अर्थनावालो को नष्ट करने के लिए सेना के साथ अपने दामाद मर्दनीय को भेजा। मर्दनीय जैसे ही मगद्रोणी मे घुसा वैसे ही तूफान से उसकी नौकाएँ नष्ट हो गई। वह बेचारा अपना-सा मुँह लिये जबूद्वीप को लौटा। अब तो दराय् खीस-क्रोध से अभिभूत हो गया। उसने दाति नाम के सेनापति को फिर जहाजो के साथ यवनो के नाश के लिए भेजा। मारस्थूण की तराई में अर्थनापुरी से उत्तर यवनो और पारसीको में घनघोर लडाई हुई। यवनो का सेनापति मत्यदि नागर वीर था। उसने रणक्षेत्र मे थोडी सेना से एक लाख पारसीको की खबर ली। इस तमाशे को देखकर भगवान् रामचद्र जी की खरदूषण आदि चौदह हजार राक्षसो से लडाई का खयाल मुझे हुआ। इसी बीच दराय् बेचारे कब्र में गये। उसका बेटा उराक्ष राजा हुआ। इसने पच्चीस लाख सेना लेकर यवनो पर चढाई की। समुद्र में इसने एक पुल बना डाला जिससे मुझे कभी रामेश्वर के सेतु का और कभी कार्मरेश्वर

परवरसेन के वितस्ता नदी वाले सेतु का स्मरण आता था। सात दिन, सात रात में यह पच्चीस लाख की बीभत्स सेना इसी सेतु से यवनसागर को पार कर प्रलयकाल के बवडर के समान यवनो पर आ पड़ी। धर्मद्वार नाम की द्रोणी में सुव्रता के राजा वीर लेयनीद्र ने इस तूफान का सामना किया। लेयनीद्र को और उसकी छोटी सेना को चूर-चूर करती हुई यह बडी सेना अर्थनापुरी मे पहुँची। नगर वाले भाग गये थे। खाली नगर जलाकर सेना आगे बढी। जमीन पर तो यवनो की कुछ न चली पर समुद्र के सारमेय मुख मे यवनो के और पारसीको के जहाजो मे दारुण युद्ध हुआ। पारसीको के जहाज की संख्या यवनो से चौगुनी थी पर यवनो ने पारसीको की अच्छी तरह खबर ली। पारसीको की पोत-सेना नष्ट हुई। जराक्ष महाराज भागकर घर पहुँचे। उनकी बची हुई सेना को धीरे-धीरे घेर कर यवनो ने कब्र में पहुँचाया।

इसके कुछ दिन बाद आधी शताब्दी तक विद्वान् परक्लेश अर्थनावालो का नेता रहा। इसके नेतृत्व में आसपास के समुद्र पर अर्थनापुरी का अधिकार रहा। विद्या और विभूति म अर्थनापुरी अद्वितीय हुई। नाटक, प्रहसन, दर्शन आदि की वृद्धि हुई। अरिष्ट फण के तफरीह वाले प्रहसनो को देखकर मुझे शखधर जी के लटकमेलक का तथा अपनी चरितावली का खयाल हो आता था। उत्तम देवमन्दिर, मूर्त्ति आदि भी परक्लेश के समय मे बने।

इस महापुरुष के मरते ही अर्थना और सुव्रता वालो में कलियुग का आविर्भाव हुआ। घोरकलि मे अर्थनावालो की पराजय हुई। इसी बीच सुक्रतु नाम का दार्शनिक अर्थनापुर मे हुआ। अर्थनावाले भीतर से सड चले थे। बिचारे सुक्रतु पर अनेक प्रकार के अभियोग लगा कर इन लोगो नें उन्हें जहर का प्याला पिलाया। सुक्रतु का चेला अलीकविद्य था। इसकी चचलता से अर्थना की पराजय हुई और पुरी सुवतेश्वर लेशेन्द्र के हाथ लगी। इसी बीच यवनो के स्पवीयत् पुर मे अपूर्व बुद्धिशाली अपमान्ध महात्मा हुआ। इसने घमंडी सुव्रता वालो की खूब खबर ली। अब कलि महाराज की कृपा से सुव्रता और अर्थना दोनो का नाश हुआ। बन पडी मगद्रोणीश्वर फलक राजा की। इसने आकर के थोडी-बहुत लडाई-झगडा कर यवनो पर अपना अधिकार जमाया। फलप हिंदुस्तानी नदो का समकालिक था। यह बडा वीर और चालाक भी था। पर बात तो यह है कि जब आपस में फूट होती है तब अडोस-पडोस वालो की खूब बन आती है। मै तो उसी वक्त से शहाबुद्दीन के हाथ से होनेवाली दिल्ली-कन्नौज की दशा देख रहा था। अब फलप के पुत्र या प्लतार्क मुनि के मत से, सर्परूपी द्युपिता इद्र महाराज के पुत्र अलीकचंद्र, मगद्रोणी के राजा हुए। बीस वर्ष की उमर मे इसे पिता का राज्य मिला। यह ऐसा वीर था कि यवन सेना लिये-दिये, रास्ते मे पारसीको को साफ करते हुए, सिंध के किनारे पहुँचा। यहाँ से इसकी इच्छा थी पाटलिपुत्र जाने की, पर फलप के बच्चे अलीकचद्र को भारत में एक अपूर्व लडके से काम पडा। कुमार चद्रगुप्त अलीकचद्र के पास सिंध के किनारे आता-जाता था। इसने अलीकचद्र के सेना-

वालो के कानो मे ऐसा मत्र दिया कि अब तो वे पूरब एक कदम बढने को तैयार नही थे। बचारे अलीकचद्र पटना देखने को तरसते ही रह गये। किस्मत मे उसे पुरी का दर्शन बदा नही था। बलूचिस्तान होते हुए घर की ओर लौ`। भब्यलून मे बेचारे को बुखार आया और वह मर गया। इनकी मृत्यु पर मुझे बडा अफसोस हुआ। इद्र, वरुण आदि के नाते इनसे मेरा कुछ सबध भी सभव था। अशौच मे मूँछ मुडवाने की इच्छा हुई पर मूँछ तो पहले ही निकल गई थी। नाऊ के पैसे बचे और मै रोम की ओर बढा।

बारहवाँ अध्याय

जैसे यवन लोग शिल्पकला मे निपुण थे वैसे ही रोमक लोग वीरता मे अद्वितीय हुए। इनकी उत्पत्ति भी कुछ अजीब वन्ध्या-पुत्र-सी है। लोग कहते है कि आर्या नामक एक कुमारी को मगल ग्रह से जुडवाँ लडके पैदा हुए। एक का नाम राम था दूसरे का नाम रौमिल था। एक हुँडारिन ने इन दोनो का, दूध पिला कर, पालन किया, क्योंकि प्राय कुमारियाँ अपने लडके को फेंक आती है, उनका पालन नही करती, कुती ने भी सूर्य (ग्रह) से उत्पन्न कर्ण को फेंक दिया था, उसका पालन नही किया था। इस अद्भुत घटना से बे-माँ के बेटे, बे-बाप के बेटे, बे-माँ-बाप के बेटे, वध्या-पुत्र, कुमारी-पुत्र आदि की पवित्र कथाओ का मुझे स्मरण आता है। ऐसी कथाओ के सुनने मे अमैथुनी सृष्टि आदि पर आस्तिको का विश्वास अवश्य ही बढेगा और दारुवीण (Darwin) आदि नास्तिको के विकासवाद आदि पर खूब धक्का पहुँचेगा।

राम को मार कर भ्रातृघाती रौमिल ने रोम शहर बसाया। रोम मे कुलीन और अकुलीन दो प्रकार के मनुष्य थे। प्राय राज्याधिकार कुलीन ही का होता था। पहले रोम में राजा लोग होते थे। छठे राजा सर्व ने पहले-पहल शतसमिति मे कुलीन और कुलहीन दोनो को अधिकार दिया। पर सर्व के बाद घमडी तर्कू नामक राजा हुआ और राज्य से निकाला गया. इस समय से रोम में प्रजाराज्य की रीति चली और राजा के नाम पर भी रोमक लोग द्वेष रखने लगे। मै अपनी दिव्यदृष्टि से सब रहस्य देख रहा था। तर्कू के बेटे ने विचारी सुदरी लवक्रीता पर जो अत्याचार किया सो सब मुझे साफ दीख पडता था। प्रजा की ओर से दो शासक प्रतिवर्ष नियत होते थे। पर रोमको का नया प्रजातत्र भीतर-भीतर तो कुलीन और कुलहीन के झगडे मे गरम हो रहा था और बाहर मे शत्रुओं ने आक्रमण किया। गौर नाम के उत्तरीय जगली रोम में पहुँचे। गौरेश वरेण्य ने शहर का फिर जीर्णोद्धार किया। इनकी कृतिशक्ति बडी प्रबल थी पर कुलीन और अकुलीनो का झगडा चलता ही रहा। रिपेण्य आदि महात्माओ के प्रयत्न से कुलहीनो का भी अधिकार कुलीनो के बराबर हुआ और महोद्योगी

रोमक लोगो का शासन श्रीशैल से लेकर अल्पशैल तक समस्त प्रायद्वीप पर स्थित हुआ। सग्राम, दूतस्वीकार और मुद्रानिर्माण के अतिरिक्त और कोई अधिकार रोमक लोगो ने जीती ही हुई जाति के हाथ से नही छीना। इस तरह से रोमक लोग बढते ही चले जा रहे थे। नारद आदि देवर्षि, जो विना झगडे के प्रसन्न नही रहते, बहुत उदास ही रहे थे। भगवान् की कृपा कुछ ऐसी हुई कि एक बडा झगडा खडा हो चला। मने तो श्रीशिला की एँडी के ऊपर आस्मान मे अपना स्थान नियत किया। मै वहाँ से करध्वजवालो और रोमवालो का भयानक काड देखने लगा। करध्वज पर फणीशो का उपनिवेश था। कितने लोग कहते है कि फणीश बिचारे वैदिकपाणि लोगो के बाप-दादे या भाई-भतीजे या बेटे-पोते थे। मध्यसागर के दक्खिन अफरीका भूमि पर रोम के आमने-सामने उन लोगो ने करध्वजपुर बसाया था। पके दो घडे नजदीक रहते है तो वे टकराते ही है। सौदागरी की प्रतिद्वद्विता में करध्वज और रोम की टकराहट हुई। करध्वज वाले सुफेन की विजय कर चुके थे। महावीर हनुबल करध्वज वालो का नायक था। यह ऐसा बली था कि मैने जब इसे बचपन मे देखा था तभी से यह मुझे हिंदुस्तानी हनुमान् जी का अवतार मालूम पडता था। इसने बचपन में ही अपने बाप की आज्ञा से रोमको से शाश्वत शत्रुता की शपथ ली थी। सुफेन ने हनुबल के उत्तर-पूर्व पर्वत लाँघा। फिर दक्खिन की राह लेकर अल्प पर्वत को लाँघ कर रोमको पर आ पडा। जैसे सिंह हिरणो मे विचरे वैसे ही पद्रह वर्ष तक हनुबल रोम वालो को खाता हुआ उन्ही के देश मे रहा। आठ रोमक सैनिक अकेले हनुबल से हैरान थे। मैने तो ऐसी वीरता कभी नही देखी थी। रोमक लोग निराश हो रहे थे, पर उनके वीर सेनानायक श्रीप्रिय ने देखा कि घर मे बैठे-बैठे काम नही चलेगा। वह सुफेन जीत कर समुद्र पार कर हनुबल के खास घर मे घुसा। अब तो करध्वज वाले बहुत घबराये। मेरे ऊपर भगवान् नारद जी खडे थे, वे ताली बजाने लगे। नारद जी के साथ ही पर्वत जी मेरे माथे से जरा हटकर खडे थे, नही तो मुझ पर बडी विपत्ति आ पडती। मकरध्वज वालो ने ऊब कर हनुबल को घर बुलाया। यमक क्षेत्र मे हनुबल और श्रीप्रिय दोनो भिडे। घोर युद्ध के बाद करध्वज वाले हार गये। जिस क्षण रोमक लोगो ने करध्वज वालो को हराया उस दिन समस्त जगत् काँप उठा।

अब रोमक वालो का प्रतिद्वद्वी कोई नही रहा। सुफेन, यवन, भगद्रोणी, करध्वज आदि की लगाम पकडे हुए रोमवालो ने अपनी वीरता और नीति से मध्यसागर के दोनो ओर बडा भारी साम्राज्य फैलाया जिससे मुझे चद्रगुप्त और अशोक के साम्राज्य का स्मरण आता था। भारतवर्ष के अतिरिक्त ऐसा बडा और समृद्ध साम्राज्य और कही देखने में नही आया। रोम वालो ने अपने साम्राज्य मे बडी-बडी सडके बनवाई, नहरें खुदवाई, बडे-बडे मदिर बनवाए, साथ ही साथ व्यसन की बीमारी बढी। जैसे मल्लाह मछली बझाकर भुनते है, वैसे ही धनी लोगो ने दुर्बलो को पकडना आरभ किया। ग्राह नामक दो सहोदर वीर थे। इन लोगो ने दरिद्रो का उद्धार चाहा था पर

धनिको ने इन्हे मार खाया। होते-हवाते शुल्व धनिको का नायक हुआ और मर्य दरिद्री का। इन दोनो में घोर कलि चला। शुल्व के अनुयायियो ने पहले तो मर्य को रोम से निकाल दिया और प्रजातत्र को अपने हाथ मे किया पर इसी बीच पूरब मे मित्रदत्त नामक राजा यवन आदिको को साथ लिये उठ रहा था। शुल्व को वहाँ जाना पडा। शुल्व की गैरहाजिरी मे मर्य रोम मे घुसा और हजारो शत्रुओ को मार कर स्वय भी खत्म हुआ। यह बखेडा सुनकर शुल्व रोम को दौडा आया। मर्य के अनुयायियों को पशुओ के सदृश कत्ल कर कुछ दिनो तक शुल्व ने प्रजातत्र चलाया।

शुल्व और मर्य की क्रूरता देखकर मेरे राम का नाको दम आ गया। पर क्या करूँ, तीनो काल, चौदहो भुवन की यात्रा के लिए बध्यापुत्र जी की शपथ कर चुका था। दृढता के साथ देखना भी पडा और आज सब बातो का नोट भी लिखना पडा है। कश्मीर का अन्तिम इतिहास लिखते समय कल्हण कवि की लेखनी काँप गई। हाल मे स्मिथ साहब भी इस इतिहास को छूने मे घबराते थे, यद्यपि उनके देश के गिबन साहब को कश्मीर की अतिमावस्था पर बडी-बडी जिल्दे भर देने पर घबराहट नही हुई थी। लेखनी वाले घबरायें तो घबराये, मुद्गर वाले घबराये तो काम कैसे चलेगा!

शुल्व के भूमिष्ठ होने पर रोम मे पपीय, श्रीस और केसरी तीन शिकारी हुए। पपीय वीर था पर सूबा था, श्रीस बिचारा गाँठ का पूरा और मति का हीन था, केसरी वीर विद्वान् और नीतिज्ञ था। अँगरेजी कालिदास ने तो उसे पृथिवी का पुरुषोत्तम समझा है। रोम मे, सुफेन में तथा और जगह उपद्रवों को शात कर पपीय ने बडा यश कमाया। मध्यसागर में पोत दस्युओ को नष्ट किया, फिर उठते हुए मित्रदत्त को दुरुस्त किया, असुर फणीश और जारूपो की भी हजामत बनाई। रोम में आने पर इसका अद्भूत दिव्य जयोत्सव हुआ, जिसके सामने जैनियो की हाथीयात्रा आदि बडे-बडे उत्सव तो फीके-से मालूम पडते हैं। पप्पीय कुलीनो का नायक था। उसकी अनुपस्थिति में श्रीकर पडित रोम में शासक था। पपीय, श्रीकर, आदि का शत्रु केसरी वीर साधारण लोगो के पक्ष में था। उचित भी ऐसा ही था क्योंकि वह मर्य का भतीजा था। पपीय खानदान के कारण, श्रीस धन के कारण और केसरी गुणो के कारण रोम तत्र मे स्वतत्र हो चले थे। बहुत रोज तक केसरी रोम का शासक रहा, इसके बाद रोम की सेना लेकर अल्प पर्वत पार होकर उसने गौड, शर्मण्य, श्वेतद्वीप आदि जातियों को बस में किया, यहाँ तक कि आठ वर्ष मे इसने अपने बल और नीति के जादू से तीन सौ वन्य जातियो को बस मे कर लिया। केसरी उत्तर की ओर था, तबतक श्रीस पूरब का सूबेदार था, और पपीय सुफेन मे सूबेदार था। श्रीस बिचारे का पारसिक लोग जलपान कर गये। अब तो केसरी और पपीय दो प्रतिद्वन्द्वी बन गये। केसरी अपनी बराबरी में किसी को देख नहीं सकता था। इसलिए दोनों प्रत्यार्थियों मे बडा विरोध पडा। जब पपीय शासकसमिति का अध्यक्ष हुआ तो उसने केसरी को देश की सेना छोड देने की आज्ञा दी। सेना के साथ केसरी रोम की सीमा पर आया। रुपगोण नदी को सेना के साथ पार करना

रोम के शत्रुता रखने का चिह्न समझा जाता था। बहुत सोच-विचार के बाद सेना लिये-दिये रूपशोण के पार पहुँचा। पपीय बिचारा तो डर के मारे यवन देश को भाग गया। साठ दिन मे केसरी अकेला रोम का नायक हो गया। बल से लोगो की लक्ष्मी, नीति से लोग का हृदय अपने हाथ मे रखता हुआ केसरी पपीय की ओर बढा। फलशल्या के सग्राम मे पपीय हार गया। वह यवन देश से अजपुत्र की ओर भागा। केसरी ने पीछा नही छोडा।

अजपुत्रो की रानी उस समय श्री पन्ना थी और राजा श्री पन्ना का भाई था। अजपुत्रो ने केसरी के भय से पपीय को मार डाला। केसरी और श्री पन्ना के बीच बहुत बडा प्रेम बढा। श्री पन्ना के पक्ष मे होकर केसरी ने उसके भाई का प्राण लिया। उत्तर की ओर मित्रदत्त के बेटे को केसरी ने रास्ता धराया। इसी बीच कटु और श्रीप्रिय को नायक बनाकर पपीय के अनुगामियो की सेना मध्यसागर के दक्षिण तीर पर खडी थी। केसरी ने आकर इस सेना को भी चूर किया। कटु और श्रीप्रिय बिचारो ने तो नैराश्य के मा आत्महत्या की शरण ली।

इनके मरते ही रोमक लोगो का प्रजा-राज्य समाप्त हुआ और रोम पत्तन मे केसरी वीर के विजय-प्रवेश के साथ सम्राट् समय का आरभ हुआ। सैकडो युद्ध मे दस लाख से अधिक शत्रुओ को मार कर केसरी ने रोम साम्राज्य आरभ किया। कृषि वाणिज्य आदि का इसने खूब विस्तार किया, पचाग-शोधन किया और नदी आदि का सस्कार किया। इसकी श्री और नीति सबके उपकार के लिए रहती थी। कवित्व और वक्तृत्व इसकी सरस्वती-लता के फल थे। किसी ने उसे राज्याभिषेक न दिया। सेना-नायक का ही पद उसे सर्वदा रहा तथापि उसका नाम सम्राट् शब्द का पर्य्याय हो गया। शर्मण्य राजा बाद म केसरी के पद से अपने सम्राट् पद की सूचना देते है। जो काम एक सहस्र वर्ष मे और लोग नही कर सकते वही काम केसरी वीर ने दो वर्ष मे कर दिखाया। पर भ्रूतुश आदि कई लोग इसके गौरव से बडी ईर्ष्या रखते थे। एक दिन इन कृतघ्नी लोगो ने शासन-सभा मे केशरी वीर पर छुरे चलाये। पहले तो केसरी ने इनके शस्त्रो से अपने को बचाया पर अपने प्रिय मित्र भ्रूतुश के हाथ मे छु ी चमकती हुई देखकर इस कृतघ्न ससार मे शरीर-रक्षा अनुचित समझ शातिपूर्वक प्राण-त्याग किया।

तेरहवाँ अध्याय

केसरी क मरन के बाद उसका भानजा अष्टभय, जिसकी कपट-नीति अति गभीर थी, साम्राज्य की चेष्टा करने लगा। अतर्नय आदि की सहायता से यह श्रीकर आदि अनक मनुष्यो को मारकर रोमनायक हुआ। बडी फौज इसके हाथ लगी। इसी फौज से इसने यवनो के उत्तर भ्रूतुष्क और काष्य से गठी हुई प्रजाराज्य की सेना को नष्ट

किया। काष्य और भूतुष्क बिचारे आत्महत्या से मरे और सारे साम्राज्य छलियो का आमिष हुआ। अष्टभय और अतर्नय, जैसे गृध्र-शृगाल एकात मे मुर्दे पर टूटते है वैसे रोम साम्राज्य पर पडे। इन्होने राज्य को आधा-आधा बॉट लिया। अष्टभय की राजधानी रोमकपुरी हुई। मूर्ख अतर्नय केसरी वीर की उच्छिष्ट श्री पन्ना के प्रेम से मोहित होकर और अपने कुल और चरित्र को भूलकर विपत्ति मे पडा। यवन-सागर में श्रीपन्ना और अतर्नय दोनो अष्टभय से भिडे, पर युद्ध से भाग कर अत मे दोनो ने आत्महत्या कर ली और चिरकाल के लिए अजपुत्र रोम साम्राज्य का अश हुआ। अष्टभय अगस्त सम्राट् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह ऐसा चालाक था कि रोम वालो के द्वेष का निमित्त राजपद इसने कभी नही चाहा, पर धीरे-धीरे, राजा के सब अधिकार अपने मे इकट्ठे कर लिये। उत्पथा के तीर से तुग सागर तक और शर्मण्य सागर से सहारा मरुस्थल तक एकातपत्र साम्राज्य अगस्त का हुआ।

अगस्त के राज्य मे एक बडा भारी अत्याचार हुआ। एक मजहबी ईसू ख्रिस्त नामक निकला था। इस अपूर्व व्यक्ति को कई अपराधो में लोगो ने लकडी पर कॉटो से बेध कर मार डाला। लोग लिखते है कि कब्र मे जाने पर फिर ख्रिस्त निकले और कई दिनो तक पृथ्वी पर रहकर स्वर्ग चले गये। ऐसी पवित्र बातो को सुनकर आजकल कई नास्तिको मे हलचल मच जाती है। मै तो ऐसी बातो को सुनकर, चाहता तो अपनी दिव्यदृष्टि से ठीक देख ले सकता था, तथापि पवित्र बातो मे दृष्टि लगाना अनुचित समझकर केवल किस्सो से ही ऐसी बातो मे विश्वास कर लेता हूँ।

अगस्त के बाद रोम मे व्यभिचार और कलि आदि के व्यसन चले। स्त्री-निमित्तक या सिपाहियो के झगडो में शासको के प्राण आसानी से चले जाते थे। प्रजाओ मे रोदन पडा रहता था। कभी-कभी प्रजाओ के भाग्य से तृजल आदि एक आध अच्छे राजा हुए। अत को रोम नगरी को विपत्ति-सागर मे पडी हुई देखकर सम्राट् कसततु ने पूरब मे सुदर कसततुपुरी बनाई। इस पुरी का सौदर्य देखते ही बनता है। आज भी इनके सौदर्य से मोहित होकर तुर्क लोगो मे और योरोप वालो मे झगडा चला ही जाता है। सम्राट् कसततु ईसाई हो गये। इन्ही के समय मे ख्रिस्त मत राजधर्म हुआ। अत म दवदास नामक राजा हुआ। देवदास के वश वालो ने रोम साम्राज्य के दो टुकडे किय। पूरब की राजधानी कसततुपुरी हुई और पच्छिम की रोमपुरी हुई। पर व्यसन तो व्यसन ही है। इसके पजे मे पडकर कोई बच नही सकता। पठान, मोगल, हिंदू, क्रिस्तान, अरब, फारसी, तुर्क, कोई भी इसके पजे मे पडने पर चिरकाल तक स्वातत्र्य नही भोग सका। अगस्तराज्य से प्राय चार सौ वर्ष बीतते-बीतते शर्मण्य वन्यो का घोर विसर्प हुआ। दानव नद के प्रात के भयानक जगलो मे गौथ नामक भीषण राक्षस रहते थे पर इनके भी बाबा, इनसे भी घोरतर हूण, तर्तर, कुर्मुक, आदि उनसे पूरब रहते थे। इन्ही हूण आदि के उपद्रव से भागकर गौथ लोग रोम सम्राट् की शरण मे गये, पर कृतघ्न गौथ राक्षस, सम्राट् क्लाश् को मारकर अनाथ रोम राज्य मे विचरने

लगं। अपने नायक अलर्क को इन लोगो ने ढाल पर चढा लिया। अलर्क की विकराल मूर्त्ति ऊपर उठती हुई देखकर मैं भी भय के मारे कुछ और ऊपर जाकर खडा हुआ। इन लोगो ने रोम नगर को लूट लिया और जला दिया। गौथ, मडल, गौड आदि वन्यो ने रोम साम्राज्य के मुर्दे का एक-एक अग नोच खाया। इसी बीच स्थिर नामक हूण नायक दस लाख वन्यो के साथ दुनिया की विजय के लिए हूणगृह से निकला। इसने रहणी नदी पार कर गौड पर आक्रमण किया पर गौड आदि वन्यो से सस्कृत रोमवालो ने इसे हराया। अल्प पर्वत को लाँघ रोम नगर को लूटकर यह हूण गृह को लौट गया और वही रक्ताशय फूटने से मर गया। स्थिर के जाते ही मडलेश्वर गण श्री करध्वजपुर से आकर रोम में पहुँचे। अब तो मडल और मूलक आदि नाव मे भर-भर कर रोम नगर से स्त्रियाँ और धन निकाल ले गये। इस प्रकार अगस्त राज्य से पाँच सौ वर्ष जाते-जाते रोम साम्राज्य का नाममात्र रह गया। एक विचारा मिट्टी का पुतला रौमिल अगस्तिल नाम का बच्चा सिहासन पर बैठा था। अतिम बाजीराव के सदृश यह कुछ पैसे लेकर खुशी से सिहासन छोड सकता था। बस अब क्या था! इसे पेंशन देकर शर्मण्य उदयाकर रोमक राजा हुआ।

चौदहवाँ अध्याय

रोम साम्राज्य के सिर पर इस प्रकार विचारे ईसा के मारने का पाप नाच रहा था। रोम साम्राज्य ही क्या सारे ससार में बडा भारी विपत्ति-विप्लव मच रहा था। प्राचीन सभ्यता नष्ट हो रही थी। बडा भारी वन्य विसर्प-समुद्र जगत् में उमडा था। चद्रगुप्त मौर्य के बाद भारत मे अमित्रघात, अशोक आदि मौर्य राजा हुए। मायावाद के प्रचार से, अर्थात् जगत् कुछ नही है इस गप्प के विस्तार से तथा मनुष्य और पशु दोनो बराबर हैं इत्यादि कुकल्पनाओ से, भारत अशोक के बाद भिक्षुमय हो रहा था। राजकाज आदि में किसी का जी नही लगता था। पाषण्डमय जीवन सब जगह दीख पडता था। धर्म के आवरण मे घोर तमोनिद्रा छा रही थी। जब-तब एक-आध शाश्वतवर्मी राजा-महाराजा हो जाते थे। तब प्राचीन आर्यो का सौभाग्य भारत में लौट आता था। पर व्यक्तियो से कबतक काम चले। पाषण्डियो ने जाति का हृदय सड़ा दिया था। अब एक-दो व्यक्तियो के होने से उन्ही के समय तक उनका गौरव रहता था। उनके मरते ही सब व्यवस्था गड़बड़ हो जाती थी। अशोक के वश मे अतिम राजा बौद्ध बृहद्रथ हुआ। उसके सेनापति पुष्यमित्र ने सेना दिखाने के बहाने इसे सैनिको में ले जाकर मार डाला। पुष्यमित्र शुग ने फिर से भारत में अश्वमेध का उज्जीवन किया। कितने लोग अनुमान करते है कि पुष्यमित्र के ही समय मे भाष्यकार पतञ्जलि हुए थे। मुझे अभी दिव्य दृष्टि से भी इस बात का पता नही लगा है।

पुष्यमित्र शुग का प्रताप मै केवल दूर से ही देख रहा था । इसने बडा काम किया। आध्रो की सहायता लेकर कलिंग से आते हुए क्षारवेल को और मौका पाकर पश्चिम से राजपुताने की ओर तथा कोसल की ओर बढते हुए बौद्ध यवन मिलिन्द को, इसने खूब दुरुस्त किया। पुष्यमित्र का बेटा अग्निमित्र हुआ। इसे थियेटर का बहुत शौक था। भाई कालिदास जी ने सरस्वती की कृपा से इनके नाच-तमाशे का अच्छा बयान मालविकाग्निमित्र मे दिया है। अग्निमित्र के बाद शुग लोग पूरे बकरे हो चले थे। मैंने जब देखा कि अतिम शुग वर्कर देवमूर्त्ति को दीवान बहादुर वासुदेव शर्मा के इशारे पर एक कहारिन ने घूसा मारा तब मुझे एक आँख से रुलाई आई और दूसरी आँख में विकास हुआ।

शुग वश के लडके हिंदू थे, उनपर करुणा होती थी, पर साथ-साथ उनके आलस्य ऊधम और नाच-गान पर घृणा और हँसी भी आती थी। इनका तमाशा देखकर लखनऊ ओर मटिया-बुर्ज के आसपास की आगे होने वाली बातो का खयाल आया करता था।

वासुदेव जी महाराज कण्ववश के ब्राह्मण थे। कण्व जी के और दुष्यत के नाते इनसे मेरा उस समय का कुछ सबध भी हो सकता था। जब मेरा शरीर हेमकूट पर था, इस वश की भलाई के लिए मैं बहुत दुआ करता था, पर अब दुआ का जमाना नही था। दुआ के भरोसे काम होता तो आज तुर्क लोगो की ऐसी दशा कभी हो सकती थी? एकाध पुश्त मे वासुदेव बाबा का वश खतम हुआ। दक्खिन से लोग प्राच्यो के समय से खोई हुई स्वतत्रता का बदला लेने के लिए मगध पर चढ आये। बिचारे गरीब ब्राह्मण लोग राज्य के कारण मारे गये। कण्व सुशर्मा की जान लेकर शिप्रक, जिसे लोग शूद्रक भी अनुमान करते है, भारत मे सफल हुए।

कुछ दिन दक्खिनी आध्रो का भी राज्य चला। राजा शालिवाहन या सातवाहन जिसे लोग दुलार से हाल भी कहते है बडा विद्वान् और प्रतापी हुआ। जैसे पुराने मालव वर्ष को लोग आज विक्रम वर्ष समझते है वैसे ही शक वर्ष को लोग शालिवाहन वर्ष समझते है। क्योकि प्राय आध्रो के ही समय यवन और शको की भारत के पच्छिम बडी चलती रही। काठियावाड की ओर रुद्रदामा आदि क्षत्रप या शत्रप बडे मजबूत हुए। इधर पेशावर से लेकर पटना तक पश्चिमोत्तर भाग शकवीर कनिष्क के डर से काँपता था। रुद्रदामा और कनिष्क दोनो शक वश के थे। धीरे-धीरे यवन, पल्वल, शक आदिको ने आंध्रो की शक्ति भी खा डाली।

भारत में प्राय अराजकता हो रही थी पर शको से तीसरी शताब्दी में मगध मे गुहावश के प्रतापी राजा हुए। ये अच्छे धार्मिक थे। इस वश के चद्र राजा ने तिरहुत वाले लिच्छवियो की कन्या कुमारदेवी से शादी कर मगध की ओर तिरहुत में धीरे-धीरे पाँव बढाना शुरू किया। चद्र का बेटा समुद्रगुप्त हुआ। इसने तो दुनिया छान डाली। जैसे मौर्य और शुग आदि के समय में भारत का प्रताप रोम आदि तक

सुन पडता था वैसे ही समुद्रगुप्त के समय मे भी भारतीय प्रताप कसततु के राज्य तक पहुँचा। समस्त भारत तो समुद्रगुप्त ने जीता ही था, अश्वमेध यज्ञ भी इसने किया। इसके सिक्को पर मेध्याश्व की मूर्त्ति वेदी के सामने आजतक विराजती है। समुद्रगुप्त का बेटा चद्रगुप्त विक्रमादित्य हुआ जिसके नामपर बडे-बडे अलिफलैला लिखे जा चुके है। चद्रगुप्त के बाद कुमारगुप्त और स्कदगुप्त तक किसी प्रकार भारत की इज्जत बचती जा रही थी। अत मे वन्य-विसर्प ऐसी अवस्था पर पहुँच गया था कि इज्जत का बचाना मुश्किल था। इधर हूणो के भय के मारे गुप्तवशीय थर्रा रहे थे। उधर हूण कर्मुक, कर्लर आदि पच्छिम मे उपद्रव करते ही जा रहे थे। पच्छिम रोम को तो जगलियो ने खा ही लिया था। पूरब रोम मे, कसततुपुरी की ओर, सम्राट् दुष्टनय तक इज्जत-पानी बचता गया। दुष्टनय ने कायदे-कानून का सग्रह कराया। देवदत्ता नाम की वेश्या से इन्होने शादी की थी। दोनो के पुण्य-प्रताप से कुछ दिनो तक पूर्वी राज्य चला। अतत जैसे गौथो ने पच्छिम रोम को खाया था वैसे ही लबर्धियो ने पूर्वी रोम को खाया। लबर्धी लोग बडे क्रूर थे। दुष्टनय के सेनानायक पीरश्रीवनरशेष की वीरता से पूर्वी रोम राज्य का जो प्रताप कुछ दिनो तक चमक चला था वह दीपशिखा की अतिम प्रभा के सदृश बुझ गया। भारत मे भी बालादित्य यशोधर्मा आदि की वीरता से कुछ दिनोतक मिहिरकुल आदि हूण रुके थे पर अतत भारत से रोम तक सभी देशो की सभ्यता वन्य-विसर्प मे नष्ट हुई।

पंद्रहवाँ अध्याय

अब से प्राचीन सभ्यता के नाश का अफसोस, बेचारे ईसा के मरने का अफसोस और सबसे बढकर अपनी मूँछो के नाश का अफसोस यह देखकर कुछ कम होने लगा कि नई जातियाँ, नये मजहब ससार में उठे। केवल एक बात का शोक बना रहा कि सब जगह नई जातियाँ और नये मजहब पर भारत मे, अर्थात् मेरी समाधि-भूमि मे, अपूर्व वध्यात्व आया। वध्यात्व क्या विधवात्व कहिये। स्कन्दगुप्त के बाद भारतमाता विधवा न हो गई होती तो जातीयता और धर्म सब का आविर्भाव हुआ होता। मै तीनो काल देख रहा था। अजीब-अजीब खयाल मन में हो रहे थे। जब आगे होने वाले श्री दयानद जी, राजाराममोहन राय आदि बडे-बडे मजहबी लोगो का खयाल होता तो कुछ ढाढस होता। इसी शोक में पडा-पडा मै आसमान मे घूम रहा था कि एक अपूर्व व्यक्ति की कुछ झलक मुझको दीख पडी। इस व्यक्ति की मूँछ बडी-बडी थी। इसके चारो ओर लोगो का बडा हल्ला था। लोग इसे मियाँ मुच्छदर शाह कहते थे। लोग यह भी कहते थे कि यह गोरखनाथ (गोरक्ष) जी के गुरु और भर्थरी (भर्तृहरि) जी के दादागुरु है। मैंने इसका विशेष अनुसधान नही किया। मुझे तो वही पटना

नारमल स्कूल के हेड पंडित, जीवित कवि, हिंदी कविता के मुच्छन्दर सम्प्रदाय के संस्थापक, महात्मा, बिहारीलाल चौबे जी की कविता याद आने लगी। यह कविता कैसी अच्छी है, देखिये—

देखो यह मुच्छन्दर भैया ।
लेओ इनकी लोग बलैया ।।
तेल मूँछ मे सदा लगाते ।
कभी न मूँछ बराबर पाते ।।

हिंदी के रसिक लोग क्षमा करेंगे यदि समाधि के कारण कविता के उद्धार मे उलट-पलट हो गया हो। हाय शोक! ऐसी कविता के लिए मेरा अधिकार होता तो मैं पंडित जी को वह उपाधि दिये बिना न रहता जो अयोध्या के शोचनीय महाराज बहादुर को मिली थी और हाल मे हमारे तरुण पंडित हरिनारायण जी को मिली है। महामहोपाध्याय की उपाधि क्या, हरप्रसाद शास्त्री जी की सी० आई० ई० की उपाधि भी लेकर मैं चौबे जी को दे देता। खैर, उपाधियो की कथा में कौन उलझे? मैंने तो एक उपाधि त्रैलोक्य-दिवाकर की ऐसे महात्माओ के लिए रखी है। देखें त्रैलोक्य-दिवाकर की उपाधि और तमगा कैसे मिलता है। मैं मुच्छन्दर शाह जी का दर्शन कर रहा था कि आगे होने वाली इनकी कथाओ का स्मरण होने लगा। हाल मे मेरे मित्र देवीलाल जी ने इनकी एक पवित्र कथा कही है जिससे रोमाच हो आता है। ये वही मुच्छदर शाह जी है जो एक बार गोरखनाथ जी और एक बार कबीर दास जी से लड गये थे। तीनो मे बाजी लगी थी कि कौन बडा सिद्ध है। पहले कबीर जी अतंहित हुए। उन्होने फिर आकर पूछा कि मैं क्या हो गया था। चट और दोनो सिद्धो ने कहा कि तुम मेंडक हो गये थे। तब मुच्छन्दर जी अतंहित हुए। फिर आकर जब उन्होने पूछा कि मैं क्या हो गया था तब शेष दोनो सिद्धो ने कहा कि तुम झीगुर हो गये थे। जब गोरखनाथ जी अतंहित होकर आये तब तो किसी को पता नही लगा कि वे क्या हो गये थे। उन्होने जब स्वय कहा कि मैं वह हो गया था जो सर्वमय है जो 'हममे तुममें खड्ग खभ मे' है, जिसे लोग हिमाचल की खोह मे 'सोऽहं ब्रह्म' कहते है, जिसे पजाबी लोग 'तुसी ब्रह्म असी ब्रह्म' कहते है, जिसे अद्वैत ब्रह्म सिद्धकार ने वाह गुरु का गुरुपद वाच्य कहा है, जिसकी अकथ कहानी 'सुनहु तात यह अकथ कहानी, समुझत बनै न जाता बखानी' इत्यादि वाक्यो से गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने कही है, तब तो सब सिद्धो को बडा विस्मय हुआ। जब मुझसे बातचीत हो रही थी तब यही बाबू देवीलाल जी की कही हुई कथा मुच्छदर शाह जी ने मुझसे कही। अकथ कहानियो को सुनकर आप लोग तो जानते ही है कि मेरी क्या दशा हो जाती है। ऐसी बातो से मुझे अपने गुरु वन्ध्यापुत्र जो की कथा स्मरण आ जाती है। आजकल के नास्तिक बच्चे ऐसी बातो को सुनकर अजीब दिल्लगी उडाते है, बच्चो की दशा ही ऐसी है। एक प्राचीन राजा की कचहरी मे एक महात्मा आये थे। सब दरबारियो ने

कहा कि आज बाबाजी योगबल से लब्ध ऐसा सूक्ष्म कपड़ा पहनकर आये कि कोई नहीं कह सकता कि यह कपड़ा पहने है। तबतक एक सूधा भोला बच्चा चिल्ला उठा था, 'अरे बाबाजी तो बिल्कुल नंगे हैं कपड़े की तारीफ क्या करते हो?' वही हाल आज भी है। जब अकथ, अगम्य बातें महात्मा परमहंस लोग या उनके शिष्य लोग कहते हैं तब नास्तिक लोग उसे शून्य कथा कहकर हँसने लगते हैं।

खैर, यह तो प्रकरणवश मैंने मुच्छंदर शाह जी की कथा कही है। अब इनकी कथाओं से भी अद्भुत कथा आ रही है। रोम के नष्ट होने पर आंगल, शर्मण्य, स्फाराग, तुरुष्क आदि जातियों की वृद्धि हुई। हूण, शक-तर्त्तर, गौथ, मूलक, भडाल, लबर्धी आदि जिन वन्य राक्षसों ने भारत, रोम आदि को खा लिया था उन्हीं के मिलाव-जुलाव से पच्छिम के ठंडे मुल्कों में अनेक प्रबल जातियाँ उत्पन्न हुईं। इधर एक बड़ा मजहब अरब में निकला। महात्मा मुहम्मद ने एक सेश्वरद्वैत मत खिस्त के ऐसा चलाया। ये बड़े नीतिज्ञ भी थे। ईसा खिस्त तो कह गये थे कि एक गाल पर कोई चपत मारे तो दूसरा गाल भी दे देना पर मुहम्मद जी ने तलवार हाथ में लेकर बड़ी वीरता के साथ अपना मत चलाया। इनके अनुगामियों ने भारत से लेकर सुफेन तक बड़ा भारी साम्राज्य जमाया। सुफेन के आगे ये लोग स्फारागों के मुल्क में भी बढ़ना चाहते थे पर वीर करल ने इन्हें संग्राम में ऐसा धक्का दिया कि धीरे-धीरे बिचारों को पच्छिमी मुल्कों से सरकना पड़ा। इसी करल का पोता महाकरल नामक बड़ा प्रचंड राजा हुआ। शर्मण्य, शक, हूण आदि को जीतकर सुफेन में मुहम्मदियों को भी इसने खाया और लबर्धियों को जीतकर उनका पुराना लोहे का मुकुट इसने छीन लिया। रोम नगर से स्वयं आकर पोप साहब ने इसके माथे पर मुकुट रखा। इस समय तृतीय लेय नाम के पोप थे। इनसे महाकरल को अगस्त केसरी सम्राट् की पदवी मिली। महाकरल अक्षर लिखना और थोड़ा व्याकरण और न्याय जानता था। वह आकार से ही वीर मालूम पड़ता था। हूण आदि से इसे प्रीति नहीं थी। हिरन का ताजा कबाब इसे बहुत पसंद था। बड़े-बड़े राजाओं से इसकी मैत्री थी। व्याघ्र, तटेश, अरुण आदि राज्यों से भी इसकी परम मैत्री थी। अरुण राज की कथा सहस्ररजनी में प्रसिद्ध है। पर प्राचीन साम्राज्यों की दशा तो अपूर्व होती ही थी।

महाकरल के कुछ पहले भारत में बाणभट्ट के रक्षक स्थाण्वीश्वर के सम्राट् हर्षवर्धन की कुछ दिन चलती थी। उनके मरने पर उनके साम्राज्य का पता नहीं रहा। चीनियों ने दीवान अर्जुन को मारकर उत्तर भारत को तहस-नहस कर दिया। वैसे ही इधर महाकरल के साम्राज्य की भी दशा हुई। उसके मरते ही साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया।

तब प्रचंड भूमिपाल लोग इधर-उधर छोटे-छोटे किलों में रहते थे। जमीन में बँधे हुए गुनाम या गुलाम के सदृश कृषक इनकी गुलामी करते थे। ये जमींदार प्रजा-रक्षक कहाने पर भी प्रायः प्रजाभक्षक होते थे। पारतन्त्र्य-पावक में जलती हुई प्रजा

प्रह्लाद के सदृश राम-राम कर रही थी । पृथ्वी से मनुष्यता उठ चली थी जन-समाज मोह-गर्त्त मे पडा था । भूदेव यति-वेषधारी पुरोहित लोगो के जो जी मे आता था वही करते थे । बढई के बेटे यति हृद्बध ने अपनी बुद्धि से पोप का पद लिया। यह बडा बली हुआ । आज्ञालघन के अपराध मे शर्मण्य सम्राट् सुनर को इसने यहाँ तक तग किया कि प्रजा को राजाज्ञापालन की शपथ से मुक्त कर दिया । जहाँ-तहाँ देश मे विप्लव होने लगा । सुनर विचारा एक वस्त्र पहिने बिना जूते के तीन दिन तक पोप की ड्योढी पर खडा रहा । तब उसके अपराध की क्षमा हुई । आजकल कुछ-कुछ ऐसा ही प्रभाव वल्लभाचार्य जी के बेटे-पोतो का पाया गया है । कुछ काल के बाद अनुशात नामक पोप हुआ, जिसके डर के मारे अँगरेजी राजा मियाँ जान भी कर देते थे । पर इसी बीच एक बडा भारी तमाशा हुआ । तमाशा कहे या मूर्खता कहे । एक अजीब ढग का आदमी, जिसकी शक्ल कुछ आधुनिक बेगमपुर के सिद्ध कूडाशाह से मिलती थी और जिसे लोग पितृसाधु के नाम से पुकारते थे, पोप की कचहरी में पहुँचा । प्राय इसी के समय मे काबुली राजा महमूद सोमनाथ जी पर गदाप्रहार कर रहे थे । अब मैं पितृ साधु का तमाशा देखूँ या सोमनाथ जी की ओर चलूँ, कुछ सूझता नही था । अत मे मै दिव्यदृष्टि से सोमनाथ जी की ओर का हाल-चाल देखकर पितृसाधु के साथ पोप की कचहरी तक पहुँचा । बहुत कुछ गुफ्तगू के बाद पितृ-साधु जी की अरजी मजूर हुई । जारुशाराम मे जो ईसा की कब्र थी, जहाँ से मेरे सामने ईसा निकलकर स्वर्ग को चले गये थ, उसे मुहम्मदियो के अधिकार से ले लेने के लिए पितृसाधु चाहता था कि ससार मे एक घोर युद्ध हो । कब्र का मामला ही ऐसा है । आज भी जिदो के रहने के लिए जगह नही मिलती और मुर्दो के लिए करोडो बीघे जमीन पृथ्वी पर दी जा रही है । पोप की कचहरी मे निश्चय हुआ कि चाहे जितने मुसलमान-क्रिस्तान कटे कब्र के लिए घोर युद्ध हो । इन युद्धो को स्वस्तिक युद्ध कहते है । जो कुछ हो मुझे तो मतान्ध लोग बहुत पसद आते हैं । कहावत है कि अधे को घर पहुँचना था । किसी भलेमानुष ने उसे एक नये बछेडे की दुम पकडा दी और कह दिया यही पकडे घर पहुँच जाओ । वेचारा अधा काँटे, कुश, गड्ढे, नाले मे लुढकता दुम पकडे चला गया । इसे वडे पडित लोग अधगोलागूलन्याय कहते है । यही दशा पोप के अनुगामियो की हुई । आठ तुमुल स्वस्तिक युद्ध हुए । पताका आदि पर चद्रमा और स्वस्तिक का चिह्न लिये हुए लाखो क्रिस्तान-मुसलमान मोक्ष के लिए नित्य प्राण देते थे । भूख-प्यास से मरते-मरते पच्छिम से क्रिस्तान लोग जारुशाराम पर आ रहे थे । क्यो लड रहे थे, इसका कुछ ठीक पता नही । जिस कब्र के लिए लड रहे थे उसमे तो कोई था नही । वह तो मरने से सातवें ही रोज कब्र से निकल कर मेरे सामने स्वर्ग चला गया था, फिर युद्ध काहे के लिए ? पर किसको कौन समझावे ? जव पोप का हुक्म था कि ऐसे युद्ध से मोक्ष होगा तव और कौन क्या कह सकता था ? इधर सव राजा मोहान्ध होकर मजहवी लडाई लड रहे थे ।

ऐसे अवसर पर कवचधारी वीर डाकुओ की बन पडी। ये वीर डाकू खोजने के बहाने घोडे पर चढे हुए जहाँ-तहाँ घूमते थे। किसी की स्त्री और किसी का धन इनसे बचने नही पाता था। इन्ही वीरो मे से एक की कथा सुफेन के व्यास स न्ति जी (Carvantas) ने अपने उपन्यास मे दी है। यदि पाठक लोग धीरज रखे तो मै सर्वान्त जी के उपन्यास से एक कथा सुनाऊँ। फिर एक कथा मेरे माननीय महत रामदास जी ने कही थी, उसे भी सुनाऊँ। सर्वान्ति जी ने तो यह कथा लिखी है कि एक गमगीन चेहरे का गौरव रखने वाला दीन कुत्सित (Don Quixote) नामक बडा भारी घुडसवार वीर था। राक्षसो की खोज मे एक रोज यह निकला। बैद्य के टट्टू के सदृश इसके पास एक टट्टू था जिसके घुटने परस्पर खटखटा रहे थे। एक टूटा-सा कवच यह कही से उठा लाया था। उसमे जहाँ-तहाँ कागज की दफ्ती का टुकडा जोड़ कर मरम्मत कर ली थी। एक नौकर के साथ घूमते-घूमते एक दिन इसने देखा कि एक नदी पर पनचक्की चल रही है। बस फिर क्या था, इसने चिल्ला कर नौकर से कहा कि यही चक्रासुर है। मुसाफिरो को यह बडा तग करता होगा। उसके नौकर का नाम था सकपज (Sancho Panza)। सकपज बिचारा बडे ही शशपज मे पडा। मालिक को कितना भी उसने समझाया कि यह पनचक्की है, कोई असुर नही है, पर दीन-कुत्सित बीर ने उसकी एक न सुनी, टट्टू लिये-दिये चक्की पर धडाम से जा गिरा। भीतर विचारे चक्की वालो की तो अपूर्व दशा हुई। उनकी दशा का क्या वर्णन करूँ। एक वार हमलोग एक वारात से आ रहे थे। एक मेरा मित्र मेरे आगे हाथी पर चला जा रहा था। इसी समय हाथी बिगडा। बगल मे भूसा का खोप या भुसवल था। मेरे मित्र उसी भुसवल पर कूदे। भुसवल के भीतर गँवई की एक युवती और एक युवा कुछ धर्मानुष्ठान कर रहे थे। मेरे मित्र जो भुसवल पर कूदे तो भुसवल का छप्पर टूट गया और वे धडाम से लडको की देह पर गिरे। उन दोनो बेचारो ने समझा कि साक्षात् हनुमान जी हमलोगो को दण्ड देने के लिए कूदे है और दोनो वहाँ से भागे। जैसी दशा इन बेचारो की हुई थी वही दशा पनचक्की चलाने वालो की हुई। भगवान् के यहाँ से कैसा वज्र उस पनचक्की पर गिरा, उन्हें नही मालूम हुआ। थोडी देर तक तो चक्कीवाला घबराया-सा रहा, फिर बाहर निकल कर उसने दीन-कुत्सित और उसके टट्टू को चक्की मे फँसे हुये पाया। मारे क्रोध के उसने चक्की बिगाडने वालो की बुरी तरह मरम्मत की। इस तमाशे से मुझे जो आनन्द हुआ उसे आप समझ ही सकते है। ऐसी-ऐसी दीन-कुत्सित की अपूर्व कथाएँ सर्वान्ति जी ने लिखी है। इन्ही सर्वान्ति जी ने पच्छिम में अश्वारोही वीरो का सर्वान्त किया। इन्ही की फबतियो के मारे आजकल कोई अश्वारोही वीर नही होता है।

एक नमूना तो मैंने आपको पच्छिमी कथा का दिया। अब महन्त जी की कथा का आनन्द लीजिये। एक वनिया थे, जिनका नाम था गरीबदास जी। इनकी स्त्री बडी बुद्धिमती थी। प्रातःकाल ये रोज टहलने जाते थे। लौटने तक घर पर भोजन आदि तैयार रहता था, पर जब ये बाहर से लौटते थे इनकी स्त्री इनका हाल पूछती थी तब ये अजीब-अजीब कहानियाँ कहा करते थे। उन दिनो हथियार बाँधना मना नही था। गरीबदास जी

तलवार बांधे टहलने निकलते थे। लौटने पर अपनी स्त्री से कहा करते थे कि आज मैंने मदारबक्श खाँ को मारा, आज पीपल सिंह को मारा। ऐसी बातें सुन कर बेचारी स्त्री घबराती थी कि इतना खून करके मेरे पति की क्या दशा होगी। अन्तत एक दिन गरीबदास जी के बाहर निकलने पर पुरुष वेष धारण कर बुद्धिमती स्त्री भी घोड़े पर सवार होकर निकली। अलग से गरीबदास जी की हालत देखती जाती थी। गरीबदास जी एक बाग में पहुँचे। वहाँ घोडे से उतर कर एक मदार का दरख्त पकड कर बोले 'क्यों मदारबक्श! आज देख तेरा सर उतार लेता हूँ!' यह कहकर उन्होने दरख्त पर तलवार चलाई। गरीब दास जी फिर आगे बढे और पीपल की एक शाखा झुका कर बोले 'क्यों पीपल सिंह! आज तेरा गला मै काटता हूँ!' स्त्री यह सब तमाशा देख रही थी। जैसे ही गरीबदास जी ने पीपल पर तलवार चलानी चाही वैसे ही बुद्धिमती सामने घोडे पर खडी हो गई और बोली—'क्यो बे कमबख्त! मै तेरे ही खोज मे कई रोज से था! तू ही मेरा बगीचा रोज बिगाड़ता है, आज मै तेरा सर लेता हूँ'। यह कहकर उसने अपनी तलवार खीची। अब तो बेचारे बनियाराम की तलवार हाथ से गिर गई। डर के मारे काँपने लगे और बोले—'हुजूर मैं नही जानता था कि यह हुजूर का बाग है। अब माफ कीजिये, फिर गुलाम ऐसा नही करेगा, कदमबोसी मे हरदम हाजिर रहेगा। यह कहकर बेचारे गरीबदास जी रोने लगे। तब स्त्री ने कहा कि 'अच्छा अपनी तलवार मुझे दे दे और मेरे साथ चल'। साईस की तरह अपना घोडे लिये पैदल चलते-चलते बेचारे गरीबदास जी के होश-हवास गुम थे। हुक्म मान कर चले। स्त्री ने कुछ दूर जाकर तालाव पर गरीबदास जी से कहा—ले, मै अपनी धोती बदलता हूँ, तू तालाब मे इसे छाँट ले। उसने अपनी धोती बदल कर दी। गरीबदास जी ने उसे छाँट दिया और भीगी धोती कधे पर लिये उनके पीछे-पीछे चले। घर के समीप आने पर स्त्री ने इससे धोती माँग ली और कोडे से माथे मे खोद कर कहा कि अपने घर चला जा। घूम कर दूसरे रास्ते से आप भी इनसे पहले घर पहुँची। पुरुष के कपडे उतार कर स्त्री बन कर रसोई परोसने चली गई। जब यह कुछ मुँह बनाये खाने के लिए पीढे पर बैठे तब उसने रोज की तरह इनका हाल-चाल पूछा। तब इन्होने कहा—क्या कहे आज कई बहादुरो के मारने पर मुझे एक छोकडा मिला था। उसके मूँछ-दाढी कुछ नही थी। अपने को बाग का मालिक बतलाता था। मुझसे वह झगडने लगा। मैंने उसे दो-चार कोडे लगा कर बाग से निकाल दिया। लडका समझ कर जान छोड दी। गरीबदास जी ऐसी-ऐसी शेखी हाँक रहे थे कि स्त्री ने अपनी गीली धोती चौके से लाकर उनके सामने रखी और पूछा—तालाब में यह धोती किसने छाँटी थी?' अब तो सेठ जी सब बात भाँप गये। फिर कभी पीपल सिंह और मदारबक्श की बात उसके सामने नही निकालते थे। ऐसा ही हाल योरोप के मध्य-काल मे घुडसवार वीरो का था। इनमे असली वीरता कुछ नही थी। केवल लूट-पाट के लिए, दीन-दुखियो को, अनाथ असहायो को सताने के लिए, ये घूमते थे।

सोलहवाँ अध्याय

मै इसी प्रकार आकाश मे अपनी त्रिकाल-यात्रा के लिए घूम रहा था और अनेक तमाशे देख रहा था। पुरानी सभ्यता का नाश कर जो नई जातियाँ निकली उनमे एक-एक कर के सब का तमाशा मै कायव्यूह से देखता चला। इन जातियो की उन्नति का वर्णन यदि किया जाय तो दस-पाँच महाभारत बन जायँ। भाप्यकार भाई शेष जी यदि फिर किसी के तप से पाताल से ऊपर आ जाते तभी इन जातियो के इतिहास का वर्णन कर सकते। नरमण्डी से जाकर वलियम ने जो आग्ल भूमि की विजय की, इधर महामद के अनुयायियो ने जो सिन्ध के किनारे से सुफेन देश तक अपना राज्य जमाया, उधर महाकरल के राज्य के टुकडे हो जान पर शर्मण्य, फरासीसी आदि जो स्वतंत्र हुए, ईसा की कब्र के लिए जो ईसाई और मुसलमान स्वस्तिक युद्धो मे करोडो की सख्या मे कट गये, या वीर लोग जो घोडो पर चढकर चक्रासुर आदि बडे-बडे असुरो को मारते गये, शर्मण्यो में सभ्यता के केन्द्रस्वरूप जो महानगर उत्पन्न हुये, क्रमबल (Cromwell) ने जो महाकरल की हत्या की, चौदहवे प्रवेश के समय मे फरासीसियो के जो रुपये फूँके गये, कुलुम्ब (Columbus) आदि ने जो अमेरिका का पता पाया था, वहाँ जाकर बसे हुये अँगरेज आदि ने जो पूर्वी बधन तोड कर नया प्रजाराज्य स्थापित किया, इधर बस्क (Vasco-de-Gama) महाशय ने भारत का रास्ता खोलकर जो इस पवित्र देश मे यूरोप का रोजगार और शासन जमने का अवसर दिया, जगदेकवीर नयपाल्य (Nepoleon) ने जो बीस वर्ष तक समूचे यूरोप को कँपाते हुये अपूर्व प्रचण्डता दिखाई—इन बातो का वणन मुझसे कैसे हो सकता है।

हाल में इधर देखता हूँ तो और भी अपूर्व घटनाये दीख पडती हैं। जापान वालो ने प्राचीन रूस को धक्का देकर भगा दिया है, चीन वालो ने टीक कटवा कर प्रजाराज्य स्थापित कर लिया है, मुसलमानो का बुरा हाल है, मिस्र खत्म हो चुका, पारस के उत्तरी और दक्खिनी टुकडे दोनो दो ओर लुढक रहे हैं, कसतन्तुपुरी मे सुप्रिया के पुराने गिरजा पर जो कई सौ वर्ष हुये तुर्कों ने अधिकार जमाया था सो डगमगा रहा है।

भूत, भविष्य, वर्त्तमान की ऐसी गडबडी देख कर मैंने अपनी त्रिकाल-यात्री आत्मा को तो हेमकूट वाली आत्मा मे मिला दिया। हेमकूट वाली आत्मा चिरकाल तक समाधि मे पडी रही। अपनी बाल्यावस्था के इष्ट बन्ध्यापुत्र जी के विरह में मै तप रहा था। भावी महात्मा विलाकटानन्द सरस्वती आदि सज्जनो के ध्यान से अपने को कृतार्थ करता जा रहा था। कई हजार वर्ष तक खपुष्प के काँटो पर सोये-सोये असम्प्रज्ञात समाधिनिद्रा मे रहते हुये, विना खाये-पिये मुझे जीवन विताना पडा। अन्तत॰ त्रेता युग मे जो हत्यारे रावण के कारण राम के सीता-वियोग के सदृश मुझे मूँछो का वियोग हुआ था उस वियोग क ताप से मेरे माथे से धुआँ निकलने लगा। इसे देख कर हेमकूट विश्वविद्यालय के चान्सलर कुलपति कश्यप जी के पास जाकर उनकी धर्मपत्नी दाक्षायणी ने विश्वविद्यालय के लडको की ओर से अर्जी पेश की कि वरुणलोकवासी त्रैलोक्य-दिवाकर प्रचण्ड-प्रकृतिक हिज हैलीनेस श्री

स्वामी मुद्गरानन्द जी आश्रम से हटा नही दिये जायेगे तो राजनीति मे दखल देने वाले व्याख्याताओ के व्याख्यान से जितना हर्ज होता है उससे बढ कर विश्वविद्यालय का हर्ज हो जायेगा। इस अर्जी पर बहुत कुछ विचार करने के बाद श्रीमान् कुलपति जी ने अपने भयानक समाधि-बल से मुझे ज्यो का त्यो उठा कर हेमकूट से त्रिवेणी तट पर फेक दिया।

यहाँ भी मेरी समाधि लगी रही। दैवात् एक दिन आज से प्राय बारह-तेरह वर्ष पहिले, कुम्भ के मेले के समय बन्ध्यापुत्र के वाहन प्रसिद्ध पॉख वाले श्याम-श्रुति दरियाई घोडे की हिनहिनाहट-सी आकाश मे सुन पडी। मेरी समाधि-निद्रा भग हुई, तो मै देखता क्या हूँ कि आकाश मे घोडा आदि कुछ भी नही है, कवल मुरादाबाद, बरेली, हरिद्वार आदि से आये हुये सनातनी, आर्यसमाजी आदि धार्मिक व्याख्याता लोग व्याख्यान दे रहे है। समाधि के बाद ऐसे व्याख्यानो मे क्या जी लगे। मुझे तो मेले मे नागा लोगो के ब्रह्ममय शरीरो के अतिरिक्त और कुछ देखने के लायक वस्तु नही मालूम पडती थी। इनके दर्शन से मायावाद का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा। इन लोगो ने वस्त्र तक को माया समझ लिया था। मुझे भी इनके दर्शन से अपना शरीर और जगत् कुछ नहो सूझता था। थोडी देर मे ऐसा हो गया कि मै तो सब को सूझता था पर मुझे 'तुसो ब्रह्म असो ब्रह्म' ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नही सूझने लगा। प्रिय पाठक! समाधि टूटने के बाद को यह अवस्था है, फिर समाधि का आनन्द कैसा हुआ होगा सो क्या कहा जा सकता है! ऋषियो ने कहा है —

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो,
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न तद्गिरा वर्णयितुं हि शक्यते,
स्वय तदन्त करणेन गृह्यते।।

सत्रहवाँ अध्याय

मेरी समाधि-निद्रा के भग का राघव-कृत पिनाक-भग-वृत्तान्त-सा अद्भुत वृत्तान्त ब्रह्माण्ड मे फैल गया। क्यो न फैले, मेरा आसन टूटते ही पृथ्वी काँप उठी, शेष के फण दब गये।

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।।
सुर असुर मुनिकर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं।
कोदड भजेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं।।

—इत्यादि तुलसीदास जी की कविता का असल अनुभव लोगो को हो चला। मेरे ब्रह्ममय उपदेशो को सुनने के लिए बहुत-से लोग हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, स्त्री, पुरुष, बाल-वृद्ध, युवा सभी आ जुटे। कितने हो सखाभाव मे थे, कितने ही सखीभाव

में थे, कितने मद्य के प्रभाव में थे, कितने ही होश-हवास में भी थे। मेरा अद्भुत श्यामवर्ण, बिना जूते के चरणारविन्द और मोटिया की दुलाई और चमकते हुए सीक के खासे अँगरेजी टोप इत्यादि आवरणो से युक्त मनोमोहिनी मूर्त्ति देखकर सभी मुग्ध हो जाते थे। थाल का थाल दिव्य हलुआ, पूरी, पावरोटी, लड्डुआ, कचौडी ऊँकार के साथ इश्तहार देने वाले लोगो की बनाई हुई पवित्र शराब, पवित्र साबुन, घासपार्टी वाले के सागपात और मासपार्टी वाले के कबाब, कोफ्ता आदि, देशी-विदेशी, विलायती, रग-बिरगे कपडे, भूषण आदि सभी चीजें मेरे सामने रक्खी गईं। सबलोग अपनी भेंट के स्वीकार के लिए जयराज श्रीजी भगवान् आदि शब्दो से मेरी दुहाई देने लगे और सभी मेरे पवित्र शरीर को एक बार छूने के लिए हल्ला करने लगे। एक बनारसी रईस चिल्लाते थे कि 'भयवा हम महाराज का चरणारविन्दु अभी छुयबे औ माँग लगयबे। नाही तो हमरी नौकरी-चाकरी जैहे तो जैहे। हमें बगैर यह चरण के चैन नाही है।' इतना कहकर रईस फूट-फूट कर रोने लगे और जैसे रथ-यात्रा के दिन गौरी-शकर के कुएँ के पास रथ के सामने बूढे पडित जी लोटते थे वैसे ही जमीन पर लोटने लगे। एक सारन का अहीर नंगे बदन खडा था, सो बडे जोर से चिल्ला उठा, 'हटी सभनी जी तनी हमरो के महराजजी के चुरनार-बिन्दवा टोये दी'। इतना कहकर वह अपनी लाठी घुसेडता हुआ आगे बढा। सब लोग हँसने लगे, इतने में एक मिर्जापुरी गुण्डा आबेरवाँ का दुपट्टा ओढे हुये, सुनहरी मूठ का चिकना मोटा डण्डा चमचमाते हुए बोल उठा, 'अरे इ का गुलगडप्पा करत हौअ हो, हमरो के गुरु का दर्शन होए द'। एक दुबला बगाली विद्यार्थी चिल्ला रहा था, "कैनो, अत गण्डगोल कैनो। आमा कें परमहंसेर दर्शन हबेना'। टोप लगाये एक काला यूरेशियन चिल्लाता फिरता था—'ह्वाइ वी शुड सी हिज हॉलीनेस एट एनी कास्ट। ही इज वन आफ अस।' इस पर साहब-साहब करते बहुत-से स्त्री-पुरुष हट गये। एक मारवाडिन सेठानी रगीन लहँगा पहने, गोद में बच्चा, हाथ में मोहनभोग का थाल लिये चिल्ला रही थी। इधर एक मरहठ्ठे जेंटिलमैन अपनी स्त्री को साथ लिये खडे थे और कुछ कह रहे थे। एक बीभत्स मोटी मेम एक काले लडके के साथ खडी थी और लडके से कुछ अवतार की बाते कर रही थी। इतना हल्ला-गुल्ला हो रहा था कि मुझ जैसे वरुण लोक के आदमी का इतने हल्ले में इस अपरिचित-प्राय पृथ्वी की भाषाओ का खयाल करना मुश्किल था। इस प्रकार हल्ला हो रहा था, तब तक मेरे सक्षिप्त उदर में एक अपूर्व विकार उत्पन्न हुआ और मैंने समीप बैठी हुई एक आजमगढ की भक्तिन के थाल में से कई ठेकुये निकाल कर खा लिया। खाते-खाते ब्रह्माद्वैत 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्' की धारा में श्री दु.खभञ्जन आदि आधुनिक और भैरवाचार्य आदि प्राचीन कवियो का गुणकीर्त्तन करते हुये, अकालजलद के नाती वाल्मीकि, मण्ठ और भवभूति के अवतार महामहर्षि राजशेखर के देखे हुए—

'रण्डा चण्डा दिक्खिदा धम्म दारा,
मज्जं मंसं पिज्जये खज्जये च।
भक्खा भोज्यं चम्प खण्डं च सेज्जा,
कोल्लो धम्मो कस्स णो होई रम्मो ।।'

इस महा ब्राह्मणीय सूत्र को पढते हुये जल के बदले एक पूरी बोतल किसी दूसरी ओर बैठे हुए एक विलायत-यात्रा के परम विरोधी कल्यपाल जाति के भगत जन के हाथ से छीन कर मैंने गड-गड अपने पवित्र गलरन्ध्र में खाली कर दी। इस प्रकार अकस्मात् भगत-भगतिनो पर कृपा करने के कारण लोग अत्यन्त हर्षित हुए और जय-जय ध्वनि से आकाश गूँज उठा। इतने में सध्या हुई। मेरी आँखो पर इधर वारुणी-राग चढा, उधर भगवान सूर्य भी वारुणी-राग से लाल हुए। घनान्धकार आकाश मे और मोहान्धकार जनचित्तो मे छा गया। नदी-तट पर चकवा-चकई का विरह आ उमडा। रात्रि की वृद्धि के साथ ही साथ वन्ध्यापुत्र चरितावली की वृद्धि जगत् में होने लगी।

अट्ठारहवाँ अध्याय

हमको अधिक भोजन के कारण कुछ असुविधा-सी मालूम पडने लगी। एक भगत की ओढाई हुई दुलाई नीचे रख कर हम खडे हो गये। ब्रह्मनिशा के साथ वारुणी निशा की मिलावट होने के कारण मुझे यह नही खयाल था कि चिरकालिक समाधि में अपना होश ठिकाने न था। अब तो दुलाई और अन्धकार दो ही लज्जा देवी की शरण थे। मैंने एक अकाण्ड ताण्डव आरम्भ किया। बस क्या था, सभी भगत-भगतिन नाचने लगे। तबतक कोलाहल हुआ कि प्रसिद्ध पतिव्रता गोबरिका देवी भगवान् के दर्शन को आ रही है। सब लोग अन्धेरे मे ही उठ खडे हुये। धक्कम-धुक्की करती हुई गोबरिका देवी पहुँची। मेरे श्रीचरणो के समीप आकर उन्होने थाल आदि रखे। पूजा, अर्चा, आत्म-निवेदन, तन, मन, धन समर्पण आदि के बाद उन्होने मेरी आरती उतारनी चाही, पर दियासलाई न थी। सती लोग चाहें तो शरीर से आग निकाल सकती है पर तपोव्यय के भय से पतिव्रता ने ऐसा न कर आसपास के लोगों से दियासलाई माँगी, जिस पर, पन्द्रह-बीस लाख रुपये खर्च से बने हुये जातीय स्कूल के एक छोटे दुग्धमुख बालक ने पाकेट से निकाल फुर्र से अपनी चुरुट भी जला ली और पतिव्रता को भी जलती ही दियासलाई दे दी। दियासलाई के प्रकाश से जरा-सी मेरी अद्भुत झलक लोगो को मिली थी, पर पतिव्रता के आरती उतारने के समय तो स्पष्ट ही ऐसा दर्शन हुआ कि कितने ही नये मतवाले इस दृश्य पर कुछ चकचकाये-से थे। पतिव्रतायें मुँह नीचा करने लगी, तबतक विद्याधकूप श्रीखखनदेव शर्मा जी ने बडे उच्चस्वर से चीत्कार किया और बोले

हे प्रियवर व प्रियवरा ! क्या कुम्भ के नागा लोगो का धार्मिक दृश्य आपलोग भूल गये ? क्या गया, काशीक्षेत्र, हरिद्वार आदि के बडे-बडे आनदान्त स्वामियो का आपको स्मरण नही है। आर्य सन्तानो की आज भी वही तप मे श्रद्धा है, काँटो पर सोने वाले नगे शरीर से शीत-आतप आदि में रहने वाले तपस्वियो को देख कर क्या हँसना और क्या मुँह नीचा करना। धिक्कार है आपलोगो को ! शोक, महाशोक, यदि आपलोग ऐसा करे। सब कोई बोलो 'श्री महाराज की जय'। सभी स्त्री-पुरुष मुँह ऊपर कर रोमाञ्चित हो गद्गद् स्वर से बोले 'श्री बाबा जी की जय'। छोटे बच्चे चिल्ला उठे 'सिली बाबा की जय'। आरती हुई, बाबा का प्रदक्षिण हुआ' कितने दर्शको के पास सस्ते देशी हार्मोनियम, झाल, खँजडी आदि बाजे थे, सो बजने लगे। आरती मे लोग कपूर आदि देते जाते थे। समीप ही हलवाई-मण्डी थी। वहाँ से दौड-दौड कर लोग कपूर आदि लाते और फेकते थे कि कही आरती बुझ जाने से फिर श्री जी अदृश्य न हो जायँ। कपूर आदि के लिए श्री खखनदेव शर्मा जी ने कहा कि चन्दा होना चाहिए जिससे आज रात भर जागरण हो। सबने चन्दा दिया। पर मगह के आसपास के एक रायबहादुर या राजाबहादुर थे, उन्होने कहा—'मै तो एक धेला चन्दा नही दूँगा। मै खूब जानता हूँ कि स्वामी जी या पतिव्रता जी चाहेंगी तो आग कभी नही बुझेगी। अरे नास्तिको ! क्या तुमने नही सुना है कि पतिव्रताये अपने शरीर से आग निकाल कर चिता पर पति के साथ अब भी भारत में भस्म होती है। और भी, नही सुना है कि ऋषि लोग अपने मुँह से आग निकाल कर अपनी खिचडी अलग पकाते थे। और, यह भी खयाल रखो कि आरती जलती भी रहे और स्वामी जी चाहे तो क्या प्रणायाम से चर अदृश्य नही हो जायेंगे ?' इस पर पजाब के एक रहस्यवादी ने कहा—'अजी ! इस समय गुरु साहब अदृश्य भी हो जायँ तो भगत जन पर कृपा कर साक्षात् निरकार उनका रूप धारण कर जबतक हमलोग यहाँ है तब तक नाचते रहेंगे। फिर स्वामी जी आ जायेंगे तो हमलोग चले जायेंगे।' इस बात पर सखी भाव वाले लोग बहुत प्रसन्न हुये और अपने ष्टदेव के रूप मे रामजी के आने का वृत्तात कहने लगे। इन बातो पर खखनदेव शर्मा जी ने कहा, 'मै तो हेतुवादी हूँ, मै खुदा और वेद के सिवा और कुछ नही समझता, यह सब पौराणिक बाते मै नही जानता। यह क्या हवाई किला बाँध रहे हो ? एक लात दूँगा किला टूट जायेगा ! अजी रायसाहब, पाकिट में पैसा हो तो चन्दा दो नही तो यहाँ से घर जाओ। हमलोग घी और कपूर का वैदिक होम करें और तुम दर्शन का मजा लूटो।' ऐसा कह कर उसने राय साहब को जो गरदनियाँ दी कि वह एक खाँ साहब की नाली मे जा पडे और वहाँ से किसी प्रकार भक्ति-बल से उठ कर कमर पकडे हुये श्री राधे, श्री वल्लभ कहते हुये फिर जाकर उन्होने दो पैसा चन्दा कँहरकर दिया, और अपने दीवान से बोले कि दो पैसे धर्म खाते मे लिख देना। मै तो इन तमाशो को देखता हुआ उमग में नाचता जाता था और अँगरेजी, फारसी, हिन्दी सस्कृत, आदि मे गीत गाता जाता था, एक-आध नमूने खयाल है, जिन्हें आपको सुनाता हूँ—

जन्मप्रभृत्यशुद्धानां निष्फलोदयकर्मणाम् ।
अणुमात्रक्षितीशानां पादुकाभिः खचारिणाम् ॥
शैशवे विषयेच्छूनां यौवने क्लीवतायुषाम् ।
वार्द्धके परिणतॄणां शौचागारे तनुत्यजाम् ॥
खलानामव्ययं वक्ष्ये महावाग्विभवोपि सन् ।
तद्दोषः कर्णमागत्य गौरवाय प्रणोदितः ॥

We are Neptunians all,
We are Oh, seven and small,
Six are under Railway lines,
I am in the black coal mines.
'Tis the latest fashion in dress
Straw-hat on the stark nakedness.
The Jogins East and ladies West,
In me you see all that's best.

भजन करु भाई भजन करु भाई ।
छारि मगहरि भजन करु भाई ॥
यहि भजनिया से मेवा-मलाई ।
मरद-मेहरारू के सबकर भलाई ॥
श्याम वेद से ऋचा सुनाऊँ ।
पौराणो से गाऊँ ॥
तीन चरण सब कोई लगावें ।
मैं एक और लगाऊँ ॥

- ऐसी ही कितनी ही भाषाओं में कितने गीत मैंने गाये। सब का मुझे आज ठीक स्मरण नहीं है। समाधि-क्रियाओं से विस्मरण-शक्ति कुछ बढ़ गई है। अन्ततः गाते-गाते मुझे कुछ उदर-शूल-सा मालूम पड़ा। अब तो सचमुच अदृश्य होने की इच्छा होने लगी। मैं वहाँ से त्रिवर्गा-तट की ओर चला। पीछे-पीछे मृदंग आदि बजाते हुये भगत-भगतिन चले। अन्त में एक दुसाधिन की झोपड़ी के पास मैं ऐसा अदृश्य हुआ और भगत-भगतिन सब मेरे विरह में ऐसे विह्वल हुये कि मैं झाड़ी की आड़ से देखते ही देखते पतिव्रता गोवरिका देवी के हाथ से आरती की थाली छूट गई और पहिया-सी लुढकते-लुढकते झोपड़ी की फूस की दीवार से जा मिली और झोंपड़ी अकस्मात् जलने लगी। सब भगत-भगतिन इस भयानक दृश्य को देख भाग चले। गोवरिका देवी अपनी आरती की थाली खोज रही थी, इतने में ही पुलिस के पहरे वाले चिल्लाते हुये आ पहुँचे। उनका शब्द सुनते ही थाली का मोह छोड़कर वे वहाँ से भाग पड़ी।

उन्नीसवाँ अध्याय

प्रातःकाल नगर मे बड़ा कोलाहल मचा। दुसाधिन के दो बच्चे और उसकी गैया का एक बच्चा रात को झोपड़ी मे आग लग जाने से जल गये थे। नगर में खलबली मच गई थी। दारोगा लँगड़ू सिंह ने घोड़े पर आकर सवेरे ही बहुतेरों का इजहार लिया था। थाने में आकर उसने पतिव्रता को बुलाया और आधे घण्टे तक उससे बातें की। अन्त में मुझ जैसे महात्मा को भी पकड़वा मँगाया। आधे घण्टे के बाद लँगड़ू सिंह ने पतिव्रता गोबरिका देवी से सबके सामने पूछा कि सुना है कि तू स्वामी जी की भगतिन है और स्वामीजी के साथ झोपड़ी तक गई थी। पतिव्रता ने कहा—'हाँ सरकार।'

'झोपड़ी म आग तेरे सामने लगी?'

'हाँ सरकार।'

'कैसे आग लगी?'

'श्री जी कुंज के भीतर गणेश-क्रिया करने गये तो वहाँ से आग की लपट आई।'

'यह थाली किसकी है?'

'मेरे सिन्दूरदाता की।'

'यह क्यों लाई थी?'

'इसमें स्वामी जी के लिए महाप्रसाद आया था।

'अच्छा जाओ। जमादार!'

'हाँ हुजूर।'

'स्वामी जी हाजत में हृ?'

'हाँ हुजूर।'

'कोर्ट में चलो। कई सिपाही पहरा दें, स्वामी को कोई कुछ मत खिलाओ नहीं तो कमबख्त गणेश-क्रिया करेगा तो शहर में आग लग जायेगी!'

इतना कहकर कोतवाल साहब थाने से कचहरी चले। मजिस्टर साहब पहले के हिन्दू थे। इधर विलायत से हो आये थे। स्वामी जी का मुकदमा सुनकर लोग कचहरी म भरे हुए थे। इतने में स्वामी जी जमादार के साथ आये। कोर्ट बाबू ने कहा, खुदावन्द, फिदवी रिपोर्ट करता है कि श्री १०८ स्वामी मुद्‌गरानन्द मुजरिम ने शहर के अन्दर पाखाना किया है। मुजरिम हाजत में है। Olex साहब ने हुक्म सुनाया 'राय चमरूदास जूनियर डिपुटी मजिस्टर के इजलास में १५ ता० को मुद्दई हाजिर हो। कोर्ट बाबू. मुद्दालेह को हाजत देने का काम नहीं, जामनी पर छोड़ दो।' इस पर कोर्ट बाबू बोल उठे, 'खुदावन्द हुजूर न सब बात बिना सुने ही जामनी का हुकुम दिया। फिदवी सब कहने नहीं पाया। हुजूर मुकदमा संगीन का है। मुजरिम ने सिर्फ आग पाखाना किया है जिसमे एक दुसाधिन की झोपड़ी जल गई है। और इसमें एक बछवा और दुसाधिन के दो बच्चे मर गये है। हुजूर

बडा खतरा हो गया है। हुजूर हिन्दू ह। गौहत्या और आदमी हत्या हो गई है। हुजूर मजहब और कानून दोनो की रू से ऐसी बात है कि मुकद्दमा सेशन भेजना होगा। जज साहब जो चाहे सो करेंगे। शहर का कोतवाल लँगडू सिंह ऐसी ही रिपोर्ट करता है। उसको बुलाकर पूछ लिया जाय और स्वामी जी भी हाजिर है।' इस पर साहब हँस पडे और बोले—'पेशकार, पागलखाने के सुपरडण्ड को मेरी तरफ से लिखो कि थानेदार लँगडू सिंह पागल हो गया है। आदमी सरकारी खैरखाह है। पच्चीस साल तक अच्छी नौकरी की है। आज अच्छे-अच्छे मौलवी आलिम, एम्० ए० वगैरह भी मेसमेरीजम, थियासोफी, कादियान वगैरह के फेर मे पडे है और मुर्दो की चिट्ठी वगैरह मँगाया करते है। लँगडू सिंह भी किसी ऐसे ही फेर मे पडा हुआ मालूम पडता है। आराम होने पर आधी तनखाह पर पागलखाने म रहेगा। हफ्ते-हफ्ते मुझे यह खबर मिले कि इसका पागलपन घटता है, या बढता है।' इस पर लँगडू सिंह हुजूर के सामने आकर लम्बी सलाम करके बोला—'हुजूर माँ-बाप है। हुजूर धर्म के अवतार है, ऐसी बेइन्साफी नही होनी चाहिए, फिदवी पागल नही है। स्वामी जी के बारे मे जो कुछ कहा गया है सब सही है। हुजूर गवाह चाहे तो मौजूद है। मुजरिम के जुर्म के एक गवाह वन्ध्यापुत्रान्वषण-समाज के महामहोपदेशक मौनमहोदधि विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्मा जी है। और, दूसरे गवाह दर्शनरत्न त्रैलोक्यमार्त्तण्ड स्नातक श्री विद्यश्वर जी है। दोनो ने आँखो से मुजरिम के जुर्म को देखा है। सनातन धर्म के वार्षिक पिण्डालय और अन्य समाजो के पिण्डालय से हल्ला होने पर बहुत से लोग स्वामी जी के पास आये थे। पिण्डालयो के बल्लमटेर कितने ही इस बात के गवाह हैं।' यह सुनकर दर्शनरत्न जी और मौनमहोदधि जी दोनो ही आगे बढे। दोनो ही ने कहा,—'सरकार! हमन एह बात के जनेऊ कसम कहत हईं कि हमन आँखन देखली कि स्वामी जी ऐसन काम कइलेन'। साहब बोले, 'well तुम लोग बिना पूछे क्यो बोल उठा है, तुम लोग अभी सामने से चले जाओ नही तो तुमको पागलखाना देगा या झूठी गवाही मे जेल देगा। चपरासी! इनको निकालो।' दोनो गरदनियाँ देकर निकाले गये। खखनदेव शर्मा कहते गये कि कल किले के मैदान मे झगडू पाण्डे को सभापति बनाकर इस अन्याय पर व्याख्यान होगा। दर्शनरत्न जी ने कहा—'मैं हितोपदेश के कानून से इसी बात पर व्याख्यान दूँगा।' इन लोगो के साथ कचहरी से बहुत लोग निकले। तीन लडके विश्ववल्लभ, सियारसदास व हरिकृष्ण नाम के जो वन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज के वल्लमटेरो का बैज लगाये थे, बडे जोर से चिल्लाते गये कि हमलोग गोबरिया, कचरिया और दहीचूडा के कानून से व्याख्यान देकर अनृत पत्रिका आदि पत्रिकाओ मे इन बातो को प्रकाशित कर देंग। और, भीतरी-बाहरी देश-दूषक आदि महात्माओ को भी तार दे देंगे कि आज कैसा अन्याय हुआ। इतने मे मै जो खडा था सो भूख-प्यास से बेहोश होकर धम्म से गिरा। साहब ने रोटी-शराब मँगा कर देनी चाहीं और सब लोग बोले—'स्वामी जी फिर समाधि लेंगे। यह मजहबी बात है। हुजूर इस वक्त खिलाने-पिलाने का मौका नही है। स्वामी जी ने सतयुग में समाधि ली थीं सो अब उठे है। अब

इस भ्रष्ट युग में समाधि लेंगे तो सतयुग मे उठेंगे। हाकिम लोग तो बारह लाख वर्ष मुकद्दमा मुलतवी रखें। समाधि के वक्त मुकद्दमा करना खिलाफ मजहब व खिलाफ शाही है। थानेदार बोले—'हुजूर ने इसे कुछ खिलाया और इसने कहीं पाखाना किया तो सारे दफ्तर में अभी आग लग जायगी।' साहब ने एक की न सुनी। भीड हटवा कर खुद पानी का छीटा देकर मुझे होश में लाकर रोटी खिलाई व शराब पिलाई। सो मैं पाँच-सात गिलास ढाल गया। सरकारी वकील भगत हलुवासिया M A L L. B से साहब ने राय लेकर मेरी कमजोरी देखकर एकदम छोड़ देना चाहा और कहने लगे कि ऐसे खफीफ जुर्म के लिए एक पागले के कहने पर दूसरे पगले को क्या सतावे। तब तक दो बारिस्टर, एक हिन्दू और एक मुसलमान, कुछ आपस में बातचीत कर उठे और बोले—'Your honour! मुकदमा असल में सेशन का है। हाईकोर्ट मे (Reference) जाने पर इस कोर्ट को बड़ी शिकायत होगी। हजूर सोच-विचार कर काम करें। इस कोर्ट को ऐसे मुजरिम को छोडने का कोई हक नहीं है। पिनल कोट के मुताबिक यह होमीसाइड और आरसन का कसूर है। हुजूर एक बात और भी है। हुजूर हाकिम है। हुजूर को मजहबी बातों मे दखल देने का कोई हक नहीं है। मुजरिम के जुर्म को नामुमकिन समझने में सभी मजहबो पर धब्बा लगता है, खास कर हिन्दू मजहब पर इसका बहुत बडा असर होगा। हुजूर इस जुर्म को नामुमकिन समझना पाँचवें वेद महाभारत के खिलाफ जायेगा और पुराणो के खिलाफ जायेगा।' साहब बहुत ताज्जुब में आकर बोले—'क्या आज समूची कचहरी म पागलपन छा गया है। आपलोग क्या बोलता है हम कुछ नहीं समझता। हम ऐसी बातों से टाइम खराब करना नहीं माँगता। सरकारी वकील! और कोई मुकद्दमा है?' 'Your honour एक भी नहीं' बारिस्टर लोग—'हुजूर कोई मुकदमा नहीं है, वक्त फजूल ही है। हमारी दो बातें हुजूर सुन लें।'

'अच्छा कहो!'

'हुजूर हिन्दू हैं। महाभारत वगैरह अपनी मजहबी किताबे हुजूर ने देखी होंगी?'

हाकिम—'हम अट्ठारह वर्ष की उम्र मे विलायत गया। संस्कृत नहीं पढा लेकिन दत्त और ग्रिफिथ वगैरह का तर्जमा पढा है। मगर महाभारत व इस मुकद्दमे से क्या तअल्लुक है समझ मे नहीं आता है।' इसी बीच मुझ पर बोतल का असर हुआ। मैं नाचने और गाने लगा—

> निपीय यस्य क्षितिभक्षिणः कथा—
> स्तथाद्रियन्ते न खलाः सुरामपि।
> गमिष्यतिच्छन्नितपापमण्डलः
> स राशिरासीत् तमसां मलोज्ज्वलः॥

> I am a Neptunian and come to see poor earth,
> How she is hypnotised in gay occult myth,
> Clairvoyance, and planchets and telepathy,
> Why telegraphy, why allopathy, why homeopathy.

सब लोग हँसने लगे। हाकिम भी हँस पडे। बारिस्टर भी हँस पडे। बारिस्टर लोगों ने किसी प्रकार खाँसी के द्वारा हँसी दबा कर फिर हाकिम से कहा, 'हुजूर न्यायशास्त्र मे चार सबूत कहे गये है। शब्द, अनुमान, उपमान और प्रत्यक्ष। स्वामी जी के जुर्म के बारे मे हुजूर के सामने चारो सबूत पेश किये जाते है—

(१) महाभारत के शब्दो मे साफ लिखा है कि उत्तक ऋषि ने घोडे की दुम फूँकी थी तो पाताल मे आग लग चली थी। हयवान घोडे के बदन से आग निकली। महामहर्षि मजहबी श्री १०८ स्वामी जी के बदन से आग निकलना क्या मुश्किल है ?

(२) अनुमान से भी वही बात निकलती है। कितने ही मुल्को मे बडे-बडे लोग भी शौच के बाद कागज से शुद्धि कर लेते है मगर हिन्दू लोग लोटा भर पानी लिये जाते है। अगर हिन्दुओ को आग लगने की शका न होती तो वे भी आसानी से कागज लिये जा सकते थे, खास करके बी० एन० डब्ल्यू रेलवे की गाडियो मे जहाँ कि अकसर पानी नही रहता है। इससे अनुमान होता है कि हिन्दुओ को नित्य क्रिया के समय जरूर आग लगने की शका रहती है।

(३) इस बात के लिए उपमान प्रमाण भी है। हाल मे प्रसिद्ध घुडदौडवाले महाराजा मँझौली और एकतादर्शन के प्रणेता महाशय खण्डेलवाल भी पायु-प्रक्षालनालय मे जलकर मर गये है।

(४) अगर हुजूर को इन तीनो सबूतो से यकीन न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिया जा सकता है। अगर यहाँ स्वामी जी को जुलाब दिया जाय तो हुजूर देख ले सकते है कि अभी हिन्दुस्तान के लोगो के बदन से आग निकल सकती है।

इतने में ही मुझे फिर कुछ उदरशूल-सा मालूम पडने लगा और मै अपनी जठर तुम्बिका पर हाथ फेरता हुआ नाचने लगा। अब तो लँगडू सिंह के हर्ष का पारावार न रहा। वे चिल्ला उठे कि अगर भगवत्कृपा से इस वक्त श्री जी को दस्त आ जाय तो हाकिम लोगो को यकीन हो जायगा कि महात्माओ मे कितनी ताकत है। इस पर हाकिम की ओर से हुक्म हुआ, 'हम दफ्तर में गडबड नही माँगता। चपरासी ! लँगडू सिंह को और स्वामी जी को यहाँ से बाहर ले जाओ'। लँगडू सिंह मेरे साथ कचहरी से बाहर हुए और सलाह हुई कि जब हाकिम बाइसिकल पर कचहरी से बँगले जाते रहेंगे तब सडक के नीचे किसी खरपात के समूह के पास मे प्रात -क्रिया करता रहूँगा। खरपात में मेरी प्रात -क्रिया से आग लगती हुई देखकर खुद ही हाकिम को अपनी भूलो पर पछतावा होगा।

'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका', काशी (१९१२–१३ ई०)

काना-वर्करीयम्

(खण्डकाव्यम्)

प्रथम : सर्गः

ब्रह्मचारी बोले—

मैं काना ब्रह्मचारी हूँ राम राम हरे हरे।
कौन हो आप स्वामी जी घास खाते हरे हरे ॥१॥

श्री स्वामी वर्करानन्द जी बोले—

वर्करानन्द हूँ भैया नमस्ते भगवन्सदा।
सफेद बर्करी मेरी पोटा सुभग वंशदा ॥२॥
मुद्‌गरानन्द का दादा हूँ भेकानन्द का पिता
कहिये जी रहे कैसे मरा विज्ञानतापिता ? ॥३॥

ह्मचारी जी बोले—

विज्ञान की कथा कैसी श्रीकृष्णः शरणं मम।
हिन्दुस्थान शिरोरत्नं भाई जी चरणं मम ॥४॥
शरीर यह विमान है यही कुलाभिमान है।
जरा दबाय नाक को चलो महेन्द्र नाक को ॥५॥
विज्ञान है अधूरा ही धूरा में मिलाय दे।
अज्ञान की कथा पूरी पूरी-लड्डू खिलाय दे ॥६॥
नासिका है यही चिम्नी नेती-धोती कराय के।
खूब ठीक रखो इसको मुताबिक योगराय के ॥७॥
ऐसी चिम्नी दिखाती क्या श्रीप्रयाग-प्रदर्शनी।
पुराने योगियों की थी चिम्नी जो योगदर्शनी ॥८॥
मुछंदर शाह जी जो था श्री श्री गोरख का गुरु।
रहस्य इस चिम्नी का उसने देखा शुरू-शुरू ॥९॥
रेल-तार-विमानादि मानादि सब छोड़ के।
लेंगे हिन्दू हमारे क्या मारे क्या कुलगर्व के ॥१०॥
उड़ना सीधे सिखाऊँगा खाऊँगा हलवा-पुरी।
इस देश को गलाऊँगा लाऊँगा धन खूब जी ॥११॥
सारा जगत् हमारा ही रहा और रहा करें।
सोहमस्मि, सएवाहं मेवाहं माला राता करें ॥१२॥

श्री वर्करानन्द जी वोले—

जब तक न कुछ दिखा सको हमको भी कुछ सिखा सको।
तब तक बात क्या कही देखेंगे हम बना सको ।।१३।।
अब कुछ दिखाइये श्रीजी भौंजी दाढ़ी हिलाय के।
आया शरण में तेरी छेरी से अकुलाय के ।।१४।।

ब्रह्मचारी जी वोले—

छेरी से अकुलाते क्यों लाते क्यों दुःख पेट में।
उड़कर अभी दिखाता हूँ इसी संक्षिप्त भेंट में ।।१५।।

एसी काना ब्रह्मचारी महात्मा की बातें सुन वर्करानन्द जी ने।
पीले दांत खोलकर मस्तक हिलाया जात-जाते शर्कराकन्द पीने ।।

इति श्री कानाब्रह्मचारीये खण्डकाव्ये चिम्नी वहार प्रथम ।

(पाटलिपुत्र; वर्ष १, अंक १; ता० २७ जन १९१८ ई०)

द्वितीय: सर्ग:

भंग के साथ गुलकन्द पी कर जरा
वर्करानन्द जी सिद्ध जी से मिले।
सिद्ध काना महात्मा उन्हें देख के
विद्ध-सा हो गया चित्त में हर्ष से ।।१।।

वर्करानन्द जी वोले—

भो नमस्ते नमस्ते नमस्ते मुने
मस्त जी आपने पन्थ सस्ते चुने।
चिम्निका आपकी कीर्ति-विस्तारिका
है यही सिद्ध जी देश की तारिका ।।२।।
आप कैसे उड़ेंगे अजी सिद्ध जी
गिद्ध जी के नहीं पंख है आपके।
वाप के तुल्य बेटा सदा दीखता
हस्ति हिंमा नहीं कूकुरा सीखता ।।३।।

ब्रह्मचारी जी वोले—

वाप की क्या कथा मैं नहीं बाप से
मैं हुआ ईश से ईश में जी रहा।
मैं उड़ा था अभी सेठ जी के यहाँ
ज्योतिषी भी कई थे वहाँ देखते ।।४।।

मै उड़ गा अभी आपके देखते
देखते वर्करानन्द जी क्या कहूँ।
बात ऐसी बना कर गये सिद्ध जी
कोठरी में जहां झोलिका एक थी ।।५।।

ब्रह्मचारी जी बोल—

योगपट्टादि मेरे इसी में पड़
झोलिका एक जो है यहाँ पर टँगी।
यष्टिका योग की एक कोने पड़ी
और कुछ तो नहीं देख लोजी अभी ।।६।।

वर्करानन्द जी बोले—

झोलिका, यष्टिका के सिवा कुछ नहीं
कोठरी में कहीं दीखता सिद्ध जी।
नाक चिम्नी दवा कर अजी मस्त जी
कोठरी में उड़ो होय जै धर्म की ।।७।।

ब्रह्मचारी जी बोले—

शब्द आता नहीं, पौन आती नहीं
इस तरह की गुफा में उड़े थे ऋषी।
कोठरी बन्द कर मै अभी उड़ चला
आप देखें किसी रन्ध्र से भक्त जी ।।८।।

❀ ❀ ❀

कोठरी बन्द करते अँधरा हुआ
वर्करानन्द जी द्वार से जा लगे।।
सोचत थ खड़े रन्ध्र से अर्थ क्या
हो सके देह का या कहीं द्वार का ।।९।।
जब किसी रन्ध्र से देह के कुछ नहीं
सूझता कोठरी में तबा नेत्र को।
द्वार क रन्ध्र में साट कर चुप खड़े
वर्करानन्द जी सिद्ध को देखते ।।१०।।
देखते-देखते कोठरी में उठा
सिद्ध काना महात्मा पिटारा यथा।
सोचते वर्करानन्द जी अब हुआ
वक्त्र काला महानास्तिकों का भला ।।११।।
कभी गिरता कभी पड़ता कभी ऊपर खिसकता था
महात्मा ब्रह्मचारी जी न उसक पैर थे भू में ।।१२।।

खड़े चुपके किवाड़ी म रहे बकरा महात्मा जी .
इसी में जा लगे श्री जी धरन में कोठ ी जी की ।।१३।।
पाँच फुट क ब्रह्मचारी भूमि से फुट ग्यारहाँ
पर कोठरी की थी धरन कैसे लगे श्री जी वहाँ।
ऐसे अचंभे में पड़े श्री वर्करानन्द खड़े
श्री मुद्गरानन्दर्षि इनके पौत्र इसमें आ पड़े।।१४।।

इति श्री कानावर्करीये खण्डकाव्ये कोठरीकेलिर्नाम द्वितीय सर्ग ।

धर्म और शिक्षा

इस बात मे प्राय· किसी को विवाद नही होगा कि सत्य बोलना, क्रोध न करना इत्यादि आचार की बातें बड़े गौरव की है और असत्य आदि अनाचारो से बडी हानि है। खाना-पीना कपड़ा-लत्ता आदि चाहे कसा भी उन्नत हो, जबतक मन शुद्ध न हो सब कुछ व्यर्थ ह। अब प्रश्न यह उठता है कि मन मे अशुद्धियाँ क्यो आती है, आचार का भ्रंश क्यो होता ह? थोडे ही विचार से उत्तर भी निकल आता है। अज्ञान और दारिद्र्य साक्षात् या परम्परया मन को बिगाड़ते है। जिसको आग का ठीक ज्ञान नही है वह आग छू कर जलता है, या जिसक पास लालटेन का पैसा नही है वह चिराग बालकर काम चलाता है और लालटेन वाले से अधिक आग लगन क धोखे मे पडा रहता है।

यही हाल धर्म का है। जिसे धर्म का ज्ञान नही है और यह समझता है कि हम चाहे कितना भी अधर्म करे एक बार किसी नाम के जपने से ही शुद्धि हो जायगी उस आदमी को अधर्म करते क्या लगता है? जो धर्म का तत्त्व कुछ समझता भी है और सात रोज का भूखा है वह दूसरो की हानि करने से नही बाज आता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि अपने आपको तथा अपने पडोसियो को ज्ञान देने का यत्न करे। चावल के लिए दो-चार भाषाओ के शब्द जान लेना ही ज्ञान नही है। चावल कैसे बनता है और चावल मे क्या-क्या तत्त्व है, इस ज्ञान को ज्ञान कहते है। ऐसे ज्ञान को लोग धर्म का मुख्य अग मानते है।

देखिए कि दस धर्मो मे बुद्धिमानी और विद्या को भी मनु ने धर्म कहा है। विशेष करके कारणता का ज्ञान किए विना मनुष्य अनेक अनर्थों मे पडा रहता है—रोग छूटने के लिए स्तोत्र पढने लगता है और मुकदमा जीतने के लिए इबादत करने लगता है। चिरैता-चिरैता जपने से कभी बुखार नही छूटता, न केवल शब्द से जिह्वा थकाने के अतिरिक्त कोई विशेष फल होता है। शब्द के अनुसार समझकर कार्य करने से फल होता है।

वात यह बहुत स्पष्ट है, पर इधर बहुतेरो का खयाल अभी नही आया है; अभी किस कारण से क्या कार्य होता है इसका ज्ञान जनता में न है और न जनता में इसके प्रचार का प्रयत्न किया जा रहा है। न्याय की छोटी पुस्तिकाओ मे तथा योरपीय लॉजिक मे एव बौद्ध-जैन आदि के ग्रथो मे कार्य-कारण भाव पर बहुत कुछ विचार किया गया है। न्यायवालो ने कहा है कि गधा बँधे रहने पर भी घट बनता है, जहाँ गधा नही रहता वहाँ भी घट वनता है और कितने ही स्थानो मे गधा रहने पर भी घट नही वनता। इसलिए नयायिक लोग गधे को घटोत्पत्ति का कारण नही कहते। इस उदाहरण

का बहुत प्रचार तो नही पाया जाता पर बहुत-से अँगरेजी-सस्कृत आदि के विद्वान् इस बात को जानते है। तथापि बडे-बडे पंडितो और वकील-बैरिस्टरो को यात्रा पर काना तेली देखने से घबराते हुए हमने पाया है। क्या इन लोगो ने अपने लॉजिक का प्राइमर या मुक्तावली बेचारे तेली पर कभी लगाई है? कभी सोचा है कि शकुन नही माननेवाले भी कितने ही लोग अच्छी दशा मे है? और कितने शकुन माननवाले भी बुरी दशा मे है? ऐसी हालत मे शकुन क्यो माना जाय और क्यो हमलोग इस झझट मे पड रहे?

यदि इतनी बात भी समझ मे न आई तो वाद्यान्त न्याय या फिलासफी के एम्० ए० होन का क्या फल हुआ? धार्मिक उन्नति सभी उन्नतियो का मूल है। भ्रमयुक्त मन से धार्मिक उन्नति कभी नही हो सकती। भ्रम हटाने के लिए हमारे पूर्वजो ने अनेक उपाय किये पर मौलिक भ्रम को, जिसे हम कार्यकारण भाव का भ्रम कहते है, हटाने का यत्न ऋषियो की तरफ से बहुत कुछ होने पर भी दो-चार समझदार भी इस बात का जनता में प्रचार नही कर रह है। इसलिए जनता बेचारी को यदि कोई तावीज दे दे और कहे कि इसके पहनने से पानी मे नही डूबोगे तो ऐसी बात की मूर्खता उसे नही सूझती। परीक्षा का प्रकार तो यो है—या तो हमे यह देख लेना चाहिए कि तावीज क्या कोई तूमा है कि आदमी को उतराये रखेगा? या पहनने से प्रतीत न हो तो तैरना न जाननेवाले और तरने का साधन तूमा आदि न रखते हुए दो मनुष्यो को बारी-बारी बेतावीज के और फिर तावीज के साथ पानी मे डालना चाहिए। अगर तावीज के साथ दोनो मे से कोई न डूबे और बेतावीज दोनो ही डूबने लगे तभी समझना चाहिए कि तावीज मे कुछ प्रताप है। पजाब मेल प्रात काल बाँकीपुर आती है। कितने ही वर्षों से देखा जा रहा है कि इसके आगमन के साथ प्रायः सभी प्रात क्रिया मे लग जाते है। क्या इससे यह समझा जाय कि पजाब मेल का बाँकीपुर मे आना दस्तावर है?

हमें कार्यकारण-भाव से बहिर्भूत वाह्य आडम्बरो को छोडकर सच्ची धर्मभक्ति से उन्नति की अभिलाषा रखनी चाहिए। ऐसी धर्मभक्ति कठिन है। किसी की कृपा पर निर्भर नही है; अपने उद्योग भर अवलम्बित है। तथापि उन्नति का एकमात्र यही उपाय है।

पौरस्त्य और पाश्चात्य दर्शन

प्राय. सभ्यता की तीन अवस्थाएँ हुई है—प्राचीन, मध्यम और नवीन। इसी के अनुसार दर्शन की भी तीन दशायें है। भगवान् कपिल ने प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा है। सत्त्व—ज्ञानात्मक, रज·—कार्यात्मक और तम —मोहात्मक; ये तीन गुण है। प्रकृति का ही परिणाम बुद्धि भी त्रिगुणात्मिका है। मनुष्य हजार यत्न करे, बुद्धि के अनुसार ही कार्य-कल्पना आदि उसकी होगी। इसीलिए आदि मुनि कपिल से लेकर कान्त, हयगल आदि आधुनिक दार्शनिको तक सभी की कल्पनाये त्रिगुणात्मक हुई है। तीन गुण सदा वर्त्तमान है तथापि प्रधानता किसी एक ही की एक काल में होती है।

प्राचीन सभ्यता और प्राचीन दर्शन सत्त्वप्रधान है। मध्यम सभ्यता और मध्यम दर्शन तम प्रधान है। आधुनिक सभ्यता और आधुनिक दर्शन रज प्रधान है। अति प्राचीन वदिक समयो से लेकर जगदेकवीर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय तक या अन्ततः श्री हर्षवर्द्धनदेव के समय तक प्राचीन सभ्यता का समय है। भगवान् कृष्ण और बुद्धदेव इस समय के नेता है। दोनो ही सत्त्वप्रधान दार्शनिक थे। ज्ञानप्रचार के लिए इनका जीवन था। क्रिया—सुख-दु ख आदि इनके ज्ञानोद्देश्यक थे। पूर्व में भारतवर्ष एक पुश्त और पश्चिम में मिस्र, असुर, पारस, यवन, रोम चार-पांच पुश्त इस विस्तृत समय में बीते; परन्तु प्रधानता इस समय ज्ञानप्रधान भारत की ही रही—यहाँ तक कि इस समय के रजोगुण का नायक अलीलचन्द्र या उसका दायाद शल्यक भी भारत पर आधिपत्य नही कर सका। चिरकालिक सत्त्व-विकास का अब ह्रास हो चला और हठात् हूण, गौथ आदि वन्य जातियो ने भारतीय और रोमक सभ्यता को खा लिया। तब से तम. प्रधान मध्यम समय चला। प्राय: पन्द्रहवी शताब्दी मे इस मध्यम समय का नाश होने लगा और रजः प्रधान नवीन युग का आविर्भाव हुआ। इस नवीन युग मे विज्ञान का प्राधान्य है, कार्य खूब हो रहा है; पर कान्त आदि कुछ दार्शनिको के होते भी ज्ञान-माहात्म्य और नि.स्वार्थता का ह्रास होता जा रहा है। सात्त्विक सभ्यता उपकारमयी होती है, तामस सभ्यता मोहमयी होती है और राजस सभ्यता दु खमयी होती है। जब तक जिस देश में सत्त्व का आधिक्य रहेगा, तबतक उस देश मे दु ख और मोह की बाधा नही होती।

ज्ञानप्रधान प्राचीन सभ्यता मे प्राय जितनी दार्शनिक कल्पनायें हो सकती है सभी का अविर्भाव हुआ। छ: आस्तिक और छ. नास्तिक दर्शन इसी समय हुए। आज देशान्तरो मे अनेक दार्शनिको का जन्म होने पर भी कोई अद्भुत नवीन दार्शनिक कल्पना नही निकली। आज भी दर्शन, व्याकरण और साहित्य में भारत सबसे बढा हुआ है। गणित और वैद्यक में इसे उच्च स्थान मिला है; केवल यन्त्रादि विज्ञान मे ही वैदेशिक लोग इससे वढे है। अभी भी सत्त्व भीतर ही भीतर भारत में पूर्वजो से इतना सचित है कि थोड़े ही जागरण मे न जाने किस दिन एकाएक ज्ञान-विज्ञान बाहर उमड पडेगा और

ससार को चकित करेगा। चार्वाक, चार प्रकार के बौद्ध अर्थात् माध्यमिक, योगाचार सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक और जैन—इनके दर्शन नास्तिक दशन समझे जाते है। न्याय वैशेषिक, साख्य, योग, मीमासा, वेदान्त ये छः प्रधान आस्तिक दर्शन है। जो वस्तु है, उसको स्वीकार न करनेवाले नास्तिक है। जो वस्तु है, उसको स्वीकार करनेवाले आस्तिक है। ब्रह्म सद्वस्तु है। वेदान्त ने इस सद्वस्तु को सर्वाश से स्वीकार किया और आस्तिक दर्शनो ने इसके एक-एक अश से अपना काम चलाया, पर ब्रह्मसत्ता का निषेध नही किया। इसलिए ये आस्तिक कहे गये। जिन लोगो ने ब्रह्मसत्ता एकदम न समझी, वे नास्तिक कहे गये। वैदेशिक दर्शनो मे भी प्राय ब्रह्मपरिचय केवल एकाध ही महात्मा को हुआ, इसलिए वे भी चार्वाक-बौद्ध-जैन आदि कल्पनाओ में ही घूमते रह गये। यह बात बारह दर्शनो का सक्षिप्त तत्त्व जानने ही से स्पष्ट होगी; इसलिए यहाँ इन दर्शनो के रहस्य सक्षेप से प्रकाशित किये जाते है।

चार्वाक लोगो ने केवल प्रत्यक्ष प्रमाण माना है। राजा को इन लोगो ने परमेश्वर कहा है। स्त्री-सुख आदि को स्वर्ग और काँटा आदि लगने से दुख को नरक कहा है। इन लोगो ने समझा था कि अनुमान से परलोक-आत्मा आदि की सिद्धि होगी। जब अनुमान ही नही तो लोग इन वस्तुओ को कैसे सिद्ध कर सकेंगे! इन लोगो ने वेदो को भण्डधूर्त और राक्षसो का वनाया बतलाया है, क्योकि यज्ञो मे पशुहिसा तथा अनेक अश्लील विधियो आदि का उल्लेख है। इनके मन से पृथ्वी, जल, तेज और वायु चार तत्त्व है। इन्ही के योग से आत्मा या चेतना की उत्पत्ति होती है। इसीलिए चार्वाक देहात्मक ही कहे जाते है। इन लोगो ने समझा था कि ससार में इन्ही का मत अधिक है; इसलिए ये अपने को लोकमत भी कहते है। कितने ही दार्शनिक जल से, कितन ही अग्नि से, कितने ही वायु से और सभी वस्तुओ की उत्पत्ति मानते है। ये यवन दार्शनिक स्थलीश, अनक्षिमन्द्र, अनक्षिमणि आदि प्राय चार्वाक-तुल्य है।

प्रत्यक्षैकप्रमाणवादी चार्वाको ने यह नही समझा कि यदि अनुमान नही मानेंगे, तो जिस स्वर्ग आदि वस्तुजात का खण्डन करना है, उसका खण्डन ही कैसे हो सकेगा; कोई कैसी ही असगत प्रतिज्ञा कर कह वैठेगा कि मैंन इस वात को देखा है। अनुमानवादी तो एक वृक्ष और एक अग्निकण का स्वभाव देख कर अनुमान कर सकता है, कि किसी काल मे किसी देश मे आग से वृक्ष सेक नही हो सकता। पर चार्वाक ने तो सब आग और सब वृक्ष नही देखा है, फिर वह ऐसी वातो का कैसे खण्डन कर सकता; और जव चार्वाक अनुमान नही मानता है तो आग में हाथ क्यो नही जलता? एक वार हाथ जलने पर भी फिर वैसा ही होगा, यह तो चार्वाक के अनुसार अनुमान किया नही जा सकता, ऐसी अवस्था में उसे वारवार आग मे हाथ डाल कर प्रत्यक्ष अग्निस्पर्श का फल देखते रहना चाहिए, कदाचित् ठण्ढा करनेवाली आग, नाक से हाथी निकालनेवाले मनुष्य और पीठ से अक्षर पढनेवाले महात्मा कही मिल ही जायें। चार्वाक को सदा सत्तू बाँधकर ऐसी चीजो की खोज में घूमना चाहिए या कम से कम चुपचाप घर वैठ रहना चाहिए,

कदाचित् चुप बैठने ही से धन आदि मिल जाये। उद्योग से धन होता है, इत्यादि व्याप्तिग्रह तो उसे हो ही नही सकता। इसके अतिरिक्त यह भी चार्वाकों से पूछा जाता है, कि उनके अनुसार यदि अनुमान प्रमाण ही नही, तो उन्हे यह व्याप्ति कैसे विदित हुई कि अनुमान प्रमाण नही। जैसे सब आग और सब धूआँ न देखने से वे कहते है, कि धुएँ से अग्नि का अनुमान ठीक नही, वैसे ही सब लोगो के सब अनुमानों का ज्ञान तो चार्वाको को है नही; फिर वे कैसे कह सकते है कि अनुमान प्रमाण नही। इसी प्रकार चार्वाकों की और भी बाते हमारे दार्शनिकों को पसन्द न आई। जबकि राजा से रक तक सभी धर्म के अधीन है, धर्म से स्थिति और अधर्म से सब का नाश नृग-नहुष-वेन आदि के समय ही से देखा जा रहा है, तब किसी पुरुष को परमेश्वर कैसे कहा जा सकता है? स्त्री-सुख आदि ही यदि स्वर्ग होता और कण्टकवेध आदिकृत दुःख ही यदि नरक होता, तो सब सुख छोड़ अनेक दुःखो को झेल सर्वोपकार में लोग कैसे लगते। अपने समय के समस्त ज्ञान-विज्ञान के आकर वेद में दोष लगा कर छोड़ देना क्या है, मानो मूत्रपुरीष आदि का सम्बन्ध देखकर गुरु, पिता, माता आदि का त्याग करना है। हिंसा के लिए वेद की निन्दा नही की जा सकती; क्योंकि परोपकारमय यज्ञ के लिए वैदिक हिंसा है। जैसे मनुष्य मात्र की रक्षा के लिए चोर, हत्यारे आदि को पीडा दी जाती है, वैसे ही याज्ञिको ने पशुवध केवल जगद्रक्षार्थ चलाया है, न कि व्यक्तिविशेष के स्वार्थ के लिए। पृथक्स्थित दो वस्तुओ के बीच प्रत्यक्ष प्रकाशमय आकाश को न मानना तो स्वमत-विरुद्ध था। प्रत्यक्ष भी ज्ञानस्वरूप है। प्रत्यक्ष को ही सबका मूल बताकर फिर भी ज्ञानस्वरूप आत्मा को अचेतनो के योग से उत्पन्न बताना भी व्याहत है। ज्ञान के अधीन सब बातें है। ज्ञानरहित स्वतत्र अचेतन वस्तुओ की तो सत्ता भी नही सिद्ध हो सकती; इसलिए अचेतनो के योग से आत्मा की उत्पत्ति की सिद्धि के लिए यत्न सर्वथा व्यर्थ हुआ। लोक में तो सदा के लिए वैदिक धर्म का प्राधान्य और विजय हुआ है; इसलिए चार्वाको का अपने को लोकायत्त कहना भी निर्मूल अभिमानमात्र था।

बाह्यवस्तुमूलक ज्ञान नही, किन्तु ज्ञानाधीन बाह्यवस्तुसत्ता है। वस्तुतः विषय और विषयी अर्थात् परमात्मा यानी जाननेवाला और जानी जाती हुई चीज दोनो ही चिद्रूपिणी विद्युत् के दो मेरु है। जैसे विद्युद्दण्ड को जहाँ से तोडिये, विधिनिषेधात्मक दो मेरु निकल आते है, उसी प्रकार ज्ञान की सूक्ष्म से सूक्ष्म मात्रा लीजिये, विषय और विषयी दोनो उसमें वर्तमान है। इस दार्शनिक रहस्य को हमारे यहाँ बुद्ध बादरायण आदि आज से ढाई हजार वर्ष पहले ही समझ चुके थे। पश्चिम के लोगो में केवल हाल में इसका कुछ पता लगा है। सुक्रतु, प्रतनु, अरिष्टोत्तर आदि यवन दार्शनिको को जरा-सी इस ब्रह्म की मन्द झलक मिली थी, कि पश्चिम में प्रायः दो हजार वर्ष के लिये ब्रह्मास्त्र-सा हो गया। हमारे यहाँ भगवान् कृष्ण को पूर्ण ब्रह्मज्ञान था, जिससे वे स्वयं ब्रह्मस्वरूप कहे जाते है। बौद्धों ने प्रत्यक्ष, अनुमान दो प्रमाण माने तथा ज्ञानाधीन सब माना। पर इस ज्ञान को विज्ञान, विशेषज्ञान या क्षणिक ज्ञान समझा।

बौद्धों ने विज्ञान में सब वाह्यवस्तु रखना चाहा; पर काल भागकर बौद्धविज्ञान से बाहर निकल खड़ा हुआ, जैसे आधुनिक समयो में कान्त के विज्ञान से स्वलक्षणसत्ता बाहर निकल खडी हुई है। कालस्वलक्षण आदि कोई भी वस्तु ज्ञान से स्वतन्त्र नही ; इसलिए ज्ञानस्वरूप ब्रह्म, दिक्कालानवच्छिन्न क्या सर्वात्मक है, इस बात का पूर्ण परिचय पहले-पहल भगवान् कृष्ण और उनके बाद भगवान् वादरायण तदनन्तर और पारमार्थिको को देश-विदेश मे हुआ है। एक तो विना प्रमाण ही विज्ञान को कालावच्छिन्न समझना तथा शब्दप्रमाण को स्थान देना बौद्धो का मुख्य दोष था, जिससे भारतीयो ने चिरकाल के लिए बौद्धधर्म को स्थान नही दिया। शकर भगवान् ने समझाया है कि वस्तुतन्त्र बातो का अर्थात् 'क्या है, क्या नही', 'क्या था, क्या नही था', 'क्या होगा, क्या नही होगा' इन विषयो का समझाना अनुमानाधीन है, इसीलिए ब्रह्म-विद्या को आचार्य ने अनुभवावसान कहा है। उपनिषदो में भी श्रवण, मनन, निदिध्यासन तीन उपाय कहकर अनुभवस्वरूप निदिध्यासन ही मे पर्यवसान कहा है। पर पुरुषतन्त्रविधेय यानी कानूनी विषयो में अर्थात् दूसरो के भय से या दूसरो की प्रीति के लिए क्या करना चाहिए, इस विषय मे शब्दप्रमाण है। बौद्धलोग भी मातरिपितरि शुश्रूषा का आदर करते है। ऐसी अवस्था मे आज्ञात्मक शब्द का प्रमाण न मानना बडा दोष था। पर ज्ञान-दृष्टिता अपूर्ण होने पर भी बौद्धो का यह मुख्य गुण था कि अप्रामाणिक, कारुणिक सृष्टिकर्त्ता आदि की कल्पना इन्होने नही की थी। इसलिए भगवान् सिद्धार्थ गौतमबुद्ध शाक्य मुनि को भारतीयो ने श्रीकृष्णचन्द्र जी के अवतार माना। गुणग्रहण इसीको कहते है। भगवान् बुद्ध को अवतार कहते हुए भी सुखदु खमोहस्वरूप त्रिगुणात्मक प्रकृतिवादी कपिल का स्मरण रखते हुए भारतीयो ने जगत् को केवल दु खमय समझना और समाजरक्षा का खयाल कर अत्यन्त अहिंसा आदि मे पड़ना अपना कृत्य नही माना और अन्तत बौद्धलोग भी भारतीयो से भी अधिक हिंसाप्रिय चीन आदि देशो में जा मिले। ब्रह्मस्वरूपिणी प्रकृति की उत्तम से उत्तम मनुष्य-वस्तु की रक्षा के लिए जो उचित हो वही सदा भारतीयो के लिए स्वीकृत रहा।

प्राचीन समयो में जैनधर्म भी जगद्व्यवहारविरुद्ध होने के ही कारण भारतीयो को अत्यन्त दुर्बल जान पडा और जैनो का प्रमाणविरुद्ध आलोकाकाश सर्वसशयवाद आदि भी हमें स्वीकृत नही हुआ। पर हाल में कुछ लोगो ने केवल बाहरी खानपान आदि की सभ्यता देखकर जैनो को अपने में मिला लिया है तथापि ये बौद्धो से अब भी अलग हैं। परमेश्वर परब्रह्म सर्वात्मा को न मानकर चौवीस या और अधिक मनुष्यो को सर्वज्ञ मान लेना जनो का वडा भारी दोष भारत के दार्शनिको ने समझा। जो कुछ ज्ञान था या है या हो सकता है, सो विराट् ब्रह्म का है, जो शक्तियाँ हैं सो उसकी है, क्योकि ब्रह्म सर्वात्मक है, जैसा कि 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' इस उपनिषद्वाक्य ने कहा है। ब्रह्मातिरिक्त न तो कोई वस्तु है न उसकी कोई शक्ति। जो जीव जिनवुद्ध से लेकर चीटी तक उत्पन्न और विलीन होते हैं सो एक-एक इस ब्रह्ममहा-समुद्र के बुद्बुद हैं। जैसे अवकाशमात्रव्यापिनी विद्युत् या तत्सदृश ताप का जहाँ-तहाँ

एक मेघ या यन्त्र आदि में आविर्भाव-तिरोभाव होता है, पर इस आविर्भाव से न विद्युत् की अनेकता ही सिद्ध है, न उसका आरम्भ और विनाश ही। इसी प्रकार ब्रह्मसमुद्र में जीवों का आविर्भाव-तिरोभाव है। इन जीव-बुद्बुदों में किसी को जो सर्वज्ञ मान बैठे, उस मत को भारतीय चिरकाल के लिए कैसे स्वीकार कर सकते हैं ?

सांख्यवालों ने त्रिगुणात्मिका अर्थात् सत्वरजस्तमोमयी प्रकृति मानी थी और उनके पुरुष, प्रकृति के वस्तुतः साक्षी और अविवेक से भोक्ता माने थे। योग ने एक पुरुष-विशेष को क्लेश आदि से मुक्त माना और उसे ईश्वर कहा। ज्ञान के बाह्य साधन भी प्राणायाम आदि बताये। प्रायः मध्यम समय के पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी इस प्रकार की कल्पनायें की थीं। इन कल्पनाओं में क्रिया का प्राधान्य रखा गया। प्रमाणों से वस्तु-साधन कर फिर सिद्धवस्तु के लाभ के लिए यत्न नहीं किया गया। न्याय और वैशेषिक ने प्रमाण को मुख्य माना और प्रमाणों में भी शब्द को अत्यन्त गौण स्थान देकर सृष्टि आदि विषयों को प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षमूलक अनुमान के द्वारा हल करना चाहा। प्राचीन शास्त्रकार अक्षपाद, कणाद आदि ने तो अदृष्ट सहकृत परमाणुओं से जगत् की सृष्टि मानी; पर मध्यम तार्किकों ने घट-पट आदि कृत्रिम वस्तुओं को चेतनकर्तृक देख अकृत्रिम नदी-पहाड़ आदि को भी सकर्तृक समझ लिया। यूरोप में भी मजहबी लोगों ने मध्यम समयों में ऐसी ही कल्पना की। भारत में पाञ्चरात्र आदि वैष्णवों ने तथा शैव आदि ने कुछ प्राचीन समय में भी ऐसी कल्पनायें की थीं। बौद्ध आदिकों की ओर से ऐसी कल्पनाओं पर बड़े-बड़े कटाक्ष भी किये गये थे। जैसे हाल में नास्तिकों की कल्पनाओं को दूर करने के लिए कान्त, हेगल आदि महात्माओं ने चेष्टा की है और बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की है। इसी प्रकार प्राचीन समयों में नास्तिक्य का मूलोच्छेद कर दृढ अनुभवमूल पर आस्तिक्य अर्थात् ब्रह्मवाद को स्थापन करने के लिए भगवान् बादरायण ने ब्रह्मसूत्र बनाये। वेदान्तों में अर्थात् श्रुतियों के अन्तिम भागों में (जिन्हें लोग उपनिषद् भी कहते हैं) अनेक एकदेशिमत असद्वाद आदि का संक्षेप से खण्डन कर ब्रह्मवाद का स्थापन अत्यन्त प्राचीन ऋषियों के द्वारा हुआ था। भगवान्-श्रीकृष्ण आदि ने इसका परिपोष भी किया था। पर बौद्ध आदि के तर्क तो उस समय निकले नहीं थे; इसलिए प्रमाणपूर्वक उनकी युक्तियों की परीक्षा नहीं हो सकी थी। भगवान् बादरायण के समय तक बौद्ध आदि नास्तिक तथा कपिल आदि आस्तिक सभी दर्शनों की युक्तियों की बौछार खूब चल चुकी थी, शैव-वैष्णव आदि सम्प्रदायों का भक्तिवाद तथा जैमिनि का कर्मवाद भी पूर्ण प्रौढ़ता में पहुंच रहा था; ऐसी अवस्था में नये दर्शनसूत्रों की बड़ी अपेक्षा थी। वैदिक समयों से लेकर बौद्ध समय के बाद तक के सब मतों की परीक्षा कर जो दर्शन बनता, उसके सिद्धान्त अवश्य गौरवास्पद और प्रायः अटल होते। इन्हीं विचारों से औपनिषद सिद्धान्तों को प्रौढ़ प्रमाणसूत्रों में गूँथ कर ब्रह्मार्पण करने के लिए बादरायणीय ब्रह्मसूत्र बने। मीमांसक, सांख्ययोग, न्यायवैशेषिक, बौद्ध-जैन, चार्वाक और पाञ्चरात्र इन्हीं वादियों का वेदान्त को सामना करना था। मीमांसक तो अपने ही थे। क्या तो यहाँ तक है कि जैमिनि भगवान् बादरायण के शिष्य ही थे। बादरायणसूत्रों

मे जैमिनि का नाम है और जैमिनीय मीमासासूत्रों मे बादरायण का। इससे जान पड़ता है कि दोनो प्राय एक समय के थे। जैमिनि ने कर्मपरक वेदवाक्यो के अर्थ समझने के नियम निकाले थे। बादरायण को क्या सभी दार्शनिको को, वाक्यार्थबोध के नियम अभिमत ही थे। मीमासको से केवल इतनी बात पटा लेनी थी, कि यज्ञादि क्रिया मे जैसे शब्दातिरिक्त और कोई साधन नही, वैसी बात ब्रह्मज्ञान मे नही। ब्रह्मविद्या मे अनुभव अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान का प्राधान्य है।

श्रवणमात्र शब्द से होता है। जो बात सुनी गई, उसका अनुमान से मनन करना चाहिए और आनुभाविक युक्तियो से मनन करने के बाद यदि श्रुत वस्तु सम्भावित हो, तो उसका निदिध्यासन अर्थात् प्रत्यक्षानुभव कर लेना चाहिए पर्वत मे अग्नि है, यह सुनकर विश्वास कर लेना उचित नही, अनुमान करना चाहिए। अर्थात् धूम आदि हेतु के द्वारा समझना चाहिए कि यहाँ अग्नि सम्भव है या नही और फिर सम्भव हो तो प्रत्यक्ष कर लेना चाहिए। कर्मकाण्ड मे यह बात नही। वस्तु पुरुषाधीन नही, पर क्रिया पुरुषाधीन है। करनेवाला करे तो क्रिया उत्पन्न हो, क्रिया से स्वर्ग होगा या नही, इसका अनुभव नही। यही बडा भद मीमासा और वेदान्त के विषयो में है। इन भेदो को सामने रखते हुए बादरायण ने और वादियो की परीक्षा आरभ की। उन समयो मे साख्यवाले बडे प्रचड थे। इन्ह युक्तियो का बड़ा बल था और आदि महर्षि कपिल की स्मृति पर बडा भ ोसा था। अचेतन प्रकृति से चेतन जीव की उत्पत्ति तो प्रमाण-विरुद्ध दिखला कर प्रकृति पुरुष ो अत्यन्त विविक्त वस्तु मानने का आग्रह साख्यवालो से हटाने की चेष्टा की गई एव अन्य स्मृतियो से विरोध दिखा कर स्मृति-विरोध-दोष का परिहार किया गया। योग से भी चित्त-संस्कार केवल माना गया, योग दर्शन की ईश्वर-कल्पना आदि सांख्यनिबर्हण ही मे गतार्थ हुई। वस्तुत प्रकृति और पुरुष विविक्त है। इनमें परस्पर अभेद या सम्बध अविद्याकृत है। यह साख्य योगवालो की उक्ति अब हटाई गई। बडे प्रपच से इस सिद्धान्त की स्थापना की गई कि एक सद्वस्तु है, इसे चाहे प्रकृति कहे या पुरुष। सब इसी मे विकसित होते है, इसी मे रहते है और इसी मे लीन होत है। जगत् और ईश्वर, प्रकृति और पुरुष, जीव और शरीर इत्यादि भेद-कल्पना ही अविद्या है। बात एकदम उलट गई। कपिल पतञ्जलि आदि ने द्वत ही ठीक कहा था, अद्वैत को अविवेक कहा था। अब द्वैत ही अविद्या में फका गया। अद्वैत ठीक ठहराया गया। चित्तस्वरूप परमात्मा मे चेतनाचेतन सब जगत् का आविर्भाव-तिरोभाव सिद्धान्तित हुआ। बौद्ध आदि वैनाशिक और वैशेषिक आदि अर्द्ध-वैनाशिक सभी निरस्त हुए। परम आस्तिक्य की विजय हुई।

दार्शनिक कान्त ने दिखाया है कि जो कुछ विचार हो सो देश-काल और कार्य-कारण-भाव क अनुकूल होता है। कार्य-कारणभाव मे दो विकल्प हो सकते है—सद्वाद, असद्वाद। बौद्धो ने प्राय असद्वाद को स्वीकार किया। अभाव से भाव की उत्पत्ति बताई। या तो कारण को असत्-स्वरूप माना या कारण को कुछ मानते हुए भी उसके ध्वस से कार्य की उत्पत्ति बताई; जैसे बीज के ध्वस से अकुर होता है। तार्किको ने नये कार्य का आरभ बताया।

इनके मत से कारण और कार्य सर्वथा भिन्न हैं। कारण-कलाप से एक नवीन कार्य की उत्पत्ति होती है। इस मत को आरम्भवाद कहते हैं। साख्ययोग वालो ने समझा कि जैसे दूध ही दही के रूप में परिणत होता है, वैसे सभी कारण स्वय कार्यरूप मे परिणत होते है; इस मत को परिणामवाद कहते है। पर ये सब बाहरी बातें हैं। मूल रहस्य से जब तक इनका सम्बन्ध न दिखाया जाय, इनका कुछ भी मूल्य नही। मौलिक बात तो यह है कि ज्ञान स्वप्रमितिक है। इसका न तो निषेध हो सकता है और न इसमे सशय ही हो सकता है। निषेध या सशय ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिए सबका खडन हो जाय, पर ज्ञानसत्ता या चित्तसत्ता का खडन नही हो सकता। देश-काल, कार्य-कारण-भाव सभी ज्ञान के भीतर ही है, इसीलिए फिक्त नामक पाश्चात्य दार्शनिक ने स्थिर किया है कि आत्मा अपने ही स्वरूप में अर्थात् चित्तसत्ता में स्व-पर-भेद और वस्तुओ का परस्पर भद किया करता है। इस बात को फिक्त से ढाई-तीन हजार वर्ष पहले ही हमारे दार्शनिक समझते थे। वेदान्त ने नामरूप का भेद रहते हुए भी वस्तुत' कार्यकारण का अभेद माना और चिद्वस्तु को दिक्काल-कार्यकारण भावादि का अविषय माना। हयगल आदि अत्यन्त आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक भी इस वेदान्त-सिद्धान्त के कायल है। इसे अद्वैतवाद कहते हैं।

काल पाकर ब्रह्मसूत्र की अनेक व्याख्यायें हुईं। तामस मध्यम समय भारत में (और देशो के सदृश) आ रहा था। ज्ञान का विकास कम होता चला। मूल ग्रन्थो का निर्माण रुक गया। उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र लेकर अनेक सम्प्रदाय चले। शकराचार्य ने मायावाद चलाया, जिसके अनुसार ब्रह्म प्राय' शून्य स्वरूप है और सब सासारिक भेद भ्रमकृत है। शकर के मुख्य प्रत्यर्थी दो हुए हैं—रामानुज स्वामी और वल्लभाचार्य। तीनो आचार्यों के तथा मध्वाचार्य आदि अन्य लोगो के भी भाष्य ब्रह्मसूत्र पर है। आज धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो शैव, शाक्त, वैष्णव और स्मार्त चार मुख्य विभाग आस्तिक भारतीयो के हैं। इनमें स्मार्तलोग प्राय दार्शनिक विषयो में शंकरानुसारी हैं। वैष्णवो में रामानुजीय और वाल्लभो का अनुभाव देश में अधिक है। रामानुज स्वामी चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर मानते हैं; इसलिए इनका मत विशिष्टाद्वैत कहा जाता है। वल्लभाचार्य के दर्शन में ब्रह्म शुद्ध माना जाता है; माया का स्वीकार नही है; ससार सत् है, मायिक नही।

आज फिर भी चिरकाल के बाद इतना अन्धकार रहते भी दार्शनिक आन्दोलन के कुछ लक्षण भारत मे दीख पडते है। देशान्तरो में भी रजोगण ने सर्वथा दार्शनिक सत्त्व को खा नही लिया है। जबतब संसार में मतवादियो ने दार्शनिक विचारो को दबाने के लिए अनेक यत्न किये है। पाश्चात्यो में प्राय: अरिष्टोत्तर के बाद मजहबी लोगो की ही चेष्टा से दार्शनिक विचार दो सहस्र वर्ष तक रुके पडे थे। भारत में भी हाल तक यही दशा थी। यहाँ वेद आदि का तथा देशान्तरो में बाइबिल आदि का नाम लेते हुए मजहबियो ने दार्शनिक स्वतंत्रता का विरोध किया है। पर आज देशान्तरो में तो खूब ही; पर भारत में थोडी स्वतन्त्रता दार्शनिक विचारो में आ रही है।

प्रकृति के अनुसार बुद्धि भी त्रिगुणात्मिका कही गई है। तीनो गुणो के उत्तम रूपज्ञान, कर्म और भक्ति के आकार में वर्त्तमान है। वस्तुओ को ठीक समझकर भक्तिपूर्वक कार्य करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इन तीनो में से किसी एक अश को लेकर चलनेवाला दर्शन न तो वस्तुदृष्टि से सुसगत कहा जा सकता है, न सासारिक कार्यो के योग्य ही समझा जा सकता है। इसलिए आज ऐसे ही दर्शन की अपेक्षा है जिनमे ज्ञान, कर्म और भक्ति का यथास्थान सन्निवेश हो। ज्ञान से दार्शनिक उन्नति होती जायगी। ज्ञान और कर्म के योग से वैज्ञानिक उन्नति होगी। भक्ति की रक्षा से ससार में उद्दडता आदि की वृद्धि नही होने पायगी।

'पाटलिपुत्र' का विशेषांक, भाग २
माघकृष्ण ३० संवत १९७२।

खुली चिट्ठी[1]

प्रिय सपादक जी,

मैने 'माधुरी' के विशेषाक में भूत-रहस्य और पुनर्जन्म पर लेख देखे। देश में 'सुधा' तथा अन्य पत्रो में भी ऐसे सुरोचक लेख निकल रहे है। अभी असली शिक्षा का अभाव है। यहाँ अशिक्षितो तथा शिक्षा-भारवाहियो पर भूत, कलि, दैव, पुनर्जन्म (पूर्व और पर-जन्म), अकारण या विरुद्ध कारणो से कार्योत्पत्ति आदि वातो का प्रभाव चिरकाल से जकडा है। 'ऐसे विश्वास अभी-अभी जागरित हो रहे है, पहले से लोग इन वातो को नही मानते थे'—ऐसा कहना असगत है। असली शिक्षावाले इगलैड, जर्मनी, अमेरिका, फ्रास, जापान आदि देशो में पहले जैसे ही भ्रांत थे। अव ये हजार में एक से भी कम मनुष्यो मे पाए जाते है। इडिया (आधुनिक हिंदोस्तान या भारत) में जिसे अव पुराने नामो से पुकारना केवल नकल करना है)[2] कदाचित करोड में एक ही मनुष्य होगा, जिसे इन वातो में विश्वास नही, और लोगो में इनका प्रचार करने में संकोच है। ये भी दस-पाँच अव सर औलिवर आदि वैदेशिक तथा यहाँ के एम्० ए० आदि उपाधिधारियो के दृष्टात से, शीघ्र ही इन विश्वासो पर आ जायँगे। इसी आशा से कितने ही लोग खयाली पुलाव खाया और कहा करते है—"मैं भी पहले[3] नास्तिक था। पर हिमालय और तिब्बत के महात्माओ से वातचीत कर तथा भूत, प्रेत, जादू आदि की करामात अपनी आँखो

---

१. इसे छापने, प्रकाशित करने तथा भावांतर करने का सबको अधिकार है। पटना—आश्विन—शु० १५, १९८४

२. जैसे नेहेमिया (Nehemia) नीलकंठ शास्त्री को नीलकंठ शास्त्री कहना केवल विडंवना है। उन्हें तो रेवरेंड नेहेमिया ही कहना ठीक है। नीलकंठजी एक वापूदेव जी के समय के विद्वान् थे।

३. अमर ने लिखा है—'मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता' इसलिए अंधविश्वासी ही असली नास्तिक है। तथापि आजकल आस्तिकता और अंधविश्वास पर्याय-से हो रहे है। इसलिए नास्तिक पदवी उत्तम है। खोए को कोई गोवर कहे तो खोआ छोड़कर गोवर नहीं खाना चाहिए। वैसे ही अंधविश्वास के अभाव को कोई नास्तिकता कहे, तो अंधविश्वास सिर पर ढोने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। मुग्ध लोग जिसे आस्तिकता कहते है, वह वचने की चीज है और जिसे नास्तिकता कहते है, वहे प्रायः श्लाघ्य है। 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।'

से देखकर आस्तिक हो गया"।[४] असल मे ये वेचारे सदा से ऐसे भ्रमों के भक्त है। और भक्ति ही की, न कि परीक्षा की दृष्टि से इन बातो को देखकर इनके जाल मे फँस जाते है। इसीलिये बी० ए०, एम्० ए० बी० एल्० आदि लोग हलफ लेकर ऐसी बातें लिखते है, और हम-सरीखे नास्तिकों को दबाने के लिए आई० सी० एस्०, जज, बारिस्टर, डॉक्टर, राजे-महराजे, जमीदार आदि की भी गवाही खीच-खाँच कर अपनी बातों पर लिख दिया करते है। इजहार के समय कुछ गडबड न हो, इसलिए साथ-ही-साथ वे यह भी सूचना पहले ही दे देते है कि गवाहो मे से कई लोग घटना देखने से पहले ही खिसक गये, और अन्य कितने ही घटना देखकर भी उसकी सचाई पर विश्वास नही करते। उदाहरण के लिए, वकील साहब बाबू कैकयीनदनजी का (माधुरी के विशेषाक में) बयान देखिए। आपके जातिस्मर पुत्र के अपने पूर्व-पिता पडाजी के यहाँ पहुँचते-ही-पहुँचते श्रीमान् और श्रीमती मेहता लौट गए। और, पडाजी ने तो अपने पुनर्जात पुत्र की एक बात न मानी। आशा तो इस करामातवालो को हुई होगी कि बालक को देखते ही पडाजी उठकर आँसू बहाते हुए इसे गले लगावेंगे, और अपनी लाखो की सपत्ति इसे लिख देंगे। पर करामातियो को हाथ मलकर रह जाना पडा।[५]

बडे-बडे गवाहो के नाम की धारा जब निकाली जाती है, तब बच्चो का दिल धडक जाता है। खासकर उन्ही के बाप-दादो के नाम उनमे हो, तो वे और भी काँप उठते है। वस्तुत ऐसी बातो के लिए सफाई के गवाहो की कभी कमी नही रही। मैंने तो ऋक्सहिता मे जो पति—वशीकरण आदि के औषध आदि लिखे है, या छादोग्य मे जो पतजलि की पुत्री पर दध्यभव के प्रेत की सवारी लिखी है, तथा महाभारत आदि मे जो सुद्युम्न का

४. एक स्थानीय वकील (जिनकी उम्र उन्हीं के मुख से पचास बरस की जान पड़ी) मुझसे यही अपनी आस्तिकता का कारण बताते थे। एक सज्जन अपने व्यामोह में कहने लगे कि वकील साहब पचहत्तर बरस के है, पर देखिये, कैसी सिद्धि इनको है। अभी हाल में इनके बाल काले हो गए है। ऐसे ही व्यामोहों से यह देश गिरा जा रहा है।

५. काशी के कुछ लोग मुझसे कहते है कि यह सारा फसाद यहाँ के एक वकील साहब का था। सिखा-पढ़ाकर लाया हुआ बच्चा भी न ठीक किसी को पहचान सका, न कुछ कह सका। यह कैसा व्याहत है कि बच्चों का तो दिमाग जन्म से तीन-चार बरस तक की इस जन्म की बातों का स्मरण नहीं रख सकता, पूर्व-जन्म की क्या यादगारी रख सकता है। कहते है, यह शक्ति थोड़े दिनो में नष्ट हो जाती है। यह छल इसेलिए रक्खा गया है कि कोई बेवकूफ इसके पीछे पड़े और लड़के से फिर कुछ कल्पित पूर्व-जन्म की बात पूछे, तो उसके हिमायती कहेंगे कि अब यह कुछ नहीं कह सकता। जाँच से भागने की ये अच्छी तरकीबें है।

इला हो जाना, तथा शिखंडी का स्त्री से पुरुष हो जाना, या गीता आदि में कृष्णजी के पूर्व जन्म में विवस्वान् ने अपने योगोपदेश आदि की बातें लिखी है, उन्हें भी विचार से देखा। इसके अतिरिक्त सांप्रतिक हाईकोर्ट के जज और राजे-महाराजे, बारिस्टर आदि से ऐसे विषयो पर मेरी खूब बातचीत हुई। एक स्थानीय बारिस्टर जज ने मुझसे कहा कि वैद्यनाथधाम में उनके सामने ही एक साधु ने पाँच सेर हलुवा बनाया, और उसमें से पाव-पाव भर पाँच सौ स्त्री-पुरुषो को बाँटा, तथा उसी धाम के एक संत ने एक अँगरेज जज की भावी उन्नति की ठीक तारीख बता दी।[6] एक बारिस्टर ने मुझसे कहा है कि एक दूसरे मरे हुए बारिस्टर का भूत आता था जिसके आवेश में उन्होने उसकी एक अँगूठी का ठीक-ठीक पता बताया, जिसे और कोई नही जानता था। एक एम्०ए० प्रिंसिपल साहब मुझ से कहा करते है कि उनकी स्त्री (जिसकी मृत्यु दस-बारह वर्ष पहले हो चुकी है) लोकान्तर से उनके यहाँ पत्र भेजा करती है, जो पत्र एक अठारह वर्ष का सीधा लड़का लिखा करता है। प्रिंसिपल महाशय ने यह भी कहा कि जब इस लड़के पर आवेश आता है, तो कल कलकत्ते से आनेवाले यात्रियों की बातें भी वह कह देता है, और जिनके आने की बातें वह कहता है, वे आ भी जाते है। जब मैंने इनसे कहा कि जब वह आवेश में आवे, तो एक बड़ी पुस्तक में कहीं कागज लगाकर उससे पूछिये कि वह कागज किस पृष्ठ में है?[7] तो महाशय जी ने इस पर मुझसे कहा कि पंडितजी, प्रेतों में भक्ति कीजिये, उनकी परीक्षा नहीं की जाती। ऐसे ही एक स्थानीय सज्जन के यहाँ बँसुरिया बाबा आये थे, जो अपने अंगो से लड्डू, रसगुल्ले आदि निकालकर लोगो को खिलाया करते थे। मुझसे इन सज्जन ने कहला भेजा कि यह मेरे घर से लिखी हुई पुस्तक मँगा दे सकते है। जब मैंने इन सज्जन के बहुत आग्रह पर पत्र लिखा कि यदि मेरी टोपी मेरे सामने से थोड़ी ही दूर, बिना छूए, अपनी अलौकिक शक्ति से, वह खींच लें, तो मैं १०० से ५००० तक रुपए उन्हें दूँ, यदि वह-या उनके पक्षवाले भी उनके यह कार्य न करने पर इतना ही द्रव्य देने का वादा करें। यह पत्र संध्या को मिलते ही

---

६. जब जज साहब ने मुझसे पूछा कि उस संत ने यह करामात कैसे की, मैंने तो यह सब अपनी आँखों से देखा है, तब मैंने उत्तर दिया—'मेरे मत से तो यह मजे का क्रिश्मा है।' इस पर जज साहब बहुत बिगड़े, और काँपने लगे।

७. इस प्रश्न के उत्तर के लिए मैंने कितनी बार कितनों को रुपये रखकर ललकारा और भारतमित्र आदि में सूचना दी। मेरे मित्रों ने भी कितनों को सूचना दी; पर 'कहता तो बहुत मिला करता मिला न कोय।' वंचक लोग कैसे आ डटें। अखाड़े में वे कभी न आवेंगे। आ जायें तो बाजी जीतकर पारमार्थिक लोग मालामाल हो जायें। वे बाजी लगाए बिना हमारे प्रश्न और परीक्षा-प्रकारों के सहारे Clairvoyance, Telepathy, Mistrymen, Astrologer, Magician आदि के पास कभी न जाइए।

प्रात काल महात्मा यहाँ से चले गये। मैंने उनके आदमियो से पहले ही यह बात कह रक्खी थी। यह ठीक भी है। जब भूत, पुनर्जन्म, मंत्र आदि से द्रव्य उत्पन्न करना या खीचना आदि की गप्पे चले, तो परीक्षा के अखाडे मे नही उतरना चाहिए। क्रोध, गप्प, गाली आदि से या दुर्बल को मौन आदि से काम लेते रहना चाहिए। इसी से 'सिद्धसिक्थकमूर्त्तीनां परीक्षाग्नेर्महद्भयम' और 'क्रोध कथाबलात्कारादम्भस्य' तथा 'मौनसाधनाभावो रहस्य वा' इत्यादि परमार्थ वार्तिको मे परमार्थ भाष्य तथा परमार्थसूत्रो मे लिखा है?[८]

भूत आदि की बातो मे सफाई की गवाही देते रहना ही ठीक है; क्योकि इस देश में यह विश्वास अभी खूब है और यह जायगा भी बडी कठिनता से। काम, लोभ, मोह, इन तीन कारणो से मनुष्य अद्भुत घटनाओ की बाते किया करते है। 'देवास' आदि की तथा 'ब्रह्म' आदि की बाते निकालने से या 'प्लाचेट', 'मीडियम' आदि की प्रथा चलाने से लोगो की भीड़ लग जाती है। ऐसी भीडो मे भस्म आदि या आशीर्वाद आदि से पुत्र, पति-वशीकरण आदि के लिए या अपने पुनर्जन्म की कथा कहते हुए बालको को देखने के लिए, प्राय. स्त्रियाँ आती है, और उनका सहवास सुलभ होता है। बहुतेरे इन लोगो से धन भी कमाते है और कभी-कभी स्वय भी ऐसे भ्रमो मे पडे रह जाते है।[९] ऐसे कारणो से इस देश मे, तथा अन्यत्र, ऐसी बातो मे बहकाकर या मीडियम बनाकर लोग तरुणियो के साथ रहने का स्वतत्र अवसर पाते है। यहाँ यह अवसर पहले मूर्ख प्रेतवादियो को ही मिलता था। कहार, कुर्मी, जुलाहे, निपढ ब्राह्मण तथा भगी आदि मेरे बाल्य में बहुधा अपने ऊपर भूत बुलाना, या देवता बुलाना, या दूसरो का भूत झाडना, या उनका मनोरथ कहना, तथा भभूत (विभूति) देना, या फल आदि अपने देह-रध्रों से निकालना इत्यादि काम किया करते थे। पर पढे-लिखे पडित, वकील आदि के घरो मे ऐसे ओझा आदि नही जाने पाते थे। न उनकी स्त्रियाँ ही इधर-उधर जाने पाती थी। इससे बेचारे स्त्री-पुरुषो के आनद मे बडी विघ्न-बाधाये पडती थी। पर इधर कुछ वर्षो से हमारे उद्धार के लिए बराडी, चुरुट, चर्बी का घी, पत्थर या काठ का आटा, मेहतर के बधने के पानी में अलकोहल से बनी हुई दवा आदि के साथ थिऑसफी, स्पिरिचुअलिज्म, आदि का भी प्रवाह पश्चिम से ऐसा आने लगा कि इनका बयान पढ कर

---

८. सुधा के गतांक में जिन लोगो के द्वारा फूल बरसाने का तमाशा और पियानो स्वयं बजने और उठने के तमाशे की मजेदार कहानी लिखी है, और जिसे बाल्य में गौड़जी ने तरुण डॉ० टीबो के साथ भक्तिपूर्वक देखा था, वे लोग उस समय से कुछ पहले यहाँ बाबू पूर्णेन्दुनारायण के सौध में आए थे, तब चैलेंज देते हुए मि० एस्० सी० घोष बेचारे इसी नीति के अनुसार निकाले गये थे।

९. हाल में छपरे से बी० डी० ऋषिजी के टेबुल हिलाकर चले आने पर एक बाबाजी तथा अन्य लोग टेबुल, प्लांचेट आदि पर प्रेत बुलाकर स्त्रियो की बड़ी भीड़ अपने चारों ओर जमाते थे।

अगरेजी पढ़े-लिखे लोग खूब ऐसी बातो में फँसे; क्योकि जिन बेचारो को शब्दप्रमाणो के सहारे अत्यन्त व्याहत बातो में विश्वास करने का अभ्यास है[१०], उनकी, अँगरेजी में जो कुछ लिखा हो, उसे कानून या विज्ञान, और सस्कृत में जो लिखा हो उसे दर्शन या धर्म समझने की प्रवृत्ति रहती है[११] हाल में केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) के एम्० ए० रामदास जी गौड हरमूब्रह्म की खूब पूजा करते-कराते है, और तीन अनाथ लडके कहीं से उठा लाये हैं, जिन्हें वह अपने पूर्व-पुत्र बतलाते है। उनके एक साथी से पूछने पर उन लडको का मुझे ठीक पता लगा कि ये अनाथ बालक है, उनके अपने लडके नहीं। इन्हे वह अपने पूर्व-जन्म के पुत्र बतलाते हैं। एक वैदिक विद्वान् भी एक नाई की विधवा को रखकर कहा करते थे कि वह पूर्व-जन्म की उनकी पत्नी है, और उनके मरने पर सती हो गई थी।[१२] अब कहिये, यदि इसी प्रकार स्त्रियाँ अपना-अपना पति छोडकर अपने बेटे-भतीजे[१३] आदि में पूर्व-जन्म के पति पहचान लिया करें, तो संसार की क्या अवस्था होगी। शासक लोग बुद्धिमान् है, नहीं तो कितने ही दूसरी स्त्रियों से इस प्रकार जोरू का नाता लगा लिया करते, या दूसरों के लडको को अपनाकर असली हकदारों का हक इन लडकों को दे दिया करते और कानून, नीति तथा धर्म, सब चूल्हे में चला जाता।[१४]

---

१०. मेरे मित्र एक बूढे भट्टाचार्य बीबी बसंती के बड़े उपासक थे, और मेरे साथ उनके कॉलेज में नौकरी भी करते थे। यद्यपि मैं तो नास्तिक और पैसे का भक्त था, पर यह महाशय बेखरीदे गुलाम थे। Myer's Personality आदि में लिखी हुई प्रेत-वार्ता पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। प्रणवोच्चारण का बड़ा माहात्म्य मानते थे। मेरी एक नहीं सुनते थे। बीस बरस बाद मुझसे, बीबी के अनुचरण से लगे होने के कारण, यह स्वयं कहने लगे कि मनुष्य के प्रथम अवतार के प्रवाद से यह घबरा गए थे। इस पर मैंने इनको समझाया कि जो टोकरी यह पहले ही से ढो रहे थे, उसमें एक बालटी अपनी भी मेम साहब ने उझल दी, तो यह क्यों घबरा उठे?

११. सुधा की गत किसी संख्या में जाति के दुष्परिणाम पर जो लेख है, उसमें भी लिखित सभी बातें न मानने की राय दी गई है।

१२. मुद्गरदूत-काव्य (संस्कृत शारदा में प्रकाशित) में उसके नायक मूर्खदेव जी ने कहा है—'आसं पूर्वं रजकभवने रासभः साधुवृत्तो येषा श्रेष्ठा मम च विधवा रासभी मे मती सा।' (पुर्वमुद्गर)

१३. बाबू कैकयीनंदनजी ने लिखा है कि एक लड़का अपने को अपना पुनर्जात पिता बताता है।

१४. सौभाग्य से गौड़जी को इस जन्म में भी अभी एक चिरंजीव हुआ है। मेरे पाँच सेर (माधुरी, विशेषांक) के पाँच मन हलवे वाले जज यू० पी० में होते, तो इस बालक का तीन-चतुर्थांश धन इसके पूर्व-जन्म के भाइयों को अवश्य दिलाते।

वस्तुत किसी को कभी सच्ची रीति से भूत-प्रेत या पुनर्जन्म आदि व्याहृत बातोपर विश्वास नही हुआ, और न हो सकता है। अधिकतर लोग काम या लोभ ही से ऐसे विश्वास फैलाने पर उद्यत होते हैं। केवल कभी-कभी कुछ लोगो की मोहवश इस ओर प्रवृत्ति हो जाती है। पर यह भ्रम ठहरता नही। होते ही इधर-उधर बिखर जाता है। ऐसा पुरुष या ऐसी स्त्री कौन है, जो स्थिरता से दूसरे को अपनी पुनर्जात पत्नी, पति आदि समझता या समझती रहे, पाँच सेर हलवे को पाँच मन बनवाने का यत्न किया करे, या राम-राम कहते हुए आग मे घुसकर जले? ऐसी व्याहृत व अयुक्त बाते क्षण ही भर किसी के मन को मोहित कर सकती है, सदा के लिए नही। मनुष्य स्वभावत ऐसी झूठी बातो से हटकर पारमार्थिक बातो की तरफ झुकता और 'स्व' तथा 'पर' कार्यो मे लगता है। इसी से ससार चल रहा है। आश्चर्य यह है कि लोग दूसरो को ऐसा मूर्ख समझ लेते है कि ऐसी गप्पे हाँकने मे हिचकने पर भी बडे-बडे गवाह नाम के बल पर उन्हे हाँक ही देते हैं। यह नही समझते कि ऐसी बाते गवाही से नही मानी जाती। ऐसी बातो का प्रत्यक्ष या अनुमान तो हो ही नही सकता। फिर बरेली के वकील साहब तथा उनके समान विश्वास वाले या विश्वास प्रकाशित करने वाले इन बातो की वैज्ञानिक जाँच करने के लिए क्यो दूसरो का आह्वान करते है? किसी के कहने पर जो परीक्षक-नामधारी नाक के सूराखो से छीककर[१५] उत्तर निकालने की शक्ति रखनेवाले बालक की परीक्षा करे, वह न तो दार्शनिक है, न वैज्ञानिक। ऐसे ही किसी बडे-से-बडे आधुनिक या प्राचीन गल्पकार की बात मानकर जो आशीर्वाद से भक्तो को सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् बनानेवाले स्वामी सुवर्णजिह्व की खोज मे प्रत्यक्षैकवादी चार्वाक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को बडी बारीकी से देखने लगे[१६] कि न जाने किसकी जीभ सोने की है,

---

१५. 'सुनि आचरज करै जनि कोई'! 'क्षुवतश्च मनोरिक्ष्वाकुर्घ्राणतो जज्ञे' ऐसा विष्णु-पुराण में लिखा है। यह पुराण-वाक्य, पचीस वर्ष हुए हयजिह्वपुरीय श्री १००८ मुद्गरानन्द जी ने, मेरा नास्तिक्य हटाने के प्रयत्न में, मुझे दिखाया था। आपका विस्तृत चरित काशी ना० प्र० पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। संक्षेप से इसकी सूचना मुद्गरदूत में भी मिलती है। आप दीन कुत्सित (Don Quixote) के बड़े भाई जान पड़ते हैं; क्योंकि अपनी उम्र ११८४६ बरस के लगभग बताते हैं। कितने ही इनकी गप्पो को सत्य भी मानते हैं। धन्य मौझलकी! (Medioeval India.)

१६. श्री १००८ मुद्गरानंदजी कहा करते हैं कि कितने ही स्त्री-पुरुषो की जीभ या और कई स्पृहणीय सुकुमार अंग सुनहरे होते हैं। ऐसे लोग बड़े सुभग होते है। उनके 'दरस, परस, मज्जन अरुपाना' आदि से स्वर्ग, स्वराज्य आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह भी कहते है कि अष्ट युग का सामुद्रिक ही बदल गया है—श्यामा पद्मिनी के बदले में अब नामधारी राजा लोग श्वेत हस्तिनी का शिकार अच्छा समझते हैं; काली आँखो और बालो की अपेक्षा पीली आँखो और बालों में अधिक राज्यश्री बसती है। नहीं तो लोग सुवर्ण-जिह्व और सुवर्णवरागी की खोज अवश्य किया करते। रेखांकित शब्दो के अनेक अर्थ भी श्रीजी बताते है।

उसे, या जो पूर्व जन्म स्मर्ता बालक-बालिका की खोज की मृग-तृष्णा मे अपनी वकालत आदि धन-तृष्णा-शांति-क्षम कार्यों के योग्य समय को खोवे, उसे कैसे दार्शनिक या वैज्ञानिक कहा जा सकता है। और, उसके पीछे लगकर तथा उसके बताए हुए बालक-बालिकाओ की जाँच मे जो मर मिटे, उसे भला क्या कहा जा सकता है। दर्शन, विज्ञान, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र तो पाठको के दिल मे यही असर पैदा करते है कि जब कोई रिपोर्ट करे कि "एक मनुष्य ने मत्र-शक्ति से गधे के सीग पैदाकरतत्र-शक्ति से उस सीग को विना घूमे अपने हाथ से खीचकर उसी से मुझे खोदा, और मै खून से शराबोर हो गया", और खून दिखलाता हुआ इसकी गवाही मे प्रत्यक्ष देखनेवाले राजा, महाराजा, हाईकोर्ट के जज, बारिस्टर आदि का नाम ले, तो याज्ञवल्क्य आदि के अनुसार इस मुकदमे को व्याहृत समझकर, बडे-बडे नामो का कुछ खयाल किए विना, चट 'डिसमिस' कर देना चाहिए। न तो कोई जाँच करनी चाहिए, न गवाहो को समन भेजना चाहिए। ऐसा जो न करे, वह स्वय धूर्त्त, मूर्ख या पागलहै। नही तो कम-से-कम या ज्यादा-से-ज्यादा अलिफ लैला या बृहत्कथा का कवि है।

हाँ, ऐसी बातो को मानने के लिए लोगो को मजबूर करना हो, तो केवल हाका के साथ मुहतोड परीक्षा-निकषो (Crucial Experiment) की शरण लेनी चाहिए। मै ऐसे परीक्षा-निकषो के थोडे-से उदाहरण और इस परीक्षा का प्रकार यहाँ लिखता हूँ, जिससे लोग वचना मे न पडे। अद्भुत बाते दिखानेवाले परीक्षा मे नही आते। कभी आते भी है, तो नाहक दूसरो का समय नष्ट करते हुए छल से काम लेते और हार जाने पर भी बात बनाया करते है[१७] जिससे वैज्ञानिको का सतोष भी नही हो सकता। इसलिए परीक्षा के तीन नियमो का स्मरण रखना चाहिए।

नियम१—परीक्षको को विना शुल्क (फीस) लिए परीक्षा लेने का कार्य न करना चाहिए, नही तो परीक्षको का समय व्यर्थ नष्ट होगा और परीक्षक बेचारा वचको का भक्त समझा जायगा। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर परीक्ष्य पारितोषिक के लिए फीस से कम, बराबर या अधिक भी द्रव्य आदि रखना चाहिए। परीक्ष्य के अनुत्तीर्ण होने पर फीस और पारितोषक, दोनो उठा लेना चाहिए। ऐसी बातो मे उसके उत्तीर्ण होने की तो शका ही

१७. परीक्षक होने के लिए सावधान तर्क ही अत्यंत अपेक्ष्य है। विशेष शास्त्रो की ऐसी जरूरत नहीं। मै प्राणायाम से उड़ना या इंजीनियरी विद्या स्वयं चाहे न जानूँ पर बेचारा काना ब्रह्मचारी उड़े, तो आँख से देखना कठिन नहीं है, एवं अंजिन कोई झोंककर निकाले तो उस पर चढ़कर सफर करना दुस्तर नहीं। सुतार्किक तो बिना देखे ही समझ जाता है कि ऐसी बातें व्याहृत हैं और कभी हो ही नहीं सकतीं। इसी से व्याहृतवादी लोग बीस बरस भक्ति पहले ही करा लेते हैं। यह भक्ति वकील और डॉक्टर की फीस है। हारने या मरने के बाद तो मिलेगी नही; नकद लेनी चाहिए।

नही है, इसलिए परीक्षक की हानि कभी सभव नही। ऐसी कुश्ती मे बाजी रहे, तो पारमार्थिक को लाभ-ही-लाभ है।

नियम २—प्रश्न बदल देना चाहिए। परीक्षा देनेवाला जो कुछ कह या कर सकने का दावा करता हो, उसे उससे कही सरल कोई बात कहने या करने का प्रस्ताव करना चाहिए। किंतु परिवर्त्तन बहुत सापेक्ष्य है। नही तो परीक्ष्य कुछ ऐसे छल सीखे रहता है कि परीक्षक धोके मे आ जाता है।[१८]

नियम ३—यह भी खयाल रखना चाहिए कि न्यायत जितना अपेक्षित है, उससे अधिक या कम, कुछ भी परीक्ष्य को नही दिया जाय, नही तो परीक्ष्य अपनी जादू की ऐसी सोहनलाली[१९] सफाई दिखलावेगा कि परीक्षक की सब सावधानी व्यर्थ हो जायगी।

आगे के उदाहरणो से इन तीनो नियमो का उपयोग स्पष्ट हो जायगा। कोई कहे कि मै ध्यान, मेस्मेरिज्म, प्रेत, कर्ण–पिशाची आदि के बल से भूत, भविष्य, वर्तमान, व्यवहित, अव्यवहित, सब बाते प्रत्यक्ष देखता और यहाँ से कलकत्ता, अमेरिका आदि की बाते बतला सकता हूँ, तो अपने सामने किसी पुस्तक मे कही कागज रखकर उससे पूछना चाहिए कि यह कागज किस पृष्ठ मे है, कहिए। वह कितना ही कहे कि पुस्तक दूसरी कोठरी मे रखवा दीजिए इत्यादि, तो उसकी एक नही सुननी चाहिए। यदि कोई कहे कि मै कुएँ मे फेकी हुई घडी यहाँ मँगवा सकता हूँ, तो, अपने सामने घडी, टोपी या और कोई वस्तु रखकर, उससे कहना चाहिए कि इसे थोडी ही दूर, बिना छुए-छाए, हटा दो, तो तुम्हें परीक्षोत्तीर्ण समझूँ, कुएँ से खीचने का कष्ट क्यो उठाते हो? जो बडे-बडे लाट आदि का प्रशसा-पत्र दिखाता है कि वह बक्स मे बैठकर, ऊपर से रस्सा बँधवाकर, ताला लगवाकर, मुहर ठीक कर, कोठरी मे बद होकर, बाहर जजीर तथा दोहरा ताला लगा देने पर भी बक्स कोठरी से गायब हो जाता है, या टेबिल

१८. परीक्षक अपने-अपने विषय में समझ सकता है कि कौन किस परीक्षा का पाठ्य जानता है, परंतु झूठे सार्टिफिकेटवाला अगर पूछे कि यदि तुम्हारी दृष्टि में मैं योग्य हूँ, तो मैं घूस देकर या कॉपी बदलकर किस प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ, यह बताओ, तो परीक्षक को ऐसे दुष्ट के सामने से हट जाना चाहिए। उसके अनुष्ठित छल का जानना परीक्षक का काम नही है। अगर चोर कहे कि 'प्रेत लोटा ले गया होगा। अगर ऐसा नहीं, तो आप ही चोर का नाम बतलाओ।' अगर विधवा कहे कि जार का नाम कहिए, नहीं तो मेरा पुत्र देवज है, तो इसकी बात कौन मानेगा।

१९. सोहनलालजी बक्स में लड़का पारसल कर देते थे, जो बाहर डबल तालेवाली गाड़ी के भीतर ही अपने बक्स में से निकल कर चाँदी, सोने, जवाहिर आदि के छोटे पारसल लेकर बक्स में घुस जाता था और भीतर से बक्स की पिछाड़ी बंद कर लेता था।

पर सुलाकर यदि टेबिल हटा लिया जाय, तो भी वह नही गिरता, निरालव आकाश में पडा ही रह जाता है, तो विना वक्स आदि के, अपने सामने ही, हवा में गायव हो जाने को या जमीन छोडकर ऊपर खडे, वैठे या पडे रहने को कहना चाहिए। जादू वाले रुपये-अशर्फी आदि, या साँप, फल आदि या अपने आस-पास के लोगो के अगो से, या वस्त्रो से ऐसी सफाई से निकालते है कि [२०] देखनेवाले यही समझते है कि सव चीजें मत्र या तत्र शक्ति के द्वारा हवा से आ रही है। भोले-भाले लोग कहते है कि मतर, ततर भूत, प्रेत करन-पिसाची आदि की करतूत है। देशातरो में १८ वरस की लडकी को मीडियम वनाकर उसके साथ एकात मे रहने का व्याज खोजते हुए कुछ पुरुषो या तरुण वच्चो को अवतार आदि वनाकर अपने साथ रखने का यत्न करती हुई स्त्रियो के सिवा प्राय सभी ऐसी अद्‌भुत वातो को गप्प या हाथ की सफाई समझते और स्वय करते भी है। [२१] और उसमें कोई दिव्य शक्ति नही समझते। इसीलिए वहाँ देश की विशेष हानि नही होती। असत्य प्रेम और मृगतृष्णानुसरण में लोग नही पडते। पर इस देश मे लोग वातो द्वारा अपूर्व असत्यो को फैलाना चाहते है, इसी से वातो के द्वारा ज्ञान, विज्ञान, धर्म, नीति, न्याय, सभी के विकास में वडी वाधा पड रही है। ठीक ही है, वाधा तो पडेगी ही। भला अपने पूर्व-जन्म के पचास वर्ष के साथी पति को जो पहचानेगी, वह अपने नए सद्य परिणीत अपरिचित पति के साथ कैसे रहेगी। और, एक से अधिक पूर्व-पतियो को पहचान ले, तो और गजव हो। जिसको पूर्व-जन्म के लड़के तक मिल

---

२०. पटने के चीलर मियाँ (बेचारे मर गए) बड़ी सफाई से रुपये, अशर्फी, कोंहड़े के वरावर सरदा आदि फल इसी प्रकार निकालते थे। रुपये अशर्फी तो कुर्त्ता मात्र में से मेरे सामने निकालते थे। पर लाट आदि के दरवार में मोटे पाजामें आवे आदि पहन कर सरदा निकालते थे। मैंने उन्हें अंटसंट कपड़े हटाकर रुपये निकालने को कहा, तो नहीं राजी हुए। साँप निकालने वाले पिछुए के भीतर दो साँप लगाए रहते हैं। वे कच्छ-बंधी दशरथी धोती से समय पर इन्हें झाड़ देते हैं। ऐसे ही छली लोग फासफोरस मुँह से निकालकर आग दिखलाते या ऐस्बेस्ट से आग रोकते हैं।

२१. मेम पाइपर लावेस्टकी (Piper Blavaxtsky) आदि के छल कैसे खुलें, इन वातो के लिए मास्केलीन की पुस्तकें या (Cyelopedias), देखिए। ताला-मुहर आदि लगे हुए वक्स से निकलने आदि के छल विलायत में रोज पकड़े जाते हैं। छल पकड़ जाने पर दूसरा छल बना लिया जाता है। हाल में एक गरीब नंदन-नगर में अपनी बहन का प्रेत दिखाता हुआ आप ही पकड़ा गया है। प्रकाश कम कर स्वयं स्त्री के सफेद गाउन पहने यह कमरे में दूर खड़ा था। तब तक किसी ने पाकेट-लैंप जलाया और इसे पकड़ा। यह बेचारा बेहोश गिर गया, और क्षमा माँगने लगा।

जाया करेंगे, वह अपना धन अपने असली दामादो को क्यो लेने देगा, इन्ही को न देगा। जो भूत, भविष्य, वर्त्तमान यो ही जान जायगा, उसे पढ-लिखकर 'ग्रहण कब लगेगा!' यह जानने की क्या जरूरत है। जिसके रोग किसी के शरीर की भस्म ही से या एक अस्पृश्याग के रोम ही से, या ब्रह्माजी की दुआ ही से अच्छे हो जायँगे, उसे आयुर्वेद की क्या अपेक्षा है? जिसे घास-पात के जरिए सोना-चाँदी बना लेने की विद्या मे विश्वास है, वह श्रम-जीवी क्यो होगा, या केमिस्ट्री (रसायन शास्त्र) क्यो पढेगा, या पढकर भी उसका अनुसरण क्यो करेगा? जो प्राणायाम ही से उड सकता है, उसे व्योम-यान की क्या परवा? जो पवित्रातिपवित्र (His Supreme Holiness) श्री १००८ स्वामिवर मुद्गरानदजी के नासाग्राह (Nasograph) से ही सवाद पा जाता है, उसे रदीय, दूरग्राह या दूरस्वन (Radio, Telegraph, Telephone) की क्या अपेक्षा है? जो काशी के काना ब्रह्मचारी[२२] के समान योग-यष्टि ही से (या प्राणायाम ही के व्याज से) तहखानो की गच से उडता हुआ अपने को दिखा सकता है, उसके अनुयायी रेल, व्योम-यान आदि मे क्या श्रद्धा रख सकते है तथा सपूर्णानदजी की ध्वनि-शक्ति-विभूति से जो

---

२२ यह काशी में रहते है, मेरे गुरु-भाई प० हरिशंकर जी महाराज से पढते थे, और उन्होंने उड़ना दिखाने की गुरुदक्षिणा करार की थी; पर इसकी पूर्त्ति से बेचारे गुरुजी वचित ही रहे। मै इनका नाम नहीं जानता, इससे इनके अग-विकार का नाम देना पडता है, जिसका मुझे खेद है। बाबू ललन जी और मेरे प्रिय मित्र पं० अयोध्यानाथ जी को आपने तहखाने में उड़ना दिखाया था। आप पैर में काली पट्टी बाँधकर सफेद बुर्का ओढकर बंद तहखाने आदि में लाठी से बुर्का उठाते हैं; लोग समझते हैं बुर्का स्वय आपको लिये हुए उठ रहा है। मेरे समझाने पर पंडितजी ने यह रहस्य समझा। लोग आपको उड़ते हुए किवाड़ से सूराखो ही से देखते है।

डिनामाइट का काम कर पहाड़ फोड़ने की [२३] गप्प हाँकता है, उसके समान लोग नोवेल आदि की क्या पूजा कर सकते हैं? 'जैसा पूर्व जन्म का कर्म है, वैसा फल होगा' ऐसा माननेवाले को तो यह विश्वास है कि लड़के को अंधा, कोढ़ी, लंगड़ा, धनी, गरीब, पुण्यात्मा, पापी, जो कुछ होना है, सो होगा ही, तो ऐसे आदमी को चरकाद्युपदिष्ट गर्भरक्षा के प्रकार से या धर्मशास्त्र-नीतिशास्त्रादि-वर्णित आयुर्धनादि-पोषक सदाचार तथा सदुद्योग आदि से क्या प्रयोजन ?

'सुधा'—वर्ष १ खंड १; पौष, ३०५ तुलसी-संवत् (१६८४ वि०)—जनवरी, १६२८ ई०

२३. हाल में 'आज' पत्र में आपने सर ऑलिवर लॉज आदि की गवाही से सुधा में प्रकाशित मेरे पुराण-तत्त्व का बड़े आर्यजन से खंडन करने की स्पृहणीय चेष्टा की है। लोग यह नहीं समझते कि जिन नास्तिकों को श्रौत स्मार्त शब्दों से प्रत्यक्षानुमान-विरुद्ध बातों पर श्रद्धा न हुई, वे पाश्चात्य पंचों के आगे प्रेत फोटो आदि की गप्पों पर क्या भक्ति कर सकते हैं। एक दिन ललकारे पर बाजी रखकर पहाड़ फोड़िए तो नास्तिकता का पहाड़ आप ही गिर पड़े। कथानकों से तो आपके चित्त के साथ नास्तिकों का भी चित्त विनोद-कल्लोलों में पड़ ही जाता है। एक योगी का नंद के मुर्दे में घुसकर अंतःपुर में रासलीला करना या श्री शंकर का आकाश-मार्ग से मंडन जी के घर जाना इत्यादि कथाएँ क्या हमलोगों को नहीं रुचती हैं। पर शाम को दादीजी या नानीजी से उड़नखटोले की कथा सुनना या रामदासजी गौड़ आदि की हास्य-जनक लेखावली में हरसू ब्रह्म, भूत-प्रेत आदि की या बी० डी० ऋषि की टेबुल हिलाने की बातें पढ़ना या ताजी शिरीष बाबू आदि थियॉसोफिस्ट की शेखचिल्ली की कहानियाँ या और ताजे कृष्णमूर्त्ति के अवतार होने की खबरें पढ़ना या पुराने सहस्ररजनी आदि को बाँचना मनोरंजक अवश्य है पर कार्य तो दिन-रात रस्सी के खटोले और सिद्धि विभूत्यनभिज्ञों के क्षुद्र आविष्कार रेल-तार आदि ही से करना पड़ता है, नेउरा मैया की अशर्फी शौच करती हुई कानी गधी के लिए अपने घोड़े मत फेंको।

परमार्थ-सिद्धांत

विज्ञान और दर्शन तथा तदनुयायी धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि सभी शास्त्र बतलाते हैं कि असली घटनायें अव्याहत होती हैं। या अव्याहत घटनाएँ न भी हुई हो, तो हो सकती है। प्रत्यक्ष या अनुमान से इनका वास्तव होना माना जाता है। केवल शब्द की गवाही हो, तो उनका होना माना जाता है। जैसे योग्य वयवाले स्त्री-पुरुष से संतान, गऊ आदि मे दूध, चाँदी-सोने आदि से सिक्के, लोहा आदि अनेक द्रव्यो से रेल के तार, बेतार के खंभे मे संवाद-प्रदान, विमान आदि हो रहे हैं। पर व्यवहृत बाते शब्द की गवाही मे नही मानी जा सकती। चाहे वे शब्द ऋग्वेद से लेकर किसी लेख के हो, या प्राचीन, आधुनिक, भूत, भविष्य, हिंदोस्तानी, योरोपीयन, अमेरिकन आदि किसी बडे-से-बडे विद्वान् के हो। वर्ष-दो वर्ष के मनुष्यो से संतानोत्पत्ति, सौ-दो सौ हाथ का आदमी, अँगूठे भर के ऋषि, छीकने मे हाथी निकलना, नाक दबाकर उड़ जाना, शब्दोच्चारण या ध्यान मात्र से किसी वस्तु को उत्पन्न करना या उसे बदलना, बिना पिता या बिना माता के संतान होना, बेहोशी मे दीवार के पार की व्यवहित वस्तु देखना, हवा मे रुपये निकालना, खाली बोतल से दूध निकालना, अपने पूर्व-जन्म की बाते कहना, इत्यादि बाते इसी तरह की हैं। सर ऑलिवर लॉज (Sir Oliver Lodge) क्या, किसी महामहर्षि की भी गवाही मे ऐसी बातें सही मानना किसी को उचित नही। "स्वामी जी ने मंत्र से गधे के सिर मे दो बडे सींग निकालें और तंत्र से उन सीगो को बिना छुये-छुआए अपने हाथ मे मँगाकर उनसे मेरे ऊपर प्रहार किया, जिससे अभी मेरे शरीर से रक्त निकल रहा है। इस रक्त को देख लीजिए। मेरी बातो के साक्षी कई राजे-महाराजे, जज, वकील, बैरिस्टर, ऋषि, महर्षि हैं। उनके नाम बतलाता हूँ, उन्हें समन भेजिए"—ऐसा मामला यदि किसी हाकिम के पास कोई लावे, तो बरेली के पूर्व जन्मवादी बाबू केक्यीनंदनजी[1], या योग-मंत्र आदि के बल से पहाड़ तोडनेवाले संपूर्णानंदजी[2], से लेकर पाँच सेर हलवे मे से पाँच सौ आदमियो को पाव-पाव भर खिलाने की बात माननेवाले हाईकोर्ट के जज[3] और अपने ऊपर मरे बैरिस्टरो का भूत बुलानेवाले

---

१. 'माधुरी' के अंतिम विशेषांक तथा 'लीडर' में आपकी बातें हैं।

२. अभी 'आज' में आपने ऐसी बातें लिखी हैं।

३. पटने के एक बैरिस्टर जज कहते हैं, इन्होंने इस घटना को अपनी आँखो से एक साधु को करते हुए देखा है।

बैरिष्टर साहब[1] या अपनी मरी हुई स्त्री की चिट्ठी मँगानेवाले प्रिंसिपल[2] तक कोई महाशय हाकिम की कुर्सी पर बैठकर ऐसे मामले को नही चला सकते, और न अपने मन ही मे ऐसी बातो पर विश्वास कर सकते है। हाँ, ऊपर से भले ही ऐसी बातो का प्रचार किया करे। बिना गवाहो को समन दिए ही हरएक ऐसे मामले को डिसमिस कर देगा।

ऐसे गप्पो मे किसी को विश्वास तो है नही यदि किसी को पक्का विश्वास होता, तो हमारे जैसे विज्ञान के पक्षपातियो मे से ही किसी का चैलेंज स्वीकार कर वह पचो के सामने प्रचुर द्रव्य की बाजी रखकर, अपनी करामात दिखलाने अवश्य आता। लोग कहते हैं—"इन लोगो को क्या गरज है, जो अपनी करामात दिखलावे ? जिसको गरज हो, उनकी भक्ति करे।" भला कहिए, व्याहतवादी अवैज्ञानिक की भक्ति कोई क्यो करे ? जो कहता है— "ऐसे शब्द या ऐसी भावना से आदमी आग मे नही जलता, और सब जगह की खबर जान जाता है, चाहे जहाँ से चीजे मँगा सकता है", वह तो अपनी बातो पर पक्का है नही, वह कभी अपने मत्रो को जपता हुआ आग मे नही कूदता और सदा रेल, तार आदि से पार्सल खबर आदि मँगाया करता है, तब जो लोग अपनी बातो पर पक्के है, और सदा वैज्ञानिक रेल-तार आदि की ही भक्ति करते है, वे कैसे स्वय ऐसे व्यक्तियो की भक्ति करेंगे या भरसक दूसरो को ऐसे मार्ग मे जाने देगे ? लोहे आदि से एंजिन बनानेवाले इंजिनियर की भक्ति की जाती है, डिनामाइट से पहाड तोडनेवाले की भक्ति की जाती है। पर मत्र-ध्वनि से पहाड तोडने वाले की या ध्यान से काबुली मेवा आदि मँगानेवाले की भक्ति नही की जा सकती। इस समय का पति, पुत्र आदि अपना माना जा सकता है। पर पूर्व जन्म के पति पुत्र का नाता लगानेवाले के फेर मे लोग[3] न पडेगे और न दूसरा ही कोई सच्चे भाव से पड सकता है।

---

१ एक पटने के बैरिष्टर कहते है, उनके ऊपर एक मरे हुए बैरिष्टर का भूत सवार हुआ करता था, और अपनी खोई हुई अँगूठी आदि का पता बता देता था, जिसे कोई और नही जानता।

२ एक प्रिंसिपल महाशय कहते है, उनकी मरी हुई स्त्री एक अट्ठारह वर्ष के सीधे बालक पर आती है, और उस समय बालक भूत-भविष्य आदि की बातें बताता है। जब कहा जाता है कि किसी पुस्तक में एक कागज रखकर बालक से पूछिए, किस पृष्ठ में है, तो महाशय कहते है, 'प्रेत की भक्ति करो, जाँच मत करो'।

३ हाल में (माधुरी का विशेषांक देखिए) बरेली के वकील बाबू केकयीनंदन जी अपने लडके को काशी के एक पंडे के पास लाए थे। और, वह या उसके साथी कहते थे कि वह पूर्व-जन्म में पंडाजी का पुत्र था। पर पंडाजी ने उनकी एक न सुनी, और अपनी संपत्ति का दायाद उसे नहीं बनाया।

मर ऑलिवर लॉज[1] केमिस्ट्री के विद्वान हैं। बैरिस्टर या जज कानून की खबर रखता है और लोग व्याकरण आदि के विद्वान् होते हैं। पर प्रेत अपने ऊपर या दूसरे पर बुलाने मे तो जैसे लॉज महाशय या रामदास जी गौड[2] वैसे ही भूँजा वाला पँचकौडी भगत[3] या चिलर मियाँ[4] या हरसू ब्रह्म या हरिराम के पडे। बल्कि ऐसी बातो मे तो अपढ गँवार जैसी आसानी से ओझाई, जादू आदि की सफाई दिखलाते हैं, वैसी बी० डी० ऋषि और लॉज महाशय नही दिखला सकते। प्रेत आदि के विषय मे जो गवाही चाहिए तो वेद, उपनिषद तथा विदेश की धर्म-कथा-पुस्तक आदि से लेकर गोंड, कोल-भील तक करोडो की गवाहियाँ मौजूद हैं और चिर-काल तक रहेंगी। ऐसी बातो मे केमेस्ट्री, फिजिक्स, मैथामेटिक्स, कानून, दर्शन आदि के एम्० ए० डॉक्टर, आदि की गवाही मे कोई विशेषता नही है। चोरी, घूस आदि मे जैसा प्रामाण्य मिष्टर बेकन का था आज के किसी बडे आदमी का, वैसा ही किसी जगली का।

कितने ही लोग समझते हैं कि जैसे पहले लोगो को रेल, तार, बेतार आदि का स्वप्न भी न था, पर ये बातें अब निकल आई, वैसे ही प्रेत, पुनर्जन्म, विभूति, सिद्धि आदि भी निकल आवेंगी। इस मृगतृष्णा मे कोई न पडे। यह बात तो वैसी ही हुई, जैसे एक स्वामी जी कहते थे कि तुम लोग जैसे दरवाजे से निकल भागते हो, वैसे ही मैं घने ईंट-पत्थरो मे विलिन होकर अदृश्य हो जाता हूँ। दरवाजे से निकल भागना अव्याहत है। पाषाण के परमाणुओ में स्वामी जी का विलय[5] व्याहत है। भला दोनो बातें एक समान कैसे मानी जायँ? इसी प्रकार लोहे आदि द्रव्यो से ऐंजिन, विमान, तार, बेतार इत्यादि चलाना और बात है। ऐसी बातें नई-नई निकला करती हैं और निकलेंगी। यही विज्ञान के विकास और प्रकाश का गौरव है। पर शब्द या भावना से द्रव्य की उत्पत्ति,

---

१ लॉज महाशय एक १८ वर्ष की फ्रेंच कन्या पर आते हुए भूत की एकान्त में परीक्षा किया करते हैं।

२ गौडजी हरसू ब्रह्म द्वारा बहुतो का मनोरथ सिद्ध कराते हैं। और, कहीं से तीन लडके लाए हैं, जिन्हें अपने पूर्व-जन्म के पुत्र बतलाते हैं।

३ पँचकौडी भगत छपरे के एक प्रसिद्ध देवा पधराने वाले थे। इन पर देव और प्रेत आया करते थे।

४. चिलर मियाँ पटने के एक नामी जादूगर थे। रुपये अशर्फी तथा सर्दा आदि फल हवा से हाजिर करते थे। असल में यह इन चीजो को कुर्ते वगैरह में छिपाये रखते थे।

५. एक ऐसी घटना पं० आदित्यरामजी के एक मित्र ने उनसे कही थी कि हिमालय में उनके देखते-देखते एक फकीर बेसूराख की पत्थर की दीवार में गायब हो गया।

परिवृत्ति[1] आदि एव प्रेत आदि की बाते या आकाश आदि से रुपया-पैसा निकालने की बाते सर्वथा व्याहत और असगत हैं। ये विज्ञान-वर्ग की बातो से सर्वथा भिन्न और विरुद्ध अज्ञान वर्ग की हैं। ये अज्ञानान्धकार मे चिरकाल से पडी हुई प्राचीन वन्य जातियो तथा आधुनिक हिंदोस्तानियो मे अभी तक फैली हुई हैं। देशातरो में लाखो-करोडो मे से एक-आध थियासफी आदि मत वाले प्राय हिंदू, चीनी आदि नासमझो को फँसाने के लिए, या अपने काम, लोभ, मोह आदि के वश में पडकर, स्वय ऐसी-ऐसी बातो का अनुसंधान करते हैं, तथा जगत् में इनके रखने और फैलाने की चेष्टा कर रहे हैं। हिंदोस्तान में कदाचित् दो-चार ही नास्तिक कहलानेवाले कभी-कभी हुए हैं, या आज भी वर्तमान हैं, जो इस दार्शनिक तत्व पर अटल हैं। यह पारमार्थिक आविष्कार रेल, तार बेतार आदि का मूल है। इसी के आधार पर देशातरो में इन असख्य वैज्ञानिक आश्चर्यो का आविर्भाव हुआ है। इसी दार्शनिक सिद्धात का महत्व अभी ठीक न समझने से व्याहत बातो मे भी शाब्दिक गवाही पर निर्भर रहने से, तथा इसके इने-गिने अनुगामियो को नास्तिक कहकर हँसी में उडाने के प्रयत्न से यह देश आधि-व्याधि, दुर्भिक्ष, आत्मसाहाय्याभाव आदि के नरक मे पडा सडता जा रहा है। जैसे रेल आदि का अभाव पुरानी बात थी और इनका आविष्कार नवीन बात है, वैसे ही परमार्थ सिद्धान्त को नास्तिकता समझना चिरकालिक बात है और इस सिद्धात का प्रबल आविष्कार तथा इसकी ज्योति के द्वारा प्रेत, विभूति आदि तमोमय बातो का नाश इस देश के लिए आज प्राय. नवीन बात होगी। व्याहतवादिता का तम हटेगा, और परमार्थज्योति जगद्व्यापक होगी। हम लोग सैकडो-हजारो रुपयो की बाजी का विज्ञापन देते रहे हैं और आज फिर दे रहे हैं। यदि कोई ऊपर सूचित व्याहत बातो को कर दिखाने की हिम्मत रखता हो, तो वह इस पत्र में विज्ञापन द्वारा या डाक के द्वारा मुझसे शर्त आदि ठीक करे या मुझसे पत्र-व्यवहार करे। कृपाकर सपादक जी मुझे ऐसी हिम्मतो की सूचना दिया करें।

श्री रत्नावती देवी
(श्रीयुत् रामावतार जी साहित्याचार्य, एम्० ए० की धर्मपत्नी)

---

१. परमार्थदर्शन में लिखा है—"शब्दैर्भावनया वा न द्रव्योत्पत्तिपरिवृत्ती।" शब्दो का अर्थ जाना हो तो अर्थ के स्मरण मे क्रोध आदि होते हैं, या निबू शब्द सुनने से अर्थ का खयाल कर जीभ में पानी आता है। जोर से चिल्लाओ, तो लड़का जग जाता है। पर इन बातो को मंत्रशक्तिज नहीं कहते। मंत्र की तो वह तीसरी ही शक्ति है, जिससे यहाँ 'ह्वाँ' जपो और दिल्ली में सेठजी धम्म से बेहोश गिरे। इसी शब्द शक्ति और इसी प्रकार की बेढंगी भावना-शक्ति का परमार्थ मूलोच्छेद करता है।

भारतवर्ष का इतिहास

रामायण के समय मे मगध में मारीच, सुबाहु, ताटका आदि राक्षसियो का निवास था। ब्राह्मण ग्रथो से तथा काव्यो से मालूम होता है कि कीकर नाम की वन्य-जाति पहले मगध में थी। भारत के समय तक मगध म सभ्यता बढ चली थी और जरासघ नाम का प्रबल राजा राजगृह में था। शकाब्द से पहिले आठवी शताब्दी मे शिशुनाग राजा हुआ। शिशुनाग के समय से मगध का भाग्य ऐसा चमका कि प्राय. डेढ हजार वर्ष तक मगधराज्य भारत में अद्वितीय रहा और पृथ्वी मात्र मे इसकी बडी प्रतिष्ठा रही। शिशुनाग के वश मे शाकवर्ण, क्षेमधर्मा और क्षत्रोजा राजा हुए। फिर क्षत्रोजा का बेटा विम्बसार राजा हुआ जिसे लोग क्षेणिक भी कहते है। शकाब्द से ६०० वर्ष पहिले इसने एक नया राजगृह बसाया। अग देश या मुगेर, भागलपुर आदि प्रातो को जीतकर इसने नव राजगृह मे राज्य किया।

कोशल देश मे, कपिलवस्तु नगर मे, शाक्य वश के गौतम बुद्ध, विम्बसार के समय में, उत्पन्न हुए। बिम्बसार का राज्य २८ वर्ष रहा। ससार के भय और निर्वेद जो अपर्य वालो के ससर्ग से आर्यो में आ रहा था, जिसे साख्य आदि मतवाले प्रबल करते आते गये, जिससे अर्जुन आदि वीरो को कृष्ण आदि दार्शनिको ने बडे प्रयत्न से बचाया था, वही निर्वेद और भय, अतत, विम्बसार के समय में, जैसे ही भारत का उदय फिर आरम्भ हो रहा था, वैसे ही बुद्ध के रूप में प्रकट हुआ। उसी समय में वर्धमान महावीर जिन भी वर्तमान थे। बार-बार भारतीय आर्यो का अभ्युदय होना चाहता था, पर साथ ही साथ रोग के सदृश निर्वेद भी इस अभ्युदय की जड खोदने के लिए अवतार ले लेता था। विम्बसार के बाद उसके पुत्र अजातशत्रु राजा हुए। उन्हें लोग 'कुणिक' भी कहते है। अजातशत्रु ने कोशल, लिच्छवी और मिथिला को जीतकर हिमाचल और विन्ध्याचल के बीच मगध की विजयपताका फहराई। शत्रुओ के उपद्रव से मगध को बचाने के लिए उसने पटलिगाँव मे एक किला बनवाया। पिता के विरह से अजातशत्रु घर पर नही रह सकते थे। अगदेश मे चपानगर बनाकर वही रहते थे। शकाब्द से प्राय. साढे पाँच सौ वर्ष पहले बुद्ध शून्य में लीन हो गये, ऐसा बौद्धो का खयाल है। पाली, काश्यप, आनन्द आदि सन्यासियो ने राजगृह में बौद्ध-समिति स्थापित कर बौद्ध-मत के प्रचार का प्रयत्न किया। पच्चीस वर्ष राज्य करने के बाद अजातशत्रु मरे। पच्चीस ही वर्ष तक अजातशत्रु के पुत्र दर्शक का राज्य रहा। दर्शक के पुत्र उदय थे। कितने लोग कहते है कि भारतीयो के हारूँ रसीद, किस्से-कहानियो के उदयन वत्सराज, ये ही उदय है। उदय ने अपने दादा जी के बनाये हुये पटलिग्राम के किले के आसपास

'पाटलिपुत्र' नगर बसाया। प्राय चालीस वर्ष राज्य करने के बाद उदय मरे और नन्दिवर्द्धन के बाद महानन्दी राजा हुआ। प्राय बीस-बीस वर्ष इन दोनो ने राज्य किय'।

महानन्दी की वेश्या का पुत्र महापद्मनन्द हुआ। इसने महानन्दी को मार कर अपना राज्य किया। महापद्मनन्द केवल नन्द के नाम से भी प्रसिद्ध है। पच्चास वर्ष तक अपने पुत्रो के साथ नन्द ने राज्य किया। नन्द भारतवर्ष का कारू समझा जाता है। निन्यानवे करोड साल की तो आमदनी लोग इसकी कहते हैं। नन्द के समय में यवनराज अलीकचन्द्र (Alexander) पारस आदि जीतते हुए गाधार तक पहुँचे। नन्दी से रक्षित प्राची, यानी पूर्व देश, को देखने की इन्हे बडी लालसा थी, पर नौजवान भारतीय राजकुमार चन्द्रगुप्त की नीति से अलीकचन्द्र की सेना में कुछ ऐसी गडबड मची कि सिन्ध के आसपास से यवनराज बिचारे को लौट जाना पडा। कुछ दिनों के बाद असुरी की भव्यलूनपुरी मे अलीकचन्द्र मर गये।

नन्दो के समय मे भारत की पक्की भाषा संस्कृत भाषा थी, पर अनेक प्राकृत, अर्थात् कच्ची बोलियाँ भी, बोली जाती थी। इस समय मे या इससे कुछ पहले शौनक, यास्क, वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, कात्यायन आदि अनेक दार्शनिक, वैज्ञानिक, वैयाकरण, नैरुक्त हुए। यास्क का निरुक्त, पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतालविजय या जाम्बवतीविजय काव्य इसी समय के जान पडते है। बहुतेरे प्रातिशाख्य दर्शन, सूत्र, नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि इसी समय के आसपास भारत में बने।

मौर्यकुमार चन्द्रगुप्त ने अलीकचन्द्र को भगाकर चाणक्य की नीति मे और पर्वतेश्वर आदि मित्रो की सेना मे पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। नन्दी को मार कर मौर्य वीर ने भारत पर अपना राज्य जमाया। चन्द्रगुप्त के मत्री चाणक्य का अर्थशास्त्र आज भी भारत के साहित्य का रत्नस्वरूप है। अलीकचन्द्र के उत्तराधिकारी शल्यक (Selukas) मे गान्धार आदि को छीन कर चन्द्रगुप्त ने अलीकचन्द्रकृत गान्धाराक्रमण का बदला सधाया। बेचारा शल्यक फौज लेकर भारत में बढा आ रहा था, सो भारत-विजय कहाँ तक करता, गान्धार भी खो बैठा। चौबीस वर्ष तक बली चन्द्रगुप्त का राज्य रहा। इसके बाद छब्बीस वर्ष तक चन्द्रगुप्त के पुत्र अमित्रघात बिन्दुसार का राज्य रहा। इसके बाद अमित्रघात का पुत्र अशोकवर्द्धन राजा हुआ। आर्यधर्म, संस्कृति, विज्ञान आदि का एक प्रकार मे अन्त अमित्रघात के साथ ही हुआ।

अशोकवर्धन बौद्धमतावलम्बी हुए। इसके शिलालेख आदि भी पालि में वर्त्तमान है। संस्कृत से और आर्यधर्म से, अशोक ने अपना सम्बन्ध सर्वथा तोड डाला। चालीस वर्ष अशोक का राज्य रहा। आर्य्यवीर चन्द्रगुप्त के प्रताप से भिक्षुराज अशोक को काबुल-कन्धार मे आसाम-बर्मा तक और सिंहल से लेकर चीन के सिवाने तक, बृहत् साम्राज्य मिला था। एक बार बड़ी मुश्किल मे वैरागी बाबा अशोक को भी कलिङ्ग पर चढाई करनी पड़ी थी। लाखो आदमियो को मार कर घडियाल-रोअन रोते हुए बेचारे मगह को लौटे थे।

अशोक के बाद चार्वाक्, बौद्ध, जैन आदि मतवालो ने, सस्कृत-विज्ञान का नाश होते ही, अपना आक्रमण किया। पशु और मनुष्य को बराबरी का उपदेश दिया गया और घासपार्टी का प्रचार खूब होने लगा। अशोक की आज्ञा से यज्ञ बन्द हो गये थे। कुछ रोज तक अशोक के भनसे मे दो मोर और एक हरना पकता था। भिक्षुराज के वश मे दशरथ, सगत, शालिशूक, देववर्मा, शतोधन्वा और बृहद्रथ ये छै मौर्य हुए। ये बढे भगत थे और ससार के कार्यो से विरक्त रहते थे।

धीरे-धीरे मौर्य्य-सिह चन्द्रगुप्त का भारतीय साम्राज्य केवल भगत लोगो के किले मे रह गया। किले के बाहर की वस्तुओ से ये लोग विरक्त रहते थे और बाहर के लोग इनसे विरक्त हो चले। इन छै राजाओ ने केवल छियालीस वर्ष राज्य किया। अन्त मे सेनानायक पुष्पमित्र से, मिट्टी की मूर्त्ति भगतजी लोगो का राज्य, न सहा गया। सेना वीर पुष्पमित्र मे बडी प्रीति रखती थी। सेना दिखलाने के बहाने से पुष्पमित्र ने किसी प्रकार बृहद्रथ को महल से बाहर निकाल कर उसके निर्वाण के लिए प्रबन्ध कर दिया। बृहद्रथ के दीवान साहब को कैदखाने मे डालकर पुष्पमित्र सम्राट् हुआ।

पुष्पमित्र ने स्वय अश्वमेध किया। अशोक बाबा की आज्ञा से भारत मे जो यज्ञ नष्ट हो गये थे, सो कुछ दिनो के लिए, पुष्पमित्र के अश्वमेध के साथ उज्जीवित हुए। बली पुष्पमित्र के ऊपर चारो ओर से आक्रमण होने लगे। कलिङ्ग से क्षारवेल और पश्चिम मे मिलिन्दवन मगध पर चढ मारना चाहते थे, पर इस समय मगध के सिहासन पर कोई कारुणिक भगत जी थोडे ही बैठे थे! पुष्पमित्र की वीरता के सामने आक्रमण करनेवालो की कुछ न चली। मुँह लिये बेचारे जैसे आये थे वैसे ही चले गये। कितने ही ऐतिहासिको का अनुमान है कि पतञ्जलि का व्याकरण-महाभाष्य पुष्पमित्र के समय मे बना। साकेत और मध्यमिका पर यवनो के आक्रमण का वर्णन भाष्य मे पाया जाता है।

पुष्पमित्र के पैंतीस वर्ष के राज्य के बाद उसका पुत्र अग्निमित्र राजा हुआ। इसी अग्निमित्र की कथा पर कालिदास ने कई सौ वर्ष बाद 'मालविकाग्निमित्र' नाटक बनाया। आठ वर्ष राज्य करके अग्निमित्र मरे।

इसके बाद सुज्येष्ठ, वसुमित्र, अतक, पुलिन्द, घोषवसु, व्रजमित्र, भागवत, देवभूत्ति, ये आठ राजा हुए। पुष्पमित्र और उसके वश के राजा शुगवशी कहे जाते है। शाश्वत धर्म के नाश से और सस्कृत विज्ञान के लोप मे भारत मे ऊपर से वैराग्य और भीतर मे विलासिता का जो नशा फैल रहा था, और जिसमे, करुणा, प्रेम आदि के बहाने, भारतीय फसे जा रहे थे, उसमे देश का छुटकारा दुस्तर था। पुष्पमित्र की वीरता उसके वश मे न रही। ऐसे दिन आ रहे थे कि क्या सनातनी, क्या बौद्ध, क्या जैन सभी बिडाल-भक्ति मे पडे-पडे सडते रहे।

देवभूति बडा कामी था। उसके दीवान साहब का नाम वासुदेव था। यह कण्व वश का ब्राह्मण था। इसने एक दासीपुत्री के द्वारा देवभूति को मरवा डाला। चालीस-पचास

वर्षों तक जैसे-तैसे कण्व राजाओं का राज्य रहा। कण्व राजाओं के समय में भारतीय राजदूत रोम सम्राट् अगस्त्य (Augustus) महाराज की कचहरी में गया था।

कण्व राजा सुशर्मा को मारकर दाक्षिणात्य आन्ध्रों ने राज्य किया। आन्ध्र शिमुक ने सुशर्मा को मारा। कितनों का अनुमान है कि मृच्छकटिक का बनानेवाला राजा शूद्रक शिमुक से अभिन्न है।

अशोक के मरने के बाद से आन्ध्र लोग प्रबल होते जाते थे। मौर्यों ने इन्हें दबाया था। इसका बदला ये लेना चाहते थे। मगध पर चढ़ाई के समय इन लोगों ने क्षारवेल की सहायता की थी। अन्ततः सुशर्मा को मार कर मगध राज्य से अपने स्वातन्त्र्यनाश का बदला इन लोगों ने लिया।

आन्ध्र लोगों के समय में विद्या की वृद्धि थी। सम्भव है कि भास आदि कवि इनके समय में हुए हों। शिमुक से सत्रहवीं पीढ़ी में हाल राजा हुआ, जिसे लोग सातवाहन या शालिवाहन भी कहते हैं। यह स्वयं विद्वान था। गाथासप्तमी नामक प्राकृत सूक्ति-संग्रह इसका बनाया हुआ आज भी मिलता है। पैशाची भाषा के महाभारत, बृहत्कथा, के निर्माता गुणाढ्य कवि सातवाहन की कचहरी में रहते थे।

मौर्यों के बाद यवनों और शकों ने धीरे-धीरे पश्चिम भारत पर अपना अधिकार जमाया। हाल वंश का राजा विलिवायकुल यवनों और शकों आदि से लड़ा था। इनसे विजय पाकर सौराष्ट्र के सप्तम नहपान को इसने मारा। विलिवायकुल का प्रतिनिधि चष्टन उज्जयिनी में रहता था। वह उज्जयिनी से सौराष्ट्र, मालव आदि का शासन करता था। प्राचीन आन्ध्रों की राजधानी कृष्णा के तट पर थी। पीछे ये लोग गोदावरी के तीर पर प्रतिष्ठानपुरी में रहने लगे। विलिवायकुल का बेटा पुलुमाई हुआ। चष्टन के पोता रुद्रदाम की पुत्री दक्षमित्रा से इसका विवाह हुआ। प्रतिष्ठान से निकल कर पुलुमाई पश्चिम की ओर अपना राज्य बढ़ाना चाहता था। इस कारण ससुर-दामाद में बड़ी लड़ाई हुई। रुद्रदाम की विजय हुई। अपनी पुत्री दक्षमित्रा को दुःख से बचाने के लिए रुद्रदाम ने अपने दामाद को जीते ही छोड़ दिया।

इसी बीच पुरुषपुर, अर्थात् पेशावर, में कनिष्क राजा हुआ। रुद्रदाम और कनिष्क दोनों शाक्य वंश के थे। उत्तर की ओर तुरुष-काश्मीर आदि को जीत कर वीर कनिष्क पूरब की ओर बढ़ा। पाटलिपुत्र तक विजय कर, वहाँ से, बौद्ध अश्वघोष कवि को, कनिष्क अपने साथ लेते गया, ऐसी प्रसिद्धि है। अश्वघोष का करुण-रस-प्रधान बुद्धचरित नामक संस्कृत महाकाव्य है। 'चरकसंहिता' के बनानेवाले चरक ऋषि कनिष्क के राजवैद्य थे।

बौद्ध नागार्जुन भी प्रायः कनिष्क के ही समय में हुआ था। कनिष्क का बेटा हुविष्क हुआ और हुविष्क का बेटा वासुदेव। कनिष्क बड़ा प्रतापी था। इसके राजदूत हूतों नामक चीन सम्राट् तथा रोम-सम्राट् की कचहरी तक पहुँचे थे। हुविष्क और वासुदेव का भी उत्तर भारत में विस्तृत राज्य रहा। रुद्रदाम के लड़कों ने सौराष्ट्र आदि पर अपना अधिकार किया।

कनिष्क के वंशवालों ने उत्तर भारत अपना लिया। इस प्रकार शकाब्दारम्भ से डेढ़ सौ वर्ष बीतते-बीतते आन्ध्रों का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। शकाब्द का आरम्भ लोग कनिष्क के समय से मानते हैं। भारत में शकाब्द और विक्रमाब्द बहुत प्रसिद्ध हैं। दोनों में एक बड़ी अद्भुत बात है कि जिस राजा के नाम से ये दोनों वर्ष प्रसिद्ध हैं उनसे कदाचित् इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। असल में शकाब्द का शालिवाहन से और विक्रमाब्द का विक्रमादित्य से सम्बन्ध समझने का ठीक मूल नहीं है। शालिवाहन तो शकाब्द के नाम से प्रसिद्ध ही है। विक्रमाब्द भी पहले मालवाब्द कहा जाता था। यही नाम इसका ठीक जान पड़ता था।

इस प्रकार शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग, आन्ध्र राजवंशों के नष्ट होने पर चिरकाल तक भारतवसुधा अनाथ-सी पड़ी रही। वासुदेव के मरने के बाद सौ वर्ष तक किसीका अधिराज्य नहीं हुआ। जहाँ-तहाँ क्षुद्र सामंत स्वतंत्र विचरते थे। २३९ शाक वर्ष में गुप्त वंश का चन्द्र नाम का राजा मगध में हुआ। सिंहल राजा का इतिहास, दिपवंश, प्राय चन्द्र के समय में बना था। लिच्छवी जाति की राजकुमारी कुमारदेवी से चन्द्र का ब्याह हुआ। इस ब्याह से लिच्छवी और मगध का विरोध शान्त हो गया, और मगध राज्य का बल बढ़ा। चन्द्र और कुमारदेवी का पुत्र समुद्रगुप्त हुआ। सत्रह वर्ष तक चन्द्र का राज्य रहा। इसके बाद समुद्र का राज्य हुआ। समुद्रगुप्त बड़ा प्रतापी राजा था। हरिसेन कवि की बनाई हुई समुद्र की प्रशस्ति आज भी प्रयाग के किले में अशोक की शिला पर वर्त्तमान है। समुद्रगुप्त के समय में भारतीय राजदूत कंसततुपुरी में कंशततु राजा के पास पहुँचा था। पटना अयोध्या दोनों ही समुद्र की राजधानी थीं। पटना का प्राचीन गौरव नष्ट हो चला था और पच्छिम में राज्य बढ़ाने के कारण अयोध्या, उज्जयिनी आदि नगरों पर भारतीय राजाओं की विशेष प्रीति होने लगी थी। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय की। प्राय समस्त भारत को जीतकर और काम्बोजों से सन्धि कर सिंहलराज मेघवर्ण से पूजित होकर, समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ किया। आधी शताब्दी तक इसका राज्य रहा।

समुद्रगुप्त का लड़का चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य हुआ। विक्रमादित्य उपाधिवाले अनेक राजा हुए, पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य-सा प्रतापी और कोई नहीं हुआ। सिन्धु के पार बाह्लीकों को, और सौराष्ट्र में शक शत्रुओं को, जीत कर विक्रमादित्य भारत के एकच्छत्र राजा हुए। विक्रमादित्य के समय में चीनी बौद्ध, फाहियान, तीर्थयात्रा के लिए भारत में आया था। गुप्त राज्य में चोर-डाकू नहीं होते थे, इस बात की इस यात्री ने बड़ी प्रशंसा की है। विक्रमार्क के समय में महाकवि कालिदास ने 'कुमार-सम्भव' के पहले आठ सर्ग, मेघदूत, रघुवंश, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी और शाकुन्तल बनाया। इसी समय में सोनार वंश के भूषण अमरु कवि ने अमरुशतक बनाया। समुद्र-गुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय बहुत-से पुराणों और स्मृतियों के संग्रह, जीर्णोद्धार तथा संस्करण हुए थे। पाटलिपुत्र, साकेत और उज्जयिनी, तीनों जगह

चारों ओर मुर्दों का बिछौना किये विना सोता नही था। वह झगडा मोल लेता फिरता था। एक वार अपनी रानी के शरीर पर कपडे में चरण की मुद्रा देखकर उसने बडा शोर मचाया। जब कञ्चुकी से यह वात मालूम हुई कि सिंहल के बने हुए कपडो पर राजा के चरणो की छाया रहती है, तव तो इसके क्रोध का ठिकाना नही रहा। रानी को पैर की छाप का स्पर्श कराने के अपराध का वदला लेने के लिए मिहिरकुल फौज लेकर सिंहल को दौडा। सिंहल को तथा आते-जाते अन्य देशो को, इसने नष्ट किया। वह काश्मीर के फाटक पर पहुँचा तो फौज का एक हाथी किसी तरह लुढक कर सडक से पहाडी खड्ड में गिर गया। मरते हुए हाथी का चिल्लाना सुनकर मिहिरकुल इतना खुश हुआ कि और सौ हाथियो को मँगाकर उसने जबरदस्ती खड्ड में लुढकाया। आर्य सिंह आदि हजारो बौद्धो को इसने बकरो की तरह हलाल किया। कोरुड की लडाई में वालादित्य ने तो इसकी अच्छी दशा बनाई थी। यह जीता पकडा गया था, पर वालादित्य ने कृपा कर इसे छोड दिया।

लोग कहते है कि इस राक्षस को भी दान की श्रद्धा हुई। भारतवाले बावाजी लोगो को इस हत्यारे से दान लेने का उत्साह नही हुआ। शाकल से आकर कई लोगो ने इससे दान लिया। कितने लोगो का अनुमान है कि उसी समय से शाकलद्वीपी लोग यहाँ आये। चिरकाल तक राज्य कर, अत में अनेक रोगो से पीडित होकर, मिहिरकुल आग में समा गया।

मिहिरकुल के वाद काश्मीर-मण्डल प्राय. अराजक रहा। काश्मीर के मन्त्री लोगो ने महाराज विक्रमादित्य के वश के प्रतापादित्य नामक राजकुमार को लाकर काश्मीर के सिहासन पर विठाया। इसी वीच हर्षविक्रम नाम के एक प्रतापी राजा उज्जयिनी में हुए। पारस का प्रसिद्ध राजा अनुशीलवान् हर्षविक्रम का समकालिक था। अनुशीलवान् के समय में पञ्चतन्त्र का फारसी अनुवाद हुआ था। हर्षविक्रम ने मातृगुप्त कवि को काश्मीर का राज्य दिया। मातृगुप्त की कचहरी में हयग्रीव-वध महाकाव्य के निर्माता, कालिदास के प्रतिभट, भर्तृमेण्ठ महाकवि हुए। हर्षविक्रम के मरने पर शोक से मातृगुप्त राज्य छोडकर और सन्यास लेकर काशी चले गये।

प्राचीन राजवश का कुमार प्रवरसेन बडा वीर था। इसने अपनी सेना के लिए नावों का पुल वनवाया था। उज्जयिनी से छीनकर वह अपने वश का सिंहासन फिर से काश्मीर में लाया। हर्षविक्रम के वश के प्रतापशील को इसने पुन उज्जयिनी की गद्दी पर वैठाया।

प्राय इन्ही समय प्रभाकरवर्द्धन स्थाणीश्वर का राजा हुआ। प्रभाकरवर्द्धन के दो लडके हुए—राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन। राज्यवर्द्धन मालवो के साथ लडता हुआ, वगाली राजा शशाक के छल मे, मरा। मालवो ने हर्षवर्द्धन के वहनोई कान्यकुब्जेश्वर गृहवर्म्मा को मारकर, हर्ष की वहिन राज्यश्री को वन्दीखाने में डाला।

वन्दीखाने से भागकर राज्यश्री विन्ध्याचल मे भटक रही थी। हर्षवर्द्धन ने अपनी वहिन को ढूँढ निकाला और उसे घर लाने के वाद वगाली राजा शशांक से लड-झगडकर

और मालवों को तग कर भ्रातृवध का बदला लिया। कादम्बरी और हर्षचरित के प्रणेता बाणभट्ट और सूर्य्यशतक के प्रणेता मयूरभट्ट हर्ष की कचहरी मे रहते थे। हर्ष के समय मे वामन और जयादित्य ने पाणिनीय व्याकरण पर काशिकावृत्ति बनाई। हर्ष स्वय भी बड़े विद्वान् थे। रत्नावली नाटिका, प्रियदर्शिका नाटिका और नागानद नाटक इनके बनाये हैं। चीनीयात्री ह्यएन्त्सङ्ग बहुत दिनो तक उनकी कचहरी मे रहा। श्रीहर्ष के समय मे वल्लभी मे शिलादित्य और दक्षिण मे पुलकेशी राजा हुए। पुलकेशी के पराक्रम से विजयी हर्षदेव नर्म्मदा लाँघकर दक्षिण नही बढ सके। पुलकेशी के लेख मे पहले-पहल कालिदास और भारवि का नाम मिला है।

हर्षदेव के मरने पर उनका दीवान अर्जुन राज्य को खा बैठा। चीनवालो से अर्जुन की नही पटती थी। चीनो से लडाई करने मे जिस दिन अर्जुन मरा, उस दिन से भारत की बडी बुरी दशा हुई। इसके बाद प्राय प्रत्यत के लोगो की चढाई इस देश पर होती रही।

अर्जुन के मरने पर मगध मे कुछ रोज तक आदित्यसेन गुप्त नामक एक बली राजा का राज्य था। इसी समय मे वल्लभी मे धरसेन राजा हुए, जिनके यहाँ भट्टि काव्य के बनानेवाले भट्टी कवि रहते थे। उधर बङ्गाल मे पालवश के गोपाल, देवपाल आदि राजा हुए। आदित्यसेन के कुछ दिनो बाद पाल राजाओ ने मगधराज्य अपने अधिकार में कर लिया। उधर काश्मीर मे कर्कोट वश के बलशाली राजा हुए। चन्द्रापीड का पुत्र ललितादित्य हुआ, जिसका नाम लोग मुक्तापीड भी कहते है। मुक्तापीड बडे विजयी राजा थे। इनका समय प्राय जय-यात्राओ मे बीता। कान्यकुब्ज के राजा महाकवि यशोवर्म्मा को ललितादित्य ने जीता। यशोवर्मा ने स्वय रामाभ्युदय नाटक लिखा है। यशोवर्म्मा की कचहरी मे उत्तरचरित, मालतीमाधव और वीरचरित के प्रणेता महाकवि भवभूति रहते थे। ललितादित्य का बनाया हुआ मार्त्तण्डमन्दिर आज भी काश्मीर में वर्त्तमान है। प्राय इसी समय मे मीमासावार्त्तिककार कुमारिल भट्ट हुए थे। भवभूति के कुछ बाद मुरारि ने 'अनर्घराघव' नाटक बनाया।

फिर ललितादित्य का पोता जयापीड राजा हुआ। उत्तर भारत मे व्याकरण-महाभाष्य नष्ट हो चला था। देशान्तर से लाया जाकर पुन महाभाष्य का प्रचार जयापीड के परिश्रम से उत्तर भारत में हुआ। अमरकोश का व्याख्याता क्षीरस्वामी जयापीड का अध्यापक था। भट्टोद्भट इनका सभाकवि था, जिसकी एक लाख अशर्फी प्रतिदिन की दक्षिणा का राजतरङ्गिणी मे उल्लेख है। कुट्टनीमत के बनानेवाले दामोदर गुप्त जयापीड के मत्री थे। विशाखदत्त, वामन आदि कवि इनके यहाँ हुए। वामन के कुछ बाद दण्डी कवि हुए थे, जिन्होने दशकुमारचरित और काव्यादर्श बनाया। जयापीड के समय मे केरल मे शकराचार्य हुए थे, जिनका ब्रह्मसूत्रो पर मायावादपरक भाष्य प्रसिद्ध है। हलायुध, माघ आदि कवि प्राय इसी समय के है।

जयापीड के पुत्र ललितापीड हुए। जयापीड का दूसरा पुत्र सग्रामापीड हुआ। ललितापीड का पुत्र बाल-बृहस्पति जयापीड हुआ। जयापीड के यहाँ महाकवि रत्नाकर हुए। जयापीड के पाँच मामा थे—पद्म, उत्पल, कल्याण, मम्म और धर्म्म। इन दुष्टों ने बालक राजा को मारकर राज्य पर अधिकार जमाना चाहा। अतत मम्म और उत्पल मे बडी लडाई हुई। इस युद्ध पर शम्भु कवि ने भुवनाभ्युदय काव्य बनाया। कुछ दिनों बाद मन्त्रियों ने उपद्रव-शाति के लिए उत्पल के पोता अवन्तिवर्म्मा को राज्य दिया।

अवन्तिवर्म्मा बडा प्रतापी राजा था। देश-देशातर से पडितो को बुलाकर इसने पुन विद्या का उत्तर भारत मे प्रचार किया। मुक्तकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्द्धन, रत्नाकर आदि कवि और भट्टकल्लट आदि शैव दार्शनिक इसके साम्राज्य मे हुए। अवतिवर्म्मा के दीवान सूर्य्य ने जहाँ-तहाँ नहरें खुदवाकर जलोपद्रव से काश्मीर को बचाया। अभिनन्द, भट्टनारायण, रुद्रट आदि कवि इसी काल में हुए।

प्राय: अवतिवर्म्मा के समकालिक कान्यकुब्ज के राजा महापराक्रम भोजमिहिर आदिवराह थे। भोजवराह के समय मे विशाखदेव ने मुद्राराक्षस नाटक बनाया। नल चम्पू बनानेवाले त्रिविक्रम भट्ट इसी समय मे हुए थे।

भोजवराह के पुत्र महेन्द्रपाल हुए जिनके अध्यापक, कर्पूरमञ्जरी, बालरामायण और विद्धशालभञ्जिका के बनानेवाले राजशेखर कवि थे। महेन्द्रपाल का बेटा महीपाल हुआ। उधर अवतिवर्म्मा के मरने पर शकरवर्म्मा राजा हुआ। शकरवर्म्मा के शिवालय म आलकारिक भट्टनायक चातुर्वेद थे। अभी तक भारत में पडो, भिक्षुको आदि का भारत के मदिरो पर अधिकार नहीं हुआ था। चार विद्या के जाननेवाले लोग मदिराध्यक्ष होते थे। शकरवर्म्मा के मरने पर उसकी रानी सुगधा के अविनय से राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अब राज-लक्ष्मी मे भारत पीडित हो चला था। उसी समय, जैसे ग्रामाम के जगलो में पागल हाथी दौडता है, वैसे ही मोहमोद भारत मे घुसा। मथुरा, सोमनाथ आदि को लूटते हुए इसने भारतीयो के पाप का अच्छा प्रायश्चित कराया। इसके बाद कुछ दिनो तक चेदिराज गङ्गमदेव का भारत में चक्रवर्ती का-सा आदर हुआ।

इसी समय में सायक के पुत्र वाक्पति राजा मुञ्ज मालव देश के स्वामी हुए। इनके सभा-कवि धनञ्जय ने दशरूपक बनाया। प्राय मुञ्ज के समय मे ही भामतीकार वाचस्पति मिश्र हुए थे। मुञ्ज के छोटे भाई सिंधुराज हुए, जिनकी कथा लेकर पद्मगुप्त परिमल ने साहसाक-चरित बनाया है। सिंधुराज के पुत्र प्रसिद्ध भोजदेव हुए जिनकी कीर्ति सरस्वतीकण्ठाभरण और चम्पू-रामायण है। भोज के समय में दामोदर मिश्र ने महानाटक का सग्रह किया। तिलकमजरी के रचयिता धनपाल सूरि भी भोज के समय मे हुए थे। गागेयदेव के पुत्र करणदेव ने गुर्जरो से मिलकर बेचारे भोज को पीस डाला। इस पाप का उसे सद्यःफल यह मिला कि स्वयं भी कीर्तिवर्म्मा से हराया गया। चदेल कीर्तिवर्म्मा की कचहरी म प्रबोधचन्द्रोदय-कर्त्ता कृष्ण मिश्र रहते थे। भोज के समकालिक

काश्मीरेश्वर अनतदेव हुए, जिसके समय मे व्यासदास क्षेमेन्द्र महाकवि हुए, जिसके दशावतार चरित, अवदानकल्पलता आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

अनत का बेटा कलश हुआ जिसके समय मे प्रौढता के निधान बिल्हण महाकवि हुए। बिल्हण दक्षिण में कल्याणपुर के महाराज चालुक्य-विक्रमादित्य की कचहरी मे रहते थे। इनका काव्य विक्रमाक-चरित प्रसिद्ध है। चालुक्य विक्रम के सभापण्डित विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका 'मिताक्षरा' बनाई।

इधर बगाल के महीपाल से राज्य छीन कर विजयसेन राज्य करने लगे। विजयसेन का बेटा बल्लालसेन हुआ। बल्लालसेन का पुत्र सेनवश-भूषण लक्ष्मणसेन हुआ। यह भोज की तरह स्वय कवि था और कवियो में अत्यत प्रीति रखता था। प्राय लक्ष्मणसेन के समय में इस बूढी भारतमाता के 'पेट-पोछने' बेटे वाग्भट, शम्भु, श्रीपाल, महेश्वर, रामानुज, भास्कर, लीलाशुक आदि वैज्ञानिक और दार्शनिक हुए। गोवर्द्धन, शरण और उमापति राजा लक्ष्मणसेन की सभा के रत्न कहे जाते है।

प्राय लक्ष्मणसेन के समकालिक कान्य-कुब्जेश्वर गोविन्दचद्र हुए। गोविंदचद्र के समय में काश्मीरेश्वर जयसिह थे। इसी समय मे कल्हण ने काश्मीर का इतिहास राजतरगिणी बनाया और शखधर ने लटकमेलक बनाया। मख का श्रीकण्ठचरित भी इसी समय का है।

गोविंदचद्र के पौत्र जयचद्र हुए, जिनकी सभा मे नैषधचरित, खण्डन-खण्ड-खाद्य आदि के बनानेवाले कवि पण्डित श्रीहर्ष थे। जयचद्र के समय में दिल्ली, अजमेर आदि का राजा पृथ्वीराज था। इन दोनो मे बनती नही थी। जयचद्र ने अपने राजसूय यज्ञ में द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की मूर्त्ति रखी थी। राजसूय के बाद जयचद्र की कन्या का स्वयवर हुआ—कन्या ने सभी राजाओ को छोडकर पृथ्वीराज की मूर्त्ति को माला पहनाई। पृथ्वीराज को पहले से ही खबर थी। वह भी कही आस ही पास थे। वे कन्या को लेकर रफूचक्कर हुए। अब जयचद्र और पृथ्वीराज से लडाई ठनी। सहायता के लिए जयचद्र ने काबुल की ओर से सहायदीन को बुलाया। सहायदीन ने आकर छल-बल से पहले पृथ्वीराज को, फिर जयचद्र को दुरुस्त किया, पृथ्वीराज के मरने पर जैसी करुण दशा भारतवर्ष की हुई उसे लिखने की सामर्थ्य लेखनी में नहीं है।

पृथ्वीराज के मरने पर कम्बोज प्रात से आये हुए तुर्कों ने दिल्ली का राज्य दखल किया। पूर्व और दक्खिन के दूर-दूर के अशो को छोडकर समस्त भारत पर इनका अधिकार हुआ। गुलामो का, खिलजियो का, तुर्कों का और मुगलो का प्राय: (पाँच सौ) वर्ष यहाँ अधिकार रहा। जहाँ-तहाँ, इनकी उच्छिष्ट भूमि पर, राजपुत्र आदि लोगों का कुछ अधिकार बना रहा।

चद्रगुप्त आदि वीरो की मातृभूमि, अनेक दर्शनो और विज्ञानो की जननी भारतवसुधा को सहायदीन के गुलामो से पाली जाती हुई देखकर समस्त ससार के

लोगों पर मोह-सा छा गया। कुछ दिनों तक देवगिरि में यादववंश के कृष्ण महादेव आदि राजा हुए। महादेव के सभासद हेमाद्रि ने चतुर्वर्ग-चिंतामणि बनाई। प्राय सिन्ध के समय में वर्वल वीरवीर राजा हुआ। वीरवीर के आश्रित सोमेश्वर कवि ने कीर्त्ति-कौमुदी और सुरथोत्सव बनाया। कुछ दिनों बाद विजयनगर के सम्राट् संगम, बुक, हरिहर, देवराज आदि हुए। बुक के दीवान माधव और सायण थे, जिनके वैदिक और दार्शनिक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। प्राय. इसी समय में शाकम्बरी देश में वीर हम्मीर हुआ।

नागरीहितैषिणी पत्रिका, आरा, खण्ड ७; संख्या ७, ८ से संख्या ९–१०
दिसम्बर, जनवरी १९१२–१९१३ तक।

शिक्षाविषयक भारतीयों का सद्यःकर्त्तव्य

प्राय सब देशो में जनता, जातीय शिक्षा में, देशभाषा का उपयोग करती हैं, वैदेशिक भाषा को, शिक्षा में, प्रधानता नही देती। हाँ, वैदेशिक भाषा की शिक्षा भी कुछ लोग आवश्यक समझते है, पर केवल व्यक्तिविशेष के लिए और उद्देश्यविशेष के साधन के रूप मे। जनता का, शिक्षा के लिए, वैदेशिक भाषा का उपयोग करना अस्वाभाविक है।

यहाँ इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि भाषा की शिक्षा और भाषा में शिक्षा, ये दोनो भिन्न बातें है। हिन्दी भाषा के द्वारा इतिहास, दर्शन या शिल्प सीखना और बात है, और हिन्दी बोलने-लिखने की शिक्षा इससे भिन्न ही वस्तु हैं। आजकल जिस भाषा के द्वारा इतिहास, विज्ञान, आदि विषयो की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा का माध्यम कहते हैं। वस्तुत हमारे देश मे अभी भाषाओ की ही शिक्षा दी जाती है, भाषा मे विषय-शिक्षा की मात्रा बहुत ही थोडी है। हमारे बालक संस्कृत, अँगरेजी या अपनी-अपनी मातृभाषा (हिन्दी, बगला आदि) सीखने की चेष्टा करते है। सौ मे एक कुछ सफल भी हो जाता है। पर अपनी भाषा या वैदेशिक भाषा में वस्तु की शिक्षा, अर्थात् दर्शन, विज्ञान आदि का असली ज्ञान, प्राय दस हजार पढनेवालों में से एक को होता है, क्योकि देश में शब्द-शिक्षा-प्रणाली इतनी विस्तृत हो गई है कि वस्तु-शिक्षा की ओर न तो लोगो का ध्यान है और न उसके लिए उत्तम प्रबन्ध ही है। सारा देश चावल के लिए तण्डुल या Rice, सोने के लिए सुवर्ण या Gold, रात-रात भर के परिश्रम से 'घोख' कर याद रखना ही परम पुरुषार्थ मान रहा है। मिट्टी से चावल या सोना कैसे निकाला जाता है, ये निकलने पर क्या-क्या काम देते है, इन बातो की ओर से लोग विमुख है और उनकी विमुखता बढती ही जाती है। किसान, शिल्पी आदि सभी पेशेवाले शब्द-शिक्षा में ही अपने-अपने बालको को लगाकर और ज्ञान-विज्ञान को तिलाञ्जलि देकर देश का उद्देश्य वस्तासेवन मात्र बना रहे हैं। कही-कही वस्तु-शिक्षा कुछ दी भी जाती है तो वह ऐसी भाषा मे और इतने अधिक व्यय से कि सर्वसाधारण के लिए उससे लाभ उठाना असम्भव हो जाता है।

ऐसी दशा मे देश का क्या कर्त्तव्य है, इस सम्बन्ध के कतिपय प्रस्ताव यहाँ उपस्थित किये जाते है। आशा है, देश की जनता अपनी दीर्घ तद्रा का त्याग करेगी, अपने बच्चो और अपने देश के कल्याण के लिए इन प्रस्तावो पर ध्यान देगी, तथा उन प्रस्तावो को कार्य में परिणत करने का उद्योग करेगी। जिन लोगो को पर्याप्त समय, शक्ति और द्रव्य आदि है तथा जो लोग स्कूल, कालेज आदि में शिक्षा पा रहे है, वे चाहे

नौकरी के लिए पढे, जैसा लाखो लोग कर रहे है, या ज्ञान-विज्ञान के लिए पढे, जैसा दो-चार कर रहे है, उन्हे स्कूल-कालेज से हटाना उचित नही। वे जिस रास्ते जा रहे है उन्हे उसी रास्ते जाने देना चाहिए। पर जो लोग द्रव्य आदि के अभाव से स्कूल-कालेज मे नही जा सकते, उनकी ओर देश का कुछ भी ध्यान नही है। उनके लिए देश ने न तो अभी तक कुछ किया है, और न आज भी कर रहा है।

यह देश के लिए वडी लज्जा की वात है। इन वालको के लिए देश को बहुत शीघ्र प्रवन्ध करना चाहिए। मेरी सम्मति म इन वालको की शिक्षा के लिए स्थान-स्थान पर शिक्षा के आश्रम स्थापित होने चाहिए, जिनमें नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो। इन आश्रमो का प्रवन्ध जनता के द्वारा दिये धन से होना चाहिए। इन आश्रमो का ऐसा सगठन हो, जिससे इनमें पढनेवाले विद्यार्थियो के मस्तिष्क का सस्कार हो और इनके हाथ-पैर भी शिल्प-कला आदि उपयुक्त कार्यो मे अभ्यस्त होकर, जीविकालाभ मे, इन्हे सहायता दे सके। ऐसा एक भी आदर्श आश्रम यदि देश में वन जाता और उसकी शाखा-प्रशाखाओ को देश भर में धीरे-धीरे वढाने का प्रयत्न होता तो देश-वासियो के सर से एक वडा कलक दूर हो जाता, लोगो को यह कहने का अवसर न रहता कि यह देश दिनोदिन अविद्यान्धकार की ओर वडे वेग से पैर वढा रहा है, और यह वात भी न कही जाती कि यह देश दिग्भ्रान्त होकर, जिधर जाना है ठीक उसकी उलटी ओर जा रहा है।

ऐसे आश्रम मे आवश्यक शिक्षा का पूरा-पूरा प्रवध होना चाहिए। एक औषधोद्यान होना चाहिए। प्रत्येक वृक्ष, लता, आदि पर उनके नाम सस्कृत और हिन्दी मे लिखे होने चाहिए। वाहरी औषधियो के सूखे नमूने यहाँ रखे जाने चाहिए। ऋषियो ने अपूर्व परिश्रम मे अद्भुत औषधियो के गुण निकाले है। उनके ज्ञान से देश के धन, धर्म तथा जीवन तीनो की रक्षा होती थी और आज भी हो सकती है, पर दुर्बुद्धिवश हमलोगो ने इस विज्ञान की उपेक्षा की है। आज हरीतकी और हर्रे के वदले terminalia chebuta तथा अपामार्ग और चिचिडी के वदले achyranthes aspera सीखने की दशा आ गई है। ऐसे उद्यान के अभाव में वैद्य, रोगी तथा दूकानदार, तीनो औषधो के ज्ञान तथा उपयोग से वचित हो रहे है। 'अधा गुरु, वहिरा चेला, मांगे हर्रे दे वहेरा' इस आभाणक (कहावत) की चरितार्थता हो रही है। औषधोद्यान वनाना कोई वडी वात नही। लाखो-करोडो के व्यय से वडे-वडे वाग भारत मे वने है और वनते है। प्राय एक हजार वृक्ष, लता, घासपात का औषधोद्यान दुर्घट या वहुव्ययसाध्य नही, फिर भी दु ख की वात है कि इधर किसी की प्रवृत्ति नही है। ऐसा औषधोद्यान देश के लिए वडा ही मगलकारी है। इसके निर्माण में देशवासियो को पूरी सहायता करनी चाहिए। सहायता हर प्रकार की होनी चाहिए, जिससे वाग सर्वांगसुन्दर वन सके। वीच-वीच में अवकाश के अनुसार लोगो को स्वय वहाँ जाना चाहिए तथा वृक्षो, लताओ और औषधियों का परिचय प्राप्त करना चाहिए। ऐसे वाग में साक्षर पुरुष को आसानी से जैसी शिक्षा मिल सकती है वैसी शिक्षा अन्य स्थानो में वडी कठिनता से भी नही मिल सकती। ऐसे उद्यानो से ठीक समय पर सग्रह किये गये औषध आदि दिये जायँ और उनका उचित मूल्य

लिया जाय तो इससे उद्यान के व्यय में भी सहायता पहुँचे और जनता का भी, विशुद्ध औषध मिलने से, परम उपकार हो।

उस आश्रम में औषधोद्यान के साथ-साथ ग्रह आदि के निरीक्षण के लिए एक वेधालय भी होना चाहिए, और उसमें साधारण यन्त्रो का सग्रह होना चाहिए। यहाँ दूरवीक्षण आदि यन्त्रो की सहायता से आश्रम के विद्यार्थियो तथा साधारण जनता के लिए आकाश-निरीक्षण का प्रबध होना चाहिए। इससे उनका ज्ञान बढेगा और चित्त का विकास होगा। बडे-बडे विद्वान् इस औषधोद्यान तथा वेधालय से पूरा लाभ उठा सकते है। वे अपने अध्ययन का प्रयोग कर सकते है, अपने ज्ञान को बढा सकते है और तत्त्वान्वेषण भी कर सकते है। ऐसा होने से देश में नये-नये आविष्कार होने लग जायँ, उनसे देशवासी लाभ उठावे और देशान्तर के लोग चकित हो जायँ।

औषधोद्यान और वेधालय के साथ-साथ मुख्यतया सस्कृत और भाषा की पुस्तकों का, और भाषान्तरीय उपयुक्त पुस्तिकाओ, पत्रो आदि का भी सग्रह होना चाहिए। देश का पुस्तक-भाण्डार अद्भुत और विस्तृत है। कोई विषय इस में बाकी नही है। दर्शन, विज्ञान, काव्य, नाटक, इतिहास, शिल्पकला आदि की कोई सीमा नही है। संस्कृत पुस्तको का एक-एक सूचीपत्र दस-बीस से लेकर सौ रुपये मूल्य तक का बन चुका है। पर देशवासी विद्वानो में से इने-गिने लोगो को ही इन्हें देखने का सौभाग्य हुआ होगा। देश में हिन्दी-सस्कृत के पुस्तकालय थोडे ही है। जो है भी, वे ऐसे ढग के है कि वहाँ सर्वसाधारण का पहुँचना दुस्तर है। ऐसी अवस्था मे देशवासी कैसे विद्या का लाभ, या नूतन ज्ञान-विज्ञान का आविष्कार कर सकते है।

इस आदर्श आश्रम के तीनो विभागो मे, सर्वसाधारण के हित के लिए कितनी सुगमता से विद्योन्नति हो सकती है, यह बात सभी आसानी से समझ सकते है। पर इस उन्नति के लिए आश्रमवालो तथा जनता को कुछ नई बातो का भी खयाल रखना होगा। तथा नये ढग की शिक्षापद्धति बनानी होगी। यहाँ शिक्षा का क्रम ऐसा रखना होगा जिस से विद्यार्थी की शक्ति, समय आदि के पञ्चानवे प्रतिशत अश का व्यय, देश-भाषा द्वारा, शिल्पकला के अध्ययन में हो। सर्वसाधारण की शिक्षा की व्यवस्था सुगम, सुबोध कथा आदि के रूप में होनी चाहिए, जिससे वह सभी ज्ञान-विज्ञान आदि अनायास सीख जायँ।

यदि बहुत धन के व्यय से, बीस-तीस वर्ष वैदेशिक भाषा की शिक्षा में खपाकर छात्रो को थोडा-सा वास्तव ज्ञानविज्ञान देना ही देश का उद्देश्य हो तो इसके लिए वर्त्तमान शिक्षा-सस्थाएँ ही पर्याप्त है, नई संस्थाएँ खोलना व्यर्थ है। किन्तु हमारा परम उद्देश्य तो देश-भाषा मे शिल्पकला की शिक्षा बहुत से छात्रो को देकर, थोडे ही लोगो को शाब्दिक शिक्षा की ओर लगे रहने देना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए और दिमागी तरक्की के लिए जो पहले तीन विभाग, औषधोद्यान, वेधालय और पुस्तकालय, बतलाये गये है, उनके साथ ही साथ शिल्पकला के लिए भी दस-बारह विभाग खोलने होगे। बढई, राज, लुहार,

चमार, ठठेरा, कसेरा, रगसाज, घड़ीसाज, माली, हलवाई आदि के कामो के लिए अलग-अलग विभागो का प्रबन्ध आश्रम में करना होगा, जिससे हाथ से काम करनेवाले भी अच्छे सस्कार और अच्छे मस्तिष्क पा सकें और वे पुरानी-नई किसी भी कारीगरी से नौकरी मे निरपेक्ष होकर, अपना जीवन सुख से तथा गौरव से बिता सके। इससे देश का यह बडा भारी कलक—विद्वान् हाथ का काम नही कर सकते और हाथ के काम करने वाले मस्तिष्क का काम, आविष्कार आदि, नही कर सकते—दूर हो जायगा और इस पतनोन्मुख भूमि पर भी नये खयाल तथा उन्नत आदर्श के लोग उत्पन्न होने लगेंगे।

(शिक्षा का सम्मेलनांक, खण्ड २७ संख्या १)

शाश्वत धर्मप्रश्नोत्तरावली

[शाश्वत धर्मप्रश्नोत्तरावली के १५ से पूर्व तक के अंक इस निबंधावली के पृष्ठ ७६-७७ में छप चुके है। शेषांश पूर्वरूप में यहाँ मुद्रित किया जा रहा है।]

१५. प्र०—ससार का आदि-अन्त है या नही ?

उ०—ससार अनादि और अनन्त है।

१६. प्र०—भेद सत्य है या असत्य ?

उ०—ईश्वर एक है पर उसके भीतर अनन्त विचित्र और सत्य भेद है।

१७. प्र०—सत्य किसे कहते है ?

उ०—जो कुछ है सो सत्य है; चाहे वह क्षण भर के लिए हो या अनन्त कल्प के लिए। जो क्षण भर के लिए भी न हो और जिसका होना केवल भ्रम से ही मालूम हो सकता है उसे असत्य कहते है। जैसे—बाँझ का बेटा, सर्वज्ञ मनुष्य, खडाऊँ पर उडने वाला पुरुष, मद्य का समुद्र, नदी मे से निकाला हुआ घी, भक्त के रूप में राम, भूत-प्रेत, पिशाच आदि, मन्त्र से बन्धन, बीमारी आदि छूटना या रुपया आदि मँगवाना, भारत से विना तार के अमेरिका आदि की बात जानना इत्यादि।

१८ प्र०—अवतार किसे कहते है ? क्या अवतार का शरीर अविनाशी और बुद्धि सर्वज्ञ है ?

उ०—जो कुछ है, वह सब परमेश्वर है। विस्तृत अर्थ मे कोई ऐसी वस्तु नही जो अवतार नही हो। सकुचित अर्थ मे, अवतार उस पुरुष को कहते है जो ठीक-ठीक विचार करने की शक्ति रखता हो, शारीरिक बल मे अधिक हो तथा आचरण में शुद्ध हो, इत्यादि। किसी का शरीर अनादि नही है और किसी का मन या आत्मा सर्वज्ञ नही है।

१९. प्र०—इस समय कौन युग है ?

उ०—साधारणत सभ्य लोगो के लिए आजकल त्रेतायुग है, क्योकि मनुष्यो में आधे से अधिक उन्नति और समृद्धि प्राप्त कर रहे है। मनु के अनुसार कलि १२०० वर्ष तक रहता है और द्वापर, त्रेता और सत्ययुग का प्रमाण क्रम से उससे दुगुना, तिगुना और चौगुना होता है। दिव्य वर्ष अथवा ध्रुवीय वर्ष और मनुष्य वर्ष दोनो एक ही है, क्योकि एक वर्ष दो अयनो का होता है (उत्तरायण और दक्षिणायन)। दिनो की सख्या प्रधान नही है। अतीत कलियुग के के प्रारभ काल से आजतक ५०११ वर्ष व्यतीत हुए। यदि कलियुग के बाद झट सत्ययुग आता हो तो आज सत्ययुग का चौथा चरण है। ५०११ वर्षो में से केवल १२०० वर्ष कलियुग के हुए। परन्तु ऐसा कहना अधिक उचित

होगा कि कलियुग के १२०० वर्ष बीतने पर द्वापर २४०० वर्ष तक रहा और त्रेता का प्रारभ हुए आज १४०० वर्ष हो गए। इस तरह आजकल त्रेता का द्वितीय चरण बीत रहा है। एक नाम के सभी युगो मे अवतार नही होते। जो व्यक्ति किसी एक त्रेता युग मे उत्पन्न हो चुका है वह फिर कभी अवतार नही ले सकता।

२०. प्र०—देवता किसे कहते है? असुर किसे कहते है? सबसे बडा देवता कौन है? सबसे दुष्ट असुर कौन है?

उ०—जो कुछ महान् और प्रशसनीय हो वही दिव्य कहा जाता है और जो कुछ घृणित हो वही आसुरी कहा जाता है। सत्य या परमार्थ ही सबसे बडा देवता है और बेठिकानी बाते अथवा पाखण्ड सबसे दुष्ट असुर है।

२१. प्र०—कैसे मनुष्यो मे, शाश्वत धर्मवाले लोग, देवता का भाव रखते है?

उ०—स्त्री के लिए उसका पति, विद्यार्थी के लिए उसका गुरु और लडके के लिए उसका माँ-बाप, यही हमारे धर्म मे देवता समझ जाते है।

२२. प्र०—स्वर्ग किसे कहते है और नरक किसे कहते है?

उ०—पाखण्ड, बेठिकानी बातो मे विश्वास, और तज्जन्य दु खादिको का नाम नरक है। इनसे मुक्त होने को और तज्जन्य आनन्द को स्वर्ग कहते है।

२३. प्र०—देवदेव कौन है और उसकी आराधना कैसी होती है?

उ०—सर्वात्मा सबसे बडा देवता है और विवेक या ससार की सर्वाङ्गीण उन्नति की यथाशक्ति चेष्टा तथा व्याहत बातो मे शक्ति को नष्ट करने से दूर रहना ही उसकी सेवा है। पाखण्ड और व्याहत परीक्षा उसका तिरस्कार है और इससे बडा कोई पाप नही है।

२४. प्र०—ऋषि किसे कहते है?

उ०—जो कोई अपने ही बल से किसी विचार अथवा किसी कार्य के विषय मे, जहाँ तक उसे शिक्षा मिली हो उससे आगे, उन्नति करता चला जाय, उसी को, साधारण अर्थ मे, ऋषि कहते है। प्राचीन भारत के ऐसे लोग, जिन्होने प्राचीन धर्मो के मुख्य तत्त्वो का पता लगाया था, विशेष अर्थ मे ऋषि कहलाते है।

२५. प्र०—मन्त्र किसे कहते है और उसका क्या उपयोग है?

उ०—साधारण भाषा मे या सक्षिप्त रूप से सकेतित अक्षरो में जो वाक्य किसी नवीन आविष्कृत बात का वर्णन करते है उन्हे मन्त्र कहते है। यह मन्त्र उस बात का केवल स्मरण दिलाता है। इसके शब्द या इसकी आवाज दूसरे शब्द या आवाजो से किसी प्रकार अधिक शक्ति नही रखती।

२६ प्र०—योग और समाधि किसे कहते है? योग और समाधि का क्या काम है? सिद्धि और विभूति किसे कहते है।

उ०—चित्त लगाना योग है, समाधि मन को एकाग्र करने को अथवा ध्यान के विषय पर यथासभव अत्यन्त एकाग्रचित्त होने को कहते है। जो ध्यान देने

से हो सके वही इनके द्वारा सम्पादित हो सकता है। जैसे—ध्यान देकर पढना या ध्यानपूर्वक कार्य मे लगना, विना मन लगाये काम से अधिक लाभदायक है। उद्योगी, उचित विचार वाले, पूर्णरूप से ध्यान देनेवाले, काम म लगे रहनेवाले तथा अन्य उपयोगी गुणो वाले लोग, जिन शिल्पकला तथा विज्ञानसवधी कार्यो को कर डालते है, वे ही सिद्धि या विभूति कहे जाते है।

२७ प्र०—कोई वस्तु निर्गुण या निराकार है या नही?

उ०—रूप और गुण से रहित कुछ भी नही है। भूख, सुख आदि या लालिमा आदि गुण भी अपने गुणियो से, मन ही मे पृथक् किये जाते है, जिन्हे और पदार्थों की तरह ही रूप और गुण है।

२८ प्र०—चेतन किसे कहते है और अचेतन किसे कहते है?

उ०—जो बहुतेरे उपायो मे से एक चुन लेता है वह चेतन है और जिसे केवल एक ही निर्दिष्ट साधन है, वह अचेतन है। एक सुई, जो लौह-चुम्बक के पास सदा एक ही गणित-निर्दिष्ट रेखा से होकर पहुँच जाती है, अचेतन है। परन्तु एक चीटी, जो चीनी के पास पहुँचने के लिए अपनी राह को अवसर के हिसाव से बदलती है, चेतन है।

२९ प्र०—दैव किसे कहते है? पौरुष किसे कहते है? पुरुषार्थ किसे कहते है?

उ०—जो सम्पूर्ण अतीत है तथा जो एक व्यक्ति के अधिकार से वाहर है उसे भाग्य कहते है। जो उसके अधिकार में है वह पौरुष है। इन दोनो के सम्बन्ध के फल को दैव कहते है। प्रत्येक मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम के साधन की चेष्टा करनी चाहिए। इनके ही उचित अनुसरण, जिसमे सर्वात्मिक सेवा भी होती रहे, मोक्ष कहते है।

३०. प्र०—ईश्वर ससार का सर्जन करने वाला, शासन करने वाला या कारण कहा जा सकता है या नही?

उ०—सृष्टि करनेवाला और सृष्ट, शासन करनेवाला और शासित, कारण और कार्य—इनसे द्वैत झलकता है। अत. अद्वैत दिव्य सत्ता के संबध में इनका उपयोग नही किया जा सकता।

३१. प्र०—मृत्यु किसे कहते है? क्या सुख-दुःख से रहित कोई हो सकता है?

उ०—प्राणशक्ति के बिगड जाने के कारण जीवन के लोप को मृत्यु कहते है। कोई भी सुख-दु ख से वस्तुत मुक्त नही हो सकता। किन्तु सुख-दु ख के सहने की शक्ति व्यक्तिविशेष तथा अवस्था पर निर्भर है।

३२. प्र०—शरीर के मरने पर आत्मा क्या हो जाता है?

उ०—जैसे घडी के पुर्जों के विगड जाने से घडी के कार्य का लोप हो जाता है; वैसे ही जीवात्मा, जो शरीर का एक कार्यमात्र है, मृत्यु के साथ ही

लुप्त हो जाता है। प्रत्येक समुदाय[1] (Combination) अपने कार्य-विशेष के साथ नाशवान् है। समुदाय होने के कारण जीव में कोई नाशरहित अश नही है। केवल सर्वात्मा ही नाशरहित है।

३३. प्र०—जन्म के पहले या मरने के बाद आत्मा का जीवन है या नही?

उ०—एक व्यक्ति-समुदाय (Individual Combination) का शक्ति-विशेष होने के कारण जीवात्मा समुदाय के आरभ के पहले अथवा उसके नाश के बाद, नही रह सकता। आत्मा और समुदाय एक ही साथ रहनेवाले है।

३४. प्र०—सन्यास से या क्लेश से कुछ फल है या नही? तप किसे कहते है?

उ०—सन्यास अथवा शरीर को कष्ट देना सर्वथा व्यर्थ है। सयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना और सत्यप्रियता तथा सत्य को कठोरता के साथ कार्यरूप प्रदान करना ही सच्चा तप है।

३५. प्र०—पारमार्थिक ज्ञान किसे कहते है?

उ०—जीवात्मा सर्वात्मा का एक अश है, ऐसा समझने को पारमार्थिक ज्ञान कहते है।

३६ प्र०—धर्म का क्या मूल है और धर्म का शत्रु क्या है?

उ०—अभेद मे भेद का ज्ञान और फलत प्रत्येक व्यक्ति के साथ निष्पक्ष व्यवहार करना तथा सत्यप्रियता—ये ही धर्म के मूल है। चाहे भेद हो या अभेद, इनमे से किसी एक की भी अवज्ञा करने का अर्थ है व्याहत बातो के प्रति अनुराग। यही सभी अधर्मों का मूल है तथा धर्म का विरोधी है।

३७. प्र०—शाश्वत धर्म के अनुसार कौन-से गुण मुख्यतया मनुष्य के लिए अनुसरणीय है?

उ०—धैर्य, क्षमा, मन को रोकना, चोरी न करना, शुद्ध रहना, इन्द्रियो को वश मे रखना, बुद्धि, विद्या और सत्य का अर्जन करना तथा क्रोध न करना, ये ही शाश्वत धर्म के अनुसार धर्म के मुख्य लक्षण है। मनु ने भी कहा है—

धृति. क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम् ।।

३८ प्र०—विचाररूप और कर्त्तव्यरूप धर्म के मूल तत्त्व कौन-से है?

उ०—श्रूयता धर्मसर्वस्व श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मन प्रतिकूलानि न परेषा समाचरेत् ।।

विचाररूप धर्म का मूल सत्य है और कर्त्तव्यरूप धर्म का मूल यह है कि जो अपने को बुरा लगे उसे दूसरे के प्रति नही करे।

३९. प्र०—किन बातो से धर्म केवल खेल और नाममात्र का हो जाता है?

---

१. समुदाय शब्द लेखक के द्वारा Combination के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। चूँकि 'समुदाय' हिन्दी मे अन्य अर्थ में रूढ हो गया है, इसलिए अँगरेजी का वह प्रतिशब्द दे दिया गया है जिसका प्रयोग स्वय लेखक ने ही किया है।

उ०—सब कुछ जन्तु के आकार का समझना, शब्द-व्यवहार के अनुसार वस्तु की कल्पना करना, ससार को मायामय समझना, ये तीन प्रकार के उन्माद धर्म को केवल तमाशा और नाममात्र का बना देते है।

४०. प्र०—कहानी (पुराण) किसे कहते है ?

उ०—प्रकृति की वे बाते, जिनका जन्तुओ क दृष्टान्त द्वारा अथवा अलंकार रूप से वर्णन किया जाता है, कहानी (पुराण) है।

४१. प्र०—आध्यात्मिकता किसे कहते है ?

उ०—केवल सत्य मे प्रीति और उसका अनुसधान तथा सभी प्रकार के झूठ से पक्की घृणा—विशेप कर पाखण्ड (अर्थात् पवित्र नाम मे जो झूठी बात हो) से—सच्ची आध्यात्मिकता है।

४२. प्र०—नास्तिक्य किसे कहते है ? आस्तिक्य किसे कहते ह ?

उ०—जो नही है उसे है, जानकर पूजना नास्तिक्य है, जैसे—पिशाच-पूजा, परोक्ष-दृष्टि में विश्वास आदि। और, जो नही है उसका पक्का निराकरण तथा जो है उसमे अटल भक्ति आस्तिक्य है।

४३ प्र०—स्त्री की स्थिति और शिक्षा, विधवा-विवाह और समुद्रयात्रा पर शाश्वत धर्म का क्या विचार है ?

उ०—शाश्वत धर्म के अनुसार स्त्री-पुरुप समान रूप से स्वतत्र है। परन्तु, जहाँ तक हो सके, स्त्री अपनी ही स्वतत्र इच्छा से अपने रक्षक (पिता, पति, पुत्र इत्यादि) के साथ रहे। सयानी स्त्री को अपने अधीन रखने का अधिकार किसी को नही है—जैसे किसी सयाने पुरुष को अपने अधीन रखने का किसी को अधिकार नही है। कानूनी बातो में सरकार ही पुरुष या स्त्री को अपने वश मे रख सकती है। स्त्री को सभी प्रकार की शिक्षा दी जा सकती है। विधवा यदि चाहे तो पति कर सकती है और कोई भी इस काम से उसे नही रोक सकता। इस विषय में इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि स्त्री या पुरुप के युवावस्था प्राप्त होने के पहले विवाह सस्कार विवाह नही है और युवावस्था प्राप्त होने के पहले मैथुन अपराध है। पुरुपत्व या स्त्रीत्व के ह्रास के बाद विवाह करना भी अपराध है। विदेशयात्रा के विपय में, कोई भी क्यो न हो, जैसे अपने देश में रहता हो वैसे ही रहे, तो पृथ्वी के दूर से दूर के कोने तक जा सकता है।

४४. प्र०—भारतीयो के ह्रास के क्या कारण है ? क्या शाश्वत धर्म यह मानता है कि विदेशियो के शासन के परिणामस्वरूप किसी देश की भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति में बाधा पहुँचती है ?

उ०—कलि-काल, दैव, पिता-माता की अपेक्षा सतान का अनिवार्यरूप से ह्रासोन्मुख होना, साधुओ के चमत्कार और दैवी शक्ति आदि में विश्वास रखने के कारण,

प्रायः पिछले पन्द्रह सौ वर्षों से, भारतीय जीवन के मूल पर कुठाराघात होता रहा है। इसी कारण भारतीयो का ह्रास होता चला जा रहा है। भारतीय जीवन की परपरा तथा शास्त्रो का आदेश यही है कि विदेशी शासन असह्य है, किन्तु साथ ही साथ, अधविश्वासी स्वदेशवासी की अपेक्षा योग्य और विद्वान् विदेशी अधिक आदरणीय है। विदेशी शासन हो या अयोग्य स्वदेशनिवासियो का शासन, दोनो ही दशाओ मे देश की उन्नति में बाधा पहुँचती है।

४५. प्र०—विवाह, श्राद्ध, सध्यावन्दनादि प्राचीन और अर्वाचीन रीति-रस्मो पर शाश्वत धर्म का क्या विचार है ?

उ०—इन रीति-रस्मों से सबद्ध विधि-विधान और प्रतीक परपरागत है और इनका कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक महत्त्व नही है। पूर्वजो के आदेशानुसार उनका वही तक पालन करना उचित है जहाँ तक वे विधि-विधान आदि प्रतीको के मूलगत सत्यो के लिए बाधक नही सिद्ध होते।

४६. प्र०—शाश्वत धर्म के अनुसार मनुष्य की बडाई, छोटाई का निश्चय कैसे होता है ? अशिक्षित ब्राह्मणो को क्या समझना चाहिए ?

उ०—सच्ची विद्या (सच्ची बातो का ज्ञान) और उसका यथार्थ उपयोग, इन्ही से मनुष्य का महत्त्व जाँचा जाता है। किसी भी शिक्षित मनुष्य की तुलना में एक अशिक्षित ब्राह्मण वैसा ही है जैसा जीवित हाथी की तुलना मे एक लकड़ी का हाथी।

४७. प्र०—प्रतीक-पूजा पर शाश्वत धर्म की क्या राय है ?

उ०—प्रतीक-पूजा वैकल्पिक है। जिसे अपने पिता-माता आदि में भक्ति हो, वह उनकी मूर्त्ति रख सकता है या नही भी रख सकता। इससे उसकी भक्ति में कुछ भेद नही पडता।

४८. प्र०—त्यागियो को शाश्वत धर्म क्या मानता है ? पारमार्थिक सन्यास किसे कहते है ?

उ०—जो लोग पूरे समय तक गृहस्थ रहकर जीवन बिता चुके हो (जब उनके लडको के लडके हो गये हो और तीनो ऋण चुक गये हो), वे यदि प्रशान्त जीवन बितावें तो उनकी प्रतिष्ठा है। परन्तु जिन्होने असमय ही, गृहस्थाश्रम बिताये विना ही, सन्यास ले लिया हो, वे समाज के जोक और कीड़े है। संसार से वैराग्य लिये विना भी अपना कर्त्तव्य करना वास्तविक सन्यास और जीवन्मुक्ति है।

४९. प्र०—मासाहार के विषय मे शाश्वत धर्म का क्या मत है ?

उ०—ब्रह्मचारी विद्यार्थियो और गृहत्यागी सन्यासियो के लिए निरामिष भोजन उपयुक्त है। गृहस्थ अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार सामिष या निरामिष

भोजन कर सकते हैं। मछली को छोड़कर गंदे और मांसाहारी पशुओं का मांस अखाद्य है।

५०. प्र०—क्या किसी ग्रन्थ या पुरुष का सब कहना मानने के योग्य है ?

उ०—धार्मिक या कानूनी आज्ञा के अतिरिक्त कोई ग्रन्थ या कोई पुरुष सर्वथा प्रमाण नहीं है। केवल धार्मिक या कानूनी आज्ञा अपने विषय में सर्वथा प्रमाण है।

साहसांक-चरित-चर्चा

नव-साहसाक-चरित नाम के अनेक ग्रंथ थे। नैषधकार श्रीहर्ष ने अपनी बनाई चम्पू का नाम नव-साहसांक-चरित चम्पू लिखा है; पर इससे भी प्राचीन नव साहसांक चरित-काव्य पद्मगुप्त कवि का बनाया हुआ है। पद्मगुप्त का नाम परिमल-कालिदास भी है, पर केवल परिमल नाम से इनकी बहुत प्रसिद्धि है। कवियो के जीवन परमारवंशावतंस श्री भोजदेव (९३२-९७६) शक शताब्दी मे, धारानरेश थे। श्री भोजदेव के पिता सिन्धुराज (९१७-९३१ श०) थे। सिन्धुराज के बडे भाई वाक्पतिराज (मुन्जराज ८९४-९१६ श०) थे। इन्ही वाक्पतिराज और सिन्धुराज की सभा मे परिमल कवि थे। जैसा कि साहसाक-चरित के प्रथम सर्ग मे कवि ने कहा है—

दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति तां संप्रति सिन्धुराजः

(साहसांक-चरित सर्ग १, श्लोक ८)

और भी इस कवि ने कहा है—

सरस्वती कल्पलतैककन्दं वन्दामहे वाक्पतिराजदेवम्।
यस्यप्रसादाद्वयमप्यनन्यकवीन्द्रचीर्णे पथि सञ्चरामः॥

(साहसाक० १-७)

इस कवि ने अपने पहले के कवियो मे भर्तृमेण्ठ कवि की बड़ी प्रशंसा की है। कवि की उक्ति है—

तत्वस्पृशस्ते कवयः पुराणाः श्रीभर्तृमेण्ठप्रमुखा जयन्ति।
निस्त्रिंशधारासदृशेन येषां वैदर्भमार्गेण गिरः प्रवृत्ता॥

(साहसाक० १-५)

किसी-किसी पुस्तक में श्री भर्तृमेण्ठ के बदले श्रीकालिदास शब्द मिला है। कवि ने कालिदास की भी बहुत प्रशंसा की है—

प्रसादहृद्यालंकारैस्तेन मूर्त्तिरभूष्यत।
अत्युज्ज्वलैः कवीन्द्रेण कालिदासेन वागिव॥

(साहसाक० २-९३)

फिर भी कवि ने कहा है—

पूर्णेन्दुबिम्बादपि सुन्दराणि तेषामदूरे पुरतो यशांसि।
ये भर्तृमेण्ठादि कवीन्द्रसूक्तिव्यक्तोपदिष्टेन पथा प्रयान्ति॥

(साहसांक० १-६)

परिमल कवि ने नृपकवि श्रीहर्षवर्धन और उनके सभासद बाणभट्ट और मयूरभट्ट का भी नाम लिखा है—

सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणो रवनीपतिः ।
श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्र बाणमयूरयोः ॥

(साहसांक० २–१८)

गुणाढ्य कवि और उनकी बृहत्कथा की भी बात साहसांक-चरित में आई है—

करेण सासूयमपास्य कर्णत क्वणद्द्विरेफावलिनीलमुत्पलम् ।
तदैतयाभ्युद्गतपक्षपातया श्रुता गुणाढ्यस्य बृहत्कथा तव ॥

(साहसांक० ७–६४)

राजाओ मे श्रीहर्ष के अतिरिक्त इसने श्रीविक्रमादित्य और सातवाहन का भी नाम लिखा है—

अस्ति क्षितावुज्जयिनीतिनाम्ना पुरी विहायस्यमरावतीव ।
बबन्ध यस्यां पदमिन्द्रकल्पः श्रीविक्रमादित्य इति क्षितीशः ।

(साहसांक० १–१७)

अतीते विक्रमादित्ये गतेऽस्तं सातवाहने ।
कविमित्र विशश्राम यस्मिन् देवी सरस्वती ॥

(साहसांक० ११–९३)

परिमल का यह श्लोक—

चित्रवर्तिन्यपि नृपो तत्त्वावेशेन चेतसि ।
व्रीडार्धवलितं चक्रे मुखेन्दुमवशैव सा ॥

(साहसांक० ६–४२)

वाक्पतिराज के सभासद धनिक के दशरूपावलोक में भी है। परिमल कवि कालिदास के सदृश शैव थे। उनका मगल का श्लोक शिवपार्वती के ऊपर है—

अव्यात् स वो यस्य निसर्गवक्रः स्पृशत्यविज्यस्मरचापलीलाम् ।
जटापिनद्धोरगराजरत्नमरीचिलीढोभयकोटिरिन्दुः ॥

(साहसांक० १–१)

पौराणिक कथा में मध्यम समय की प्रीति तो बहुत ही थी। विल्हण कवि के नायक, विक्रमाक के वश के आदि पुरुष, ब्रह्मा के चुल्लू से निकले थे; इसीसे वश का नाम चालुक्य पडा था। परिमल के नायक, सिन्धुराज के मूल पुरुष, परमार, आग की आहुति से निकले थे। परमार के वश में उपेन्द्र, वाक्पतिराज (प्रथम), वैरिसिंह और सीयक हुए। सीयक के दो पुत्र हुए—वाक्पतिराज (द्वितीय) और सिन्धुराज। इस प्रकार से परमार वश का वर्णन एकादश सर्ग में पाया जाता है। जान पडता है कि प्रसिद्ध विक्रमादित्य या विक्रमांक को लोग साहसांक भी कहते थे; क्योंकि विक्रम और साहस प्राय पर्यायी शब्द हैं। सिन्धुराज को लोगो ने नया विक्रमां या नवसाहसांक कहना आरभ किया। परिमल के काव्य की कथा, उपन्यासो की कथा

से भी वढ गई है; नाग देवयोनि आदि से भद्दी-सी हो गई है; आश्चर्य-वृत्तान्तो से लद गई है। पर, कविता वडी मधुर और प्रासादिक हुई है। कहने के लिए तो सव कवि वैदर्भ रीति से ही लिखना चाहते हैं।

दूत्याय दैत्यारिपतेः प्रवृत्तो द्विषां निषेद्धा निषदप्रधान ।
सभीमभूमिपतिराजधानी लक्षीचकाराथ रथस्यदस्य ।।

(नैषध ६-१)

ऐसे ऊँट की टाँग के सदृश गिरहदार श्लोक लिखने वाले नैषधकार भी अपने को वैदर्भी देवी का उपासक समझते है जैसा कि,

धन्यासि वैदर्भिगुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोपि।

(नैषध ३-११६)

इस पद के व्यग्यार्थ में झलकता है; पर असल वैदर्भी के उपासक, भास, कालिदास, मेण्ठ, परिमल आदि ही कहे जा सकते है, कही-कही विल्हण भले ही इस देवी के चरण तक पहुँचे। पहुँचने की प्रतिज्ञा तो विल्हण ने भी की ही है।

अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वतीविभ्रमजन्मभूमिः।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभः प्रतिभूः पदानाम् ।।

(विक्रमाक० १-९)

श्रीहर्ष आदि तो वहुत ही कठिनता से कभी-कभी इस देवी की सेवा मे पहुँचे है। जो माधुर्य और प्रसाद, कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग मे श्रीकालिदास की लेखनी से धारा-प्रवाह चली है, उस माधुर्य या प्रसाद का अनुभव परिमल के अतिरिक्त और किसी कवि के आलाप में नही मिलता है। अगूर की मधुरता, चखे विना, कैसे कोई उसे समझ सकता है? वैसे ही, साहसाक-चरित का चतुर्थ सर्ग और कुमारसम्भव का पचम सर्ग, जिसने वार-वार नही पढा है, उसके लिए कालिदास की या परिमल कालिदास की उक्तियो की मधुरता का अनुभव असम्भव है—

नृपस्य कस्यापि परिच्छदांगना यदि त्वमुच्चैर्विभवोहि कोपित:
मरुत्पतिर्मनक एव तन्वि यस्त्वयापि बालव्यजनेन वीज्यते।

(साहसाक० ४-५६)

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीश प्रतिपक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ।।

(कुमारे ५-३)

असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद् विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ।।

(कुमारे ५-५४)

शिलीमुखेऽस्मिस्तवनामवाञ्छिते मृगोपनीते मृगशावलोचना।
प्रमोदमाप्तेयमितो विलोकिते करे चकोरीव तुषारदीधितेः ।।

(साहसाक० ७-६२)

ऐसी कविता की छटा क्या कालिदास और परिमल के अतिरिक्त और कही मिल सकती है?

परिमल को कोमलता का खयाल बराबर रहता है। कठिन अक्षर वीर रस मे भी इसके मुख से नही निकलते--

मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराजले
नाथास्मिन्निति बन्दिवाचि बहुशो देवश्रुतायां पुरा ।।
मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथस
कान्तारे कृपणाः विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ ।।१।।

परिमल की कठिन से कठिन कविता भी ऐसी ही होती है। कोमलता के खयाल से चरण के अन्त मे दोघ अक्षर के प्रयोग से भी परिमल को भय होता है और प्राय वे लघु अक्षरो का प्रयोग करते है। साहसांक-चरित के अतिरिक्त परिमल का कोई अन्य ग्रथ अभी नही मिला है। पर, इनके अनेक पद्य सूक्ति सग्रहो में मिलते है--'मग्नानि द्विषता कुलानि' इत्यादि पद्य ऐसे ही ग्रथो से लिये गये है।

साहसाक-चरित की स क्षिप्त कथा यहाँ पाठको की कौतुक-पूर्त्ति के लिए लिखी जाती है।

शिप्रा नदी के किनारे उज्जयिनी नाम की नगरी है। वहाँ सिन्धुराज नाम के राजा हुए। उन्हें लोग नव साहसाक और कुमार नारायण भी कहते है। उनके मन्त्री यशोभट थे, जिन्हें कवि लोग रमागद भी कहते है। सिन्धुराज की दूसरी कुल-राजधानी धारा थी।

एक समय राजा शिकार को चले। विन्ध्य-वन मे शिकार करते-करते राजा ने एक अपूर्व मृग देखा। वे मृग के पीछे चले। उन्होने उसे वाण मारा। वाण के साथ ही मृग जगल मे अदृश्य हुआ। थके-मांदे राजा भी एक पुष्करिणी के तीर पर पहुँचे। वहाँ दोपहर को विश्राम कर उन्होने फिर शिकार किया और केवल मन्त्री रमागद के साथ रात भी वन ही मे विताई।

प्रात.काल होने पर फिर भी सोने की जजीर गले मे पहिने हुए उसी मृग की शोभा स्मरण करते हुए राजा वन में घूमने लगे। इसी समय आकाश मे मोती की माला लिये हुए एक हंस ेख पडा। राजा और मन्त्री ने कुछ दूर तक हस का पीछा किया। हार हस के चगुल से गिर पडा, और हस कही चला गया। मन्त्री ने हार उठा लिया। मन्त्री के हाथ मे राजा ने हार लेकर देखा तो हार में इन्द्रनील मणि के अक्षरो में यह श्लोक लिखा हुआ पाया--

मनसिजवरवीरवैजयन्त्यास्त्रिभुवनदुर्लभविभ्रमैकभूमेः।
कुचमुकुलविचित्रपत्रवल्ली परिचित एष सदा शशिप्रभायाः ।।

हार मे ताजा चन्दन लगा हुआ था। इससे अनुमान होता है कि जिसका हार है, वह व्यक्ति भी समीप है। राजा कामशरो से पीडित हुए और एक कुज में शिला पर बैठ गये।

राजा शशि-प्रभा की चिन्ता मे पडे हुए थे। हार का चन्दन उँगलियो से छुडा रहे थे। शशि-प्रभा के रूप और विलास के विषय मे अनेक कल्पनाएँ कर रहे थे। इतने मे ही सामने तमाल-कुञ्ज मे, जैसे मेघ के बीच से चन्द्रकला चमके वैसे एक विलासिनी चमक पडी। रमागद से इसके बारे मे राजा कुछ कह रहे थे; तब तक उसने भी इन्हे देखा। इन्हे आकार से ही एक महापुरुष समझकर वह स्त्री इनके समीप आई। उसके हाथ मे एक चँवर था और पैर मे नूपुर बज रहे थे। राजा ने उसे देख कर हार अपने दुपट्टे से ढाँक लिया। वह राजा को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से दूसरे शिलातल पर बैठ गई। राजा के इशारे से रमागद ने उसका कुशल्-मगल पूछा। राजा ने भी उससे मधुर वचन कहे। उसने बडे विनय से राजा से कहा—'महाराज, आपने नागलोक का नाम सुना होगा। नागलोक की राजधानी भोगवती है। वहाँ भगवान् हाटकेश्वर महादेव रहते है। नागराज शखपाल का वहाँ राज्य है। शखपाल की कन्या शशिप्रभा है, जिसके बराबर रति, इद्राणी, चित्ररेखा, घृताची, तिलोत्तमा तथा रंभा भी नही है। अब वह युवती हो चली है। कैलास, मलय और हिमालय पर खेला करती है। आज विन्ध्याचल के कुसुमावचूड नामक भाग पर खेल रही थी। इतने मे उसका चञ्चलकेलि मृग भाग कर कही चला गया। मृग के स्नेह के कारण उसने नदी पर रात बिताई। प्रात काल कलहंसी के मधुर स्वर से विनिद्र होकर उसने अपनी शय्या के समीप सोये हुए मृग को देखा। मृग के अंग मे सोने का वाण लगा हुआ था। कमलदल के सदृश अपने ही हाथो से उसने वाण निकाला और उस पर नवसाहसाक नाम पढा। नाम पढते ही उसके हृदय में काम का आविर्भाव हुआ। इसी वीच हस कमलदड के भ्रम से उसका मोती का हार ले उडा। उस हंस की खोज के लिए नागकन्याएँ इधर-उधर घूम रही हैं। आपके दर्शन से हस के अन्वेषण का मेरा परिश्रम सफल हुआ। आपने हार-सहित पक्षी को यदि देखा हो तो मुझे वतलावे। जान पडता है कि आपने भी नही देखा है। इसलिए मै जानना चाहती हूँ। पर आपके जो वाण यहाँ पडे है उन्हे देखने से यह मालूम होता है कि आपका ही वाण हमारे मृग के अग में लगा था।

आप दिलीप के सदृश है। आपकी रक्षित भूमि मे हमे पक्षी ने लूट लिया। यह कैसी वात है? आप राजा है। हार मै आपसे माँगती हूँ, क्योकि चोरी की चीज वरामद करके जिसकी है उसको दे देना चाहिए। आप यह भी कह सकते है कि तुम भी मेरा वाण दे दो। पर आप वाण नही पा सकते, क्योकि शशिप्रभा के निरपराध केलिमृग पर आपने उसका प्रयोग किया है। हाँ, एक वात है। आपके सदृश महापुरुप का दर्शन यदि शशिप्रभा को हो जाय तो वह हार नही खोजेगी और वाण भी दे देगी। थोडी दूर पर रवा नदी के किनारे चन्द्रकला-सी शशिप्रभा विराजती है। आप स्वयं उससे हार और वाण का हिसाव कर लें। यह सुनकर राजा के आनन्द की सीमा न रही। उन्होने कहा, तुम जैसी वुद्धिमती से क्या वहस करूँ। यह मेरा हार ले लो। इसीसे शशिप्रभा का मनोविनोद करो। मै उसके हार का भी अन्वेपण करूँगा। इतना कहकर

राजा ने अपने कण्ठ से हार निकाल कर पाटला को दिया। इसके बाद राजा ने दुपट्टे से शशिप्रभा का हार निकालकर पहन लिया। रमागद ने इशारे से इस हार की ओर पाटला की नजर फेरी। हार देखकर पाटला बोल उठी, 'अजी महाराज, आप तो कामरूप है। आप ने ही राजहस का रूप धारण कर हार चुराया है। पर यह खेल नही है। आप मेरा हार दे दें। आपने हार का हेरफेर कर दिया है। जान पडता है कि आप मेरा हार नही देंगे। मै जाती हूँ। आप अपना वाण स्वय जाकर शशिप्रभा से माँग लें। राजा ने भी उसके साथ जाना स्वीकार किया। तीनो वहाँ से चले। नर्मदा के तट पर सिंधुराज और शशिप्रभा का मिलन हुआ। राजा के आगमन से कुपित नागो ने मायाबल से ऐसा अधकार और चक्रवात उत्पन्न किया कि शशिप्रभा अतर्हित हो गई। उसे ढूँढते हुए राजा के सामने नर्मदा साकार प्रकट हुई और उसे बताया कि शशिप्रभा के पिता ने यह प्रण किया है कि जो वज्रांकुश राक्षस के सरोवर के कनक-कमल को तोड कर राजकुमारी का कर्णावतस बनायगा उसीके साथ उसका विवाह होगा। राजा ने नर्मदा के द्वारा बताए मार्ग से चलकर, अनेक बाधा-विघ्न पार करते हुए, विद्याधरो की सेना की सहायता से, वज्रांकुश को हराया। तदनतर कनक-कमल को शशिप्रभा का कर्णपूर बना कर राजा ने उसके साथ विवाह किया। इसके बाद वह शशिप्रभा के साथ अपने देश को लौट गया।

सक्षेप में यही मूलकथा पुस्तक मे वर्णित है।

(प्रभा ; प्रथम वर्ष; द्वितीय सख्या; वशाख १९७० वि०)

———

शतश्लोकार्यं धर्मशास्त्रम्

(रामस्मृतिः)

तस्मै सर्वात्मने नमः

प्रथमोऽध्यायः

उपक्रमः

संगृह्य प्राच्यसिद्धान्तान् हिताय जगतः शिवम् ।
तत्त्वं शाश्वतधर्मस्य संक्षेपेणात्र वर्ण्यते ।।

धर्मलक्षणम्

सत्येन विधृतं सर्वमसत्यं विप्लवावहम् ।
धारणात्सत्यमेवोक्तं धर्मशब्देन कोविदैः ।। १ ।।

उपक्रम

जगत् के हित के लिए प्राचीन सिद्धान्तो का सग्रह कर शाश्वत धर्म का कल्याणकारी तत्त्व यहाँ सक्षेप से कहा जाता है।

धर्म का लक्षण

सत्य से ही सबकी स्थिति है और असत्य से सबका नाश होता है। पण्डित लोग सत्य को ही धर्म कहते हैं क्योकि धर्म वह है जो धारण करे ।।१।।

आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत् ।
इति प्राचीनवचनं सुव्यक्तं सत्यमूलकम् ।। २ ।।

जो अपने को बुरा लगे, वैसा दूसरे से नही बर्तना, इस प्राचीन बचन का मूल निस्सन्देह सत्य ही है ।।२।।

अनुकूलं वदंश्चौर्यं कर्त्तव्यं च विमूढधीः ।
ताडयंश्चोरमायान्तमसत्यं वदति स्फुटम् ।। ३ ।।

जो चोर चोरी को अपने मनोनुकूल कहे और अपनी चीज चुराने वाले को मारे वह मूर्ख अवश्य सफेद झूठ बोलता है ।।३।।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। ४ ।।

धीरज, क्षमा, मन को रोकना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियो को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य का अर्जन और क्रोध न करना ये दस धर्म के लक्षण है ।।४।।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञात एष धर्मः सनातनः ॥ ५ ॥

रागद्वेष से रहित, अच्छे विद्वानो से सेवित और जो अपने अन्त करण में अच्छा जँचे वही सनातन धर्म है ॥५॥

न सर्वसुलभं शास्त्रं नैकमत्यंच तद्विदाम् ।
तस्मात्सर्वस्य हृदयं सुलभं शास्त्रमिष्यते ॥ ६ ॥

शास्त्र सभी को सुलभ नही, न उनके जाननेवाले सब एक ही मत के है। इसलिए हृदय ही सबके लिए सुलभशास्त्र है ॥६॥

दशकं शाश्वतं धर्मं वर्णयन्ति विपश्चितः ।
देशकालादिनियता आचारा न सनातनाः ॥ ॥

पण्डित लोगो ने ऊपर कहे गये दस धर्मों को ही सनातन धर्म बताया है। देश, काल आदि से सबंध रखने वाले आचार सनातन धर्म नही हो सकते ॥७॥

अनर्थहेतूनाचारान् वर्जयित्वा स्वके स्वके ।
अशाश्वतेऽपि धर्मे तु प्रवृत्तिर्नैव दुष्यति ॥ ८ ॥

अनर्थ उत्पादन करनेवाले आचारो को छोड यदि अपने-अपने अशाश्वत आचारो मे भी प्रवृत्ति रहे तो कोई दोष नही ॥८॥

धर्माधर्मावनुस्यूतौ गुणौ सर्वेषु कर्मसु ।
न पृथक्कोपि धर्मोऽस्ति नाधर्मो वा तथा पृथक् ॥९॥

सभी कार्यो का सपादन धर्म, अधर्म दोनो के साथ हो सकता है। धर्म या अधर्म किसी विशेष कार्य का नाम नही है ॥९॥

परस्वहरणैर्देवपूजनं धर्मविप्लवः ।
विण्मूत्रादिविसर्गोऽपि धर्मः पीडाविवर्जने ॥१०॥

दूसरे की चोरी करके देवता का पूजन करना धर्म का नाश करना है। मल-मूत्र का परित्याग भी, पीडारहित हो तो, धर्म-कार्य है ॥१०॥

द्वितीयोऽध्यायः

धर्ममूलम्

आन्तरश्चैव बाह्यश्च धर्मो द्वेधा प्रकीर्त्तितः ।
आन्तरो मूलरूपस्तु बाह्यस्तस्य फलात्मकः ॥१॥

धर्म का मूल

धर्म आन्तर और बाह्य के भेद से दो प्रकार का है। आन्तर धर्म मूलरूप है और बाह्यधर्म उसका फलस्वरूप है ॥१॥

परमार्थानुसरणमनर्थस्य च वर्जनम् ।
सत्यप्रियत्वं धर्मस्य मूलं सर्वत्र कीर्त्तितम् ।।२।।

परमार्थ का अनुसरण करना, अनर्थ का परित्याग करना, सत्य मे प्रीति रखना, ये सर्वत्र धर्म के मूल कहे गये है ।

नास्त्यसत्यसमं पापं धर्मकार्ये विशेषतः ।
असत्यं न स्वयं वाच्यं नाङ्गीकार्यं परोदितम् ।।३।।

असत्य के समान दूसरा कोई पाप नहीं है—विशेष कर धर्म के विषय मे । स्वयं कभी असत्य नही बोलना चाहिए और न दूसरे का कहा असत्य कभी अङ्गीकार करना चाहिए ।।३।।

प्रत्यक्षेणानुमानेनाबाधेनाप्ताज्ञयाऽपि वा ।
यो ज्ञापितः स सत्याख्यः परमार्थः प्रकीर्त्तितः ।।४।।

अबाधित प्रत्यक्ष से या अबाधित अनुमान से अथवा बडे की आज्ञा से जो बात जानी जाय वही सत्य है और वही परमार्थ है ।।४।।

आज्ञा राज्ञामृषीणां वा मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
निर्हेतुकं ग्रहीतव्या स्थितिः सभ्यजनस्य सा ।।५।।

राजा, ऋषि, माता-पिता और गुरु की आज्ञा, विना फल की परीक्षा किये ही माननी चाहिए । सभ्य लोगो का ऐसा ही व्यवहार है ।।६।।

वस्तुस्थितौ तु केषांश्चिन्न शब्दानां प्रमाणता ।
शब्दैरुक्तेऽप्यनुक्तेऽपि वस्तुन्यनुभवः प्रमा ।।६।।

वस्तुस्थिति मे किसी शब्द का प्रमाण नही है । वस्तुस्थिति शब्द से कही गई हो या नही, उसमे अनुभव हो प्रमाण है ।।६।।

यन्नानुभूयते साक्षान्न चैवाप्यनुमीयते ।
तादृशे शब्दमात्रोक्ते सन्देहो व्याहतिर्न चेत् ।।७।।

जिसका साक्षात् अनुभव नही हुआ हो और जो अनुमान मे भी न आव, केवल शब्द से कही हुई वैसी बात में सन्देहमात्र रहता है—यदि बात बेठिकानी न हो ।।७।।

व्याहते तु न सन्देहः सद्यश्चासत्यताग्रहः ।
सत्याराधनशीलानां सभ्यानां स्थितिरीदृशी ।।८।।

बेठिकानी बात मे तो सन्देह भी नही करना चाहिए; उसे सरासर झूठ जानना चाहिए। सत्य की आराधना करनेवाले सभ्य लोगो की ऐसी ही व्यवस्था है ।।८।।

जलमानय पुत्रेति विधेयाज्ञा पितुर्द्रुतम् ।
वाराणसी हिमाद्रावित्यपरीक्ष्य न मन्यते ।।९।।

'हे बेटा, जल लाओ', पिता की ऐसी आज्ञा को झट पूरा करना चाहिए। परन्तु 'बनारस हिमालय पर है', पिता की भी ऐसी बात को, बिना परीक्षा किये, कभी नही मानना चाहिए ॥९॥

वन्ध्यापुत्रशिरोवर्त्ति हेमपात्रं गृहान्तरे।
तदानयेति व्याघातग्रस्तं सद्य उपेक्ष्यते ॥१०॥

'घर के भीतर बाँझ के बेटे के सिर पर सोने का वर्त्तन है, उसे लाओ', ऐसी बेठिकानी बात पर कुछ भी ध्यान नही देना चाहिए ॥१०॥

तृतीयोऽध्यायः

शौचम्

मनःशौचं वचःशौचं कायशौचमिति त्रयम्।
शौचत्रयं मनुष्याणां सर्वकल्याणकारकम् ॥१॥

शुद्धि

मन की शुद्धि, वचन की शुद्धि, शरीर की शुद्धि, ये ही तीन प्रकार की शुद्धियाँ मनुष्यो के लिए सर्व-कल्याणकारिणी है।

अभावना स्वयं दिव्यशक्त्यावेरन्यकीर्त्तिते।
नासत्ये चेदृशे श्रद्धा तन्मनःशौचमीरितम् ॥२॥

दिव्य शक्ति आदि पर स्वयं विश्वास नही करना और दूसरो की कही हुई ऐसी झूठी बातो में श्रद्धा नही रखना—यह मन की शुद्धि है ॥२॥

सत्यं हि मनसः शौचमसत्यं च मनोमलम्।
तस्मादसत्यं यत्नेन परेषु स्वेषु वर्जयेत् ॥३॥

सत्य ही मन की शुद्धि है और असत्य मन की मैल है। इसलिए अपने मे तथा दूसरो में भी असत्य का यत्नपूर्वक वर्जन करना चाहिए ॥३॥

ईदृशानामसत्यानामख्यापनमिहात्मनि।
परेषु च वचःसत्यं प्रवदन्ति विपश्चितः ॥४॥

ऐसी झूठी बातो को अपने विषय में न कहना और दूसरो के विषय में भी नही फैलाना—यही वचन की शुद्धि ह, जैसा कि पण्डित लोग कहने है ॥४॥

सर्वाङ्गाणां विशेषेण दन्तकेशान्त्रचर्मणाम्।
नैसर्गिकात्तथागन्तोर्यन्मलात्परिवर्जनम् ॥५॥
तत्कायशौचमाख्यातं तदधीनं च जीवनम्।
मृत्तिकाम्बुकृमिघ्नाद्यास्तस्य साधनतां गताः ॥६॥

सब अंगो को, और मुख्य रूप से दाँत, केश, अँतड़ी और चमड़े को, अपने आप उत्पन्न हुए अथवा बाहरी मलो से बचाना, यह शरीर की शुद्धि है। हमलोगो का जीवन इसके अधीन है। मिट्टी, जल और कृमिनाशक पदार्थ इस शुद्धि के उपाय है ।।५-६।।

उच्छिष्टं दूषितस्पृष्टं व्याधितेन च संगतम् ।
निसर्गाननुकूलं च कायशौचविनाशकम् ।।७।।

जो जूठा, दूषित वस्तुओ के स्पर्श और रोगी के सपर्क मे आया हुआ, तथा अपनी रुचि के प्रतिकूल हो, वह शरीर-शुद्धि का नाश करनेवाला होता है ।।७।।

वस्त्रान्नपानावस्थानमैथुनादौ विदूषितै. ।
संसर्गः कायदोषाय तस्मात्तं परिवर्जयेत् ।।८।।

वस्त्र, अन्न, पान, निवास, मैथुन आदि मे विदूषित संसर्ग से शरीर मे दोष होता है, इसलिए इसका परित्याग करना चाहिए ।।८।।

आलस्याद्वा प्रमादाद्वा रागाद्वैर्वा विदूषितै ।
संसर्गे सति सद्यश्च स्नानाद्यैः शुद्धिमाचरेत् ।।९।।

आलस्य, भ्रम अथवा रागादि से यदि दूषित व्यक्तियो से संसर्ग हो जाय तो स्नान आदि से शीघ्र शुद्धि कर लेनी चाहिए ।।९।।

व्याहतस्यानुसन्धानान्नास्त्यशुद्धतरं क्षितौ ।
तस्मात्सिद्धिविभूत्यादौ न मनो विनिविशयेत् ।।१०।।

बेठिकानी बातो के अनुसन्धान से बढकर अशुद्ध बात ससार में और कुछ नही है। इसलिए सिद्धि और विभूति आदि मे कभी मन को नही लगाना चाहिए ।।१०।।

चतुर्थोऽध्यायः

आचार

भोजनं मैथुनं जन्म स्वाध्यायो मृत्युरुत्सवः ।
आचारावसरा एते षट् प्राधान्येन कीर्त्तिताः ।।१।।

भोजन, मैथुन, जन्म, विद्यारम्भ, मृत्यु, साधारण उत्सव—आचार (रीति-रस्म) के लिए ये छः प्रकार के मुख्य अवसर है ।।१।।

तत्राचारस्य गौणत्वं प्राधान्यं वस्तुनः स्मृतम् ।
आचारविस्तरैस्तस्मान्न कार्यो वस्तुविप्लव ।।२।।

ऐसे अवसरो पर वस्तु ही मुख्य है और आचार (रीति-रस्म) गौण है। इसलिए आचार के विस्तार से वस्तु का नाश नही करना चाहिए ।।२।।

पूर्वजानेति निर्हेतुं स्मार्त्ताचारं प्रपालयेत् ।
आज्ञानिर्वाहमात्राय संक्षेपादविमूढधीः ।।३।।

हमारे पूर्वजो की आज्ञा है, यह समझकर, विना फल चाहे, केवल आज्ञानिर्वाह के के लिए, भ्रम से रहित मनुष्य स्मृतियो के आचार का पालन करे ।

भोज्यैर्व्याधिं भजन्कन्यां व्याधितां वरयात्रया ।
आनयन्नाशयन्पुत्रं जन्मोत्सवमहाव्ययैः ॥४॥
क्षिपन्पुस्तकमूल्यं च यज्ञसूत्रमहोत्सवे ।
विटांश्च भोजयन् श्राद्धे हर्षे वेश्योपदंशवान् ॥५॥
अस्मात्तं कुलजैर्मूर्खैः प्राचीनत्वेन कीर्त्तितम् ।
सद्यो निरयभागी स्यादाचाराभासमाचरन् ॥६॥

जो कोई खाने-पीने से रोग बुलाता है, बारात के ढकोसले से बीमार-कन्या घर मे लाता है, जन्म के उत्सव के व्यर्थ खर्च से लड़के की खराबी करता है और यज्ञोपवीत के उत्सव में पोथी का दाम फूँक डालता है, श्राद्ध में गुण्डो को जिमाता है और खुशी मे वेश्याओ से उपदंश रोग खरीदता है, वह कुलवाले मूर्खों के कहे हुए स्मृतियो में अनुपलब्ध झूठे आचारो को करता हुआ तुरत नरक का भागी होता है ।

पथ्यैकसारमशनं भार्यासारं च मैथुनम् ।
जन्म सन्ततिसारं च पठनं ज्ञानसारवत् ॥७॥

उत्तम पथ्य भोजन का सार है, स्त्री-पुरुष-समागम में पति-पत्नी की योग्यता ही सार है, लडके के जन्म मे सन्तान की वृद्धि ही सार है और ठीक समझना पढने का सार है ॥७॥

मृत्यौ भाविशुभं सारमरोग सार उत्सवे ।
आचारजालैः सारस्य विप्लवान्निरयैः स्थिति ॥८॥

आगे की भलाई की चिन्ता ही मृत्यु का सार है, उत्सव का सार रोग को हटाना है, आचार-जाल से सारवस्तु नष्ट करने पर मनुष्य की नरक में स्थिति होती है ॥८॥

शौचं प्राणनिरोधं च व्यायामाञ्छक्तितस्तथा ।
पथ्याहारविहारं च विज्ञानं च भजेत्सदा ॥९॥

शुद्धि, प्राणायाम, शक्ति के अनुकूल व्यायाम, उचित आहार-विहार और शिल्प-शास्त्र का अभ्यास सदा करना चाहिए ॥९॥

विशुद्धमन्नपानं च रुग्णैर्वृद्धैरमैथुनम् ।
शुद्धोऽनिलो नालस्य च सत्यं च शिवकृत्परम् ॥१०॥

खूब शुद्ध अन्न और जल का सेवन, रोगी और वृद्धो के द्वारा मथुन न करना, शुद्ध वायु, आलस्य का अभाव और सत्य—ये ही परमकल्याण करनेवाले हैं ।

———

पञ्चमोऽध्याय:

भक्ति

मातापित्रोर्नृपे चैव गुरौ विद्वत्सु चेष्यते।
तथा श्रेष्ठेषु चान्येषु भक्ति कल्याणदायिनी ॥१॥

भक्ति

माता, पिता, राजा, गुरु, पडितो तथा अन्य श्रेष्ठ लोगो में भक्ति करने से कल्याण होता है ॥१॥

विद्वत्वाद्यं तु यद्भक्तेर्बीजं तस्य विनिश्चये।
भक्तिर्न यस्मिन्कस्मिंस्तु सिद्धधूर्त्ताविनामनि ॥२॥

भक्ति के मूल पाण्डित्य आदि का निश्चय हो जाने पर ही भक्ति करनी चाहिए। सिद्ध आदि नाम रखनेवाले जिस किसी धूर्त्त में भक्ति नही कर लेनी चाहिए॥२॥

व्याहतेनापरीक्ष्येण दिव्यशक्त्यादिना श्रुते।
भक्तिं न कुत्रचित्कुर्यान्नाशहेतुर्हि सा भवेत् ॥३॥

बेठिकानी और परीक्षा के भी अयोग्य दिव्य शक्ति आदि बातो से प्रसिद्ध किसी मे भक्ति नही करना चाहिए। क्योकि ऐसी भक्ति नाश का कारण है ॥३॥

स्वयं गुणान्परीक्षेत परीक्षितगुणे परै.।
पुन परीक्षमाणश्च भक्तिं कुर्वीत धर्मवित् ॥४॥

धर्म जाननेवाला स्वयं गुणो की परीक्षा करे; दूसरो के द्वारा गुणो की परीक्षा होने पर भी स्वयं परीक्षा करके ही भक्ति करे ॥४॥

पितृत्ववैदुष्यमुखैरुपास्यस्य गुणैरिह।
भक्तिरुत्पद्यतेऽस्माकं न भक्त्या तद्गुणोद्भव. ॥५॥

आराधनीय पुरुषो के पितृत्व, पाण्डित्य आदि गुणो से ही हमलोगो की भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति से ये गुण नही आ जाते ॥५॥

धेनौ दुग्धादि दृष्ट्वैव तज्जातौ भक्तिमाञ्जन.।
न भक्त्या शूकरी हन्त बहुक्षीरा भविष्यति ॥६॥

दूध देख कर ही गाय में मनुष्यो की भक्ति होती है। भक्ति करने से शूकरी को गाय की तरह दूध नही हो सकता ॥६॥

कुरु भक्तिं ततो दिव्यां शक्तिं द्रक्ष्यसि नान्यथा।
इति ब्रुवाणे धूर्त्ते तु भक्तिर्नैवोचिता तत. ॥७॥

'भक्ति करो, नही तो दिव्य शक्ति को नही देखोगे,—ऐसा कहनेवाले धूर्त्त में भक्ति उचित नही है ॥७॥

अरहस्यां तु विद्यां वा रक्षां वान्यांस्तथोदयान्।
यतो लभेत गुर्वादींस्तान्प्राणैरपि पूजयेत् ॥८॥

सीधे-सीधे विद्या, रक्षा और दूसरे अभ्युदय जिससे मिलें ऐसे गुरु आदि की आराधना प्राणों से भी करनी चाहिए ।।८।।

भक्त्या द्वादशवार्षिक्या न धूर्त्तं सिद्धिलोभतः ।
निषेवमाणः कुर्वीत द्रव्यशक्त्यायुषां व्ययम् ।।९।।

सिद्धि के लोभ से बारह वर्ष अर्थात् बहुत दिनो तक भक्ति के साथ धूर्त्तों की सेवा करते हुए धन, शक्ति और आयु को व्यर्थ नही खोना ।।९।।

न हि लक्षव्ययं कृत्वामरत्वायान्यवाक्यत. ।
मेरो स्वर्णतृणं लब्धुमभिधावति कश्चन ।।१०।।

किसी के कहने मात्र से लाखो का व्यय कर, अमरता-प्राप्ति के लिए, कोई मेरु पर्वत के स्वर्ण-तृण की खोज में नही दौड पडता ।

षष्ठोऽध्यायः

आश्रमधर्म

वस्त्रान्नपानावसथे परमं शौचमाश्रित ।
विज्ञानोद्योगवान्नित्यं कुटुम्बं परिपालयेत् ।।१।।

वस्त्र, अन्न, पान और निवास में पूरी शुद्धि रखता हुआ तथा शिल्प-शास्त्र और उद्योग मे लगा हुआ सदा कुटुम्ब का पालन-पोषण करे ।।१।।

आ विंशं ब्रह्मचारी स्यादसपिण्डां यवीयसीम् ।
कान्तामव्याधितां चाथ तरुणीं स्त्रियमुद्वहेत् ।।२।।

बीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर, अपने से छोटी, रोगरहित ऐसी सुन्दरी युवती से विवाह करे जो अपने कुल की न हो ।।२।।

शौचं विज्ञानमुद्योगं भार्याभृत्यसुतांस्तथा ।
अन्यान्सन्निहितांश्चापि शिक्षयेच्छक्तितोऽन्वहम् ।।३।।

स्त्री, पुत्र और नौकर तथा आसपासवालो को भी शुद्धि, शिल्पशास्त्र और उद्योग की शिक्षा यथाशक्ति नित्य दे ।।३।।

विज्ञानोद्योगरहितो भारभूतो भुवस्तथा ।
यो धर्मकञ्चुकोऽन्योवा तं दूरात्परिवर्जयेत् ।।४।।

जो शिल्पशास्त्र और उद्योग से रहित, पृथ्वी का भार-रूप हो, वह चाहे धर्म का जामा पहने हो या नही, उसका दूर से ही परित्याग करना चाहिए ।।४।।

नित्यं नैमित्तिकं सर्वं काले युक्त समाचरेत् ।
द्वीपसागरगिर्यादौ धर्मेणोद्योगवांश्चरेत् ।।५।।

सभी नित्य-नैमित्तिक कार्यो को चित्त लगाकर करना चाहिए। द्वीप, समुद्र तथा पर्वत आदि पर सर्वत्र धर्म के साथ उद्योग करता हुआ रहे ।।५।।

यावृश जीवनं यस्य गृहे तादृशमेव चैव।
विप्रकृष्टे भुवः कोणे को दोषो यात्रया तदा ॥६॥

अपने घर मे जैसे रहता है वैसे ही पृथ्वी के दूर से दूर के कोने मे भी यदि रहे तो यात्रा करने में क्या दोष है? ॥६॥

बालो वातीततारुण्यो बाला वा स्थविरा तथा।
नोद्वाहयोग्या क्लीबाद्या उद्वाहाभास एष तु ॥७॥

जो बालक हो, या जिसकी जवानी बीत गई हो तथा जो लड़की हो या बूढ़ी, और जो नपुसक आदि है, वे विवाह-योग्य नही है। ऐसो का विवाह केवल तमाशा है ॥७॥

अमैथुने विवाहो यो बालक्लीबादिभि कृत.।
विध्याभासेऽपि जातेऽस्मिन्कुमारीत्वं न नश्यति ॥८॥

बालक, नपुसक आदिको से विना मैथुन के जो विवाह होता है, उस दिखाऊ विधि के होने पर भी स्त्री का कुमारीपन नष्ट नही होता ॥८॥

समैथुने विवाहेऽपि विधवा कामत पतिम्।
पुनर्द्वितीयं कुर्वीत न तु गर्भादिपातनम् ॥९॥

मैथुन के साथ विवाह होने पर भी जिसका पति मर जाय ऐसी स्त्री दूसरा पति करे, परन्तु गर्भपात आदि न करे ॥९॥

द्विजेतरेषु काम्योऽस्ति विधवाया पुनर्वरः।
अङ्गीकृत्य द्विजान्यत्वं विधवामुद्वहेदत ॥१०॥

विधवा का पुर्नविवाह द्विजभिन्नो मे उचित है, इसलिए जो कोई चाहे, द्विज से इतर होना स्वीकार कर विधवा-विवाह कर सकता है ॥१०॥

सप्तमोऽध्याय:

द्विजातिधर्म

भक्ष्याभक्ष्यविवेकश्च स्पृश्यास्पृश्यविनिर्णयः।
विधवाया अनुद्वाहो मद्यस्य परिवर्जनम् ॥१॥
द्विजानुलोमजत्वं च विद्वत्व व विपश्चित ।
षट्कं समुदितं प्राहु र्द्विजातेरिति लक्षणम् ॥२॥

द्विजातिधर्म

क्या खाना, क्या न खाना और किसको छूना, किसको न छूना, इन बातो का विचार; विधवा का पुनर्विवाह न करना; मद्य का वर्जन; वर्णों में अनुलोम उत्पत्ति; और विद्या—ये छै मिलकर द्विजातियो के लक्षण है, ऐसा पण्डित लोग कहते है ॥१-२॥

व्याधिताशुचिसंस्पृष्टं पूतिपर्युषितं च यत् ।
अमत्स्याशुचिभुक् क्रव्यभुङ्मांसं मद्यमेव च ।।३।।
उच्छिष्टमद्विजैः पक्वं वारिणा सर्वमेव च ।
निसर्गाद्व्याधिकृद्यश्च न तद्भक्ष्यं द्विजन्मनाम् ।।४।।

रोगियो और अशुद्ध व्यक्तियो से स्पृष्ट सडा और बासी मछली को छोड, अशुद्ध पदार्थ खानेवाले और मासाहारी पशुओ का मास और मदिरा, जूठा, द्विजेतरो से पानी में पकाया हुआ और जो स्वभाव से ही बीमारी उत्पन्न करने वाला हो, वह द्विजातियों के खाने योग्य नही है ।

व्याधिताद्यशुचिस्पर्श· अहेय स्नानभोजने ।
मनोनुकूलं पथ्यं च सर्वं भक्ष्यं परैरिह ।।५।।

स्नान और भोजनकाल मे रोगी और अशुद्धो का स्पर्श नही करना चाहिए । द्विजातियो को छोड कर और लोग अपने मन के अनुकूल तथा स्वास्थ्यकर भोजन जो चाहें, खा सकते है ।।५।।

मैथुनान्तेन विधिना परिणीता ततोऽधवा ।
विधवेति मता तस्या द्विजैर्नोपयम· पुन ।।६।।

मैथुनान्त विधि से विवाह हो जाने पर जिसका पति मर जाय उसे विधवा कहते है । द्विजो मे विधवा का विवाह नही है ।।६।।

मद्यमन्नमलं कायवाङ्मनःशक्तिनाशकृत् ।
अशुद्धं तत्समं नास्ति वर्ज्यं तस्माद्द्विजातिभि· ।।७।।

मद्य अन्न का मल है और शरीर, वचन तथा मन की शक्ति का नाश करने वाला है । उसके समान अशुद्ध और कुछ नही है, इसलिए द्विजातियो के द्वारा इसका वर्जन उचित है ।।७।।

अनुलोमो द्विजेष्वेव द्विजानामिह शस्यते ।
सदा परिणयस्तस्मादद्विजत्वं विपर्यये ।।८।।

द्विजो में अनुलोमज विवाह ही द्विजातियो के लिए सदा अच्छा है । यदि इससे उल्टा हो तो द्विजत्व नही रहता ।।८।।

निरक्षरत्वं वन्यत्वं वन्यो नैव द्विज क्वचित् ।
विद्याधिगमनं शक्त्या द्विजधर्म. सनातन. ।।९।।

निरक्षर होना जगली होना है और जगली कभी द्विज नही हो सकता। यथाशक्ति विद्या पढ़ना द्विज का सनातन धर्म है ।।९।।

निरक्षरैरत पुम्भि स्त्रीभिर्वा न द्विजः क्वचित् ।
ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धानाचरेन्निरयावहान् ।।१०।।

इसलिए निरक्षर पुरुषो या स्त्रियो के साथ द्विज को कभी अध्ययन-अध्यापन तथा विवाह का संबंध नहीं करना चाहिए, क्योकि वह नरक की तरह कष्टदायक होता है।

अष्टमोऽध्याय

व्यक्तिधर्म

यज्ञसूत्रं शिखा चेति द्विजातेर्बाह्यलक्षणम् ।
तस्माद्द्विजो न भवति द्विजत्वे तत्तु धार्यते ॥१॥

व्यक्ति का धर्म

जनेऊ और शिखा द्विजो के बाहरी लक्षण हैं। इनको धारण करने से द्विज नही होता। द्विज ही इन्हे धारण कर सकता है।

उच्छिष्टमद्यप्राशादे सिद्धतण्डुलभोजनात् ।
विधवोद्वाहकृद्भिश्च मद्यपैश्च सहाशनात् ॥२॥
वेश्यारजस्वलादीनां संसर्गाच्छास्त्रवर्जनात् ।
दारुमृत्काचपाषाणपुन पक्वादिभोजनात् ॥३॥
स्वयं शौचेऽप्यशुचिभिर्बन्धुभि सह भोजनात् ।
सम्बन्धाच्च द्विजातित्व नामशेषं भुवस्तले ॥४॥

जूठा खाने से, मद्य पीने से, उसना (भुँजिया) चावल खाने से तथा विधवा-विवाह करनेवालो और मद्य पीनेवालों के साथ भोजन करने से, वेश्या तथा रजस्वला आदिको के संसर्ग से और शास्त्र का अध्ययन छोड़ने से, लकडी, मिट्टी, कॉच और पत्थर के वरतनो मे पकाया हुआ अन्न खाने से, अपने-आप शुद्ध रहते भी अशुद्ध भाई-बन्धुओ के साथ भोजन करने से अथवा उनसे सबन्ध रखने से पृथ्वी पर द्विजातित्व नाममात्र रह गया है ॥२-४॥

अतो लक्ष्मपरित्यागे विधेये द्विजवंशजै ।
अद्विजेषु प्रचाराय लक्ष्मणां चेष्टते जन ॥५॥

इसलिए अब द्विजवंश मे उत्पन्न जनो के लिए भी चिह्न का परित्याग उचित होते हुए भी लोग अद्विजो मे चिह्न के प्रचार की चेष्टा करते है ॥५॥

नामलक्ष्मावशेषे च द्विजत्वे व्यक्तयो भुवि ।
द्विजशौचं यथाशक्ति कुर्युश्चेत्तत्र न क्षति. ॥६॥

द्विजातित्व का केवल नाम और चिह्न ही रह जाने पर यदि कोई व्यक्ति यथाशक्ति द्विजशुद्धि रखे तो कोई हानि नही ॥६॥

सिद्धतण्डुलभोगाद्यैर्विधवामद्यसेवनै ।
विनष्टद्विजभावानां काब्धियात्रादिभि क्षति ॥७॥

उसना (भुँजिया) चावल आदि खाने से, विधवा तथा मद्य के सेवन से जिनका द्विजत्व नष्ट हो गया है उनकी समुद्रयात्रा आदि से क्या हानि हो सकती है ? ॥७॥

न समाजो द्विजातीनामत्र संभावित पुन ।
व्यक्तयस्तु यथाकामं कुर्यु शौचं समाहिता ॥८॥

फिर से यहाँ द्विजातियो का समाज बन सके, यह सभव नही। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे तो, यथाशक्ति शुद्धि के साथ रह सकता है ॥८॥

हित्वा सामाजिकीं धर्मचिन्तां विज्ञानवृद्धये।
सामाजिको व्यक्तिगश्च महोद्योग प्रशस्यते ॥९॥

समाज के धर्म की चिन्ता छोडकर जो समाज मे या व्यक्ति मे शिल्पशास्त्र की उन्नति के लिए उद्योग करे वह प्रशसनीय है ॥९॥

श्रेयान्स्वधर्म स्वातन्त्र्यं धर्मेत्वन्यायवर्जिते।
कस्मिंश्चिद्वर्त्तयन्धर्मे जगतोऽभ्युदय चरेत् ॥१०॥

अपना धर्म ही कल्याणकारी है, पर कानूनी बातो को छोड कर, धर्म में सबकी स्वतन्त्रता है। किसी धर्म में रहकर ससार के अभ्युदय का यत्न करे ॥१०॥

—— ० ——

नवमोऽध्याय:

प्रजाधर्म स्त्रीधर्मश्च

प्रजानां प्रातिनिध्येन स्वातन्त्र्येण च शासकै.।
शासनं राजतन्त्रस्य द्विविधं दृश्यते क्षितौ ॥१॥

प्रजाधर्म और स्त्रीधर्म

पृथ्वी पर दो प्रकार के राजशासन देखे जाते है। एक तो प्रजाओ के प्रतिनिधियो के द्वारा और दूसरा स्वतत्र राजा के द्वारा ॥१॥

अन्तर्बहिश्च तन्त्रस्य शान्तिरक्षा प्रजापते।
धर्मोऽय परमोऽन्यत्तु कुर्युः स्वयमपि प्रजा ॥२॥

राज्य के भीतर और बाहर शान्ति की रक्षा करना राजा का परम धर्म है। और, काम तो प्रजा स्वय कर ले सकती है ॥२॥

अप्रातिनिध्ये तन्त्रे तु सुस्थिते शान्तिरक्षया।
समाजधर्मविद्यादि शोधयेयु प्रजा स्वयम् ॥३॥

जहाँ प्रतिनिधि द्वारा शासन न हो, परन्तु शान्ति की रक्षा से देश निर्भय हो वहाँ सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा आदि सम्बन्धी सुधारो को प्रजा स्वय कर ले ॥३॥

सम्प्रदायसहस्रैस्तु विधिभेदसमाकुलै।
विशेषाद्विप्लवे तन्त्रे धर्ममाचारमेव च ॥
जना न शोधयेयुश्चेत्कोऽन्य संशोधयिष्यति।
नृपोह्यपक्षपातेन सर्वान्धर्मान्प्रपश्यति ॥५॥

रीति-रस्मो के भेदो के कारण आपस में झगडते हुए हजारो मतवालो से अतिशय

व्याकुल देश में यदि प्रजा धर्म और आचार को न सुधारे तो और कौन सुधारेगा ? क्योंकि राजा तो सभी धर्मों को पक्षपात से रहित होकर देखता है ।।४-५।।

यथा पुंसां तथा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं सर्वकर्मसु ।
सुशिक्षितास्स्वधर्मेण तास्तु स्यु पतिदेवता ।।६।।

पुरुष के समान ही स्त्रियो को भी सभी कामो में स्वतन्त्रता है। अच्छी शिक्षा पाकर अपने धर्म से वे लोग पति को देवता समझें ।।६।।

अरक्षिता गृहे रुद्धा कामं भृत्याप्तबन्धुभि ।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ता सुरक्षिताः ।।७।।

घर में भाई, बन्धु अथवा नौकरो से अच्छी तरह अवरुद्ध होने पर भी स्त्री रक्षित नहीं है। जो अपनी रक्षा आप करती है वे ही सुरक्षिता है ।।७।।

निगूहनं गृहे स्त्रीणां स्वास्थ्यवंशादिनाशनम् ।
पतिपुत्रादिसहिता गच्छेयुर्यत्रकुत्रचित् ।।८।।

स्त्रियो को घर मे पर्दे में छिपाकर रखना स्वास्थ्य और वंश का नाश करता है। पति, पुत्र आदि के सहित वे जहाँ चाहें वहाँ जा सकती है ।।८।।

बलादभव्यैरुद्वाहो बलाद्गेहे निगूहनम् ।
अशिक्षणं च नारीणां हेतु सोऽवनते पर ।।९।।

स्त्रियो का अयोग्यो के साथ बलात् विवाह कर देना उन्हें बलात् घर में पर्दे में छिपाकर रखना और उन्हे शिक्षा न देना परम अवनति का मुख्य कारण है ।।९।।

धर्मे सनातने शश्वद्विद्यायान्तु विशेषतः ।
स्त्रीभृत्यादेरधीकार परेषामिव शस्यते ।।१०।।

सनातन धर्म मे विशेष रूप से विद्या के विषय मे, दूसरो के समान ही स्त्री, भृत्य आदिको का भी पूर्ण अधिकार है ।।१०।।

दशमोऽध्याय:

प्रायश्चित्तम्

व्याधौ मृतौ जनौ चैव यात्रादावशुचौ तथा ।
मलावहेषु चान्येषु शुद्धि कार्योचिता जनै ।।१।।

प्रायश्चित्त

रोग होने, मरने, जन्म होने और अपवित्र होने पर, यात्रा आदि करने पर तथा अन्य प्रकार से भी गदगी लग जाने पर लोगो को चाहिए कि उचित शुद्धि करें ।।१।।

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृण्मनो वार्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥२॥

ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, जल, लेप, वायु, कर्म, सूर्य और काल—ये मनुष्यों को शुद्ध करने वाले हैं ॥२॥

सद्य पुन पुनश्चैवाचारप्राप्ते तथा क्षये ।
जलेन च कृमिघ्नैश्च भेषजै शुद्धिरिष्यते ॥३॥

अशुद्धि आ जाने पर तुरत और बार-बार तथा रीति-रस्म के अवसरों पर भी जल से तथा कृमिनाशक औषधि आदि से शुद्धि करनी चाहिए ॥३॥

अदृश्या कृमयः सूक्ष्मा अशुचौ प्राणघातका ।
जलानिलौषधाग्न्यर्कैस्तेषां नाशो विधीयते ॥४॥

अशुद्ध वस्तु में सूक्ष्म और अदृश्य कीड़े रहते हैं, जो प्राणघातक होते हैं। जल, वायु, अग्नि और सूर्य से इनका नाश किया जाता है ॥४॥

कृतस्य नैवाकार्यस्य प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
फलं कृतस्य पापस्य भवत्येव न संशय ॥५॥

किये गये कुकर्म की शुद्धि प्रायश्चित्त से नहीं होती। किये गये पाप का फल अवश्य होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥५॥

पुन पापमकुर्वंस्तु न तथा हानिमृच्छति ।
क्षते क्षारमिवासह्यं कुर्वन्पापं यथा पुन ॥६॥

एक बार पाप करने के बाद फिर पाप न करे तो वैसी हानि नहीं होती जैसी, जले पर नमक छिड़कने की तरह बार-बार पाप करने से होती है ॥६॥

व्यायामैश्च विरेकैश्च वमनानशनैस्तथा ।
पथ्याशनविहारैश्च विज्ञानस्यानुशीलनैः ॥७॥
अव्याहतानुसन्धानैर्व्याहतानाञ्च वर्जनै ।
सर्वात्माराधनैश्चैव प्रायश्चित्तं परं स्मृतम् ॥८॥

व्यायाम करने, जुलाब लेने, वमन करने, उपवास करने, पथ्य भोजन, अनुकूल विहार, शिल्पशास्त्र के अभ्यास, ठिकाने की बातों की खोज करने, बेठिकानी बातों के वर्जन और सर्वात्मा के आराधन से उत्तम प्रायश्चित्त होता है, ऐसा स्मृतिकारों का मत है ॥७-८॥

अव्याहतानुसन्धानात्परं पुण्यं न विद्यते ।
व्याहतस्यानुसन्धानात्परं पापं न च क्षितौ ॥९॥

ठिकाने की बातों की खोज से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और बेठिकानी बातों की खोज से बढ़कर पृथ्वी पर कोई पाप नहीं है ॥९॥

अव्याहतानुसन्धानं तस्मान्नित्यं समाचरेत् ।
रागद्वेषविहीनश्च व्याहतं परिवर्जयेत् ॥१०॥

इसलिए सदा ठिकाने की बातो की खोज करनी चाहिए। और, राग-द्वेष से रहित होकर, बेठिकानी बातों से दूर रहना चाहिए।।१०।।

उपसंहारः

इदं पवित्रमायुष्यं धनधान्यविवर्द्धनम्।
धर्मशास्त्रमनुस्मृत्य न तमस्यवसीदति।।११।।

इस पवित्र, आयु बढाने वाले, धन-धान्य की वृद्धि करने वाल धर्मशास्त्र का अभ्यास कर मनुष्य अन्धकार मे पड़कर नही सड़ता।

भारतोत्कर्ष

(१)

वाचक ! विचारो तो जरा, इस देश की पहली छटा !
अब आज कैसी घिर रही, अज्ञान की काली घटा ।।
गौतम, कपिल, कणादि से, ज्ञानी यहाँ पर हो गये ।
परिपूर्ण दर्शनशास्त्र रच, अज्ञान सबका धो गये ।।

(२)

व्यास और वशिष्ठ ऐसे, ज्ञान के भाण्डार थे ।
जो धर्म के जलयान के, बहु दक्ष खेवनहार थे ।।
श्रीराम-सी पितृभक्ति, भायप भरत-सी अब है कहाँ ?
पितृ-बन्धु- घातक अधिकतर, अब हैं लखे जाते यहाँ ।।

(३)

नृप हरिश्चन्द्र समान, सत्यप्रिय यहाँ अवतीर्ण थे ।
कर्त्तव्य-पालन विकट कर, सब विधि परीक्षोत्तीर्ण थे ।।
भीष्म की-सी दृढ़ प्रतिज्ञा, कौन कर सकता कहो !
अटल दानी कर्ण ऐसा, है कहीं पर तो कहो ?

(४)

रणशूर, निर्भय, वीर अर्जुन-सा बताओ हो जहाँ ।
अभिमन्यु-सा अब वीर बालक है लखा जाता कहाँ ?
सीता, सावित्री, पद्मिनी-सी, अटल पतिव्रतधारियाँ ।
पण्डिता गार्गी समान, हुईं यहाँ पर नारियाँ ।।

(५)

गौरव सभी इस देश का है, हाय ! सहसा खो गया ।
पड़ के विषय-द्वेषाग्नि में, सर्वस्व स्वाहा हो गया ।।
कौरवों की नीचता से नाश का अंकुर बढ़ा ।
जयचन्द के पापी करों का प्राप्त कर आश्रय बढ़ा ।।

(६)

फिर नीचता औ' भीरुता, कुछ राजपुत्रों से हुई ।
सब पूर्व गौरव नष्ट हो, काया-पलट सी हो गई ।।
सब पूर्व पौरुष भूलकर, हैं देशवासी सो रहे ।
पड़ कुम्भकर्णी नींद में सबही मृतक-से हो रहे ।।

(७)

यह जन्मभूमि जो स्वर्ग से बढ़कर इन्हें ही थी मिली।
इस घोर निद्रा से अहो वह है रसातल को चली॥
सब ओर क्रन्दन हो रहा, पर आँख खुलती ही नहीं।
है हाय कैसी नींद यह जो आज भी जाती नहीं॥

(८)

धनधान्य से जो पूर्ण था, वह देश दीनमलीन है।
बस बुद्धि, पौरुष, ओज इसका, आत्मबल भी क्षीण है॥
विद्या, कला, वाणिज्य सारा, देशवासी खो चुके।
सब भाँति ही निस्तेज हो, धनहीन सब अब हो चुके॥

( )

वे हो गये अब क्या, भला इसका उन्हें कुछ ध्यान है ?
क्या थी दशा अब क्या हुई, इसका तनिक भी ज्ञान है ?
दुर्भाग्य से जो कुछ दिनो, ऐसी दशा रह जायगी।
तो जान लो इतिहास से, संज्ञा झटिति मिट जायगी॥

(१०)

हे ईश, जगदाधार, प्रभु, कुछ तो दया अब कीजिये।
बल, बुद्धि, पौरुष, दें इसे, अज्ञान सब हर लीजिये॥
तज घोर निद्रा, कर्म पथ पर, बढ़ चले यह नेम से।
निज द्वेष, ईर्ष्या भूल कर, सबसे मिलें सब प्रेम से॥

(११)

पूरा करें साहित्य औ, विज्ञान के भाण्डार को।
उत्कर्ष दें फिर से कला, कौशल, सकल व्यापार को॥
अपनी सभी ही कामनाएँ आप ही पूरी करें।
जीते रहें उत्कर्ष में, औ देश-सेवा में मरें॥

(१२)

अपने अगर पैरो सहारे, वे खड़े हो जायँगे।
संकट विकट उनके तभी, सब आप हो खो जायँगे॥
दर्शन तथा कर्तव्य जब, फिर से सुदृढ़ हो जायँगे॥
धन-धान्य, गौरव पूर्व के, तब शीघ्र हो आ जायँगे॥

(१३)

गिरता हुआ यह देश फिर, उत्कर्ष को पा जायगा।
दीपक बुझा जो चाहता, वह फिर ज्वलित हो जायगा॥
हे भाइओ! सोओ न अब, तैयार हो, तैयार हो।
सोये बहुत, जागो, उठो, जिससे कि बेड़ा पार हो।

मारवाड़ी अग्रवाल, वर्ष १ खंड २ संख्या ३ पूर्ण सं० ९
आषाढ़, १९७९ विक्रम

जगत् में विज्ञान का विकास

जन्म के समय बच्चा ज्ञान की कुछ शक्ति तो रखता है, पर वस्तुओ का ज्ञान उसे नही रहता। धीरे-धीरे वह अपने चारो ओर की वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त करता जाता है। इसी तरह पहले मनुष्य-जाति भी अज्ञ थी। धीरे-धीरे उसे आग, पानी, खाने-पीने की चीजो और कपडे-लत्ते आदि का ज्ञान हुआ। अत्यन्त प्राचीन मनुष्य पशुओ के साथ जगलो में रहा करते थे। विजली गिरने या वृक्ष-शाखाओ के परस्पर रगडने से जगलो में आग लग जाती थी। सम्भव है, ऐसी ही आग से मनुष्य अपना कार्य चला लेता रहा हो। वे लोग अधिकतर कच्चा मास और फल आदि खाकर ही अपना जीवन बिताते थे। धीरे-धीरे लकडी रगड कर आग निकालने का ज्ञान मनुष्य को हुआ। बीज बोकर खेती करने का भी ज्ञान उसे हुआ। पहले पत्थर के, फिर धातु के अस्त्र आदि बनाने का भी ज्ञान उसने प्राप्त किया। मकान, कपडा आदि भी बनने लगे। अर्थात् क्रम से वन्य जीवन को छोडकर मनुष्य सभ्य जीवन, अर्थात् ग्राम्य और नागरिक जीवन, तक पहुँच गया। पहले चित्रमय सकेतो से, फिर अक्षरमय सकेतो से लिखने की चाल भी मनुष्यो में चल निकली। दार्शनिक और वैज्ञानिक विचार चिरकाल से मनुष्यो में उत्पन्न होते आ रहे है। चिरकाल से मनुष्य यह सोचता था कि जो-जो बातें उसके चारो ओर होती है उनका कारण क्या है? पहले लोग ऐसा समझते थे, और आज भी कितने ही लोग ऐसा ही समझते है, कि धूप, वर्षा, ग्रहण आदि कार्य मनुष्य के सदृश हाथ, पैर, मूँछ, दाढी रखनेवाले देव-दानवो के अथवा किसी एक ही देव के किये हुए है। धीरे-धीरे, बहुत-कुछ विचार करने पर, मनुष्यो को समझ में अब यह बात आने लगी है कि सांसारिक कार्य-कलाप के लिए सजीव प्राणियो की जरूरत नही है।

जैसे भीतरी कारणता का विचार चिरकाल से मनुष्यो के मन मे उत्पन्न होता आ रहा है वैसे ही बाहरी पृथ्वी, तारा आदि के स्वरूप, स्थिति, गति आदि के विषय में भी चिरकाल से कल्पनाएँ चली आ रही है। पृथ्वी कैसी है, यह जानने का कौतुक मनुष्य में स्वाभाविक है। फिर, जैसे यात्रा आदि के लिए पृथ्वी मे देश, स्थिति आदि का ज्ञान अपेक्षित है वैसे ही वन में घूमने या नदी, समुद्र आदि मे नौका या जहाज द्वारा यात्रा करने वालो को दिशाओ के ज्ञान आदि के लिए नक्षत्रो आदि की गति का निश्चय भी अपेक्षित हुआ। इसलिए प्राचीन सभ्य जातियो में ज्योतिर्विद्या का बहुत पुराने समय में आविर्भाव हुआ। साथ ही साथ पत्थर काटना, कपडा बुनना आदि कुछ कलाओ का भी उनमें प्रचार हुआ। पर इन लोगो में तबतक ऐसे यत्रो का आविर्भाव नही हुआ, जिनकी सहायता से ये लोग केवल आँख, पैर आदि से जो काम नही हो सकते, उनको करते। धीरे-धीरे सूर्य की वार्षिक गति, उस गति का राशि तथा नक्षत्रो में विभाग तथा सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि

के विषय में कुछ नियम इन्हें ज्ञात हुए। बहुत दिनो तक पृथ्वी को ये लोग ऊपर चिपटी और नीचे या तो अनन्त या शेष आदि पर रखी हुई समझते रहे।

असल मे आज से १५०० वर्ष पहले ससार की बडी-बडी राजधानियो में, अर्थात् पाटलिपुत्र, रोम आदि मे, जो कुछ ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न भी हुआ था उसका हूण आदि वन्य जातियो के आक्रमण से प्राय लोप सा हो गया, और अन्तत आज से पाँच सौ वर्ष पहले, नवीन पाश्चात्य जातियाँ यदि फिर से विज्ञान की उन्नति में न लगती तो ससार को माया समझने वाले पूर्वी लोगो के फेर मे पड कर ज्ञान-विज्ञान की बडी ही बुरी दशा हो जाती।

आज से ५००–६०० वर्ष पहले नवीन विज्ञान का आरम्भ हुआ। आलस्य के मारे तथा अन्य कई कारणो से लोक सासारिक कार्यों से विमुख हो रहे थे। यूरोप वाले कुछ ऐसी दिक्कत मे थे कि यदि वे सासारिक काम में फिर से न लगते तो उनका जीना ही कठिन हो जाता। इसलिए इन्ही लोगो मे फिर से विराट् की सेवा का आरम्भ हुआ। पूर्वी जल-वायु ऐसा मृदु है कि भारत आदि देशो मे लोग बिना मकान और कपडे-लत्ते आदि के भी ब्रह्म-ध्यान मे जीवन बिता सकते है, पर यूरोप की ऐसी अवस्था न थी। वहाँ अनेक क्लेश उठाने और बहुत-कुछ बुद्धि व्यय करने से ही प्राण-निर्वाह हो सकता था।

पश्चिम के लोगो ने युद्ध की आवश्यकताओ को देख कर अग्न्यस्त्रो का आविर्भाव किया। कपडा बुनने आदि की कले इन्ही लोगो ने बनाई। पुस्तक छापने के यन्त्र भी इन्होने बनाये। पर इनके अत्यन्त आश्चर्यकारक अविष्कार गत एक ही दो शताब्दियो में हुए है। कोई सौ-डेढ-सौ वर्षों से इन लोगो ने दो अपूर्व शक्तियो से काम लेना आरम्भ किया है। बाष्प-शक्ति और विद्युच्छक्ति से अब जल, स्थल और वायु में ऐसे-ऐसे वाहन चल रहे है तथा और भी अनेक कार्य हो रहे है, जिनके वर्णन मे हजारो पुस्तके लिखी जा सकती है। बाष्प और विद्युत् का ज्ञान और यन्त्रो में उनका उपयोग नवीन सभ्यता का अपूर्व कार्य है। इधर कल्पना-शक्ति मे भी नवीन सभ्यता अद्भुत काम कर रही है। आज से पाँच सौ वर्ष पहले कोपर्निकस (कुपर्णिक) आदि महात्माओ ने पृथ्वी को गतिमती निश्चित किया। गत शताब्दी मे डारवीन (द्रारवीण) महर्षि ने विकास-सिद्धान्त चलाया, जिससे यह सिद्ध होता है कि आजकल के मनुष्य और बन्दर किसी एक ही जन्तु से विकसित हुए है। इन्ही चार-पाँच सौ वर्ष मे रसायन-शास्त्र का आविर्भाव भी हुआ है। ऐसे सैकडो नये-नये तत्त्वों का पता लगाया गया है जिन्हे प्राचीन लोग नही जानते थे। उनके गुण, स्वभाव आदि का निश्चय भी इसी बीच मे हुआ है। हाल ही मे 'एक्स' नामक विचित्र प्रकाश-किरण आविष्कृत हुई है। इस वैद्युतिक किरण से, आवरणो जिनके भीतर की चीजे सूर्य आदि की किरणो से नही देखी जा सकती है, उनके भीतर की चीजे देखी जा सकती है। रेडियम (रञ्जीय) नामक एक ऐसा अद्भुत तत्त्व निकला है जिसका प्रकाश बिना घटे-बढे वर्षों तक रहता है। रसायनशास्त्रवालो का जो परमाणुवाद था, उससे भी गम्भीरतर विद्युत्केन्द्रवाद आजकल स्थिर किया जा रहा है। उसके अनुसार एक-एक परमाणु में

अनेकानेक वैद्युतिक केंद्र हैं। दार्शनिक विचारो में पाश्चात्योंने कोई विशेष नई बात तो नही निकाली, पर इस समय के पाश्चात्य दार्शनिक पहले के दार्शनिको से किसी बात में कम भी नही है। विज्ञान का तो यहाँ तक विकास हो रहा है कि पुष्पक विमान आदि का स्वप्न, जो भारत में आज तक स्वप्न सा ही था, अब जाग्रत अवस्था मे भी जर्मनी फ्रांस आदि देशो मे देखा जा रहा है। एक-आध तमाशे वाले विमान भूलते-भटकते पुष्पक-भूमि भारत में भी आ जाते हैं।

आज भी, विज्ञान का इतना विकास होने पर भी, भूत-प्रेत पर विश्वास केवल भारत आदि पूर्वी देशो ही मे नही, किन्तु पश्चिमी देशो मे भी, और वहाँ के सर ओलिवर लॉज आदि वैज्ञानिको मे भी पाया जाता है। आज भी ऐसे व्यक्ति ही नही, किन्तु ऐसे समाज के समाज पाये जाते है जिनके लिए वेद मे ही सारा विज्ञान या सारे विज्ञान की जड वर्त्तमान है। तथापि अब हम लोगो का यह कर्त्तव्य है कि ऐसे लोगो या समाजो का खयाल न कर, भूत प्रेत, देव आदि के भरोसे न रहकर, असली विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करके आगे बढाने का यत्न करे।

इस कार्य के लिए अभी भारत में विशेष प्रयत्न नही हो रहा है। यहाँ केवल किसी भाषा के कुछ शब्दो को जान लेने से ही लोग अपने को विद्वान् समझने लगते है। और देशो में भाषाज्ञान, विद्या का एक बहुत ही छोटा अंश समझा जाता है और अपनी भाषा में वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त करना विद्या का प्रधान अंश समझा जाता है। पर यहाँ इसकी ठीक उलटी प्रथा है। जैसे सरकारी कार्यो को चलाने के लिए सरकार की ओर से अँगरेजी शिक्षा का प्रबन्ध है, वैसे ही यहाँ की जनता को चाहिए कि वह अपने प्रयत्न से देश की भाषाओ में अर्थात् संस्कृत, हिन्दी, बँगला आदि भाषाओ मे—उत्तम से उत्तम शिक्षा—के प्रचार का प्रबन्ध करे। पर जनता क्या करे? उसके बडे-बडे नीतिनायक लोग बीस-बीस लाख रुपया चन्दा जिधर देते है और जिधर औरो के भी करोडो रुपये चन्दे में दिलवाते है, उधर ही वह बेचारी चली जा रही है। ऐसी प्रवृत्ति आजकल और किसी भी देश के नीतिनायको की नही है। यदि ये महात्मा कृपा करे, देशी भाषाओ में जनता की शिक्षा के प्रबन्ध का यत्न करें तो देश का बहुत-कुछ कल्याण हो सकता है।

भूगर्भ-विद्या[1]

पार्थिव वस्तुओं में परिवर्त्तन

भूकम्प से, अग्नि-गर्भ-पर्वतो से, जल और वायु के प्रवाह से तथा सरदी-गरमी के परिवर्त्तन आदि से पृथ्वी पर तथा उसके जीव-जन्तु आदि पर कैसे-कैसे परिवर्त्तन इस समय हो रहे है, इस बात की परीक्षा से इसका भी कुछ पता लग सकता है कि भूतकाल मे कैसे परिवर्त्तन हुए होगे। पृथ्वी के परिवर्त्तन दो प्रकार के है—आन्तर और बाह्य। आन्तर परिवर्त्तन तो भीतर की गरमी के कारण हो रहे है। बाह्य परिवर्त्तन सूर्य की गरमी से बहते हुए जल और वायु के प्रवाह के कारण हो रहे है।

जब सौराण्ड से भूगोल अलग हुआ तब भगोल मे प्राय सूर्य के ही सदृश गरमी थी। यह गरमी निकलते-निकलते आयाम में पृथ्वी सिकुड़ती गई। धीरे-धीरे ऊपर का अश ठडा हो गया और गरमी केवल भीतर रह गई। इस समय भी अग्नि-गर्भ-पर्वतो के मुख से कभी-कभी पिघले हुए पापाणो की नदी निकल पडती है। भीतर की गरमी के क्षोभ से कभी-कभी महाविनाशकारी भूकम्प भी होता है। बडे-बडे भूखण्ड ऊपर उठ जाते है या नीचे धँस जाते है। इन उपद्रवो के कारण बाहरी पपडी के पत्थरो मे अनेक परिवर्त्तन हो जाते है—पत्थर फट जाते है, चूर हो जाते है, चिकने और चमकीले हो जाते है, कभी-कभी गलकर उनके ढेले तक बँध जाते है। अग्निगर्भ-पर्वत प्राय कोण के सदृश होते है। भीतर से निकले हुए पिघले पत्थरो के ढेर से ही इनका निर्माण होता है। कोण के ऊपर एक बडा गड्डा होता है। उसके भीतर ही पृथ्वी के अन्त पिठर तक सम्बन्ध चला जाता है। कितने ही अग्निगर्भ-पर्वतो मे कोण के अगल-बगल भी मुँह उभड पडते है। पिघले पत्थरो के जमने से काल पाकर, अग्नि-गर्भ-पर्वत बहुत ऊँचा हो जाता है। आज कल 'इटना' पहाड दस हजार आठ सौ चालीस फुट ऊँचा है। उसके अगल-बगल दो सौ अग्नि-कोण और भी उत्पन्न हो गये है। कही-कही विना पहाड के ही पृथ्वी फट जाती है और उसकी दरारो से पिघला हुआ द्रव्य निकलने लगता है। भारत का ज्वालामुखी नामक स्थान इसी प्रकार का एक अधमरा प्रदर है। वायवीय और वाष्पीय पदार्थ, पिघले हुए पाषाण और पत्थर आदि के टुकडे और गरम धूल, राख आदि पदार्थ बडे जोर से अग्निगर्भ-पर्वतो और अग्नि-प्रदरो से निकलते है। मध्य-सागर के स्तम्भावली नामक अग्निगर्भ-पर्वत के सदृश कितने ही पर्वत तो चिरकाल से आग उगल रहे है। इटना, विसूवियस आदि के सदृश कितने ही पर्वत कभी तो शान्त रहते है, कभी उभड पड़ते है। सुमित्र, यव आदि कितने ही टापुओ तथा अन्य स्थानो मे भी अग्निमुख-पर्वतो की शृखला की शृखला वर्त्तमान है। पृथ्वी के भीतर दबे हुए बाष्पो की ऐसी आसुरी शक्ति है कि चिरकाल की शाति के बाद जब कभी आग्नेय उद्भेद होता है तब बडे-बडे पहाड और टापू बात की बात में उड जाते

---

१. इसका पूर्वांश पृ० ३३–४१ में देखिए।

हूं। आज से अट्ठाईस वर्ष पहले सुन्द-सागर के ककचद्वीप में इसी प्रकार के भयकर उद्भेद हुए थे। हिम-भूमि आदि टापुओ मे कभी-कभी पाँच योजन तक पिघले हुए पाषाणो के प्रवाह पहुँचते हैं। इन पिघले हुए पाषाणो की गरमी दो हजार अश की होती है। अग्नि-मुख पर्वतो से उडो हुई राख ऊपर कई हजार फुट ऊँची उड जाती है और सैकडो कोस तक पहुँचती है। द्रव-पाषाण का प्रवाह यदि नदियो तक पहुँच जाता है तो या तो उनकी पहली गति को रोक कर प्रवाह को दूसरी ओर फेर देता है या वडा भारी बाँध-सा बना कर उन्हें तालाव जैसा रूप दे देता है। कितने ही अग्नि-गर्भ-पर्वत समुद्र के तल में हैं। काल पाकर यही समुद्रीय अग्नि-गर्भ-पर्वत ऊँचे होते-होते भूमि-तल पर निकल आते हैं।

भूकम्पमान-यन्त्र से यह पता लगता है कि हम लोगो के पैर के नीचे पृथ्वी सदा थोडी-बहुत काँपती रहती है। सरदी-गरमी की न्यूनाधिकता तथा वायुमण्डल के बाद दवाव आदि अन्य कारणो से भूकम्प होते रहते हैं। यह भी पता लगा है कि पृथ्वी के कितने ही अश धीरे-धीरे उठते जाते हैं और कितने ही धीरे-धीरे धँसते भी जाते हैं। कभी-कभी प्रचण्ड भूकम्प के कारण अनेक उपप्लव हो जाते हैं। अकस्मात् वडे-बडे भूखण्ड धँस जाते हैं। ऐसे उपप्लवो के समय कभी-कभी पहाड भी फट जाते हैं। कर्पूर द्वीप की पश्चिमी भूमि समुद्र के नीचे धीरे-धीरे दवती जा रही है, खेतो मे समुद्री बालू आदि पडती जा रही है। तट के निकट समुद्र की गहराई भी वढती जा रही है। सूदन के दक्खिन की भूमि भी दवती जा रही है। हरित भूमि का पश्चिमी किनारा सैकडों योजन तक दवता जा रहा है। पुरानी वस्तियाँ डूब गई हैं। समुद्र के तट के नीचे जगल के जगल डूब जाने के प्रमाण कही-कही मिलते हैं। योरप का भी पश्चिमाश कुछ समुद्र में डूब गया है। स्तोकहर्म्य के समीप सौ वरस के अन्दर भूमि अठारह इच उठ आई है। सूदन में भी, एक जगह, एक शताब्दी मे, दो फुट के हिसाव से पृथ्वी उठी है। भीतर की गरमी के कारण वाहरी पपडी का कही-कही उठना वहुत सभव है। भीतर की गरमी के घटने के कारण पृथ्वी का कही-कही दवना भी सम्भव है। सम्भव है कि आज भी पृथ्वी सकुचित होती जा रही हो। इसी से वह कही-कही दवती है। अतएव दवते हुए दो अशो के बीच के अश भी उठते भी हैं। पहले कितने ही लोग समझते थे कि पृथ्वी के भीतर बँधी हुई हवा के कारण भूकम्प होता है। मँझले पौराणिक तो यह समझते थे कि शेष जी के मस्तक कँपाने से पृथ्वी काँप उठती है। इस समय तक कितने लोग यह भी समझते थे कि भूकम्प और आग्नेय उद्भेदो में परस्पर वहुत-कुछ सम्वन्ध है। आजकल के भूकम्पो की परीक्षा से यह देखा गया है कि पृथ्वी के भीतर पहाडो के अकस्मात् फट या दव जाने से प्राय भूकम्प होता है। भूकम्प से कही-कही पृथ्वी दव जाती है और पहाड़ो के नीचे का हिस्सा वाहर निकल आता है। तराइयों से पानी का निकलना वन्द हो जाने से झीलें उत्पन्न हो जाती हैं और पृथ्वी मे प्रदर पड जाते हैं। कही-कही नई तराइयाँ और नई झीलें उत्पन्न हो जाती हैं पुरानी तराइयाँ और पुरानी झीलें गायव हो जाती हैं और ऊँची जमीन नीची हो जाती है और नीची ऊँची हो जाती है।

इसी प्रकार भीतरी गरमी के कारण पृथ्वी में अनेक प्रकार के परिवर्त्तन हुआ करते है। अब यदि परिवर्तन के बाहरी कारणो को देखते है तो प्रति क्षण की बातो की परीक्षा से मालूम पडता है कि वायु-प्रवाह बाष्प-निष्क्रमण, वर्षा, ओले, पाला, नदियाँ, बर्फ, ज्वार भाटा, समुद्र और समुद्र मे तथा भूमि पर जन्तुओ के उद्भव और नाश आदि अनेक व्यापार ऐसे चल रहे है जिनके कारण पृथ्वी मे सदा परिवर्त्तन हो रहा है। वायु दो प्रकार से पत्थर आदि मे परिवर्त्तन करता है—या तो अपने तरल द्रव्यो के असर से या पानी अपनी गति से। वायु में सर्द भाप है। उसमे बहुत से शारीरक द्रव्य है। उनके सम्बन्ध से चीजे सडती-गलती है, यहाँ तक कि उन्ही के कारण पत्थरो मे भी नोना लग जाता है। गरमी से सब चीजे फूल जाती है और सरदी से सकुचित हो जाती है। यही दशा पाषाणो की भी होती है। विषुव-रेखा के दोनो ओर, जहाँ दिन बहुत गरम और रात बहुत ठडी होती है, बाहरी पत्थर, सरदी-गरमी के परिवर्त्तन के कारण, चूर-चूर होकर बालू के रूप मे परिणत हो जाते है, या उनकी तहे अलग-अलग निकलने लगती है, वायु से बालू उडकर पत्थरो पर पड़ती है और धीरे-धीरे उन्हें चिकना कर देती है प्रचण्ड बवण्डरो से वृक्ष उखड जाते है और आसपास का जल रोक कर, सड-गल जाने से, घूर-सा बना देते है। मिट्टी की तह पृथ्वी के ऊपर प्राय सब जगह पडी हुई है। वह पत्थरो के क्षय से, उनके चूर्ण के साथ हवा मे उडे हुए खनिज द्रव्यो के मिलने से, पानी से जमी हुई पाँक आ पड़ने से और सडते-गलते हुए उद्भिदो और जन्तुओ के इकट्ठे होने से बनी है। हवा में धूल सभी जगह उडती रहती है। पर सूखे, अल्पवृक्ष देशो में धूलि-पटल इतने घने रहते है और इतने उठते रहते है कि चीन के कितने ही प्रदेशो में पन्द्रह सौ फुट मोटी धूल की तहें पड़ गई है। समुद्र के किनारे नीचे-नीचे, प्राय सभी जगह बालू की तहे हवा से ही आकर जमी है।

वायु-व्यापार से कही अधिक कार्यकारी जल का व्यापार है। भूमि से पानी समुद्र में जाता है और फिर समुद्र से भूमि पर आता है। इस जलव्यापार से बड़े-बडे परिवर्त्तन पृथ्वी पर हुआ करते है। जलीय रस का असर मिट्टी और पत्थरो पर पडता है। बहाँ ले जाने के लायक बहुत से द्रव्य जल में बह कर इधर-उधर आते-जाते रहते है। वायु-मण्डल से आने के समय वर्षा के पानी मे वायु के कण भी कुछ-कुछ मिलते जाते है। इस प्रकार हवा के क्षार, आग्नेय और अगाराम्ल आदि द्रव्य पानी मे मिल जाते है। शारीरक अश और जीते हुए सूक्ष्म कृमि भी हवा से पानी मे आ मिलते है। इन्ही वायवीय अशो के कारण—विशेषत आग्नेय अगाराम्ल और शारीरक द्रव्यो के कारण वर्षा के पानी मे वह शक्ति आ जाती है जिससे वह पत्थर के परमाणुओ तक को गला देता है और जमीन को बेध कर भीतर जा घुसता है। पत्थर में नोना लग जाने से पपड़ी पड़ जाने का मुख्य कारण जल ही है। शीघ्र ही ऐसी पपडियाँ पत्थरो से अलग हो जाती है। सरदी से लोहे पर जग लग जाता है। पानी मे जो आग्नेय अंश है उसी के कारण नोना, जंग आदि उत्पन्न होते है। वर्षा का पानी जमीन के भीतर घुसता हुआ अनेक शारीरक द्रव्यों

में मिलता जाता है। इससे उसकी गलाने की शक्ति और भी बढ़ती जाती है। सेंधा नमक आदि के सदृश कितनी ही चीजें स्वयं ही पानी में गलती हैं, और कितनी ही अन्य चीजें अंगाराम्ल के योग से गल जाती हैं। इसी अंगाराम्ल के योग से निरावरण संगमरमर तक में नोना लग जाता है। इसीके कारण मिट्टी से चूने का अंश निकल कर पानी में मिल जाता है और जब अंगाराम्ल अलग हो जाता है या भाप होकर उड़ जाता है तब फिर यह चूना कहीं न कहीं जाकर जमता है। कितने ही खनिज पदार्थ स्वयं ही सूखे होते हैं, पर पानी सोखते-सोखते ऐसी अवस्था में आ जाते हैं कि उनके कणों का विभाग आसानी से हो जाता है। भारी शहरों में, जहाँ पत्थर-कोयला बहुत खर्च होता है, वायु में क्षाराम्ल और गन्धकाम्ल के रहने के कारण भी बहुत से परिवर्त्तन हुआ करते हैं। धातु, पत्थर, दीवारों की ईंटें, गच आदि, ऐसे शहरों में, अक्सर पपड़ियाँ बन कर गिरने लगते हैं। कब्रिस्तान और साधुओं के स्थान आदि में गाँठ के पूरे लोगों के लगाये हुए संगमरमर आदि को भी इसी प्रकार बड़ी हानि पहुँचती है। ऐसे परिवर्त्तनों को मौसिमी या आर्त्तव परिवर्त्तन कहा करते हैं। जल, वायु सरदी, गरमी, समुद्र से भूमि का ऊँचा-नीचा होना, हवा के सामने रहना आदि अनेक कारण-विशेषों से ऐसे परिवर्त्तनों में भेद पड़ता रहता है। कितने ही पत्थर गलने-योग्य वस्तुओं के बने होते हैं और कितने ही कड़ी वस्तुओं के। इसलिए अपने निर्माण के कारण भी पत्थरों में गलने की सम्भावना कमोबेश हुआ करती है। वर्षा का पानी जब पृथ्वी पर पड़ता है तब उसका एक अंश सोतों और नदियों के रूप में बहता हुआ समुद्र में चला जाता है। पर इससे कहीं अधिक अंश, जमीन में घुस जाता है। सजीव उद्भिदों और मिट्टी के द्वारा सोख लिये जाने से बचा हुआ, वर्षा के पानी का अंश, छनकर पत्थरों में घुसता है। इन पत्थरों के जोड़ों में, रन्ध्रों और प्रदरों में प्रवेश करता हुआ वह अन्त को फिर कहीं-कहीं से निर्झर के रूप में निकल जाता है। पत्थरों में घूमते-घूमते पानी अनेक अम्ल और शारीरक द्रव्यों को जमीन से लेता जाता है और उन द्रव्यों की सहायता से पत्थरों को गलाता जाता है। पत्थरों के गलने से कहीं-कहीं सुरंगें और गुफाएँ बन जाती हैं। कहीं-कहीं तो तल के पास ही ऐसे लम्बे-चौड़े रन्ध्र हो जाते हैं कि छत गिर पड़ती है और बड़े-बड़े नदी-नाले गड़प्प हो जाते हैं, और, भीतर बहते-बहते, कहीं पर नीची जमीन आ जाने पर, फिर ऊपर निकल जाते हैं। कभी-कभी पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें, पानी ही के कारण, जल से अलग होकर, तराई में लुढ़क पड़ती हैं। पहाड़ी देशों और प्रपात-शृङ्खलाओं में ऐसे-ऐसे परिवर्त्तन प्राय दीख पड़ते हैं।

नदी-नालों के पानी में भी दो गुण हैं। एक तो गलाने का, दूसरा बहाने का। तल के और किनारे के पत्थरों तक को गला देना, घिस डालना और बहा ले जाना नदियों के लिए आसान-सी बात है। सफेद पत्थर के देशों में, प्रपातों के नीचे-नीचे, नदी-प्रवाह के कारण बड़ी-बड़ी सुरंगें, मिहराब, छत आदि बन जाती हैं। इन निर्माणों को देख कर मूर्ख लोग प्राय पूछते हैं कि यह सब विचित्र सृष्टि किस कारीगर की बनाई हुई है। वे लोग अपने ही ढंग-ढाँचे के एक या अनेक कारीगरों की कल्पना भी कर लेते

है। वे यह नही समझते कि वस्तु दो प्रकार की है--कृत्रिम अर्थात् बनाई हुई और अकृत्रिम अर्थात नही बनाई हुई। दोनो को एक ही हल मे जोत कर अगड-बगड प्रश्न करना कैसा अन्याय है! यदि कोई पूछे कि ईंट और मकान का बाप कौन है और वृक्षो या बच्चो का कारीगर कौन है तो यह पागलपन नही तो क्या है? हाँ, यह पूछा जा सकता है कि अकृत्रिम वस्तुएँ किन वस्तुओ के स्वाभाविक सयोग-वियोग से बनी है। जिन विशेष संघटनाओं के पहले जो विशेष सघटनाएँ रहती है उन्ही में से पहली गठन को आगे की गठन का कारण कह सकते है। प्रकृति का पूर्व-क्षण, उत्तर-क्षण का कारण है और हर क्षण मे अनेक विचित्रताएँ है। इसलिए चाहे जितना ढूँढते जाओ पूर्व-क्षण अनेक विचित्रताओ से भरा ही हुआ पाया जायगा! भगवान् गौड़पाद और शकर का शुद्ध ब्रह्म तो कभी मिलने ही वाला नही और न इस निर्माण-विशेषो का साकार या निराकार कारीगर ही कही मिलनेवाला है, जो जन्तर-मन्तर वालो की तरह फूँक-फाँक न कर, या साधुओ के सदृश सकल्प-सिद्धि से या अपने लम्बे हाथो की कारीगरी से, प्रकृत घटनाओ की कारीगरी सिद्ध कर दे। पाँक, बालू, ककड, पत्थर की चट्टान आदि को ऊपर से नीचे बहा लाना और पानी के तथा इन बहाई हुई वस्तुओ के धक्के से अपने तल-भाग को गहरा करना, और किनारे को काटते जाना तथा जहाँ-तहाँ इन वस्तुओ के ढेर के ढेर जमा करना भी नदियो का कर्त्तव्य है। झरने के पानी की अपेक्षा नदी का पानी कम चमकीला होता है। क्योकि उसमें खनिज द्रव्य, सोते आदि से बह कर या किनारो आदि से कट कर, मिले रहते है। अब यह देखना चाहिए कि ऊँचे पहाडो से लेकर समुद्र मे पहुँचने तक नदियाँ क्या-क्या काम करती है। पहाडो पर प्रपात आदि से उखड कर आये हुए बडे-बडे गण्ड-शैलों, अर्थात् चट्टानो, से पानी की गति प्राय रुकी हुई रहती है। धीरे-धीरे पानी से रगड खाते हुए ये पत्थर घिसते जाते है और गोले होते हुए नीचे लुढकते जाते है। इन्हे आपस की रगड अलग सहनी पडती है और पहाडी तलो और तटो की रगड़ें अलग लगती है। इसलिए ये स्वयं भी घिसते जाते है और तल-तटों को भी घिसते जाते है। घिसने से उत्पन्न पाँक और बालू की ढेरी बहती चली जाती है। मोटी बालू आदि तो तल में सटती जाती है, पर महीन पाँक और बालू आदि पानी के साथ स्वच्छन्द बहती रहती है। भारी-भारी नदियो मे प्राय पानी के तौल के हिसाब से पन्द्रह सौ हिस्से में एक हिस्सा पाँक आदि का रहता है। गणित से निश्चय किया गया है कि अमेरिका की मिस्सिसिप्पी नदी, समुद्र की खाडी में तलछट, पाँक आदि इतना ले जाती है कि प्रतिवर्ष उससे दो सौ अडसठ फुट ऊँचा और आध कोस चौडा तथा आध कोस लम्बा एक तकिया बन जाय। पानी के साथ बहने वाली बालू, पत्थर, ककड आदि पदार्थों के धक्के से नदियो के तलो और करारो मे अनेक परिवर्त्तन होते रहते है। आवर्त्तो मे पडकर पत्थर आदि स्वय घिसते जाते है और शिला-सदृश कठिन वस्तुओ मे भी गढे खोदते जाते है। तल जितना ही ढालुआँ होता है जल का वेग उतना ही अधिक होता है। वेग अधिक होने के कारण तल और तह घिसने में शीघ्रता होती है। जहाँ पहाड़ इस आकार का है

कि पानी ऊपर से नीचे निर्झर धारा के रूप में गिरता है, वहाँ धारा गिरने की जगह पर बडे गड्ढे हो जाते है, जैसा कि अफ्रिका के नवगिरि-निर्झर के नीचे हो गया है। नदियो और झरनो के ही कारण सूखी जमीन पर बहुत गहरी तराइयाँ आदि बन गई है। इस प्रकार नदियो से भूमि का क्षय होता है। पर जहाँ-जहाँ जल का व्यापार किसी प्रकार रुकता है वहाँ-वहाँ पाँक जमती जाती है। इस कारण नई भूमि उत्पन्न होती है। पहाड के नीचे तराइयो में ऐसी भूमि बहुतायत से पाई जाती है। जहाँ भूमि बहुत ऊँची हो जाती है वहाँ से हटकर नदी अपनी धार दूसरी ओर ले जाती है। इस प्रकार ऊँची करार के नीचे नई पाँक का ढेर जमा हो जाता है। उसके नीचे फिर एक और नई तह पड जाती है। इससे सीढी के सदृश तह के तह करारे पडते जाते है। इसी प्रकार नदी के मुँह पर त्रिकोण-भूमि भी बन जाती है। समुद्र के समीप, बडी नदियो के सगमो पर, बडे-बडे त्रिकोण देखने में आते है। नदियो के मुँह पर केवल त्रिकोण ही नही बन जाते, पाँक जमने से कही-कही बडे-बडे बाँध भी बन जाते है। सुन्दरवन आदि के समीप कही-कही पाँक से ऐसे-ऐसे बाँध बन गये है कि उनसे समुद्र का अश, घिर कर, बडे-बडे कच्छो के रूप में दीख पडता है। मक्षिका की खाडी के पास और युक्त-प्रजाराज्य के पूर्वी तटो पर ऐसे कच्छो के बडे-बडे सिलसिले है। नदियो के अतिरिक्त झील के जल से भी पृथ्वी पर बडे-बड़े काम होते है।

ऊपर कह आये है कि भूकम्प आदि के बाद जमीन धँस जाने से बडे-बडे खड्ड पड जाते है, जो काल पाकर पानी से भर जाते है। कही-कही सैधव-शिला और खटिका-प्रस्तर आदि के गल जाने से भी जमीन धँस जाती है। बडे-बडे हिमानी ह्रदो के व्यापार से भी जमीन में गड्ढे पड जाते है। ऐसे गढ्ढे जब काल पाकर नदी से भर जाते है तब झील के नाम से प्रसिद्ध होते है। कही-कही पानी न बहने और गरमी से भाप अधिक उडने के कारण ये झीलें नमकीन हो जाती है, जैसे साँभर की झील। पर ठढे मुल्को में, यदि पानी कुछ बहता जाय, तो झीले मीठी होती है। अवेरिका का वैकाल सरोवर और त्रिविष्टप का मानस-सर तथा और भी अनेक झीलें मीठे पानी की है। आस-पास के जल की बाढ को अपने में सोख लेना, धीरे-धीरे अपने तल को बाहरी द्रव्यो से ऊँचा करते जाना आदि झीलो के अनेक व्यापार है। जल द्रव-रूप से तो काम करता ही है, जम कर बर्फ ओले, पाले आदि के रूप में भी वह अनेक काम करता है। मिट्टी और पत्थरो मे जहाँ कही पानी जमता है वहाँ वह मिट्टी या पत्थर को तोड देता है। कारण यह है कि जैसे भाप होने पर पानी का आयाम बढता है वैसे ही बर्फ होने पर भी पानी का आयाम कुछ बढता है और बढते समय अपने आश्रय को फैला देता है। जब जमा हुआ पानी फिर पिघलता है, तब तोडी हुई मिट्टी या पत्थर आदि के टुकडे, हवा आदि में उडने से बचे-बचाये , पानी के साथ बह चलते है। कही-कही छोटे-छोटे प्रदर, अपने भीतर के पानी के जम जाने के कारण, बढ चलते है और बडी-बडी चट्टाने होकर गिरते है। जमी हुई नदियो और जमी हुई झीलो के किनारे की मिट्टी और पत्थरो पर इसी

प्रकार बड़े-बड़े धक्के लगते हैं और तट की बड़ी-बड़ी चट्टानें निकल पड़ती हैं। तट को ढाहता हुआ पानी जब पिघलता है तब बाढ का बडा भारी उपद्रव होता है। जब ओले पड़ते हैं, तब उद्भिदो और जीवो को कितनी हानि पहुँचाती है यह सभी को विदित है। बर्फ का समूह हिमशिला या हिमानी ह्रदों के रूप मे पहाडो से उतडता हुआ पत्थरो को घिसता हुआ, पिघलने पर नदियो से मिल कर उनकी बाढ को बढ़ाता हुआ, कभी-कभी तराई में बस्तियो को साफ करता हुआ, कैसा उपद्रव मचाता है—यह पहाडी स्थिति जानने वालो को विदित ही है। बर्फ और पानी के प्रवाहो मे इतनी ताकत है कि पत्थर तक घिस कर ऐसा चिकना हो जाता है जैसा किसी यन्त्र से भी शायद नहो सके। जल और हिम के ऐसे ही व्यापारो से लीची के सदृश चिकने-चिकने नर्मदेश्वर और काजल के गोले के सदृश शालग्राम पाये जाते है, जिनके विषय मे पत्थर काटनेवाले कीडों आदि की अनेकानेक कल्पनाएँ आजकल के लोगो ने की है। पर नदी, झील करका, हिम आदि जल के जितने रूप हैं सबका बडा खजाना समुद्र है। वहाँ से पानी के कण निकल कर अनेक रूप धारण करते है और अपने लम्बे-चौडे इतिहास के अन्त में फिर वही जाकर मिलते हैं। सरदी-गरमी और जलवायु आदि का नियामक समुद्र है। उद्भिदो और जीवो की स्थिति पर समुद्र का बड़ा भारी असर पडता है। पुरानी मिट्टी खा जाने और नई मिट्टी उत्पन्न करने मे भी वह बहुत सहायता पहुँचाता है। जिन पत्थरो पर उसका पानी पडा रहता है उन्हे वह अपने नमक से धीरे-धीरे खाता रहता है। समुद्र अपने ज्वार से बराबर किनारे को मारता हुआ धीरे-धीरे खडे पत्थरो को भी खा डालता है। तट-शिलाओ के भीतर तरगो का आघात पहुँचाता है। बडे-बडे कल्लोल अपने जलाघात से चट्टानो को तोड़ देते है और पत्थरो की जड मे गुफाएँ और सुरगें तक खोद डालते है। तरगों में मिले हुए ककड-पत्थर आदि का झटका तट-शिलाओ पर इतने वेग से लगता रहता है कि जैसे तोप के गोले किले की दीवार को खा जाते है वैसे ही समुद्र इन शिलाओ को खाये बिना नही छोडता। अपनी तरगो के द्वारा समुद्र किनारे की बहुत-सी मिट्टी इत्यादि बटोरता जाता है। नदियाँ भी करोड़ो मन पाँक समुद्र में प्रतिक्षण पहुँचा रही है। इस कारण तहदार टापू, पहाड आदि समुद्र के भीतर से बढने-बढते जल के तल से ऊपर आकर, कालातर मे बस्ती के योग्य हो जाते है। विशेष कर जमीन से घिरे हुए समुद्री अशो में खल्ली, नमक आदि अनेक प्रकार के रस तल पर इकट्ठे होते जाते है। समुद्र के आगाधप्राय तलो मे अग्नि-गर्भ-पर्वतो की राख आदि से मिली हुई बहुत ही महीन पाँक पाई जाती है। तल की पाँक मे बहुत से छोटे-छोटे जन्तु मिले रहते है।

पृथ्वी तल का परिवर्त्तन, जल-वायु आदि केवल अचेतन वस्तुओ के ही व्यापार से नही हो रहा है; इस परिवर्त्तन मे जीव-शरीर भी अनजाने या जानबूझ कर बहुत-कुछ काम कर रहे है। रक्षा, सहार और नई उत्पत्ति—तीनो कार्य, जन्तुओ के द्वारा, इस पृथ्वी पर हो रहे हैं। उद्भिदो के कारण पत्थरो में सरदी जमी रहती है। सरदी के कारण पत्थरो का क्षय कैसे होता है यह पहले ही कह आये है। सड़े-गले उद्भिदों से अंगाराम्ल

आदि पत्थर खानेवाली चीजे उत्पन्न होती है। इससे भी पत्थरो का क्षय होता है। घने जंगल वृष्टि खीचते है। इस कारण जगली जगहो मे पानी का प्रवाह अधिक होता है और प्रवाह के कारण जमीन घिसती है। शिलीन्ध्र या साँप के छाते के सदृश अनेक उद्भिद सडे-गले उद्भिदो और जीव-शरीरो पर उत्पन्न होते है और उन्हे खा डालते है। इस प्रकार उद्भिदो से नाश का कार्य भी होता है, पर साथ ही साथ रक्षा भी होती है। हरे उद्भिदो से आवृत मिट्टी, पत्थर आदि पर जल-वायु का असर कम पडता है। पौधो की जड की मिट्टी, वालू आदि पदार्थ जमते और दृढ होते जाते है। इस कारण हवा उन्हे उडा नही सकती और पानी वहा नही सकता। जल-प्रवाह से आई हुई पाँक भी पौधो की जड मे जम जाती है। पानी छनता जाता है और जमीन ऊँची होती जाती है। कितने ही पौधे ऐसे है जो समुद्र के किनारे उत्पन्न होते है और समुद्र के धक्के से किनारे की रक्षा करते है। जगलो और वृक्षो से ढालुवाँ जमीन खूब भरी रहे तो वृष्टि के जल और हिमानी के वेग से उसे वहुत ही कम हानि पहुँचती है। कितने ही उद्भिदो के सडने से ऐसी खाद पैदा होनी है जिससे कृषि-कार्य मे सहायता होती है। उद्भिदो के सदृश-जीव-शरीर भी मिट्टी के परिवर्त्तन मे सहायता कर रहे है। कीडे जमीन को खोद-खोद कर नीचे की मिट्टी ऊपर लाते है, जिससे नई मिट्टी पडने क कारण कृषि को लाभ होता है। पर ऐसी मिट्टी पानी से वहुत जल्द वह जाती है—कीडो के अतिरिक्त चूहे, छुछूदर आदि जन्तु भी जमीन को खोद-खोद कर मिट्टी हवा में उडाते या पानी मे वहाते जाते है। ऐसे जन्तुओ के वनाये हुए विलो से ऊपर का पानी आसानी से भीतर चला जाता है, जिससे वाढ के नाश का भय वहुत कम हो जाता है। सेतु-शृगाल आदि कई ऐसे जन्तु है जो पानी मे वाँध वाँध कर वसते है और पानी की धार फेर देते है। इनके कारण भी पानी रुकता है और नई मिट्टी डालता हुआ कृषि का उपकार करता है। कितनी ही मछलियाँ भी जमीन को खोद कर नदी के किनारे भूमि के भीतर रहती है। मिश्र-शिश्रा के वाँधो को ऐसी मछलियाँ कभी-कभी ऐसे ढग से भीतर ही भीतर खा जाती है कि वाँध टूटने के कारण आस-पास के प्रदेश को वडी हानि पहुँचाती है। वाँध के भीतर चूहो के कारण भी देश को हानि पहुँचती है। कितने ही प्रकार के घोघे पत्थर और लकडी आदि को खोद-खोद कर विगाड देते है। टिड्डी आदि के उपद्रव से कृषि की हानि तो प्रसिद्ध ही है। मरे शरीरो के सडने और मिट्टी मे मिलने से मिट्टी के गुण आदि मे वहुत परिवर्त्तन होता है। कीडे, पतंगे, शख, सूती, मूँगा, घोघा आदि के मरने और उडने से भी पृथ्वी में परिवर्त्तन होता है। कही सूतियो के सडने से चूना जम जाता है, कही नई-नई खाद पड जाती है। इन कारणो से कृषि आदि को वहुत सहायता मिलती है।

और, जीवो के साथ ही साथ मनुष्य भी पृथ्वी पर अपना काम करता रहता है। मनुष्य प्रकृति देवी या ससार-भगवान् का वच्चा है। पर वच्चा होने पर भी वह केवल माँ-वाप की सहायता का भरोसा नही रखता। वह उनसे लड़ा भी करता है। जलवायु के

सम्बन्ध मे वह अपने माँ-बाप से अनेक प्रकार की छेड़-छाड़ किया करता है। वह अपनी चण्डी शक्ति से जंगलो को उजाडता हुआ अनेकानेक महिषासुरो और विडालासुरो के आश्रम का सर्वनाश कर देता है। वृक्षो के कारण सर्द और सुरक्षित देशो को नंगा करके वह उन्हे सूर्य के ताप और वायु के झकोरो के सामने खडा कर देता है। नहर और नालियाँ खोदकर वडी-वडी वाढो को वह आसानी से निकाल वाहर करता है। देश के देश को वह ऐसा सूखा कर देता है कि न वहाँ से ज्यादा भाप ही आसमान को जाय, न वृष्टि ही हो। कच्छो और दलदलो को सुखा कर मनुष्य खेत वना लेता है। ऊसरो, पहाडियो और पथरीली तराइयो को ओषधि, लता, गुल्म आदि से वह भर देता है। देश को सूखा कर, वृष्टि को घटाकर, मनुष्य नदी-प्रवाहो को भी कम कर देता है। कुआँ, खान और कृत्रिम सुरग आदि खोद कर जमीन के भीतर के झरने आदि के कार्यो मे भी वह अदल-वदल किया करता है। वाँध और पुल आदि से वह नदियो का आयाम कम कर देता है। और उनकी गहराई और वेग को वढा देता है। वडे-वडे पानी के कारखाने खडे करके और नहर आदि निकाल कर गंगा आदि के प्रवाहो को भी छिन्न-भिन्न कर देना मनुष्य के लिए आसान काम है। वृक्ष-हीन पहाडो को जंगलो से भर देना और जगलो से लदे हुए पहाड़ो को निर्वृक्ष कर डालना; घास-पात एक जगह से हटाना और दूसरी जगह ले जाना, उजाड रेतो को मूँज, झाऊ आदि के जंगलो से भर देना, अनेक गुल्मो से भरी हुई रेतीली जमीन को साफ कर देना, नदी-नालों को पाट कर या हटा कर नई भूमि निकाल लेना, पुरानी भूमि को जल-प्रवाह के भीतर डाल देना, वाँध, टीले, घाट-दीवार, वन्दरगाह, किले आदि के निर्माण से नदी, समुद्र आदि के नाशकारी वेग को रोकना, तरगो से आये हुए किनारे के पत्थर आदि को हटाकर किनारे की कमजोरी वढ़ाना; सडक, पुल, नहर, रेल, सुरग, गाँव शहर आदि वनाना इत्यादि प्रकृति देवी के प्यारे वच्चे मनुष्य का व्यापार है, जिस से तीनो लोको अर्थात् रसातल, भूपृष्ठ और वायुमण्डल—में अनेक परिणाम हो रहे है। जंगली जन्तुओ और कितने ही पौधो का नाश करने और गल्ले, तरकारी, फल आदि के पौधो को वढ़ाने तथा वकरी, भेड, गाय, वैल, कुत्ते, विल्ली आदि पालने से भी मनुष्य पार्थिव परिणाम में सहायक हुआ है। शिकारी पशु-पक्षी आदि से मनुष्य की वरावर लड़ाई चली आती है। मनुष्य के व्यापार से कितने ही वली जन्तु—व्याघ्र, सिंह आदि—नष्ट होते जा रहे है और कितने ही दुर्वल जन्तु वढ़ते जा रहे है। इन दुर्वल जन्तुओ को मनुष्य अपने काम के लिए वढाता भी है और आवश्यकता होने पर खा भी जाता है।

पृथ्वी की ऊपरी पपड़ी का संगठन

पृथ्वी की उपरी पपडी का जितना अंश मनुष्य की पहुँच मे है वह प्रायः तहदार पत्थरो का वना हुआ है। अर्थात् उसमे एक के ऊपर एक तह है, जिससे यह मालूम होता है कि पानी की तलछट जमते-जमते उनकी रचना हुई है। इन तहो मे वीचियो की रेखा पड़ गई है। कही-कही धूप से ये फट गये है। वर्षा की बूँदे भी इन पर कही-कही पड़ी

है। ये चिह्न इन तहो के पत्थर हो जाने पर भी, आज भी, देखे जाते है। ऐसे चिह्नो से इन तहो का इतिहास विदित होता है। इन तहो की मिट्टी, जन्तु आदि के परीक्षको को मालूम हो जाता है कि कौन अश समुद्र के भीतर था, कौन अश समुद्र के किनारे था, कौन अश स्वच्छ नदी आदि के पानी के नीचे था, इत्यादि। तहदार पत्थरो के अतिरिक्त पपडी मे कही-कही बेतह के आग्नेय पाषाण पाये जाते है। कहा जा चुका है कि ये पाषाण भूगर्भ के अन्त पिठर के उद्भेदो के कारण ऊपर आये है। आग्नेय पाषाणो के दो सिलसिले है। कुछ तो ऐसे पाषाण है जो भीतरी द्रव्यो की तह मे घुसकर वहाँ जम जाने से उत्पन्न हुए है। ये पपडी के ठीक ऊपर नही पहुँच सके। पर कितने ही पाषाण पिघले हुए द्रव्य पाषाण-खण्ड आदि के ऊपर आकर जम जाने से उत्पन्न हुए है। भीतर के पाषाणो में ठीक-ठीक रवे पडे है, क्योकि उनकी गरमी बहुत-धीरे धीरे निकली है और वे बहुत देर मे जमे है। ऊपर के पाषाणो के रवे ऐसे उत्तम नही है, क्योकि बाहर की हवा से उनकी गरमी बहुत जल्द निकल गई है और वे बहुत शीघ्र जम गये है। भीतरी और बाहरी, दोनो प्रकार के पाषाणो मे, अनेक परिवर्त्तन होते रहे है। पृथ्वी मे क्या, ससार में सभी जगह अनेक प्रकार की गतियाँ हो रही है। कितने ही सूक्ष्म कम्प आदि तो ऐसे है जिनका पता विना सुकुमार यन्त्रो के नही लग सकता। पर कितनी ही गतियाँ ऐसी भयानक क्षोभमय है जिनसे पहाडो की शृखला तक उठ आवे, धँस जाय, या विखर पडे तो कोई आश्चर्य नही। ऐसी ही गतियो के कारण पत्थरो में कही चौकोने और कही विषम चट्टाने उत्पन्न होती हुई देखी जाती है। पानी की तलछट के सूखने, घने होने और सकुचित होने से, या पिघले हुए द्रव्यो के ठडे होकर जमने या पपडी के अन्दर की चीजो के हिलने-डुलने से तथा ऐसे ही अन्य व्यापारो से भी इस तरह के क्षोभ उत्पन्न होते है। तहदार पत्थर प्राय समुद्र के तल पर तिर्यग्भाव में, एक के ऊपर एक, पडते है। पर आज कल सूखी जमीन पर उसकी ऐसी स्थिति बहुत कम पाई जाती है। आजकल या तो उनकी तह की रेखा ऊपर नीचे को गई है या वे अनेक कोणो के आकार मे स्थित है। कही-कही तहें टूट भी गई है। अदर के आस-पास कही-कही पत्थर उठ आये है, कही-कही दब गये है और कही-कही तो तह के एक टुकडे से दूसरे टुकडे की ऊँचाई में हजारो फुट का फर्क पड गया है। ऐसी विषमता प्राय भूकम्प वाले प्रदेशो में अधिक पाई जाती है। अनेक प्रकार के वैषम्य और सकर, पहाडो के सिलसिलो में पाये जाते है। इन सिलसिलो मे कही-कही तो तहें अपने-अपने क्रम से चिपटी पडी है। कही कोसो तक पहाड फट जाने से ऊपर के अश नीचे घुस गये है। कही तहें चूर-चूर हो गई है। कही मोटी रेखाएँ पड गई है। जहाँ-तहाँ पहाडी और बेपहाडी देशों में पत्थर के अदर खनिज द्रव्यो से भर गये है।

जन्तुओं की प्राचीन स्थिति

पत्थरो मे जम कर स्वयं भी पत्थर हो गये प्राचीन जीव-शरीर जहाँ-तहाँ वर्त्तमान है। जैसे कीड़े-मकोड़े आदि जीवो के शरीर पत्थर में पडे है वैसे ही उद्भिदो के शरीर

और शरीरांश, फल, फूल, रस आदि भी भूमि मे वर्त्तमान हैं। भूमि मे जीवो की स्थिति के चिह्न जीवशरीरो के अतिरिक्त भी है। कीडो के चलने का चिह्न, उनके बिलो आदि के निशान, बडे-बडे जानवरो के पैरो आदि के चिह्न, मनुष्यो के पाषाणमय, धातु-घटित या मृत्तिका से निर्मित अस्त्र-शस्त्र आदि से जन्तुओ की स्थिति का पता लगता है। आज कल पृथ्वी की जैसी अवस्था है उससे जान पडता है कि जलीय या स्थलीय पौधे, जीव या उनके चिह्न, जो पत्थरो मे मिलते है, एक अद्भुत ही घटना है। इन वस्तुओ के उड जाने, बह जाने या किसी तरह लोप हो जाने के इतने कारण वर्त्तमान है, जिनका ठिकाना नही। फिर भी यह देखना है, किन-किन कारणो से जहाँ-तहाँ इनकी रक्षा हो सकती थी और आज भी हो सकती है। घने जगलों में अनेक जीव-जन्तु रह सकते है। वृक्ष सडकर मिट्टी में मिल जाते है। जानवर भी पुश्त-दर-पुश्त मरते चले जा रहे है और उनकी स्थिति का कोई जाहिरा निशान नही पाया जाता ? अनेक चिह्नो से यह मालूम होता है कि यूरप के बीच वाले और उत्तरी हिस्से में घने जंगल थे। जगली बैल, भालू आदि यूरप के प्राचीन जन्तु अब कहाँ है ? ऊपर की भूमि देखने से इन जगलो और जंगली जन्तुओ का कोई पता नही चलता। यदि ताल, झील आदि के भीतर, खाद के अन्दर, नदियो के मुँह पर, पाँक की ढेरी मे, प्रस्तरो की गुफाओ में हड्डी आदि न पाई जाती तो प्राचीन पौधो और जन्तुओ का पता लगना दुस्तर था। समुद्र के भीतर बालू और पाँक के नीचे जो जीव-जन्तु आदि पडे रहते है उनके बचे रहने की सम्भावना कुछ अधिक है। दाँत-हड्डी आदि कडी चीजें खास कर पत्थरो में जमी रह जाती है और स्वय पत्थर हो कर चिरकाल तक वर्त्तमान रहती है। समुद्री जन्तु—शंख, शुक्ति, आदि —पृथ्वी में जमे हुए जितने मिलते है उतने स्थलीय जन्तु आदि नही मिलते, क्योकि सूखी पृथ्वी पर से ये बहुत आसानी से नष्ट हो सकते है। इसीलिए समुद्री घोघे प्राचीन स्थिति की वर्णमाला कहे जाते है। इन्ही की परीक्षा से भूग्रह की पपडी की तह पर जन्तु-स्थिति की सूचना मिलती है। प्राचीन पौधे, जन्तु आदि की परीक्षा से दो बातें जानी जाती है। प्राचीन समय में भूमि, नदी, ताल झील, समुद्र आदि की स्थिति का, जल-वायु के परिवर्त्तन आदि का और पौधो तथा जन्तुओ आदि के विभाग का पता इन्ही की परीक्षा से लगता है। फिर कौन पत्थर कितने पुराने है, इसका भी पता इन्ही परीक्षाओ से लगता है। कही-कही अब भी बढते हुए पौधों से भूषित पुरानी जमीन का पता लगता है। कही-कही पुराने ताल, झील, आदि अपने-अपने घोघो आदि से भरे हुए मिलते है। जन्तुओ की बनावट की परीक्षा से यह भी पता लगता है कि कहाँ खारा पानी था, कहाँ पुराने समुद्र थे और कहाँ मीठे जल की झीलें आदि थी। वहे हुए जंगलो और पेडो आदि से पता लगता है कि आस-पास भूमि थी या नही। आज जहाँ बहुत ठड है वहाँ गरम देश के पौधे और जन्तु आदि मिलते है। इससे उन समुद्रो के जल-वायु आदि के परिवर्त्तन का पता लगता है। भूमि की तहो की परीक्षा से मालूम पडता है कि जहाँ-जहाँ भूक्षोभ के कारण तहों की उलट-पुलट नही हुई वहाँ की तहो के जन्तुओ की जाति की जाति गायब होती जाती है और ऊपर

की तहो मे नई-नई जातियाँ उत्पन्न होती जाती है। खास-खास तहो की जन्तु-जातियाँ विलक्षण ही है। उनका रग-रूप अपने ही ढग का होता है। जहाँ-जहाँ तहे ठिकाने से है, वहाँ-वहाँ क्रमिक तहो की पहचान कर लेने से, वे वहाँ तक उलट-पलट गई है, इसका भी पता लग जाता है। पहाडो मे भूकम्प आदि के क्षोभ के कारण कही-कही तो सब से ऊपरी तहे सब से नीचे घुस गई है और सब से नीचे की तहे सबसे ऊपर उठ आई है। भूगर्भ के इतिहास मे अध्याय के अध्याय और खण्ड के खण्ड जहाँ-तहाँ गायब है, क्योकि कितनी ही तहे उलट-पलट गई है, कितनी तहो के जीव-जन्तु आदि का आज एक भी चिह्न वर्तमान नही है। तथापि वैज्ञानिको ने परिश्रम से भूगर्भ के इतिहास का अस्थिपजर खडा कर लिया है। किसी एक प्रदेश के भूगर्भ का इतिहास पूर्ण नही हो सकता, पर अनेकानेक देशो की परीक्षा से तहो के क्रम का ठीक पता लग गया है।

भूगर्भ की तहें

ऊपर जितनी बाते पृथ्वी की गति के विषय मे, पपडी की रचना के विषय मे, तहो और तहो के जन्तुओ के विषय मे कही गई है उन सब को मिला-जुला कर भूग्रह की बाहरी पपडी की तहो का क्रम वैज्ञानिको ने ठीक किया है। पहले तो प्रत्येक तह अपने ढग के विशेष पौधो या जीवो से लक्षित है। ऐसी-ऐसी अनेक तहो या स्तरो को मिलाकर स्तर-वर्ग कल्पित किये गये है। अनेक स्तरवर्ग को मिलाकर एक-एक सिलसिला बनाया गया है।

पृथ्वी की पपडी के तहदार अशो के पाँच विभाग है—१ प्राचीन या आजीवक, २ प्राचीन-जीवक या प्राथमिक, ३ मध्य-जीवक या द्वैतीयीक, ४, साम्प्रतिक जीवक या तार्तीयीक, ५ चतुर्थ या अधितार्तीयीक। इन पाँचो विभागो के अनेक अवान्तर विभाग किये गये है। पपडी खोदते-खोदते उसके जितने अश का पता आज तक मनुष्यो को लगा है, उनमे सबसे नीचे का अश प्राचीन या आजीवक कहा गया है। इस विभाग में जीव प्राय नही है। कही-कही बहुत ही सूक्ष्म विलक्षण प्रकार के जीव देखे गये है। इसीलिए कितने ही लोगो ने इसे उद्यजीवक कहा है। इसके ऊपर प्राचीन जीवक या प्राथमिक विभाग है। इस विभाग मे जीवो का ठीक-ठीक उद्भव हुआ है। इस विभाग मे पाँच अवान्तर विभाग है—१ शावरिक, २ शिलुरीय, ३ रक्तशिलीय, ४ अगारभारीय, ५ परमीय। प्राचीन-जीवक-विभाग के ऊपर मध्य-जीवक या द्वैतीयीक विभाग है जिसके तीन अवान्तर विभाग है—१ त्रिगुणक, २ औरसिक, ३ खटिकीय। मध्यजीवक-विभाग के ऊपर साम्प्रतिक जीवक या तार्तीयीक विभाग है। इसके चार अवान्तर विभाग है—१ औषस, २ सामुद्रिक ३ माध्यमिक, ४ आवसानिक। तार्तीयीक विभाग के ऊपर अधितार्तीयीक अर्थात् सबसे नया विभाग है। इसके दो अवान्तर विभाग है—१ प्रलयकालिक और २ मानवीय।

नदी आदि के जल से जिस प्रकार मिट्टी घिसती जा रही है उससे यह जान पडता है कि कुछ ही युगो मे सब भूमि समुद्र के अन्दर चली जायगी। इसी प्रकार जहाँ-तहाँ जमीन धँसने से भी जमीन की कमी होने की सम्भावना है। पर साथ ही साथ जमीन

उठती भी जाती है। इसी से घिसने या धँस जाने से हानि होती है उसकी पूर्ति भी समय-समय पर होती जाती है। भूमि का उठना दो प्रकार से हो रहा है—या तो समुद्र में पाँक जमने से या जहाँ-तहाँ भूगर्भीय अग्नि के व्यापार से। समतल मैदान प्राय. जलीय व्यापार से बने हुए हैं। पहाड़ी प्रदेशो मे आग्नेय व्यापार की अधिकता रहती है। जल-वायु, सरदी-गरमी, वृष्टि, झरना, बर्फ, पानी, समुद्र पौवे, जीव इत्यादि के व्यापारो से पृथ्वी का घिसना ऊपर कहा जा चुका है। एक ही पुश्त में इस घिसने का कुछ पता नही लगता, पर मनुष्य अनुमान कर सकता है कि अनेक युगो मे ऐसे व्यापार का कितना अधिक फल हो सकता है ।

नरशास्त्र

प्रकृति में सजीव और निर्जीव दो प्रकार के पदार्थ है। सजीव पदार्थो के शास्त्र को जीवशास्त्र कहते हैं। इसी जीवशास्त्र का एक विभाग नरशास्त्र है। उसमें मनुष्य के प्राकृतिक स्थान आदि अनेक विषयो का वर्णन है। प्राय. लोग समझते है कि मनुष्यो में कोई ऐसा विशेष तत्त्व है जिसके कारण वह अन्य जीवो से श्रेष्ठ है। पर मनुष्यो की बुद्धि, भाषा तथा हड्डियो की परीक्षा करने से यह निश्चित हो गया है कि उनमें और अन्य जन्तुओ में कोई ऐसा भेद नही। वडे-वडे जीवशास्त्रो का सिद्धान्त है कि जन्तुओ में यदि कोई सब से ऊँचा वर्ग कायम किया जाय तो उसके एक विभाग में मनुष्य और दूसरे विभाग में वन्दर रखे जा सकते है। मनुष्यो और 'गोरिला' नामक वन्दरों में अत्यन्त सादृश्य है। उनमें एकमात्र भेद यह है कि वन्दर प्राय. चारो पैर से चलते है और मनुष्य सीधे खडे होकर चलते है। पर अगूठे और उँगलियो को सामने लाने की शक्ति मनुष्य और वदर दोनो में है।

मनुष्यो तथा अन्य जन्तुओ में मुख्य भेद मस्तिष्क का है। मछलियो और चिडियो आदि का मस्तिष्क छोटा और चिकना होता है। पर ऊँचे दरजे के जन्तुओ का मस्तिष्क क्रम से बडा और चूनेदार होता जाता है। मन शास्त्र जाननेवालो ने निश्चय किया है कि मस्तिष्क के ऊपरी भाग मे ज्ञान-कृति-स्मृति आदि का स्थान है। मनुष्यो का छोटे-से-छोटा मस्तिष्क भी वड़े-से-वडे वन्दरो के मस्तिष्क से डचोढा होता ह। गोरिला वदर मनुष्यो से वहुत वडे होते है। पर मस्तिष्क छोटा होने के कारण वैसी तेज नही होती जैसी मनुष्य की। मनुष्यो में एक अपूर्व शक्ति होती है, जो और जन्तुओ में नही पाई जाती। दूसरो के शब्दो का खयाल रखने तथा शोक, हर्ष आदि के प्रकाशक शब्द वोलने की शक्ति और भी कितने ही जन्तुओ में पाई जाती है। पर शब्दो के द्वारा अर्थ-प्रकाशन करने की शक्ति केवल मनुष्यो में है ।

वस, मनुष्यो और जन्तुओ में इतना ही सादृश्य और भेद है। वडे वदरो और मनुष्यो में मुख्य भेद मस्तिष्क के परिमाण और वनावट में है। मनुष्य अपनी वुद्धि और भाषा आदि के द्वारा दिन-दिन उन्नति कर सकते है। परन्तु अन्य जन्तु उन्नति नही कर सकते है। वे आज भी उसी अवस्था में पडे हुए है जिसमें कि कई हजार वर्ष पहले थे। मस्तिष्क की उत्तमता के कारण मनुष्य चिरकाल से यन्त्रो का प्रयोग कर सकते है। पर वंदर छडी उठाने, या पत्थर फेंकने के अतिरिक्त अन्य कार्य करते हुए प्राय: नही देखे जाते। आयुधो का प्रयोग, खाना पकाने के लिए आग का उपयोग, वीजो से नये वृक्ष पैदा करना इत्यादि अद्भुत कार्य मनुष्यो ने अपनी मस्तिष्क शक्ति के द्वारा किये है। परन्तु और जन्तु प्रकृति को इस प्रकार अपने वश में नही रख सकते। इधर मनुष्यो में साधारण पाशविक शक्तियाँ इतनी तेज नही जितनी कि छोटे जन्तुओ में। गीधो की दृष्टि-शक्ति तथा कुत्तो की घ्राण-

शक्ति मनुष्यो से कही बढ-चढ़ कर है। मनुष्यो के बच्चो को अन्य जन्तुओ के बच्चों की अपेक्षा अधिक समय तक सिखलाना और बडो की रक्षा में रखना पड़ता है। पर दर्शन और विज्ञान का अन्वेषण, सत्य और असत्य की पहचान, तथा धर्म और अधर्म का ज्ञान केवल मनुष्यो ही में पाया जाता है।

निर्माणवादी समझते है कि प्रत्येक जन्तु के निर्माण के लिए किसी सर्वशक्तिमान् पुरुष के प्रयत्न की आवश्यकता है। कितने ही लोगो का खयाल है कि मनुष्यो और अन्य जन्तुओ की आत्मा में अन्तर है, तथा मनुष्य और जन्तुओ से श्रेष्ठ है। पर वैज्ञानिक इन बातो को नही मानते। वे समझते है कि प्राकृतिक शक्तियो से जैसे और पदार्थ बने है और बनते जाते है वैसे ही मनुष्य भी बना है। वैज्ञानिक निर्माणवाद को नही मानते। इन लोगो को क्रम-विकासवाद पसन्द है। सब जन्तुओ को इकट्ठे ईश्वर ने बनाया था। प्रलय होने पर उनका एक-एक नमूना नोह (Noah) या मनु की नाव में रखा गया था, जिससे सब जन्तु फिर उत्पन्न हुए, इत्यादि बातें युक्ति तथा प्रमाण के विरुद्ध है। भूगर्भ की परीक्षा से सिद्ध हो गया है कि सब जन्तु पृथ्वी पर एक ही साथ पैदा नही हुए। पहले छोटे-छोटे जन्तुओ का आविर्भाव हुआ। उसके बाद, क्रम से, उत्तम जन्तु पैदा होते गए। महात्मा दारुवीन (Darwin) का मत है कि कृमि कीट, मत्स्य, सर्प, पक्षी, पशु, बंदर आदि के क्रम से जीवो का पृथ्वी पर आविर्भाव हुआ। अन्त में सब के बाद मनुष्य उत्पन्न हुए। महर्षि दारुवीन के मतानुसार बदरों से ही मनुष्यजाति की उत्पत्ति हुई है।

विकासवाद का एक सिद्धान्त यह है कि माता-पिता के गुण सन्तानों में आ जाते है। ऐसेही अनेक गुणो के सम्मेलन, योग्य व्यक्तियो की रक्षा, और अयोग्य व्यक्तियों के नाश से, धीरे-धीरे एक नई जाति के जीव बन जाते है। मनुष्यो की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई। बस, विकासवाद का यही साराश है ।

अब यह देखना है कि मनुष्यो की कितनी जातियाँ है। मनुष्य की जातियो का परिचय उनके चमड़े और आँखो तथा केशो के रग आदि से होता है। कितनी ही जातियो का परिचय शरीर की लम्बाई से भी होता है। चीन और जापान के लोग प्राय: नाटे होते है। यूरोप वाले गोरे होते है। अफ्रिका के निवासी काले होते है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से लक्षण है, जिनसे जाति का परिचय मिलता है। प्राय असभ्य जातियों का माथा गहरा और मुँह उभडा हुआ होता है। ऊँची जातियो का चेहरा मुँह से माथे तक प्राय सीधा होता है। इसी प्रकार चिपटी नाक, मोटे होंठ, चौड़े कान, गाल की लम्बी हड्डी आदि से भी जातियो की पहचान की जाती है। साधारत. जाति के लक्षण साफ दिखाई पड़ते है। पर कभी-कभी वर्ण-सकर हो जाने के कारण, अर्थात् एक जाति के लोगो के साथ दूसरी जाति के लोगो का ब्याह हो जाने से, जाति का पता लगाना कठिन हो जाता है। कितने ही लोगो ने मनुष्यो की पाँच जातियाँ बतलाई है, जिनके नाम ये है—श्वेत, पीत रक्त, कृष्ण, मलय। श्वेत वर्ण के लोग यूरप में, रक्त वर्ण के अमेरिका में

कृष्ण वर्ण के अफ्रिका मे, पीन वर्ण के चीन और जापान में तथा मलय जाति के लोग, जो मलिन श्वेत वर्ण के होते है, पूर्व-दक्षिण के टापुओ मे पाये जाते है। यूरोप के लोगों और हब्शियो से उत्पन्न, यूरोप-निवासियो और अमेरिका के जगलियो से उत्पन्न तथा अमेरिका के जगलियो और हब्शियो से उत्पन्न, अनेक प्रकार की वर्ण-सकर जातियाँ भी पाई जाती है। वर्ण-सकरो में एक विलक्षणता होती है। वह यह कि कितने ही वर्ण-सकर सन्तान-वाले होते है और कितने ही बाँझ। यूरोप वालो और दक्षिण-पूरब के टापुओ के निवासियो से उत्पन्न वर्णसकर मनुष्य प्राय बाँझ देखे जाते है। इस तरह अनेक वर्णो के मिलने से अनेक नई-नई जातियाँ उत्पन्न हुई है और होती जाती है। वर्त्तमान समय में शुद्ध जातियो का मिलना कठिन है।

अभी तक यह निश्चय नही हुआ कि सारी मनुष्य जातियाँ किसी एक ही जाति से उत्पन्न हुई है या भिन्न-भिन्न जातियो से। कितने ही लोग तो यहाँ तक कहते है कि सारी मनुष्य-जातियाँ मनुष्य के एक ही जोडे से पैदा हुई है। इस जोडे का नाम भी रख लिया गया है। कोई-कोई तो इसे आदम-हौवा कहते है और कोई मनु-शतरूपा। पहले लोग समझते थे कि एक ही मनुष्य-जाति हवा-पानी के भेद से अनेक वर्ण की हो गई। गर्म देश के लोग धूप से काले हो गये और ठढे देशवाले शीताधिक्य के कारण काले न हुए। परन्तु एक स्थान के लोग दूसरे स्थान में जाकर, वहाँ हजारो वर्ष रहने पर भी, ऐसे नही बदल जाते कि उनकी जाति का पता न लगे। फिर एक ही देश (जैसे भारतवर्ष) के एक ही प्रान्त मे (जैसे बगाल में) काले से काले और गोरे से गोरे आदमी पाये जाते है। इन बातो से यह अनुमान किया जाता है कि सृष्टि के प्रारभ मे मनुष्यो की अनेक जातियाँ जहाँ-तहाँ उत्पन्न हुईं, जिनके मिलने-जुलने से आज इतने प्रकार के मनुष्य पाये जाते है। जो लोग एक ही मनुष्य जाति से सब मनुष्यो की उत्पत्ति मानते है उनका यह कहना है कि आज कल मकानो मे रहने तथा कपडे पहनने आदि कारणो से मनुष्यो के वर्ण जल्दी नही बदलते, पर प्राचीन समय में जगली मनुष्यो के पास अपने वर्ण की रक्षा करने के लिए दूसरे साधन न थे। इससे सम्भव है कि एक ही जाति के मनुष्यो से, जल आदि के कारण, अनक मनुष्य-जातियाँ उत्पन्न हुई हो। कुछ भी हो, पर निर्माणवादियो का यह कहना कि ससार की भिन्न-भिन्न मनुष्य-जातियाँ एक ही जोडे से उत्पन्न हुई है, सर्वथा असगत मालूम होता है। इतिहासज्ञ जानते है कि हजार वर्षों से दुनिया की सफेद और काली जातियाँ एक-सी चली आती है। आज से कई हजार वर्ष पहले, जब वैदिक आर्य भारत मे आये थे तब भी, श्वेत वर्ण और कृष्ण वर्ण का भेद पाया जाता था।

कुछ दिन पहले पश्चिम के लोग समझते थे कि ईसा के ४००४ वर्ष पूर्व पृथ्वी और मनुष्यो की उत्पत्ति हुई थी। पूर्वी देशो के निवासी इस बात को नही मानते थे। पर वास्तव मे उन्हे भी इस विषय का कुछ ज्ञान न था। पूर्वजो के शब्दो के अतिरिक्त दोनो ही के पास ऐसे कोई प्रमाण न थे, जिनसे वे मनुष्यो की वास्तविक अवस्था का पता लगाते। अब भूगर्भविद्या से यह निश्चित हो गया है कि लाखो वर्षो से पृथ्वी पर वस्तु

और जन्तु हैं, तथा जन्तुओ के उत्पन्न होने के बहुत पीछे मनुष्यो की उत्पत्ति हुई। यदि यह माना जाय कि आज से लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर मनुष्यो का आविर्भाव हुआ तो असगत न होगा। हाथी, गैंडा, भालू आदि जन्तुओ की हड्डियो के साथ-साथ मनुष्यो की हड्डियाँ भी ठढे देशो में पाई जाती हैं। इससे यह अनुमान होता है कि जिस समय इन ढंडे देशो मे वडी गर्मी पडती थी और गर्म देश के हाथी आदि जन्तु वहाँ मौजूद थे उसी समय से वहाँ मनुष्यों की स्थिति है। आज पश्चिम के ठढे देशो में हाथी आदि जन्तु नही मिलते पर जहाँ-तहाँ जमीन खोदने से हाथियो आदि की हड्डियाँ इन देशो में मिलती हैं। इससे यह जाना जाता है कि अत्यन्त प्राचीन समय में इन देशो का जल-वायु इतना ठडा न था जितना अब है। फ्रास देश में कही-कही भूमि के भीतर गहरी गुफाएँ मिली हैं, जहाँ जगली मनुष्यो की हड्डियाँ और पत्थर के अस्त्रशस्त्र, ऐसे मृगो की हड्डियो के साथ मिले हैं जो आज कल फ्रास के आसपास नही पाये जाते। कही-कही इन गुफाओ मे हाथीदांत के टुकडां या हरिणो के सीगो पर खीचे हुए वडे हरिणो तथा झवरीले हाथियो के चित्र मिले हैं। इन चित्रो से मालूम होता है कि किसी समय इन ठढे देशो मे भी हाथी होते थे। इन लक्षणो से यह जान पड़ता है कि आज से लाखो वर्ष पहले पृथ्वी पर मनुष्यो का आविर्भाव हुआ। जगली मनुष्यो के वनाये हुए पत्थर के अस्त्र-शस्त्र और हाथी दाँत के चित्रो के ऊपर आज वहुत-सी मिट्टी जमी है। पर कितने वर्षों में इतनी ऊँची जम सकती है, इसका अन्दाजा करने से भी मनुष्य की प्राचीनता का पता लगता है। सौ वर्ष में केवल कुछ इच मिट्टी जमती है। नीलनद की तराई में ६० फीट पाँक के नीचे ईंटो और वर्त्तनो के टुकडे पाये गये हैं। जहाँ-तहाँ रोमन लोगो के समय की चीजें चार फीट जमीन के नीचे पाई जाती हैं। अब कहिए, यदि चार फीट मिट्टी १५०० वर्ष में जम सकती है तो साठ फीट मिट्टी के जमने में कितने हजार वर्ष लगे होगे। पर साठ फीट मिट्टी के नीचे तो उस समय के लोगो के चिह्न मिले हैं जिस समय मिट्टी के वर्तन आदि वनने लगे थे। फिर उन लोगो का समय कितना प्राचीन हुआ जिनके चिह्न और भी सैकडो फीट नीचे मिले हैं?

प्राचीन मनुष्यो के अनेक चिह्न मिले हैं। कही-कही तालावो में मकान वनाकर रहने वाले मनुष्यो के चिह्न पाये जाते हैं। कही पत्थर के अस्त्र-शस्त्र मिलते हैं। कही ईंटो के टुकडे मिलते हैं। ये चिह्न कोई छै-सात हजार वर्ष से वर्त्तमान हैं। कितने ही लोग यह समझते हैं कि पुराने आदमी वहुत सभ्य थे। इस कारण जवसे लिखित पुस्तके मिलती हैं तभी से ये लोग मनुष्य की स्थिति मानते हैं। पर वैज्ञानिक सिद्धान्तो से यह स्पष्ट विदित होता है कि सभ्यता धीरे-धीरे वढती है। इसलिए सभ्य समय के पहले चिरकाल तक मनुष्य असभ्य रहे होगे। भाषाओ की परीक्षा से भी मनुष्यो की प्राचीनता का पता लगा है। भारतीय भाषाओ और पाश्चात्य भाषाओं मे वहुत कुछ समानता है; क्योकि भारतीय और पश्चिमी भाषाओ का मूल स्वरूप कोई दूसरी प्राचीन भाषा थी। कई हजार वर्षो से भारतवासियो और पाश्चात्यो की भाषा भिन्न-भिन्न पाई जाती है। इस भेद के न

मालूम कितने हजार वर्ष पहले उस ऐक्य का समय होगा जब पूर्वी और पश्चिमी आर्यों के पूर्वज एक भाषा बोलते रहे होंगे।

भाषाओं के कई वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग के शब्द, कोष और व्याकरण भिन्न-भिन्न हैं, तथापि सब मनुष्यों का मन एक ही प्रकार का है। इस कारण एक जाति का मनुष्य दूसरी जाति की भाषा को अच्छी तरह सीख सकता है। इसलिए भाषा के अनुसार मनुष्य जाति का विभाग करना उचित नहीं, क्योंकि सम्भव है कि भिन्न-भिन्न जातियों के मनुष्यों ने एक दूसरे की भाषा को स्वीकार कर लिया हो। उदाहरणार्थ, फ्रांस के मनुष्य रोमन भाषाओं से निकली हुई भाषा बोलते हैं। भारत की द्रविड जातियों में जहाँ-तहाँ आर्य भाषा संस्कृत का अधिक प्रचार देखा जाता है। इसलिए नरशास्त्रज्ञों ने वर्ण के अनुसार मनुष्य जाति का विभाग किया, भाषा के अनुसार नहीं।

अब यह देखना है कि मनुष्यों में सभ्यता किस क्रम से विकसित हुई। पृथ्वी पर आज भी भयानक जंगली आदमी, अमेरिका आदि के जंगलों में, मिलते हैं। सभ्य-से-सभ्य मनुष्य जातियाँ भी योरप आदि में पाई जाती हैं। कई हजार वर्ष पहले से अनेक मनुष्य-जातियों के लिखित इतिहास मिलते हैं। लिखित इतिहासों के पहले की बातें जमीन में गडे हुए मानव-चिह्नों से अनुमान की जा सकती हैं। कितने ही लोग समझते हैं कि आरम्भ ही से किसी ने सभ्य मनुष्य बनाये थे, या यों कहिए कि मनुष्यों को बनाकर उन्हें तुरत ही सभ्यता सिखा दी थी। धीरे-धीरे ये लोग सभ्यता, विद्या, कला आदि को भूल कर अब संभ्य हो गये हैं। अनेक कारणों से यह कल्पना असंगत जान पडती है। एक तो यह कि प्राचीनों को विमान, पुल आदि बनाना न आता था। यदि आता था तो उनके बाद लोग ऐसी उपयुक्त विद्या को क्यों भूल गये? दूसरी बात यह है कि भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार जो सबसे प्राचीन मानव चिह्न पृथ्वी की तह में मिलते हैं उनमें सभ्यता के कोई लक्षण नहीं दीख पड़ते। मिट्टी के बर्त्तनों आदि के टुकडे भी नई तहों में पाये जाते हैं, न कि प्राचीन तह में। इससे सिद्ध है कि सृष्टि में बंदरों के बाद अत्यन्त असभ्य मनुष्य हुए; फिर मनुष्यों में क्रमशः सभ्यता बढती गई। पहले की असभ्य जातियों का हाल कुछ तो आज भी बची हुई सभ्य जातियों के देखने से मालूम होता है और कुछ असभ्यता के समय के रीति-रस्म आदि से जाना जाता है, जो आज भी सभ्य जातियों में चली आ रही है।

पहले के लोग हाथ पर अंकों को गिनते थे। आज भी असभ्य जातियाँ ऐसे ही दस-पाँच तक गिनती हैं। आग जलाने के लिए वैज्ञानिकों ने स्फुर-शलाका (दियासलाई) निकाली है, पर भारतीय लोग यज्ञ के समय अरणि-मन्थन से आग निकालते हैं। लकडी रगड कर आग निकालना अत्यन्त प्राचीन सभ्यता-हीन समय का अभ्यास है। यूरोपवाले भी पशु आदिकों में फैली हुई महामारी दूर करने के लिए लकडी द्वारा निकाली गई आग का उपयोग करते हैं। मरे हुए लोगों के नाम पर भोजन आदि भी उसी प्राचीन तथा असभ्य समय का रिवाज है, क्योंकि उस समय के लोग समझते थे कि मरने के समय

शरीर से आत्मा निकल हवा में घूमती-फिरती है और खाना-पीना खोजती रहती है। आज दर्शन और विज्ञान से इन बातो पर बहुत कुछ धक्का लग चुका है। तथापि अनेक पूर्वी और पश्चिमी देशो मे लोग मृतक को भोजन आदि दिया करते है। रूस में लोग मृतक के स्वर्ग जाने के लिए कब्र में आटे की सीढी बना देते थे। कितने ही पाश्चात्य देशो में मुर्दे के हाथ में एक पैसा रख दिया जाता है, ताकि वह पैसा देकर वैतरणी पार करे। भारतवर्ष मे गाय की पूँछ पकड़ कर प्रेत वैतरणी पार करता है, ऐसा लोग समझते है। तन्त्र-मत्र, जादू-टोना आदि उसी असभ्य समय की निशानी है, जिस समय लोगो को भूत-प्रेत आदि पर पूर्ण विश्वास था। आज तक पश्चिम की सभ्य जातियो में भी कितने ही लोग कौआ आदि के बोलने से सगुन-असगुन समझते है और शत्रुओ के मरने के लिए उनका पुतला जलाते है। अभी हाल मे विलायत मे प्रधान मन्त्री ऐसक्विथ साहब का पुतला जलाया गया था। जब पढ़ी-लिखी जातियो की यह दशा है तब प्रायः अपढ भारतवासियो में यदि ऐसी बाते पाई जायें तो क्या आश्चर्य है!

सभ्यता की तीन सीढियाँ देखी जाती है। एक समय ऐसा था जब लोग केवल पत्थर की कुल्हाडी, चाक आदि बना कर काम चलाते थे। फिर दूसरा समय ऐसा आया जब लोग नरम धातुओ के औजार बनाने लगे। तीसरा समय वह है जब लोगो ने लोहा निकालना और उसके अस्त्र-शस्त्र आदि बनाना सीखा। ऐसा मालूम होता है कि किसी-किसी देश में पत्थर के समय के बाद ही लोहे का समय आया। भारत और यूरोप के देशो में तीनो समयो के चिह्न क्रम से मिलते है। अफ्रिका और अमेरिका आदि में केवल दो ही समयो के चिह्न पाये जाते है। इन तीनो युगो के नाम क्रम से शिलायुग, स्वर्णयुग और लोहयुग है। अत्यन्त प्राचीन काल के मनुष्य शिकार करके, मछली मार कर और फल बटोर कर उन्हे खाते और इधर-उधर घूमते रहते थे। जबसे मनुष्य कृषि करने लगे और किसी एक स्थान पर रहने लगे तब से उनकी सामाजिक और नैतिक स्थिति उन्नत हो चली। धीरे-धीरे कुटुम्ब के अध्यक्ष के हाथ से शासन निकल कर राजा के हाथ में पहुँचा। आपस का झगड़ा आपस ही में तय न करके कानून के अनुसार चलना लोगो ने पसन्द किया। क्रम से लिखने की कला लोगो को ज्ञात हुआ। इस कला से सभ्यता को बडी सहायता मिली। इतिहास, शिल्प आदि की वृद्धि के लिए स्मरण-शक्ति की आवश्यकता है और स्मरण-शक्ति को लेख से बहुत सहायता मिलती है। अध्यापको को, पुरोहितो को, लेखको को और शासको को लेखो के द्वारा उपदेश, शासन आदि फैलाने का अवसर मिला। अनेक जीव-जन्तुओ के चित्र पहले से ही मनुष्य खीच सकते थे। इसी चित्रण-शक्ति के द्वारा लिपि का आविर्भाव हुआ।

लकड़ी को रगड़ कर आग निकालने की विद्या असभ्य मनुष्यो को बहुत दिनो से ज्ञात थी। इसका प्रमाण यह है कि गुफाओं में जमीन के भीतर मनुष्यो की हड्डियो के साथ-साथ लकड़ी का कोयला भी मिला है। हड्डी की सुइयाँ आदि भी इन गुफाओ में मिली है, जिनसे यह मालूम होता है कि जैसे आजकल कितने ही जगली आदमी चमडे को सी

कर पहनते हैं वैसे ही प्राचीन समय में भी मनुष्य करते थे। आज भी जंगली आदमियो में हड्डी और पत्थर के भालो और बाणो आदि का उपयोग देखा जाता है।

शिलायुग, अर्थात् पत्थर के समय, के दो विभाग हैं। (१) प्राचीन शिला-समय और (२) नवीन शिला-समय। प्राचीन शिला-समय में पत्थर तोड़-तोड कर नोकदार टुकड़े बनाये जाते थे। उन्ही से छुरी, भाले, वाण आदि का काम लिया जाता था। ये पत्थर खराद कर चिकनाये नही जाते थे। नवीन शिला-समय मे पत्थर खराद कर चिकनाये जाते थे। यूरप में पत्थर के ऐसे भाले पृथ्वी में वहुत दूर गडे हुए पाये जाते हैं। पर अफ्रिका की सुमाली भूमि में ऐसे पत्थर भूमि के ऊपर भी पडे हुए मिलते हैं, जिससे यह अनुमान होता है कि वहाँ पर कुछ समय पहले तक शिलास्त्रधारी जगली लोग रहते थे। तसमन्य (Tasmanya) टापू के जगली आदमी पत्थर तोड कर अस्त्र बनाते हुए तो वर्त्तमान काल तक मे देखे गये हैं। वहाँ के जगली लोग लकडी की लाठियो और तोडे हुए पत्थरो से अस्त्र-शस्त्र का काम लेते थे। मर्द काँगरू नामक जन्तु का शिकार करते थे और स्त्रियाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्षो पर चढ कर जानवर पकड लाती थी। वे लोग घोंघे और केकडे को पकडते और सोस नामक जलचर को लाठी से मारते थे और फिर उन्ही को खाते थे। बसी या जाल वनाने का इन्हें ज्ञान न था। फल-मास आदि इनके यहाँ आग पर पकाये जाते थे। पर पानी में खाद्य पदार्थ उबालना इन्हे मालूम न था। इन्हे कृषि का भी ज्ञान न था। लकडियो की टट्टियाँ बनाकर उन्ही की आड में ये लोग किसी तरह रहते थे। बारीक छाल से सिला हुआ चमडा पहनते थे और काँगरू के दाँतो और घोघे आदि की मालाएँ पहनते थे। हाँ, चटाई बुनने की विद्या में ये लोग सभ्यो की बराबरी अवश्य करते थे। पाँच से अधिक ये सख्या नही गिन सकते थे। ये छाया को आत्मा या प्रेत समझते थे। जंगल की झाडियो मे भयकर भूत-प्रेतो का निवास ये मान लेते थे। ये प्रेतो से बचने के लिए मुर्दों की हड्डी की तावीज बनाकर बाँधते थे। मुर्दो की कब्र पर उनके उपयोग के लिए ये हथियार रखते थे और प्रेमो से ये प्रार्थना करते थे कि वे बीमारियो को दूर करें। इस द्वीप के निवासियो के जीवन की परीक्षा से अत्यन्त प्राचीनो के जीवन की दशा का बहुत-कुछ अनुमान किया जा सकता है।

परिशिष्ट

१

सरस्वत्यष्टकम्

(संस्कृत)

मातः सरस्वति! सरस्वति! पारशून्ये!
संसारनामनि निकाममुपप्लुतस्य।
रागादिभिर्जलचरैस्तमसावृतस्य
नौकेव मेऽस्ति शरणं भवदङ्घ्रिसेवा ॥१॥

मातर्भवातपहतो भवतीमवाप्य
क्षुद्रे गुणान् कति दधे मनसि स्वदीयान्।
स्वादूदकाम्बुधितटीं मरुवासिपान्थः
प्राप्यावदीत कियदम्बु वृतौ स्वकीये ॥२॥

मोहाम्बुधावतितरां तमसा निगूढा
अन्विष्य तत्त्वकणिका किल जीवतो मे।
सारस्वतन्त्रकवितामृतदानशौण्डम्
सारस्वतं स्फुरतु धाम सदा प्रकामम् ॥३॥

नाम्नापि भीतिजनकैरतिपातकैर्मे
स्तेयानृतादिभिरलं समलीकृतस्य।
यामम्ब! सेवितवतो भुवनेषु कीर्ति
सा सन्निधेहि सतत हृदये मदीये ॥४॥

न त्वं प्रमादगलिता हृदयात्कदाचि
न्नान्याम्ब! तत्र निवसत्यधिदेवतेव।
आगश्शते शिशुतया विहितेऽपि तस्मात्
मां त्रायसे चरणयोः सविधे सदैव ॥५॥

सेवां श्ववृत्तिमुररीकृतवानजस्रम्
देशे वसन् परमुखेक्षणमात्रधन्ये।
यत्पत्त्यपत्यसुहृदस्तव सेवनैक—
सक्तान् करोमि सुखमेकमिदं ममाम्ब! ॥६॥

त्वत्मेवनान्न परमो मम कोऽपि धर्मः
स्वाराज्यमप्यतुलमेकमिद तवेव ।
भक्ते चिराय तदयाचितमेव दत्से
वत्से मयोति वृणवै परमम्ब ! कि वा ।।७।।
भुक्तो न भक्तिमुदितेन महत्प्रसादः
श्रद्धा प्रशास्तृषु हृदो न बहिर्व्यंधोषि ।
वित्रासिता अधिकृता न वचःप्रपञ्चै—
दैन्यान्मयाम्ब ! सततं परितोषिताऽसि ।।८।।

('सुप्रभातम्', वर्ष १, संख्या १०, १६८१ वि० सं०)

सरस्वत्यष्टकं

(हिन्दी)

[यह रचना सुप्रभात-मण्डल द्वारा प्रार्थना करने पर आदरणीय शर्माजी ने दी थी, जो वि० सं० १९८१ के 'सुप्रभातम्' की, प्रथमवर्ष के फाल्गुन मास की, दशम संख्या में प्रकाशित हुई है]

हे माता सरस्वती ! राग, द्वेष, मोह आदि जलचरो से भरे हुए इस अपार संसार-सागर मे अत्यन्त भ्रान्त होते हुए मुझे तुम्हारी चरण-सेवा ही नौका के समान एकमात्र अवलम्ब है ॥१॥

हे माता ! इस ससार के तापो से सन्तप्त मैं तुम्हे प्राप्त करके भी इस क्षुद्र हृदय मे तुम्हारे कितने गुणो को धारण कर सकता हूँ ? मरुभूमि का प्यासा पथिक मधुर जल-युक्त समुद्र-तट को प्राप्त करके भी अपने चमडे के डोल मे कितना पानी भर सकता है ? ॥२॥

मोहमय समुद्र मे, घने अज्ञानान्धकार मे किसी प्रकार कुछ तत्त्वकणो को पाकर जीवित मेरे हृदय मे तत्त्वरूप एव स्वतन्त्र काव्यामृत पान कराने मे दक्ष सरस्वती का प्रभाव सदा स्फुटित होता रहे ॥३॥

हे माता ! जिनके नाम के स्मरण मात्र से भय उत्पन्न होता है, उन स्तेय, असत्य आदि महापातको से पर्याप्त रूप से दूषित होने पर भी जिस तेरी सेवा के कारण ससार में मेरी कीर्त्ति फैल रही है, वह तू मेरे हृदय मे सदा निवास कर ॥४॥

हे माता ! तू मेरे हृदय मे अधिदेवता के समान निवास करती है और मैंने तुझे कभी प्रमाद से भी विस्मृत नही किया, इसीलिए बालचापल के कारण अनेक अपराधो के करते रहने पर भी तू अपने चरणो के निकट रखकर ही मेरी सदा रक्षा करती है ॥५॥

हे माता ! परमुखापेक्षी परतन्त्र देश मे रहते हुए मैंने श्वानवृत्ति के समान सेवा-वृत्ति को स्वीकार किया है—उस अत्यन्त दु खजनक स्थिति मे एक मात्र सुख यह है कि अपनी स्त्री, सन्तान, मित्र आदि को तेरी सेवा में तत्पर बना रहा हूँ ॥६॥

हे माता ! तेरी सेवा के सिवा मेरा और कोई परमधर्म नही है। तेरी सेवा को मै अनुपम स्वाराज्य समझता हूँ, तू मुझ बालक को विना माँगे ही देती रहती है। अत , मै अब तुझसे क्या माँगू ? ॥७॥

हे माता ! भक्ति से प्रमुदित होकर मैंने तेरे महान् प्रसाद का उपभोग नही किया, अपनी श्रद्धा को भी हृदय में ही रखा, उसकी बाहर घोषणा नही की, अत्यधिक वचन-प्रपञ्चो से तुझे त्रास नही दिया और न तुझपर अधिकार ही जमाया, एव दीनता नम्रता के साथ सदा तुझे सन्तुष्ट किया है ॥८॥

२

उद्बोधनम्

(सस्कृत)

अलं भारतीया ! मतानां विभेदैरलं देशभेदेन वैरेण चालम् ।
अयं शाश्वतो धर्म एको धरायां न सम्भाव्यते धर्मतत्त्वेषु भेदः ॥१॥

दया भूतसङ्घे मतिर्देवदेवे चतुर्वर्ग-चिन्ता विरोधाद्विरामः ॥
मनः कायवाक्शोधने चैव बुद्धिः परं धर्मतत्त्वं, विरोधोऽत्र केषाम् ? ॥२॥

नराः सर्व एवैकमीशम्भजन्ते स ईशः पर नामभेदेन भिन्नः ।
समुद्भासितो धर्म एतेन चैको विधौ हन्त ! को वर्ततां भेदवादः ॥३॥

कलिङ्गाङ्ग-वङ्गान्धक-द्राविडादीनुपाधीन् विहायैक्यमालम्ब्य भूयः ।
अये भारतीयाः पुरेवात्मरूपं लभध्वं, तनुध्व यशश्चारु शुभ्रम् ॥४॥

गिरं संस्कृतां राजकीयाञ्च वाणीं समभ्यस्य लोकद्वयस्यापि सौख्यम् ।
वशे स्थापयध्वं स्व-धर्मं स्व-देशं, तथा प्रापयध्वं पुनर्गौरवन्तत् ॥५॥

चतुर्वर्गमूलं सुविद्येति मत्वा स्वदेशीय-विद्यालयानामुदारम् ।
विधायोन्नतिं शिल्पशास्त्रादि-शिक्षा-प्रचारं भृशं शाश्वतं वर्द्धयध्वम् ॥६॥

अकृत्वा मतिं दोषजाते परेषां विशुद्ध्यै स्वदेशस्य भूयो यतध्वम् ॥
स्वदोषे जनैः शोधितेनावकाशः क्वचिद्दोषजातस्य भावीति मत्वा ॥७॥

वचः सर्वत सत्यमङ्गीकुरुध्वम् नचासत्यमुद्बोधितं ब्रह्मणापि ॥
चरित्रं भृशं सत्यपूत तनुध्वम् मतिं सर्वभूतावने वर्तयध्वम् ॥८॥

पुरामुष्मिकञ्चैहिकम्भारतीया ! सुखं विद्यया साधितं पूर्वजैर्वः ॥
उपेक्ष्याद्य विद्याममुं भोजनार्थं परेषां मुखावेक्षिणो हा ! भवन्तः ॥९॥

जनैरैहिकामुष्मिकार्थ-क्षमासु प्रवृत्तिं विहायाद्य विद्यासु मोहात् ।
श्रमञ्छुष्कवादेषु कुर्वद्भिरेतैः कथं जीवन याप्यते दास्यकृत्ये ॥१०॥

श्रुतौ, दर्शने, ज्यौतिषे, धर्मशास्त्रे पुराणेतिहासे चिकित्साविधौ च ।
तथैवोपयुक्तेषु विद्यान्तरेषु प्रवृत्तिं तनुध्वम् विवादान् विहाय ॥११॥

समभ्यस्य देशान्तरीयाश्च भाषा' समाहृत्य विज्ञानतत्त्वानि युक्त्या ।
गिरा दिव्यया संस्कृतानि प्रकामं स्वदेशीयभाषासु संचारयध्वम् ॥१२॥

न सम्भाव्यते नेष्यते भोजनैक्यं न चान्यत्तथा बाह्यमैक्यं सुधीभिः ।
हृदैक्येन बुद्ध्यैकया सर्वयत्नं स्वदेशोदये भारतीयास्तनुध्वम्‌ ।।१३।।

किं पूर्वसूरिभिरभूत्‌ कृतमात्मदेशे द्वीपान्तरेषु च कियत्‌ क्रियतेऽधुनापि ।
आलोच्य सर्वमिदमङ्ग ! विधत्त यत्नं यत्नेन सर्वमिह सिद्ध्यति नात्र शंका ।।१४।।

यत्पूर्वजैर्विपिनवासपरैस्तृणाय—
मत्वा धनं, भगवदेक-सहाय-सुस्थैः ।
ग्रन्थाः व्यधायिषत हन्त ! परः सहस्राः
सीदन्ति ते कथमिवान्यजनान्‌ गताऽद्य ।।१५।।

('सुप्रभातम्‌', आदर्शांक, संवत्‌ १९८०)

उद्बोधन

(हिन्दी)

[यह कविता श्रद्धेय शर्म्माजी की अतिप्राचीन रचना है। यह संवत् १९८० चैत्रमास के 'सुप्रभातम्' (आदर्शांक) में प्रकाशित हो चुकी है। उनसे पूछने पर मालूम हुआ था कि उन्होंने इसकी रचना सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज में प्रोफेसर रहते हुए की थी। अतः इसका रचनाकाल ६० वर्ष से भी पूर्व है।]

हे भारतीयो! आप पारस्परिक मतभेद, देशभेद और द्वेष को छोड़िए। समस्त पृथ्वी पर एक ही नित्यधर्म है। धर्म के तत्त्वों में किसी का किसी प्रकार भी मतभेद होना सम्भव नही है ॥१॥

प्राणिमात्र पर दया करना, परमात्मा के प्रति श्रद्धा रखना, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति करना, सबके प्रति समभाव रखना, विरोध न रखना और मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध रहना—यह धर्म का परमतत्त्व है, इसमें किसी का विरोध नही है ॥२॥

समस्त मनुष्य एक ही ईश्वर का भजन करते है, वह ईश्वर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय में केवल नाम-भेद से भिन्न मालूम होता है, वास्तव में वह एक ही है। उसी प्रकार ईश्वर ने एक ही धर्म का आविर्भाव किया है, अत उस एक ईश्वरीय आदेश के पालन में कौन-सा भेद-भाव है? ॥३॥

हे भारतीयो! कलिंग, वग, आन्ध्र, द्रविड आदि देशीय उपाधियो को छोडकर सारे भारत को अपना देश समझकर प्राचीनकाल के समान आत्म-गौरव और उज्ज्वल एव स्फीत यश को प्राप्त कीजिए ॥४॥

सस्कृत भाषा और राजकीय भाषा दोनो को पढकर दोनो लोक के सुख को अपने वश मे रखिए, अपने धर्म और अपने देश को पुन प्राचीन गौरव पर पहुँचाइए ॥५॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारो पुरुषार्थो का मूल उत्तम विद्या है—यह समझकर उदारता के साथ स्वदेशीय विद्यालयो की स्थापना कीजिए और शिल्प-कला-कौशल आदि की निरन्तर उन्नति का यत्न कीजिए ॥६॥

दूसरो के दोषो पर ध्यान न देकर अपने देश के सुधार का यत्न कीजिए। अपना सुधार स्वय करने पर फिर दोषो की आशका नही रह जाती ॥७॥

सभी के सत्य वचन को स्वीकार कीजिए, ब्रह्मा के द्वारा भी की गई असत्य घोषणा स्वीकार मत कीजिए। अपने चरित्र को सत्य से पवित्र रखिए, और अपनी भावना को समस्त प्राणियो की रक्षा में लगाइए ॥८॥

हे भारतीयो! प्राचीन काल में आपके पूर्वजो ने विद्या के द्वारा लौकिक और पारलौकिक दोनो प्रकार के सुख प्राप्त किये है। आज आप उन विद्याओ की उपेक्षा करते हुए दाने-दाने के लिए परमुखापेक्षी हो रहे है। खेद है! ॥९॥

विद्वानो ! आप लोग इहलोक और परलोक दोनो के लिए कल्याणदायिनी प्राचीन विद्याओ की उपेक्षा करके शुष्क वाग्जाल मे अपना समय नष्ट करते हुए दासता मे अपना जीवन क्यो व्यतीत कर रहे है ? ॥१०॥

वेद, दर्शन, ज्यौतिष, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास एव चिकित्साशास्त्र तथा इसी प्रकार की अन्य लोकोपयोगी विद्याओ में प्रवृत्ति कीजिए। पारस्परिक विवाद, व्यर्थ शास्त्रार्थ आदि की प्रथा का त्याग कीजिए ॥११॥

अपनी विद्याओं के साथ दूसरे देशो की भाषाओ का अध्ययन करके और उन-उन भाषाओ के विज्ञानमय तत्त्वो का सग्रह करके सस्कृत भाषा मे तथा देश की प्रान्तीय भाषाओ मे उनका प्रचार कीजिए ॥१२॥

हे भारतीयो ! बुद्धिमान्, व्यक्ति भोजन की एकता और अन्य किसी प्रकार की बाहरी एकता नही चाहते और न वह सम्भव ही है। आवश्यकता है, हृदय की एकता और बुद्धि-विचार की एकता की। अत स्वदेश की उन्नति के लिए हृदय और बुद्धि की एकता स्थापित कीजिए ॥१३॥

हमारे पूर्वजो ने देश की उन्नति के लिए क्या किया था और आज विदेशीय अपने देश की उन्नति के लिए क्या-क्या कर रहे है—इन समस्त बातो की भलीभाँति विवेचना करके यत्न कीजिए। यत्न करने से सब कुछ सिद्ध होता है, इसमे तनिक भी सन्देह नही है ॥१४॥

जगलो मे रहते हुए धन-ऐश्वर्य को तृण के समान समझते हुए एव एकमात्र भगवान् की सहायता पर निर्भर रहनेवाले हमारे पूर्वजो ने सहस्र-सहस्र ग्रन्थो का निर्माण किया था, आज वे विदेशीयो के हाथ मे पडकर किस प्रकार दुर्लभ और दु खमय हो रहे है ? ॥१५॥

३

संस्कृतशिक्षा कथमुपयुक्ता भवेत् ?

(संस्कृत)

अयि महाभागा !

संस्कृतशिक्षाया गौरव कस्य भारतीयस्य न विदितम् । भाषान्तराणि देशेऽस्मिन् प्रचार भजन्ति । प्रान्तीयास्तत्र हिन्दी, महाराष्ट्री, वङ्गीया, गुर्जरीया, तामिलीत्येवमादय, राजकीया चाङ्गलभाषा । पूर्वं राजकसम्बन्धात्पारस्य भाषापि यथाकथञ्चित्केषुचिदद्यापि प्रचरन्ती समुपलभ्यते । अनेकभाषावगाहनरमिकेषु रौमक-यावन-स्फाराङ्गीय-शर्मण्यादिवाणी-शिक्षापि प्रवर्त्तते ।

तत्र सर्वास्वीदृशीषु भाषासु संस्कृतेन महिष्ठोऽस्माक सम्बन्ध: । धर्मकार्याणि सर्वाण्य-स्माक तत्तत्प्रान्तीयाना संस्कृतेनैव निर्वहन्ति, येनाद्यापि संस्कृत गृहे गृहेऽवसरेषु श्रूयत इति वैदेशिका अपि विद्वास संस्कृतभाषा जीवन्तीममरी मन्यन्ते ।

स्थिरत्व देशव्यापित्व जगन्मान्यत्व बहुविज्ञानाश्रयत्व साम्प्रतिकविज्ञानविशेषजनक-त्वञ्च संस्कृतगिरो गुणा अनन्यसाधारणा । तथाहि—चरकार्यभटादयश्चेदस्थिरेषु स्वकालिक प्राकृतेषु निजप्रबन्धान् व्यरचयिष्यन् सर्वथा लुप्तप्रायत्वं तद्विद्यानामद्याभविष्यत् । शकराचार्यश्चेत्तामिलभाषया ब्रह्मसूत्रभाष्यं न्यभन्त्स्यत्; को नामार्यावर्त्तीयस्तस्मा-त्तत्त्वबोधसौभाग्यभागभविष्यत् । कालिदासो वा पृथ्वीराजरासोभाषया तत्सदृशे न वा प्राकृतेन केनापि रघुवश व्यधास्यत् नातिमहान्सभ्यजनोपयोगस्तेनाभविष्यत् । पश्यत लुप्ता पैशाची बृहत्कथा संस्कृतानुवादमात्रजीवनीम् । पश्यत बौद्धादिप्राकृतसाहित्यगति भारते नामशेषा प्राच्यतत्त्वसग्राहि—कतिपयजनबोधविषयाम् ।

किं च देशव्यापिनी संस्कृतसरस्वती न प्रान्तीया । यथापुरमद्याप्याकाम्बोजेभ्य आकाम-रूपेभ्य आनेपालेभ्य आसिंहलादियम्प्रचरति । गुणगौरवेण पुन शर्मण्येषु पितृपुरीयेषु सिद्धपुरीयेषु कर्पूरद्वीपेषु चेय पदमादधानोपलभ्यते 'पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते' । न श्रुतं भवद्भि. पितृपुरीयसंस्कृतमहाभिधान शर्मण्यपण्डिताभ्याम् निर्मितम् ? नाकर्णिता संस्कृतनिर्मिता द्वीपान्तरीयाणा श्लोका ? न विदितानि श्रीमता वैदेशिकानि संस्कृतव्याकरणानि ? हन्त ! भो ! देशव्यापिनि जगन्मान्ये संस्कृते यद्विज्ञान ज्ञानञ्च व्याकरणालकारवैद्यकगणितदर्शना-दिसम्बद्धमुपलभ्यते तदग्निकल्पं जाज्वल्यमान भवद्भिरुपेक्ष्यमाणमपि तित्तिरप्रतिमैरद्यापि द्वीपा-न्तरीयैरालिह्यते । भाषारहस्य पुराणरहस्यमीदृशानि विज्ञानान्तराणि च वैदेशिकोद्गीर्णानि नूनं नाविरभविष्यन्, नचेतेषामुद्यमिना संस्कृतभारत्या भारतभाग्यभूतया परिचयोऽभविष्यत् न चेच्छ्रद्धयाध्यवसायेन च ते त परिचयमहरहरवर्द्धयिष्यन् ।

सैषा देशव्यापिका सभ्यमात्रगौरवास्पदीभूता बहुविज्ञानप्रसू साम्प्रतमपि विज्ञान-विशेषान् जनयन्ती नित्यमस्वप्ना भारतमातुर्मुखरूपा संस्कृतभारती नाभ्यस्यते श्रद्धया सर्वे. । न चाभ्यस्यमानापि शुकनिर्विशेषैर्बहुभि साम्प्रतम्पुरेव मधुराणि फलानि दर्शयति । कस्या-पराध. ? नास्या भारत्या नित्यजाग्रदगुणमहिम्न । न शासकाना सर्वदा संस्कृतशिक्षा

यत्पूर्वं महता व्ययेन विवर्द्धयिषूणाम् । न सामान्यजनताया विश्वविद्यालय-ऋषिकुल-गुरुकुलादिकृते कोटीर्वितरन्त्या । केवल सस्कृतभारतीपुत्राणामत्रभवता विदुषामयन्दोषो, ये "कलिरयमिह का स्यादुन्नतिर्हन्त ! जन्तोरतिबलवति दैवे पौरुष किन्तु कुर्यात् । अतनिषत चिरत्ना दिव्यशक्त्या निबन्धान्, क इह मनुजशक्तिस्तादृशानद्य कुर्यात्" । इत्यादि प्रलपन्तो वस्तुविज्ञान वराहवाग्भटादिभिरनुसृतमुपेक्ष्य वाग्जालमात्रवितण्डाभि खण्डयन्तश्छात्रसमय बहुमूल्य न पुनरिमा भारतभारती वस्तुसम्पद्भि सयोज्य तद्भवता-स्त्रिवर्गक्षमान् कर्त्तुमुद्युञ्जते । संहिताभाषा दुरधिगमामुपलभ्य ब्राह्मणभाषया शतपथादीनि भगवद्भिरदृक्षत । भगवता कृष्णद्वैपायनेन च ब्राह्मणान्यप्यपयुज्यमानप्रायाण्युपलभ्य पञ्चमो वेदो भारतराशि प्रतिष्ठापित । बृहत्सहितामाब्राह्मण आस्वकालाच्च यद्विज्ञान तत्सग्रहायेमा निबध्नीयामिति मनसि कुर्वन् वराहमिहिरो निरमास्त । तन्त्राणि रसादिप्रयोगकुशलानि मुनिकुलैरतन्त्र्यन्त । पुराणान्युपपुराणानि चाग्नेयस्कान्दादीनि स्वकालिकस्थापत्यभूगोलादिवि-ज्ञाननिधानानीव न्यबद्धयन्त । सिद्धान्तशिरोमणिप्रभृतीनि प्रबन्धरत्नानि जरत्या भारतावनौ भास्करादिभि प्रणीतानि ।

कृष्णद्वैपायनो यथा सृष्टिमारभ्य युधिष्ठिराभिषेकान्तमितिहास न्यबध्नात्, लोमहर्षणि-प्रभृतयश्च तमश्रावयन् कथ तथा भगवद्भिर्ब्राह्मणैरद्यापि ज्वलद्वाष्पमयाच्छायापथाद्यस्तारकाणा माविर्भावस्तमारभ्य श्रीजयोर्जाभिपेकान्त ग्रहोपग्रहगिरिवारिधिवृक्षगुल्मरक्षोनरप्रभृते-र्भूतजातस्य विकासवार्ता नाभिनवभारते निबध्यते ? न च गृहे गृहे वेतन विनापि श्राव्यते ? मन्ये निष्कारणधार्मिका भगवन्तोप्याग्लभाषाध्यापका इव दक्षिणा विना मातृकुलाशनपरी-क्षोत्तरणमन्तरेण च नेतिहासादि जनतासु श्रावयितुमिच्छन्ति । हहो ! साङ्क्रामिकोयङ्कश्चिद्-दुश्चिकित्स्यो महाव्याधि । तत्रभवान् वराहार्क आब्रह्माण आस्वकालाद्यद्विज्ञानजात तेन निचिता बृहत्सहितामतनिष्ट, ननु भो ! श्रीमद्भिरपि कथ न बृहत्सहितीय तत्परभावि च बाष्पीय-वैद्युत-व्योमयानीयादि-विज्ञान सगृह्य नूतनसहिता कापि प्रणीयते ? येन भवता भ्रातरोप्यादिसूनुप्रभृतिवत्स्वनग्राहद्गूरग्राहादिनिर्माणे प्रभवेयु ।

नून दारवीण-कलवीणादयश्चेदृषयोऽभिनवरहस्यदर्शिनोऽभवन्नस्मिन्नेव कलौ, कथं न तत्सरणिमनुसरद्भिर्भवद्भिरपि मौनव्रतमीदृशेषु विहाय वास्तव मुनित्वमवलम्ब्यते । स्कान्दे किल सामाजिकै कैरपि गर्हणीय पुराणत्व भजत्यपि काशीखण्ड-रेवाखण्ड-सह्याद्रिखण्डादिमये प्राय आमानसादामिहल देशजात वर्णितम्, आर्यैमिश्रैरप्यानवजीवभूमे राहरितभूमेरातुङ्गा-तुङ्गार्णवमाशान्तार्णवमामेरुप्रदेशमात्रडवानलञ्च द्वीपान्तरीयैरिव तपोनिष्ठैर्महत क्लेशानवि-गणय्य प्रवासे भ्रमद्भि सर्वं वृत्तमुपलभ्य कथ न समस्तेय वसुन्धरा वर्ण्यते ? कि भवद्भिरपि-नाभिनवान्याग्नेयमात्स्यपाद्मादीनी वैद्युत-सागरीय-वानस्पत्यादिविज्ञानमयानि प्रणीयन्ते ? कि न पितृपुरीयो महाकोश स्वभापयानूद्यते भवता कालकूटीय-प्रयागीय-पाञ्चाम्बा-दिविश्वविद्यालयै पिष्टपेषणमात्रसारै ? किं न भवता कलाकुमारै कलाध्यक्षैरुपाध्यायै-राचार्यैश्च महामहोपाध्याय-साम्राज्यसहायकादिसज्ञामात्रार्थितविदग्धैर्न जगदीश-प्रफुल्ला-दिऋषीणा सरणिमनुसृत्य नवानि तन्त्राणि प्रतायन्ते ? किं न तार्क्षगल-पार्टालपुरीयादि-

विश्वविद्यालयानुकारीणि काममेतूक्षफर्ड-कैम्ब्रिज-बर्लीन-पेरिस-पुटमेदनादिमहाविश्वविद्यालयप्रतिस्पर्धीनि न केवल गङ्गाद्वारे किं पुनः सर्वेषु गङ्गागोदावरीनर्मदादिपवित्रापगाकूलोपगरनगरेषु सहस्रशः ऋषिकुलानिच्छात्रायुतपालनाध्यापनक्षमैः कुलपतिभिस्तत्त्वदर्शिभिर्ऋषिभिर्विद्याव्यसनिभिरन्तेवासिभिर्गार्ग्यम्भृणीप्रतिमाभिर्विदुषीभिश्चालङ्कृतानि प्रतिपदमाविर्भवन्ति? न पुनस्तमोव्यसनदुर्यशोमसीमालिन्यं भारतवसुधामुखात्प्रक्षाल्यते, न दुर्भिक्षान्धकूपपतिता नरास्तानुगृह्यन्ते, न स्वदेशप्रणयं वैदेशिकभाषाभिर्व्याचक्षाणा धिक् क्रियन्ते, न धर्मध्वजैर्विलुप्यमानः धर्मः संरक्ष्यते !!

ध्रुवमत्र प्रत्यवतिष्ठन्ते प्राकृतप्रिया वैदेशिकभाषाकुशला अभिनवसम्प्रदायप्रवर्त्तका उदरम्भरयः कम्भरवेषिणश्चान्ये। वदन्ति च 'भो! किं लभ्यमनया संस्कृतभाषयाभ्यस्तया? नाधिकरणे कायस्थपदं सौत्कोचवेतनमियन्दातुम्प्रभवति। न न्यायवादिपदं प्रात्यहिकपञ्चसहस्रशुल्कमेषार्पयति। न मरुतशकटगमनक्षमं शासनसमिति सभ्यपदमियम्वितरति। न वाष्पयानेष्वाङ्गलभाषापणमिवैतद्भाषिणः कश्चिदाद्रियते। जलशौचादि-प्रायश्चित्त-परम्परा-बहुला पत्रशोञ्छनाद्यभिनव-धर्मशिक्षादिमुखी म्रियतामेषा। किमनया जर्जरप्रायया? सर्वं विज्ञानं हिन्दीवङ्गीयादिभिर्वक्तृताढिकं चाङ्गलादिभिः प्रख्यापयिष्यामो धनमार्जयिष्याम इति'।

तानेतान्महाशयान् शयेऽप्याशयेऽपि स्थौल्यवतः प्रतिवच्मः। 'किं नु भोः! किं धनमर्ज्यते भवद्भिः? गृहं क्षेत्रञ्च विक्रीय त्रिशन्मुद्राः प्रतिमासं क्षपयित्वा शरीरे ज्वरं मनसि लोभं रसनायाञ्च कतिपयान् कटूञ्छब्दानधिगत्य पताकादर्शकस्य चाटुकारस्य वा पदं प्रतिशतमेकेन भवता लब्धं चेत्किं तेन? न सर्वे न्यायवादिनो वरारूराः रासविहारिघोषवदयुतार्जकाः। प्रचुरा जरत्कर्पटास्तरा अधिकरणोपकण्ठतरुसेविनो मक्षिकापमारणमात्रकृत्याः।

ये किमप्यर्जयन्ति, ते देशमेव भक्षयन्ति, दुर्भिक्षादितान्कृषकान्कर्पयन्तश्च विवादपदशतार्थे सहस्रव्ययं कारयन्तो बन्धूनिरये निपातयन्ति। त्यज्यतां कलाकुमार-पदवीमासाद्याधिकरणिकपदलाभास्था। परीक्षाणां तृणप्रायत्वात् कलाकुमारसंख्याबाहुल्यान्मृगतृष्णिकैषा। हरिकीर्त्तनेन कथका यद्धनं सुखं वा बहुव्ययमकृत्वापि लभन्ते, यं च मनोविनोदं कुर्वते जनतायाः, धर्मशिक्षया च यमुपकारं कुर्वन्ति बन्धुतायाः, न तत्सर्वं स्वप्नेऽपि गम्यं कलाकुमारस्य कलाध्यक्षस्य वा। अद्यापि वैद्या चरकादिपाठेनैव लक्षाण्यर्जयन्ति। समपथान्यपथजलपथादिचिकित्सा-दुस्साध्यानि च जलोदरादीनि शस्त्रप्रयोगं विनैव सितशर्करामिश्रक्षारोपयोगेन शमयन्ति।

किं च 'न ना उ देवाः क्षुदमिद्वधं ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यवः' इति ऋग्वर्णो भिक्षु ऋषिणा दृष्टो नावर्णितः श्रीमद्भिः? अद्यवस्तनिका भवतु मूलकर्जाविनो ग्रामीणपण्डिता शतायुषः मन्यते पूर्वमुपनेत्रविमुखाः' यथा मुञ्चन्ति, किं, तथा युवजरती द्वादशवर्षादुपनेत्रे रात्रिन्दिवं दधाना ताम्ररसादिपावनामृतप्रणयापि कलाकुमारमचार्चिका चत्वारिंशत्परमायुरागामात्रकृतार्था कल्याणिनी कदापि सम्भाव्यते? हन्त! तद्विरम्यतामतिप्रसङ्गादधीत्य संस्कृतं तत्संस्कृतया मातृभाषयैव सर्वं शिल्पादि विधीयताम्, वाणिज्यादिभिश्च

सनाथीक्रियताम्। न रिक्तानि दास्यस्थानानि। किं परमुखापेक्षया? रौमक-यावनारव्य-संस्कृताद्याकरभाषाणामध्ययनं माग्लशर्मण्यादिमातृभाषासंस्कारायैव कुर्वते पाश्चात्याः।

वैज्ञानिकदार्शनिकादिशब्दसंग्रहो हि दुष्कर आकरभाषाभिज्ञतां विना। तथैव भवन्तोऽपि चेष्टन्ताम्। यावज्जीविकमाग्लादिभाषाभ्यासः क्रियतां न पुनर्जीविकाव्याजेन गृहविक्रयायावस्तुतत्वानुवादाय द्वीपान्तरीयभाषासु परिचयो विधीयताम्, न पुनर्व्यवहारकलिसमुत्तेजनया देशभक्षणाय। सरलभूगोलादिविज्ञानं कलाशिल्प-वाणिज्यादिव्यवहरणञ्च प्रान्तीयभाषाभिर्भवतु। सहैव तु सर्व्वेणेदृशेन व्यवहारेण देशे गभीरं दार्शनिकज्ञानं ज्योतिर्गणितादि गरीयो विज्ञानं, तदर्थं देशव्यापिनोऽप्रान्तीयपारिभाषिकाः शब्दा देशमान्यञ्च प्रबन्धजातमितीदृशमपरमपि प्रचुरमपेक्षितम्।

यथा देशे किञ्चारव्य-यूरोपीय चिकित्सासु सतीष्वपि तत्पार्श्वेऽद्याप्युदारतरायुर्व्वेदप्रणाली साम्प्रतमपि वरीवर्त्ति, तथा स्थापत्यादिष्वपि स्वतन्त्रा देशीया पद्धतयस्तावन्न भविष्यन्ति यावत् संस्कृतग्रन्थास्तद्विषयका अनुवादद्वारेण प्रान्तीयभाषाङ्गेषु चरकादिवत् सञ्चरन्तो न दृश्यन्ते। वैज्ञानिकपरिभाषैक्यमपि देशमात्रे संस्कृतमूलकमेव सम्भाव्यते, संस्कृतस्य सर्व्वोपजीव्यत्वात्। प्राकृतानि तु नहि भिक्षुको भिक्षुकान्तरं याचितुमर्हतीति न्यायमनुसरन्ति न परस्परोपजीव्यान्यतः एकस्या प्रान्तीयभाषाया यो विज्ञानकोषो न स्वभाषान्तरे स्वीकृतिं लप्स्यते। न च गाम्भीर्य्यमपि तादृक् प्राकृतभाषाणां येन तदीया निबन्धा मध्यमकालिकान् भ्रमान् दूरीकर्त्तुम्प्रभवन्ति। न वा भारते कियद्गणितमित्यादि पृष्टः कोऽपि मिडिलपरीक्षागणितपुस्तकं दर्शयित्वा कृती भविष्यति, सिद्धान्तशिरोमणिमेव तु शरणीकरिष्यति। स च सिद्धान्तशिरोमणिर्न चेत्पुनर्नवीक्रियते, न तत्र सर्व्वं साम्प्रतिकङ्गणितमिति महत्परिहासस्थानं भविष्यति द्वीपान्तरीयाणाम्।

तदेतत् सर्व्वमभिसन्धाय प्राच्यकन्थानामाग्लादानुवादं विहायाभिनवा संस्कृतसंहिता प्रणीयन्ताम् विविधभाषाभिज्ञैर्देशहितैषिभिः। द्यूतनृत्यादिव्यसनानि विहाय स्थाप्यन्तां कोटीशैः कुलपत्याश्रमाः। मतभेदवादरसिकत्वं परित्यज्य सर्व्वैर्धार्म्मिकैः प्रवर्त्यन्तां धर्म्ममन्त्राणि छात्रोपयोगीनि। "विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं, क्षत्रियाणान्तु वीर्य्यतः।
वैश्यानान्धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः।"

इति मानवीङ्गिरमनुसरद्भिरशूद्रत्वकामैः शुचा द्रवीभावं परिजिहीर्षुभिर्जन्ममात्राभिमानमपहाय ज्ञानाय, धनाय, बलाय च प्रतिनगरं प्रतिग्रामं प्रतिपल्लि स्थापितेषु धर्म्मक्षेत्रेषु स्वयम्प्रयतमानैरन्येषु च ज्ञानस्य धनस्य बलस्य प्रचारमारचयद्भिः स्वार्थपरार्थोभयसाधनरूपपरमार्थनिष्ठैः उद्ध्रियतांभारतभूर्दुर्भिक्षमहामारीप्रत्यक्षनिरयात्।

परिरक्ष्यताञ्च संस्कृतभारती स्वदेशेऽपि देशान्तरेष्विव न हि जननी परपुत्रोपजीव्या स्वपुत्रकृतामुपेक्षामर्हतीति अलं विज्ञेष्वतिपल्लवितेन।

('सुप्रभातम्', प्रथम वर्ष, संख्या १-२, १९८१ वि० सं०)

संस्कृत भाषा कैसे उपयुक्त हो सकती है ?

(हिन्दी)

[यह निबन्ध अखिल भारतीय-संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (हरद्वार) में (विक्रम सवत् १६७०) में पढा गया था और संस्कृत के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'सुप्रभातम्' के प्रथय वर्ष के प्रथम और द्वितीय अक (वैशाख-ज्येष्ठ १६८१ वि०) मे क्रमशः प्रकाशित हुआ था ।]

महानुभाव !

सस्कृत शिक्षा का गौरव किसी भारतीय से छिपा नही है। हमारे देश मे अनेक भाषाएँ प्रचलित है, जिनमे हिन्दी, मराठी, बँगला, तमिल, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाएँ हैं। राजभाषा के रूप मे अँगरेजी भाषा प्रचलित है। पुरातन राजकीय सम्बन्ध से फारसी भाषा भी जहाँ-तहाँ कुछ लोगो मे व्यवहृत होती है। अनेक भाषाओ के रसिकजनो के लिए रोमन, ग्रीक, अरबी, फ्रेंच एव जर्मन भाषाओ की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। फिर भी इन भाषाओ के रहते हुए भी सस्कृत के साथ हमारा घनिष्ठ सम्पर्क है। हमारे समस्त धार्मिक कार्य इसी भाषा के द्वारा सम्पन्न होते हैं, जिससे आज भी घर-घर मे इसके शब्द सुन पडते है। यही कारण है कि विदेशीय विद्वान् इसे इस युग में भी अमर और जीवित भाषा कहते है।

स्थिरता, देशव्यापिता, विश्वमान्यता, विविध-विज्ञान-मूलकता एवं आधुनिक विशिष्ट-विज्ञान-जनकता आदि सस्कृत भाषा के असाधारण गुण है। यदि आचार्य चरक एव आर्यभट आदि अपने समय मे बोली जानेवाली अस्थिर प्राकृत भाषा मे अपने ग्रथो का प्रणयन करते तो आज उनकी विद्याएँ लुप्त हो जाती। यदि शकराचार्य अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्य की रचना तत्कालीन तमिल भाषा में करते तो आज आर्यावर्त्तवासी उनके उस तत्त्व-ज्ञान का सौभाग्य प्राप्त न कर सकते। यदि कालिदास पृथ्वीराज रासो की जैसी स्वकालीन प्राकृत भाषा मे रघुवश आदि महाकाव्यो का निर्माण करते तो आज सभ्य ससार उसके उपयोग से वञ्चित रह जाता। देखिये, पैशाची (भूतभाषा) मे लिखी गई महाकवि 'गुणाढ्य' की 'बृहत्कथा' लुप्त हो गई, केवल संस्कृत अनुवादो के कारण (बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर) आज भी वह जीवित रह गई। बौद्ध और जैन साहित्य की गति देखिये, जो पाली और प्राकृत भाषा मे लिखी जाने के कारण आज केवल पुरातत्त्वानुसन्धान-रसिको के विनोद का साधनमात्र है।

समस्त-देशव्यापिनी सस्कृत-भारती प्रान्तीय भाषा नही है। वह आज भी काबुल से कामरूप (आसाम) तक और नेपाल से सिंहल द्वीप तक प्राचीन काल के समान ही प्रचलित है। इतना ही नही, वह अपने अनुपम गुण-गौरव के कारण जर्मन, रूस, इगलैंड और जापान मे भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है; क्योंकि गुण सर्वत्र अपना

स्थान बना लेते हैं। क्या आपने विदेशीयों द्वारा निर्मित सस्कृत व्याकरण नही देखे ? क्या आपने विदेशीयो द्वारा रचित श्लोक नही सुने ? खेद का विषय है कि देशव्यापी तथा विश्वमान्य सस्कृत भाषा में व्याकरण, अलकार, वैद्यक दर्शन, गणित आदि से सम्बद्ध जितना भी ज्ञान-विज्ञान उपलब्ध होता है। उस अग्नि के समान जाज्वल्यमान ज्ञान-विज्ञान की हम उपेक्षा करते जा रहे हैं और विदेशीय विद्वान् तित्तिरो के समान उसकी अवहेलना करते जा रहे हैं। यदि सतत उद्योगशील वैदेशिक विद्वान्, श्रद्धा और परिश्रम के साथ सस्कृत भाषा का ज्ञान तथा उसके वाङ्मय का गवेषण करके उसे प्रकाशित न करते तो आज हमे भारत की सौभाग्य स्वरूपिणी भगवती सुरभारती के अनेक वैज्ञानिक तथा भाषा-सम्बन्धी रहस्यो एव पौराणिकतत्त्वो का पता ही न चलता।

आज भी अखिलभारतव्यापी, समस्त सभ्य-ससार मे गौरव प्राप्त करनेवाली अनन्त विज्ञानजननी एव भारतमाता की मुखरूपिणी भगवती सुरभारती को आप लोग श्रद्धा के साथ नही पढते। यदि तोता-रटन्त के रूप मे कुछ पढते भी है तो इस प्रकार अध्ययन की गई सस्कृत भाषा प्राचीन काल के समान मधुर फल प्रदान नही करती। इसमे किसका अपराध है? भाषा का अपराध नही कहा जा सकता; क्योकि उसका गुण-गौरव अनादि काल से अनन्तकाल तक उसी प्रकार उज्ज्वल है और रहेगा। शासको का अपराध भी नही कहा जा सकता जो अधिकाधिक धनव्यय करके उसके सवर्द्धन-गवेषण आदि के लिए सर्वदा यत्नशील रहते हैं। और, इसमे जनता का भी अपराध नही है, जो ऋषिकुल, गुरुकुल, विश्वविद्यालय आदि के लिए करोडो रुपये दान देती है। इसमे सर्वाधिक अपराध सस्कृत भारती के पुत्र कहे जानेवाले आप माननीय विद्वानो का है, जो यह कहा करते हैं—"यह तो कलियुग है, इस युग मे प्राणियो की क्या उन्नति हो सकती है? दैव के अत्यन्त बलवान् होने पर पुरुषार्थ क्या कर सकता है? प्राचीन विद्वानो ने तो दिव्यशक्ति से शास्त्रो की रचना की है, आज के मानव की इतनी शक्ति कहाँ है ?" इस प्रकार का प्रलाप करते हुए आप लोग वराहमिहिर, वाग्भट आदि विद्वानो के अमूल्य विज्ञानो की उपेक्षा कर, केवल वाग्जाल और वितण्डावाद में ही छात्रो का अमूल्य समय नष्ट करते हुए, भारत-भारती को नवीन ज्ञान-विज्ञान-सम्पत्ति से समृद्ध बनाकर भारती-भक्तो को पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम) का योग्य नही बना रहे हैं।

पुरातन वैदिक सहिताओ को कठिन समझकर ऋषियो ने ब्राह्मण भाषा मे शतपथ आदि की रचना की। कृष्णद्वैपायन व्यास ने ब्राह्मणो का उपयोग कठिन समझकर पञ्चम वेद के समान 'भारत' की रचना की। वराहमिहिर ने—ब्रह्मदेव से लेकर अपने समयतक के समस्त विज्ञान का सग्रह करूँ ?—ऐसा सोचकर 'बृहत्-सहिता' का निर्माण किया। पारद आदि रस-प्रयोगों में कुशल मनीषियो ने तन्त्रों की रचना की और स्वकालीन स्थापत्य, भूगोल, इतिहास आदि विज्ञानो के निधान रूप आग्नेय, स्कन्द आदि

पुराणो की रचना की। भारत की गिरती हुई जीर्ण अवस्थाओ में भी भास्कराचार्य जैसे विद्वानो ने सिद्धान्तशिरोमणि आदि ग्रन्थो का निर्माण किया था।

जिस प्रकार कृष्णद्वैपायन ने सृष्टि के आरम्भ से लेकर युधिष्ठिर के अभिषेक कालतक का इतिहास सकलित किया और जिस प्रकार उनके शिष्य 'लौमहर्षणि सूत' ने उसे कथारूप मे सुना-सुना कर उसका प्रचार किया, उसी प्रकार आज आप आधुनिक विद्वान् ब्राह्मणगण भी, छायापथ के आविर्भाव से लेकर पञ्चमजार्ज के अभिपेक काल नक की--ग्रह, उपग्रह, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, गुल्म, राक्षस आदि भौतिक जगत् की विकास-कथा का, नवभारत के लिए निर्माण क्यो नही करते और घर-घर जाकर दक्षिणा लिये विना उसे क्यो नही सुनाते? इससे मालूम होता है कि आप भी अँगरेजी भाषा के विद्वानो के समान दक्षिणा के विना मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण न होनेवाली जनता को इतिहास, भूगोल आदि, पढाना या सुनाना नही चाहते। खेद है कि सक्रामक रोग असाध्य हो चुका है।

जैसे वराहमिहिर ने ब्रह्मा मे लेकर अपने समयतक के समस्त विज्ञान-समूह को एकत्र कर 'वृहत्सहिता' का निर्माण किया था, उसी प्रकार आप भी वृहत्सहिता के विज्ञान को लेकर और उसके अनन्तर आविष्कृत आजतक के रेल, मोटर, तार, जहाज, वायुयान, रेडियो आदि विज्ञानो का सग्रह कर एक नवीन सहिता का निर्माण क्यो नही करते? जिससे आपके भाई भी 'आदिसूनु' (मोटर, तार आदि के आविष्कर्त्ता--Edison) आदि के समान ग्रामोफोन, रेडियो आदि के निर्माण में समर्थ हो सकें।

यदि इस कलियुग मे भी डारविन आदि ऋषि प्रकृति के अभिनव रहस्यो के द्रष्टा हो सकते है, तो आपभी उनके मार्ग का अनुकरण करते हुए ऐसे विषय में अपने मौनव्रत को भगकर सच्चे अर्थ में मुनित्व का अवलम्बन क्यो नही करते? देखिये, स्कन्दपुराण मे कुछ लोगो ने अनौचित्य का ध्यान न रखकर काशीखण्ड, रेवाखण्ड, सह्याद्रिखण्ड आदि का निर्माण कर मानस-सरोवर से सिहल द्वीप तक के देशो का वर्णन किया है। इसी प्रकार आप भी उन विदेशीय विद्वानो के समान कठोर तपश्चर्या एव लम्बे प्रवास के भयानक कष्टो को स्वीकार कर न्यूजीलैण्ड से अमेरिका तक, आल्प्स पर्वत मे प्रशान्त महासागर तक, एव सुमेरुपर्वत से वडवानल तक के देशो का वृत्तात सग्रह कर समस्त वसुन्धरा का वर्णन क्यो नही करते?

आप भी आग्नेय, मत्स्य, वायु, पद्म आदि पुराणो के समान, वैद्युत, सागरीय, एव वानस्पतिक पुराणो का वर्णन क्यो नही करते? केवल पिष्ट-पेषण करनेवाले कलकत्ता प्रयाग एव पजाब के सस्कृत विश्वविद्यालय रूस मे प्रकाशित वृहत्सस्कृत-कोष का सस्कृत या हिन्दी अनुवाद क्यो नही करते? आपके बी० ए०, एम् ए०, आचार्य, उपाध्याय, महामहोपाध्याय आदि उपाधिधारी विद्वान् जगदीशचन्द्रबोस एव प्रफुल्लचद्रराय आदि आधुनिक ऋषियो के समान उनके मार्ग का अनुसरण करते हुए नवीन आविष्कारो की सृष्टि क्यो नही करते? केवल गगातट पर ही नही, प्रत्युत गगा, गोदावरी, नर्मदा आदि

सभी पवित्र नदियो के तट पर तथा काशी हरद्वार, आदि पवित्र नगरो मे, प्राक्कालीन, तक्षशिला, पाटलिपुत्र आदि विश्वविद्यालयों के आदर्शपर केम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, वर्लिन एव पेरिस विश्वविद्यालयो के समकक्ष ऋषिकुल या आचार्यकुल क्यो नही खोले जाते, जो ऋषियो के समान तत्वदर्शी विद्वान् कुलपतियो, दस-दस सहस्र छात्रो एव गार्गी, आम्भृणी जैसी विदुषी महिलाओ से अलकृत हो ?

खेद है कि भारतमाता के मुख पर अपने ही अज्ञान-आलस्य आदि से लगी हुई दुर्यश-कलक-कालिमा को धोने मे आप समर्थ नही है। दुर्भिक्ष, दारिद्र्यरूपी प्रत्यक्ष-नरक मे गिरी हुई जनता पर आपको तनिक भी करुणा नही है। विदेशी भाषाओ के विरोध द्वारा आपका स्वदेश-प्रेम जागरित नही हो रहा है। आप धर्मध्वजी बनते हुए भी धर्म की रक्षा करने मे सर्वथा असमर्थ है।

आधुनिक युग के विदेशीय भाषा-प्रवीण, नवीन मत-प्रवर्तक, अवसरवादी, पेटू, एव केवल जीविका-लोलुप प्राय. इस भाषा के विरुद्ध कहा करते है--"भाई, इस सस्कृत भाषा के पढने से क्या लाभ है? इसके द्वारा अदालतो मे घूस और मासिक वेतन के साथ पेशकारी या मोहर्रिरी भी तो नही मिल सकती, न प्रतिदिन हजारो रुपया कमाने योग्य वकील या बैरिस्टर का पद ही प्राप्त होता है, न यह भाषा मोटर-कारो मे घूमने योग्य शासन-सभा का सदस्य-पद ही प्रदान कर सकती है और न रेल-गाडियो में अँगरेजी बाबुओ के समान संस्कृत पण्डित का रोब ही जमता है। कमोड, कागज आदि की अभिनव सभ्यता से रहित, पानी, मिट्टी, स्नान आदि अनेक प्रायश्चित्तो से भरी हुई मृतप्राय भाषा से क्या लाभ है। मरने दो इसे। हिन्दी, बँगला आदि प्रान्तीय भाषाओ द्वारा विविध ज्ञान और विज्ञान का प्रचार किया जा सकता है। व्याख्यान आदि देने के लिए अँगरेजी भाषा है ही और उसके द्वारा प्रचुर मात्रा मे धनार्जन भी किया जा सकता है।" इत्यादि

उन स्थूलबुद्धि महाशयो से मै कहता हूँ —"भाई! आप कितना धन कमा रहे हो? घर और खेत बेचकर, तीस रुपये प्रतिमास (आजकल सौ) व्यय करके एव शरीर में ज्वर, मन मे लोभ और वाणी मे कुछ कटु शब्दो को प्राप्त करके यदि आपमे मे प्रतिशत एक ने किसी प्रकार झण्डी दिखाने (गार्ड) या खुशामदी दास (क्लर्क) की नौकरी प्राप्त कर ही ली तो उससे क्या? सभी वकील और वैरिस्टर रासविहारी घोष के समान दस हजार रोज कमानेवाले नही होते। अधिकाश वकील फटे-पुराने कपडो में कचहरियो के आस-पास पेडो के नीचे मक्खियाँ मारते देखे जाते है? जो वकील कुछ कमाते भी है, वे अपने देशवासियो को ही नोचते है। ये दुर्भिक्ष-दारिद्र्य-पीडित किसानो को त्रस्त करके, हजारो रुपये मुकदमेबाजी मे व्यय कराकर, भाइयोके ही जीवन को नरक बना देते है। बी० ए०, एम्० ए० पास करके तथा मुन्सिफ या सदरआला बनकर धन कमाने की आशा छोडो। देश के कथावाचक आदि केवल हरि-कीर्त्तन द्वारा या कथा सुनाकर जितना धन और सुख प्राप्त करते है, अल्प व्यय मे

जनता का जितना मनोविनोद करते हैं और धर्म-शिक्षा द्वारा भाइयो का जितना उपकार करते है, वह सब बी० ए० या एम्० ए० के लिए स्वप्न भी मे दुर्लभ है। आज भी प्राचीनप्रणाली के वैद्य, चरक एव शार्ङ्गधर की चिकित्सा द्वारा लाखो रुपये कमाते है। वे होमियोपैथी, ऐलोपैथी या जलचिकित्सा आदि के लिए असाध्य जलोदर जैसे रोग, जोक, आपरेशन आदि के विना ही मिस्री और चीनी मिले क्षारो से दूर करने की क्षमता रखते है।

दूसरे दिन के लिए जिनके पास भोजन की व्यवस्था नही रहती ऐसे सत्तू खाकर सौ वर्ष तक अपना स्वस्थ जीवन व्यतीत करनेवाले उन प्राचीन ग्रामीण पण्डितो को देखिए जो सत्तर वर्ष की अवस्था तक चश्मा धारण नही करते। वे जैसे सुखी और स्वस्थ रहते है, क्या उनके समान बारह वर्ष की अवस्था में ही रातदिन चश्मा लगानेवाले और चालीस वर्ष की अन्तिम आयु प्राप्त करनेवाले और विविध हानिकारक पेय और खाद्य का उपयोग करने वाले आजके वृद्ध-युवक सुख प्राप्त कर सकते है?

इस विषय पर अधिक विचार की आवश्यकता नही। सस्कृत भाषा को पढकर शिल्प कला आदि विद्याओ का सस्कृत भाषा मे अनुवाद कीजिए और व्यापार-वाणिज्य शिल्प-आदि से देशो को सनाथ कीजिए। नौकरियाँ सुलभ नही है। उनके लिए स्थान परिमित है। फिर दूसरो का मुँह निहारने की क्या आवश्यकता है?

पाश्चात्य विद्वान्, अँगरेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के संस्कार के लिए जिस प्रकार रोमन, ग्रीक, लैटिन एव सस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं का अध्ययन करते है, उसी प्रकार हमे सस्कृत भाषा का अध्ययन करना चाहिए। इन मूल भाषाओ के अध्ययन के विना वैज्ञानिक एव दार्शनिक शब्दो का सग्रह असम्भव है। आप भी इसी प्रकार प्रयत्न कीजिए। जीविका के लिए अँगरेजी भाषा का अध्ययन कीजिए, किन्तु जीविकार्जन के व्याज से घर-द्वार बेचने के लिए और अनावश्यक विषयो का अनुवाद करने के लिए या मुकदमेबाजी कराकर देश का नाश करने के लिए इंग्लिश भाषा का अध्ययन न कीजिए।

सरल भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि की शिक्षा भले ही प्रान्तीय भाषाओ में हो, किन्तु उसके साथ ही व्यावहारिक ज्ञान के अतिरिक्त गम्भीर दर्शन, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद आदि के लिए देशव्यापी अप्रान्तीय पारिभाषिक शब्दो की तथा सार्वदैशिक ग्रन्थो की भी आवश्यकता है, जो सस्कृत भाषा के द्वारा पूर्ण की जा सकती है।

जिस प्रकार देश में आज यूनानी और अँगरेजी चिकित्सापद्धति के साथ उदार आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली भी चल रही है, उसी प्रकार प्राचीन कला-कौशल-प्रणाली का प्रचलन भी तबतक न होगा जबतक अनुवाद द्वारा उन-उन विषयो के ग्रथो का सस्कृत मे अनुवाद न होगा। सस्कृत के चरक आदिग्रन्थ आज प्रान्तीय भाषाओ मे अनूदित होकर अक्षुण्ण रूप मे चल रहे है। वैज्ञानिक-परिभाषाओ की एकता भी देश भर में सस्कृत-मूलक होने से ही सम्पन्न हो सकती है, क्योकि सस्कृत भाषा ही एकमात्र सब प्रान्तों

में एक रूप मे विद्यमान है। एक प्रान्तीय भाषा के वैज्ञानिक निबन्ध या विज्ञान-कोष दूसरी प्रान्तीय भाषा मे उपयोगी नही हो सकते। न उसमे उतना गाम्भीर्य ही हो सकता है कि वे मध्यकालीन भ्रमो को दूर कर सके। यदि पूछा जाय कि भारत मे गणित विद्या कितनी है, तो मिडिल क्लास की गणित पुस्तक को दिखाने से काम न चलेगा, 'सिद्धान्तशिरोमणि' की शरण मे जाना पडेगा। यदि आज उस 'सिद्धान्तशिरोमणि' को भी नवीन गणित-पद्धतियो द्वारा समृद्ध नही किया जाता तो उसमे समस्त आधुनिक गणित के अभाव से विदेशीयो के सम्मुख हास्यास्पद बनना पडेगा।

इसलिए इन सब विषयो पर भली-भाँति विचार करने के बाद प्राचीन सहिताओ, ग्रन्थो आदि का आग्ल-भाषा मे अनुवाद करने के विचार को छोडकर विविध भाषा-विशारद विद्वानो को नवीन सहिताओ का भी निर्माण करना चाहिए। धनपतियो को विविध दुर्व्यसनो का परित्याग करके कुलपतियो के आश्रमो की स्थापना करनी चाहिए। सभीसम्प्रदाय वालो को मतभेद की अरसिकता का परित्याग करके छात्रो के लिए उपयुक्त धर्मसत्र बनाने चाहिए।

ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धन से और शूद्र जन्म से ज्येष्ठ होता है। इसलिए अशूद्रता चाहनेवाले, शोक से संकुचित होने की भावना का त्याग करके, भारतीय विद्वानो को केवल जन्म का अभिमान छोडकर ज्ञान, धन एव बल की प्राप्ति के लिए प्रतिनगर एवं प्रतिग्राम मे धर्मसत्रो की स्थापना का प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय जनता मे भी ज्ञान, धन और बल का प्रचार करते हुए स्वार्थ और परार्थ दोनो के साधन रूप परमार्थ की प्राप्ति के लिए उद्यत होकर दुर्भिक्ष दारिद्रय एव महामारी रूप प्रत्यक्ष नरक से भारतभूमि का उद्धार करना चाहिए। देश के समान विदेशो मे भी सस्कृत भाषा की रक्षा करनी चाहिए। दूसरे के पुत्रो से परिरक्षित जननी की अपने पुत्रो द्वारा उपेक्षा होना सर्वथा अनुचित है। विद्वानो के लिए अधिक कहने की आवश्यकता नही है।

४

विगत ३ अप्रैल को संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् हिन्दी-प्रेमी महामहोपाध्याय प० रामावतार शर्मा, एम्० ए० का देहान्त हो गया। पण्डित जी इधर बहुत दिनो से रुग्ण हो रहे थे और प्राकृतिक निदान में विश्वास रखने एव कुछ हठी होने के कारण इन्होने अपनी चिकित्सा की ओर ध्यान न दिया। इससे दिन-दिन इनकी तबीयत खराब होती गई और अन्त मे इस महाविद्वान् का निर्वाण हो गया।

स्वर्गीय पण्डितजी की गणना भारत के प्रथम श्रेणी के विद्वानो मे की जाती है। यह बहुत बडे स्वतन्त्र विचारक, धुरन्धर दार्शनिक और सरल पुरुष थे। सस्कृत के अच्छे पण्डित तो भारत में और भी है, पर ऐसे गभीर विचारक और ऐसे निर्भीक विद्वान् शायद ही मिलेगे। शर्माजी देशी भाषा द्वारा शिक्षा देने के पूर्ण पक्षपाती और वर्तमान शिक्षा-क्रम के एक खरे समालोचक थे। यह बहुत दिनो तक काशी, पटना तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयो में अध्यापक और आचार्य रहे। इन्होने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी है। 'यूरोपीय-दर्शन' (हिन्दी) काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है। 'परमार्थ-दर्शन' और 'भारतीयमितिवृत्तम्' को १९१३ मे पडित जी ने स्वय प्रकाशित किया था। 'परमार्थ-दर्शन' के प्रकाशन से बडी हलचल मची थी। बहुतेरे विद्वान् तो इसे सप्तम दर्शन कहने लगे थे। 'सयुक्तिकर्णामृत' का सम्पादन करके इन्होने एशियाटिक सोसाइटी से छपवाया था। अशोक के शिलालेखो का सग्रह करके उनका प्राकृत से सस्कृत मे अनुवाद किया था। इधर पडित जी तीन-चार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना मे लगे थ। सस्कृत में एक विशद कोश का अभाव इन्हें बहुत खटकता था। इसलिए अब तक उपलब्ध सब कोशो से बडे एक सस्कृत कोश की रचना आप कर रहे थे। इसमे शब्दो को पद्यबद्ध रखते हुए आधुनिक रीति से वर्णानुक्रम और पाद-टिप्पणी की भी योजना थी। कोश का प्रणयन एक आदमी का काम न था, फिर भी इन्होने अकेले ही उसे निबाहने की प्रतिज्ञा की थी और इसके लिए दस साल का समय निश्चित किया था। सात साल बीत चुके थे और प्राय दो तिहाई काम हो गया था। लोगो का अनुमान है कि पूरा होने पर इस कोश के सर्वाधिकार के लिए सहज की एक लाख मिल सकता है।

सस्कृत और अँगरेजी का गभीर विद्वान् होते हुए भी पण्डित जी को हिन्दी से बडा अनुराग था और हिन्दी-भाषी जनता ने जबलपुर-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति चुनकर इनके इस हिन्दी-प्रेम का आदर भी किया था।

यह बडे ही क्रान्तिवादी सुधारक थे, और १९११ मे ही अखिल-भारतीय-समाज-सुधार-सम्मेलन के सभापति चुने गये थे। पण्डे-पुजारियो की बडी हँसी उडाया करते थे।

गभीर विद्वान् होकर भी उच्चकोटि के हास्य के बडे सुन्दर लेखक थे और 'स्वामी मुद्गरानन्द' की रचनाएँ इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण पेश करती हैं। पण्डित जी की मृत्यु से सस्कृत-साहित्याकाश का एक उज्ज्वल नक्षत्र, राष्ट्र-भाषा हिन्दी का एक सेवक और एक गभीर विचारक भारत से उठ गया। ऐसे अवसर पर हम पण्डित जी के दु खी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

—'त्यागभूमि', वैशाख, सवत् १९८६।
(वर्ष २, खण्ड २, अंश २ ; पूर्णाङ्क–२०)

५

'सुधा' के पाठको को यह जानकर अत्यत दु ख होगा कि ३ अप्रैल, सन् १९२९ ई० को साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा, एम्० ए० का देहान्त हो गया। शर्मा जी हिंदी, सस्कृत और अँगरेजी–साहित्य के धुरन्धर विद्वान् थे। पाश्चात्य एव प्राच्य दर्शनो में आपकी असाधारण पहुँच थी। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हो चुके थे, तथा 'सुधा' के कृपालु लेखको में थे।

शर्माजी का जन्म बिहार-प्रान्त के सारन जिले मे, ६ मार्च, सन् १८७७ ई० मे, एक साधारण परिवार मे, हुआ था। आपके पिता प० देवनारायण पाडेय कथा बाँच कर अपने परिवार का निर्वाह करते थे। शर्माजी अपने चार भाइयो मे सबसे बडे थे। आपकी बाल्यावस्था में ही आपके पिता का देहात हो गया। इससे अध्ययन का सहारा ही टूट गया। इस समय तक शर्माजी केवल 'लघुकौमुदी' और 'रघुवश' ही पढ सके थे। परन्तु शर्माजी की रुचि अध्ययन की ओर थी। आप बडे प्रतिभाशाली भी थे। आपने सारी कठिनाइयो का सामना कर काशी में अध्ययन आरभ किया। वहाँ से बडे नाम के साथ क्वीन्स कॉलेज से साहित्याचार्य परीक्षा पास की। साहित्याचार्य परीक्षा के बाद आपने तीन खंडो मे व्याकरण-परीक्षा भी दी। पर इसे पूरा नही कर सके। अध्ययन-काल से ही शर्माजी में एक विशेष विचित्रता थी—वह विचित्रता, जो प्राय महान् पुरुषो मे हुआ करती है। प्रसग-वश इस स्थान पर एक बात की चर्चा करना अनुचित न होगा। जिस समय आप क्वीन्स कॉलेज मे सस्कृत पढते थे, उस समय उसके प्रिंसिपल डॉक्टर वेनिस साहब थे। स्वर्गीय डॉक्टर साहब आपकी प्रतिभा के कायल थे। उन्होंने शर्माजी से सस्कृत के साथ ही अँगरेजी पढने का भी अनुरोध किया। शर्माजी को छात्रवृत्ति मिलती थी। डाक्टर वेनिस ने उस छात्रवृत्ति को इसी शर्त पर बढा देने का भी वचन दिया, परतु शर्माजी किसी अध्यापक के द्वारा अँगरेजी पढने को तैयार न हुए। कारण, आपकी दृष्टि में सभी अँगरेजी पढानेवाले अध्यापक मूर्ख प्रतीत होते थे। संस्कृत-परीक्षा समाप्त

करके आप स्वयं अँगरेजी पढने लगे, और ऐंट्रेंस से लेकर एम्० ए० परीक्षा तक बडी योग्यता से पास की ।

अध्ययन समाप्त करने के बाद बिहार-प्रात के सुप्रसिद्ध पटना-कॉलेज मे, सस्कृत के प्रोफेसर पं० कन्हैयालाल शास्त्री की मृत्यु के कारण, सस्कृत-प्रोफेसर की जगह खाली हुई। शर्माजी ने उस पद के लिए दरख्वास्त दी। दरख्वास्त स्वीकृत हो गई। परतु कॉलेज के अधिकारियो ने शर्माजी को प्रॉविशल सर्विस (Provincial service) का वेतन देना स्वीकार नही किया। इस पर शर्माजी ने उक्त कॉलेज मे रहना अपनी मर्यादा और आत्मसम्मान के विरुद्ध समझा, और शीघ्र ही वहाँ से त्यागपत्र देकर कलकत्ता विश्वविद्यालय मे लेक्चरर (Lecturer) होकर चले गये। उनके कलकत्ता चले जाने पर पटना-कॉलेज के अधिकारियो ने उनके समान योग्यता के व्यक्ति को खोजने का भिरतोड परिश्रम किया; परंतु वे अपने इस प्रयत्न में सफल न हो सके। अंत में असफल होकर पटना-कॉलेज के अधिकारियो ने शर्माजी को मुँहमाँगा वेतन दिया, और बहुत आदर के साथ पुन वापस बुला लिया। इस स्थान पर यह बात लिख देना आवश्यक है कि शर्माजी वसु-मल्लिक-लेक्चरर मुकर्रर हुए थे। आपका विषय वेदातथा। अँगरेजी में आपका वह लेक्चर बडा ही मार्मिक और विद्वत्तापूर्ण है।

पटना-कॉलेज की प्रोफेसरी के समय शर्माजी प्रसिद्ध रायचद-प्रेमचंद परीक्षा में भी प्रविष्ट हुए थे। पर इस परीक्षा में बगालियो के अतिरिक्त कभी किसी अन्य प्रांतीय विद्वान् को पुरस्कार नही मिलता था। कारण, उस समय बगालियो में बहुत अधिक संकीर्णता थी, और वे बंगालियो के अतिरिक्त किसी भारतवासी की उन्नति से जलते थे। इस प्रकार, शर्माजी का पुरस्कार न पाना स्वाभाविक था। यह जानकर आश्चर्य हुए विना नही रहता कि स्वय बगाली परीक्षक से शर्माजी बहुत अधिक योग्य थे। पुरस्कार मे वाधक होने के अभिप्राय से बंगाली परीक्षक ने अपनी कैफियत में लिखा था—The Style is too pedantic, अर्थात् रचना-शैली मे पाडित्यदप का बहुत अधिक प्रदर्शन है ।

शर्माजी के पाश्चात्य एव प्राच्य दर्शन-सबधी विशाल ज्ञान का परिचय एक घटना से मिलता है। भरतपुर-नरेश को एक ऐसे आदमी की आवश्यकता हुई जिसने प्राच्य-पाश्चात्य दोनो दर्शन-पद्धतियो का तुलनात्मक अध्ययन, मौलिक रूप से, किया हो। महाराज के निमत्रण पर केवल शर्माजी ही भरतपुर गए, और महाराज की ज्ञान-पिपासा को शात किया। यह बात सभी जानते हैं कि भारतवर्ष में शर्माजी की टक्कर का प्राच्य एव पाश्चात्य दर्शनशास्त्रो का विशेषज्ञ कोई भी भारतवासी नही है ।

मालवीय जी ने हिंदू-विश्वविद्यालय खोलने पर शर्माजी को ओरियँटल विभाग के प्रिंसिपल की हैसियत से बुलाया। कुछ वर्षों तक आप इस पद पर रहे; परंतु अंत में अपने पुराने पद पर पटना-कॉलेज चले गए, और लगभग अंत समय तक वही रहे।

शर्माजी बडे निर्भीक विचार के व्यक्ति थे। सरकारी नौकरी करते हुए भी उन्होने कभी अपना विचार-स्वातन्त्र्य नही खोया। आप शिष्टता एव विनम्रता के अवतार थे, फिर भी आपको खुशामद से घृणा थी। आपने कभी किसी अधिकारी की खुशामद नही की। यही कारण था कि आपसे बहुतसे अयोग्य व्यक्ति आई० ई० एस्० हो गए, परतु आप प्रॉविशल सर्विस मे ही पडे रहे। शर्माजी मे निर्भीकता के साथ ही एक और भी बडा गुण था। वह यह कि आप बडे उच्च कोटि के समाज-सुधारक थे। आजकल के अधिकाश पेटू पडितो की भाँति आप सकीर्ण विचार नही रखते थे, प्रत्युत आपके सामाजिक विचार बडे ही क्रातिकारी थे। सर्वसाधारण को आपके विचारो का पता प्रथमत तब लगा, जब सन् १६१२ ई० मे आप अखिल-भारतीय-समाज-सुधार-सम्मेलन के सभापति बनाए गए ।

हिंदी मे शर्माजी द्वारा लिखित कई विद्वत्तापूर्ण पुस्तके है। इधर आप वर्षों से सस्कृत मे एक वृहद् विश्वकोष लिख रहे थे। खेद है, वह कार्य अधूरा ही रह गया। मृत्यु के कुछ दिन पहले चिकित्सा के लिए आप काशी आये थे, पर कुछ लाभ नही हुआ। अत मे पटना जाकर आपका देहान्त हुआ। शर्माजी के तीन भाई, तीन लडके और सात लडकियाँ है। हम परमात्मा से प्रार्थना करते है कि वह शर्माजी की स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करे, एव उनके सतप्त परिवार को इस विपत्तिकाल मे धैर्य बँधावे।

'सुधा', अप्रैल, १६२६ ई० (१६८६ वि०)।
(चैत्र, वर्ष २; अंक २–३, पूर्णसख्या २१)

संक्षिप्त जीवनी

'पण्डित रामावतार शर्मा का जन्म' विक्रम सवत् १६३४ मे, छपरा मे हुआ था। गत गुरुवार २२ चैत्र को पटना में आपका देहान्त हो गया।

आप सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आपके पिता पण्डित देवनारायण शर्मा भी सस्कृत के अच्छे विद्वान् और प्रेमी थे। अपने पुत्र रामावतार को उन्होने पाँच वर्ष की अवस्था में ही, पढाना आरम्भ कर दिया। उसी समय से बालक की कुशाग्र बुद्धि का परिचय मिलने लग गया। गहन विषयो को भी आप झटपट ग्रहण कर लिया करते थे। बारहवे वर्ष मे आप ने संस्कृत की प्रथमा परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। सस्कृत के साथ ही आप अँगरेजी भी पढने लगे। दोनों ओर की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण होकर आप छात्रवृत्तियाँ लेने लगे। आप इण्ट्रेन्स पास कर चुके थे और अवस्था २० वर्ष की थी जब आपके पूज्य पिताजी का देहान्त हो गया।

उसके बाद मे आपकी आर्थिक अवस्था बिगड़ गई। विधवा माता ने अपने गहने बेचकर पुत्र को पढाया। काशी के स्वनामधन्य विद्वान् स्वर्गवासी महामहोपाध्याय गंगाधर

शास्त्री तैलग, सी० आई० ई० महोदय के पास पढकर आपने साहित्याचार्य की परीक्षा पास की। गगाधर शास्त्री स्वय बडे ही बुद्धिमान् पुरुष थे, स्वभावत· शर्माजी की कुशाग्रबुद्धि से आप बहुत प्रसन्न रहा करते थे। इधर आपने एम्० ए० की परीक्षा भी पास की। अनन्तर काशी के हिन्दू कॉलेज में कुछ दिन अध्यापक का काम कर आप २६ वर्ष की अवस्था में पटना कॉलेज के सस्कृताध्यापक नियुक्त हुए। तबसे मृत्यु के समय तक आप उसी पद पर रहे, बीच में केवल २-३ वर्ष हिन्दू विश्वविद्यालय के सस्कृत-विभाग के प्रधान का काम किया।

आपने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी है। इधर वर्षो से सस्कृत मे बृहत् विश्वकोष लिख रहे थे। खेद है कि वह कार्य अधूरा ही रह गया। मृत्यु के कुछ पहले चिकित्सा के लिए काशी आये थे ; पर कुछ लाभ नही हुआ। अन्त मे पटना जाकर देहान्त हो गया। आपके तीन भाई, तीन लडके और सात लडकियाँ है।"

दैनिक 'आज', काशी; सौर चैत्र; संवत् १९८५; (६-४-१९२९)

९ वैशाख, संवत् १९८६, तदनुसार २२ अप्रैल, सन् १९२९ ईसवी के दैनिक 'आज' में पण्डित रामावतार शर्मा के देहावसान पर शोकसभा का निम्नलिखित समाचार प्रकाशित हुआ है :—

शोकसभा

"कल शाम को टाउन हॉल में पण्डित रामावतार शर्मा के देहान्त पर शोक प्रकट करने के लिए सार्वजनिक सभा हुई। सभापति का आसन श्री भगवानदास जी ने ग्रहण किया था। महामहोपाध्याय पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल और महामहोपाध्याय पण्डित मुरलीधर भी उपस्थित थे। सर्वश्री देवीप्रसाद शुक्ल, श्री प्रकाश, केशव शास्त्री, केदारनाथ शर्मा, गोपाल शास्त्री आदि के शोकसूचक भाषण हुए। निश्चय हुआ कि पण्डित रामावतार जी के स्मारक मे पुस्तकालय खोला जाय।"

—०—

दैनिक 'आज', काशी के २३ चैत्र, संवत् १९८५ तदनुसार ६ अप्रैल, सन् १९२९ ई० के अंक में महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, शीर्षक निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित हुई है:—

"लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि सस्कृत के भारतप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा, एम्० ए०, साहित्याचार्य महोदय का देहान्त गत गुरुवार को पटना मे हो गया। आपके जैसे विद्वान् और स्वतन्त्र विचारक सस्कृतज्ञ का केवल ५२ वर्ष की अवस्था मे इस लोक से उठ जाना समस्त भारत के दुर्भाग्य का परिचायक है। संस्कृत का एसा गम्भीर विद्वान् और ऐसा स्वतन्त्र बुद्धि का मनुष्य हमने दूसरा नही देखा। शर्माजी के मतो से कोई सहमत हो या न हो, उनके तर्को के सामने सर झुका देना ही पड़ता था। सस्कृत के विद्वान् होकर भी आपकी मातृभाषा हिन्दी से, अन्य पण्डितो की

तरह, घृणा नही थी । आप हिन्दी के सुलेखक थे और साहित्य-सम्मेलन मे भी अनेक बार सम्मिलित हुए थे । आपके विचार उन्नतिशील और सस्कृत थे । पुरानी गन्दगी को भी तीर्थ मानना आपको पसन्द नही था । आपमे एक और विशेषता यह थी कि जहाँ यहाँ के अनेकानेक पण्डितो ने युरोपियनो को सस्कृत तथा शास्त्र पढाकर सस्कृत ग्रन्थो का अँगरेजी मे भाषान्तर करने मे उनकी सहायता कर तथा स्वय भी अँगरेजी मे अनुवाद और टीकात्मक ग्रन्थ लिख कर उनसे नाम और धन कमाया, वहा पण्डित रामावतार शर्मा अँगरेजी के ज्ञान-भण्डार को सस्कृतज्ञो के लिए सुलभ करने का प्रयत्न आमरण करते रहे । यह उज्ज्वल देशभक्ति उनकी अमरकृति का कारण होगी। इस अवसर पर हम उनके कुटुम्बियो के साथ आन्तरिक समवेदना प्रकट करते है । आपके-से स्वतन्त्र विचार और उत्तम चरित्र के पुरुष आत्मबल मे ही शान्तिलाभ करते है । उनके लिए प्रार्थना करना ही व्यर्थ है ।"

दैनिक 'आज' रविवार सौर २४ चैत्र, सवत् १९८५ वि० (७-८-२९) के छठे पृष्ठ पर काशी-स्तम्भ मे निम्नलिखित भ्रम-सशोधन प्रकाशित हुआ है ।

भ्रम-सशोधन

"२३ चैत्र के 'आज' मे पण्डित रामावतार शर्मा के देहान्त पर जो टिप्पणी और परिचय छपे है, उन दोनो मे भूल से उनके मरने का दिन गुरुवार २२ चैत्र हो गया है । असल मे उनका देहान्त बुधवार २० चैत्र को हुआ ।"